ल० लन्दाऊ, अ० किताईगारोद्स्की

सरल भौतिकी

गति
ऊष्मा



"मीर" प्रकाशन-गृह
मास्को सोवियत संघ

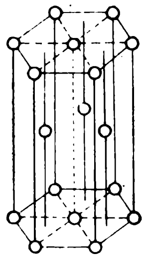
Л. Д. Ландау, А. И. Китайгородский

ФИЗИКА ДЛЯ ВСЕХ

ИЗДАТЕЛЬСТВО «НАУКА»
МОСКВА

ल० लन्दाऊ, अ० किताईगारोद्स्की

सरल भौतिकी



गति
ऊष्मा

"मीर"
प्रकाशन-गृह
मास्को
सोवियत संघ

На языке хинди

विषय-सूची

भूमिका

पाठक यह पुस्तक हाथ में लेने के बाद सबसे पहले स्वयं से यह प्रश्न करेगा कि यह "सरल भौतिकी" किस पाठक-वर्ग के लिए है।

वास्तव में इस पुस्तक के नाम में कुछ अत्युक्ति तो है। इस पुस्तक को समझने के लिए प्रारम्भिक बीजगणित का ज्ञान ही काफ़ी होगा। भौतिक विज्ञान का ज्ञान ज़रूरी नहीं है। हो सकता है कि यह पुस्तक इस विषय पर आपके लिए पहली पुस्तक हो, परन्तु यह उन लोगों के लिए भी रुचिकर सिद्ध होगी जो भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ हैं।

हमने इस पुस्तक को सरल और साधारण भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है तथा पाठकों से कहीं-कहीं हंसी मजाक भी किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी किताब "सरल भौतिकी" एक आसान पुस्तक है। इसके कुछ पन्नों को बहुत समय लगाकर और एकाग्रचित होकर पढ़ना पड़ेगा। कारण यह है कि भौतिक विज्ञान को समझने के लिए प्रायः सघन-रूप से और गहराई में सोचना पड़ता है।

भौतिक विज्ञान के आधारभूत नियमों एवं संकल्पनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया है। जीवन और तकनीक के क्षेत्रों में से उदाहरणों को न भूलने का पूरा प्रयास किया गया है और व्यावहारिक भौतिक विज्ञान के विशाल क्षेत्र की बारीकियों में न पड़ने की कोशिश की गई है।

भौतिक विज्ञान की व्यावहारिक प्रयुक्तियों की चर्चा किए बिना ही उसके मूल सिद्धान्तों के बारे में कुछ ऐतिहासिक सूचनाएं दी गयी हैं।

फिलहाल यह पुस्तक "सरल भौतिकी" भौतिक विज्ञान के उस भाग के विषय में है जो यांत्रिक एवं आणविक गति से सम्बन्धित है। हम आशा करते हैं कि इसी शीर्षक के अन्तर्गत पाठक को भविष्य में विद्युत, प्रकाश और आणविक संरचना पर भी पुस्तकें पढ़ने को मिलेंगी।

ल० लन्दाऊ
अ० कितार्इगारोदस्की

१. मूल संकलपनाएं

सेंटीमीटर और सेकण्ड के बारे में

लम्बाई नापने की, समय मापने की या चीजों को तौलने की दैनिक जीवन में हर किसी को ज़रूरत पड़ती है। इसलिए हर कोई जानता है कि सेंटीमीटर, सेकण्ड और ग्राम क्या हैं। लेकिन भौतिकी में ये मापें विशेष महत्व रखती हैं, क्योंकि उनके आधार पर भौतिक घटनाओं को आंका जाता हैं। लम्बाई नापना, समय मापना और भार तौलना भौतिकी की मूल धारणाएं हैं, इसीलिए इन्हें अत्यन्त परिशुद्धता से मापने की कोशिश की जाती है।

आधुनिक भौतिक उपकरणों की मदद से एक मीटर लंबी दो छड़ों की लम्बाई के अन्तर को 1/1000000000 मीटर तक की परिशुद्धता तक बताना सम्भव है। ऐसे ही दो समयों की मापों के अन्तर को 1/1000000 सेकण्ड तक की परिशुद्धता तक बताना सम्भव है। एक अच्छे तराज़ू पर पोस्त के बीज तक के भार को बहुत अधिक पशिुद्धता से तौला जा सकता है।

नापने की तकनीक कुछ सदियों से ही विकसित होनी शुरू हुई है, लम्बाई और भार के मात्रक क्या होने चाहिए, उन्हें निर्धारित किए अभी ज्यादा समय नहीं हुआ है।

सेंटीमीटर और सेकण्ड ऐसे ही क्यों चुने गए, जैसा कि हमें उनका ज्ञान हैं? यह बात स्पष्ट है कि अगर ये मात्रक और लम्बे भी होते तो भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ना था।

नाप का मात्रक सुविधाजनक होना चाहिए। इसके अतिरिक्त हम उस पर और कोई शर्त नहीं लगाते हैं। नाप का सबसे अच्छा मात्रक तो वह होगा जो आसानी से उपलब्ध हो। इसलिए हाथ को ही नाप का मात्रक क्यों न मान लिया जाए। प्राचीन काल में लोग हाथ को ही नाप का मात्रक मानते थे। इसके बारे में हमें नाप के मात्रक के नाम से पता चलता है, जैसे "हाथ"–यानी कुहनी से बीच की उंगली के सिरे तक की लम्बाई;

इंच – अंगूठे की उसके आधार पर चौड़ाई को कहते हैं ; ऐसे ही क़दम की लम्बाई को "फ़ुट" कहते हैं (अंग्रेजी में foot का मतलब है पैर)।

हालांकि ये मात्रक अत्यन्त सुविधाजनक हैं, और वे हर किसी के पास हैं, लेकिन इन मात्रकों की त्रुटियां स्पष्ट हैं : लोग एक दूसरे से काफ़ी भिन्न होते हैं, इसीलिए हाथ या पैर को त्रुटिरहित मात्रक नहीं माना जा सकता है।

जैसे-जैसे व्यापार विकसित होता गया, वैसे-वैसे माप के मात्रकों को निर्धारित करने की आवश्यकता बढ़ती गई। शुरू में किसी विशेष बाज़ार के लिए, फिर शहर और उसके बाद सारे देश के लिये और अन्त में विश्वभर के लिए लम्बाई और भार के मानक निश्चित किए जाने लगे। मानक – माप का प्रतिदर्श है : पैमाना और बाट। हर सरकार अपने देश के मानकों को सावधानी से सम्भाल कर रखती है और प्रचलित पैमाने या बाट इन मानकों की सही नक़ल होते हैं।

ज़ारवादी रूस में भार और लम्बाई के मात्रकों को पौंड और अर्शीन (जो लम्बाई में 28 इंच के बराबर होता है) कहते थे। 19 वीं शताब्दी में मापने की परिशुद्धता की आवश्यकताएं बढ़ीं और ये मानक त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुए। परिशुद्ध मानक बनाने का जटिल और उत्तरदायित्वपूर्ण काम 1893–1898 के दौरान द्मीत्रीय इवानोविच मेन्देलेयेव के निर्देशन में पूरा किया गया। महान रसायनज्ञ ने परिशुद्ध मात्रक बनाने पर बहुत महत्व दिया। उनकी पहल पर 19 वीं शताब्दी के अन्त में नाप और तौल विभाग की स्थापना हुई जहां मानक सम्भालकर रखे गये। इसी विभाग की देख-रेख में ही मानकों की नक़ल उतारी जाती थी यानी प्रचलित पैमाने और बाट बनाये जाते थे।

कुछ दूरियों को बड़े और कुछ को छोटे मात्रकों में नापते हैं। यह तो उसी प्रकार है जैसे हम मास्को से लेनिनग्राद तक की दूरी सेंटीमीटरों में नहीं नापेंगे और रेलगाड़ी का भार ग्रामों में नहीं लेंगे। इसी कारण बड़े और छोटे मात्रकों के बीच निश्चित अनुपात का भी निर्धारण किया गया। जैसा कि मालूम है, मात्रकों की उस पद्धति में, जो सोवियत संघ में प्रचलित है, बड़े मात्रक छोटे मात्रकों से दस गुना, सौ गुना, हज़ार गुना, दस हज़ार गुना बड़े हैं। ऐसी प्रणाली सुविधाजनक है तथा इसका प्रयोग सब परिकलनों को आसान बनाता है। इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमरीका में

मीटर, सेंटीमीटर या किलोमीटर तथा ग्राम और किलोग्राम,* का अभी भी बहुत कम उपयोग होता है। हालांकि मीटरी पद्धति की सुविधा स्पष्ट है।

17 वीं शताब्दी में एक ऐसे मानक बनाने पर विचार किया गया जो प्रकृति में उपलब्ध हो तथा वर्षों और शताब्दियों में भी न बदले। क्रिस्टियन ग्यूगेंस ने सन् 1664 में लोलक की उस लम्बाई को मानक मानने का प्रस्ताव रखा जिसके बराबर लोलक एक सेकण्ड में एक चक्कर पूरा करे। इसके लगभग 100 साल बाद यानी सन् 1771 में उस दूरी को लम्बाई का मापक मानने का प्रस्ताव रखा गया जो मुक्त रूप से गिरता हुआ पिंड एक सेकण्ड में तय करता है। लेकिन ये दोनों मानक असुविधाजनक सिद्ध हुए और इसलिए इन्हें मान्यता नहीं मिली। आधुनिक मानकों को जन्म देने के लिए एक क्रांति की जरूरत पड़ी। किलोग्राम और मीटर फ्रांस की महान क्रान्ति की उपज हैं।

सन् 1790 में एक संस्थानीय सभा ने मात्रकों की इकाइयों के निर्धारण के लिए एक समिति बनायी। इस समिति के सदस्य प्रसिद्ध भौतिकविद और गणितविद थे। लम्बाई नापने के लिए समस्त रूपान्तरों में से मीटर को ही चुना गया जो भूयाम्योत्तर रेखा (terrestrial meridian) के एक चौथाई भाग का एक करोड़वां हिस्सा है। सन् 1799 में मीटर का मानक तैयार किया गया जो गणतन्त्र (फ्रांस) के अभिलेखागार में संभाल कर रखा है।

शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि प्रकृति से मानक मापों को चुनने का सही काम पूरी तरह संपन्न नहीं किया जा सकता है। 19 वीं शताब्दी में लिए गए परिशुद्ध मापनों से पता चला कि तैयार किया गया मीटर

---

* इंगलैंड में लम्बाई नापने के लिए सरकार द्वारा मान्य निम्नलिखित मानक हैं: समुद्री मील (1852 मीटर), साधारण मील (1609 मीटर), फुट (30.5 सेंटीमीटर), 1 फुट = 12 इंच, 1 इंच = 2.54 सेंटीमीटर, 1 गज़ = 0.91 मीटर। गज़ दर्जी के लिए लम्बाई का मात्रक है; वह सूट की लम्बाई गज़ों में ही नापता है।

अंग्लो-सैक्सन देशों में भार को पौंडों में तोला जाता है (1 पौंड = 454 ग्राम)। एक औंस = 1/16 पौंड, 1 ग्रेन = 1/7000 पौंड। दवाफ़रोश तौलने के लिए इन्हीं मात्रकों का इस्तेमाल करते हैं।

का मानक भूयाम्योत्तर रेखा के चार करोड़वें हिस्से से 0.08 मिलीमीटर छोटा है। यह स्पष्ट हो गया कि मापने की तकनीक जैसे-जैसे उन्नत होती जाएगी वैसे-वैसे नये संशोधन किए जाएंगे। मीटर को भूयाम्योत्तर रेखा का अंश मानकर जब कभी नए सिरे से भूयाम्योत्तर की लम्बाई मापी जाएगी तो नए मानक तैयार करने पड़ेंगे और सब लम्बाइयों को फिर से मापना पड़ेगा। इसलिए 1870, 1872 और 1875 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हुई बहसों के पश्चात यह निर्धारित किया गया कि लम्बाई का मात्रक भूयाम्योत्तर रेखा का चार करोड़वां भाग नहीं होगा, बल्कि मीटर का मानक वह होगा जो 1799 में तैयार किया गया था। और अब यह पेरिस में स्थित अन्तर्राष्ट्रीय नाप और तोल ब्यूरो में रखा है।

मीटर का इतिहास यहीं पर समाप्त नहीं हो जाता है। भौतिक विज्ञान की नई धारणाओं ने इस आधारभूत मानक के निर्धारण में एक नयी भूमिका अदा की है। लम्बाई के मानक को पुनः प्रकृति से, लेकिन बहुत ही बुद्धिमानी से, लिया गया।

मीटर के साथ-साथ इसके अंशों का भी निर्धारण किया गया: एक हज़ारवें भाग को मिलीमीटर कहते हैं, दस लाखवें भाग को माइक्रॉन कहते हैं और सबसे प्रचलित अंश, सौवां भाग सेंटीमीटर कहलाता है।

आइए, अब आपको सेकण्ड के बारे में कुछ बतायें। सेकण्ड सेंटीमीटर से काफ़ी पुराना मात्रक है। समय के मात्रक का निर्धारण करते समय किसी प्रकार का मतभेद सामने नहीं आया। यह बात स्वाभाविक है: रात और दिन का बदलना तथा सूर्य का सर्वदा घूमना समय के मानक के निर्धारण करने में प्राकृतिक विधि बताते हैं। हरेक इस वाक्य से परिचित है: "सूर्य के अनुसार समय मालूम करना"। यदि सूर्य आकाश में पूरी ऊंचाई पर हो तो यह कहा जाता है कि ठीक बारह बजे हैं। ऐसे ही किसी छड़ी की छाया की लम्बाई को नाप कर हम समय बता सकते हैं जब कि सूर्य सर्वाधिक ऊंचाई पर होता है। अगले दिन उसी विधि से ठीक उसी समय को बताया जा सकता है। इन दोनों समयों के बीच की अवधि को एक पूरा दिन यानी 24 घण्टे कहते हैं। इसके बाद दिन को घण्टों, मिनटों और सेकण्डों में बांटने का काम शेष रह जाता है।

समय के बड़े मात्रक साल और दिन कहलाते हैं। ये भी प्रकृति से लिए गए हैं। लेकिन घंटे, मिनट और सेकण्ड आदमी के दिमाग़ की उपज हैं।

दिन का ग्राधुनिक विभाजन पुराने समय से ही चला ग्रा रहा है। बेबीलोन (Babylon) में गणना की मीटरी पद्धति नहीं, बल्कि एक ऐसी पद्धति प्रचलित थी जिसमें मात्रकों के 60 भाग किए जाते थे। साठ 12 से बिना शेष विभाजित हो जाता है। यहीं से ही बेबीलोन के निवासियों ने दिन के 12 भाग किए।

प्राचीन काल में मिस्र में दिन को 24 घंटों में बांटा गया था। मिनट ग्रौर सेकण्ड बाद में सामने ग्राए। ये तथ्य कि एक घण्टे में 60 मिनट ग्रौर 1 मिनट में 60 सेकण्ड होते हैं, बेबीलोन की पद्धति की ही बपौती है।

प्राचीन काल में ग्रौर मध्य युग में समय सूरज की या पानी की घड़ी से (किसी बड़े बर्तन में पानी के निकलने के समय के ग्राधार पर) मापा जाता था ग्रौर ग्रनेक विवेकपूर्ण लेकिन ग्रत्यन्त त्रुटिपूर्ण तरीक़ों से मापा जाता था।

ग्राधुनिक घड़ियों का उपयोग कर हम यह बात ग्रासानी से समझ जाते हैं कि दिन साल के ग्रलग-ग्रलग समय में बिल्कुल समान नहीं होता है। इसलिए समय के मात्रक की इकाई साल भर के सौर दिवसों की ग्रौसत है। इस ग्रौसत दिवस के 24 वें भाग को एक घंटा कहते हैं।

दिवस को समान हिस्सों में बांटते समय यानी समय के मात्रकों—घण्टों, मिनटों ग्रौर सेकण्डों—का निर्धारण करते समय हम यह मानते हैं कि पृथ्वी एकसमान गति से घूमती है। लेकिन महासागरीय चांद्र-सौर ज्वार-भाटे, हालांकि नाममात्र ही, पृथ्वी की गति को मन्थर करते हैं। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि हम द्वारा चुना गया समय का मात्रक—दिवस—लगातार लम्बा होता जाता है।

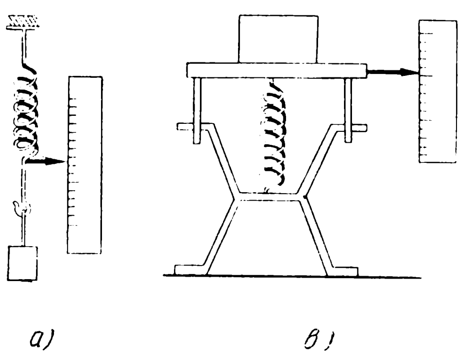
पृथ्वी के घूर्णन का धीमा हो जाना इतना कम होता है कि इसे भी कुछ समय पहले ही प्रत्यक्ष रूप से परमाणु घड़ी का ग्राविष्कार होने पर मापना सम्भव हुग्रा है। परमाणु घड़ी समय के कालों को बड़ी ही परिशुद्धता से मापती है। ऐसी घड़ी से 100 साल तक समय मापने पर चौबीस घंटों में सिर्फ़ 1–2 मिलीसेकण्ड का ग्रन्तर ग्राता है।

लेकिन जहां तक मानक का सम्बन्ध है तो उससें इतना ग्रन्तर भी नहीं ग्राना चाहिए। ग्रन्तिम परिभाषा के ग्रनुसार एक सेकण्ड एक साल का 1/315569259747 वां हिस्सा है, लेकिन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ग्रौसत सौर दिवसों का भाग नहीं है।

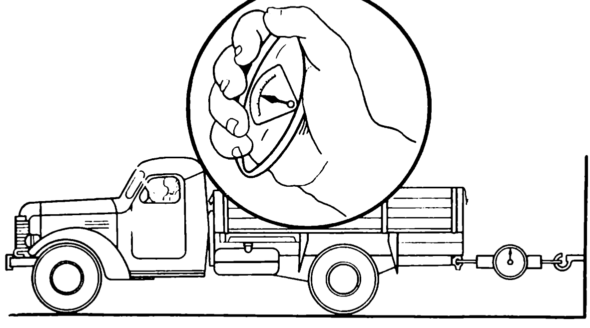
भार ग्रौर द्रव्यमान

भार – यह बल है, जिससे पिंड पृथ्वी की ग्रोर ग्राकर्षित होता है। इस बल को कमानी-तुला की मदद से मापा जा सकता है। जितना ज़्यादा जिस पिंड का वज़न होगा, उतना ज़्यादा स्प्रिंग खिंचेगा, जिससे पिंड लटका होता है। बाट की मदद से, जिसको मात्रक माना गया है, स्प्रिंग का ग्रंशांकन किया जा सकता हैं यानी उस पर निशान लगाये जा सकते हैं जो यह बताते हैं कि एक, दो, तीन या ग्रधिक किलोग्रामों को लटकाने से कमानी कितनी खिचेंगी। ऐसा करने के पश्चात ग्रगर ऐसी तुला पर से किसी पिंड को लटकाते हैं तो कमानी के खिंचाव से मालूम हो जाता है कि किस बल से पिंड ज़मीन की तरफ ग्राकर्षित हो रहा है। यह बल किलोग्रामों में होता हैं (देखिए चित्र 1,a)। भार को मापने के लिए न केवल लम्बाई में बढ़नेवाले स्प्रिंगों का, बल्कि संकुचित होनेवाले स्प्रिंगों का उपयोग भी किया जाता है (देखिए चित्र 1, b)। विभिन्न मोटाई वाले स्प्रिंग लेकर बहुत बड़े या बहुत छोटे बल मापने के वास्ते तराज़ू बनाए जा सकते हैं। इसी सिद्धान्त पर न केवल दैनंदिन के प्रयोग के लिए, बल्कि बहुत ही परिशुद्ध तराज़ू भी बनाए जाते हैं जिनका भौतिक मापनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

ग्रंशांकित स्प्रिंग का न केवल गुरुत्वीय ग्राकर्षण बल मापने के लिए यानी भार तौलने के वास्ते, बल्कि दूसरे बलों को मापने के लिए भी उपयोग किया जाता है। ऐसे यंत्र को डायनेमोमीटर यानी बल मापक कहते हैं।



चित्र 1



चित्र 2

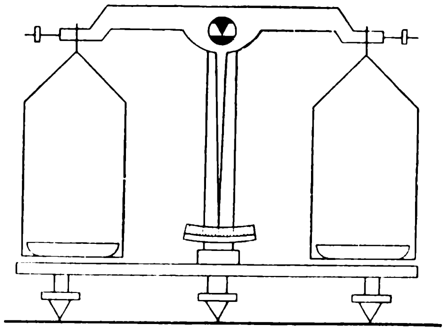
बहुतों ने देखा होगा कि डायनेमोमीटर का पेशीय बल मापने के लिए कैसे उपयोग किया जाता है। मोटर के कर्षण बल को भी लम्बाई में बढ़नेवाले स्प्रिंग का उपयोग कर आसानी से मापा जा सकता है (देखिए, चित्र 2)।

पिंड का भार उसका एक बहुत महत्वपूर्ण गुण है। लेकिन भार सिर्फ़ पिंड पर ही निर्भर नहीं करता है। उसे पृथ्वी भी तो आकर्षित करती है। अगर हम चांद पर होते तो? तब, स्पष्ट है कि भार दूसरा होता और लगभग 6 गुना कम होता, जैसा कि परिकलन बताते हैं। यही नहीं, एक ही पिंड का भार पृथ्वी के अलग-अलग अक्षांशों पर भी भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, ध्रुव पर पिंड का भार भूमध्य रेखा की तुलना में लगभग 0.5% ज़्यादा होता है।

यह सब होने के बावजूद भी भार की एक और अनूठी विशेषता है– दो पिंडों के भार का अनुपात हर किसी परिस्थिति में, जैसा कि प्रयोग से पता चलता है, एक होता है। अगर दो अलग-अलग भार ध्रुव पर कमानी को एकसमान खींचते हैं तो यह एकसमानता भूमध्य रेखा पर भी बिलकुल वैसी ही होगी।

जब हम किसी भार की मानक के भार से तुलना करते हैं तो पिंडों का एक और गुण सामने आता है जिसे द्रव्यमान कहते हैं।

भार की तुलना करते समय इस नयी धारणा–द्रव्यमान–का भौतिक अर्थ उस समानता से बहुत गहरे तौर पर सम्बन्धित है जिस का अभी ही ऊपर उल्लेख किया गया है।



चित्र 3

भार के प्रतिकूल द्रव्यमान पिंड का अपरिवर्तनीय गुण है, जो पिंड के सिवाय और किसी चीज़ पर निर्भर नहीं करता है।

साधारण भौतिक तुला (चित्र 3) में वज़नों की तुलना करना यानी द्रव्यमान को मापना सबसे आसान है। यदि भौतिक तुला के दोनों पलड़े, जिन पर पिंड रखे हुए हैं, एक दूसरे को बिलकुल सन्तुलित करें तो कहते हैं कि दोनों पिंडों का द्रव्यमान बराबर है। अगर किसी वज़न को भौतिक तुला में पहले भूमध्य-रेखा पर तौला जाये और फिर उसी ही वज़न और बाटों को ध्रुव पर ले जाकर तौला जाये, तो वज़न और बाट अपना भार एकसमान बदलते हैं। इसलिए ध्रुव पर तौलने का भी वही परिणाम होगा अर्थात् पलड़े सन्तुलित रहेंगे।

इस तथ्य की जांच करने के लिए अगर चांद पर भी जायें, तो भी परिणाम वही होगा क्योंकि चांद पर पिंडों के वज़नों का अनुपात नहीं बदलेगा। भौतिक तुला के पलड़े पर रखा भार उन्हीं बाटों से सन्तुलित किया जा सकता है, जिनसे पृथ्वी पर किया गया था। पिंड का द्रव्यमान एक ही रहता है चाहे वह कहीं भी स्थित क्यों न हो।

वज़न और द्रव्यमान के मात्रक मानक बाट के निर्धारण से सम्बन्धित हैं। मीटर और सेकण्ड के मानक की तरह ही द्रव्यमान का व्यावहारिक मानक खोजने का भी प्रयत्न किया गया। उसी समिति ने एक विशेष मिश्र

धातु का बाट बनवाया जिसका वज़न 4 डिगरी सेंटीग्रेड* पर एक घन डेसीमीटर पानी के वज़न के बराबर था। इस मानक को किलोग्राम कहते हैं।

बाद में पता चला कि एक घन डेसीमीटर पानी को "लेना" इतना आसान नहीं है। पहला कारण तो यह है कि डेसीमीटर, जो मीटर का एक भाग है, मीटर के मानक की परिशुद्धता पर निर्भर करता है। और दूसरा कारण यह है कि पानी कैसा होना चाहिए? रसायनतः शुद्ध होना चाहिए? क्या उसका दो बार आसवन हुआ होना चाहिए? उसमें हवा होनी चाहिए या नहीं? उसमें विद्यमान् "कठोर जल" का क्या करना चाहिए? इससे मुश्किल बात तो यह है कि आयतन की माप की परिशुद्धता वज़न तौलने की परिशुद्धता से बहुत कम है।

इसलिए एक बार फिर व्यावहारिक मात्रक का त्याग करना पड़ा और एक खास बाट के द्रव्यमान को द्रव्यमान का मात्रक माना गया। इस बाट को भी पेरिस में मीटर के मानक के साथ ही रखा हुआ है।

द्रव्यमान को मापने के लिए किलोग्राम के हज़ारवें व दस लाखवें हिस्से अर्थात् ग्राम और मिलीग्राम बहुत प्रचलित हैं। पृथ्वी की 45 वीं समानांतर रेखा पर मानक बाट के भार को किलोग्राम कहते हैं और उसे kg·f से व्यक्त करते हैं, इस बाट के द्रव्यमान को भी किलोग्राम कहते हैं परन्तु उसे kg से व्यक्त करते हैं। चांद पर इस बाट का द्रव्यमान एक किलोग्राम ही रहेगा, लेकिन भार लगभग 0.17 किलोग्राम रह जाएगा। इस तरह बल और द्रव्यमान के माप के मात्रकों के नाम एक जैसे ही हैं। यही कारण है कि वज़न और द्रव्यमान के "परस्पर सम्बन्ध" को समझने में बहुत ग़लतफ़हमी हो जाती है। इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए नाप और तौल समिति के 1960 में हुए 10 वें और 11 वें सम्मेलनों ने एक नई

---

*यह तापमान ऐसे ही नहीं चुना गया है। कारण यह है कि गर्म करने पर पानी का आयतन बहुत ही असाधारण तरीक़े से बदलता है, उसका आयतन अधिकांश पिंडों के आयतन की तरह नहीं बदलता है। प्रायः पिंड गरम करने पर फैलता है, लेकिन जब पानी को 0° से 4° सेंटीग्रेड तक गर्म किया जाता है तो वह सिकुड़ता है और सिर्फ़ 4° सेंटीग्रेड के बाद फैलना शुरू करता है। इसलिए 4° सेंटीग्रेड वह तापमान है जिस पर पानी सिकुड़ना बन्द कर देता है और फैलने लगता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मात्रक पद्धति निर्धारित की, जिसे अधिकांश देशों ने राजकीय मानकों में अपना लिया है। इसे अन्तर्राष्ट्रीय मात्रक पद्धति (SI पद्धति) कहते हैं। इस पद्धति में द्रव्यमान के मात्रक को किलोग्राम kg कहा गया है। प्रत्येक बल को, अवश्य ही भार को भी, नई पद्धति में न्यूटनों (N) में नापा जाता है। इसके बारे में आगे चलकर उल्लेख किया जाएगा।

नई पद्धति का उपयोग वस्तुत: शीघ्र और हर जगह नहीं किया जा सकेगा। इसलिए यहां हमें केवल इतना ही याद रखना चाहिए कि द्रव्यमान का मात्रक kg और बल का मात्रक kg · f दो भिन्न मात्रक हैं और उनका अंकीय संक्रियाओं में उपयोग दो भिन्न मात्राएं समझकर करना चाहिए। उदाहरण के लिए $5kg + 2kg \cdot f = 7$ लिखना उतनी ही मूर्खता होगी जितनी मीटरों में सेकण्डों को जमा करने में।

घनत्व

यह कहने का क्या तात्पर्य होता है कि "चीज़ सीसे की तरह भारी है या पंख की तरह हलकी है"? स्पष्ट है कि सीसे की कणिका हलकी होगी जब कि पंखों के ढेर का द्रव्यमान बहुत ज़्यादा होगा। जो ऐसी तुलना करते हैं उनका अभिप्राय पिंडों के दव्यमान से नहीं होता, बल्कि उस वस्तु के घनत्व से होता है जिससे पिंड बना हुआ होता है।

प्रति मात्रक आयतन के द्रव्यमान को पिंड का घनत्व कहते हैं। स्पष्ट है कि सीसे की कणिका तथा उसके एक बड़े टुकड़े का घनत्व एक जैसा ही होगा।

घनत्व की नाप "ग्राम प्रति घन से० मी० " यानी पिंड के एक घन सेंटीमीटर में ग्रामों की संख्या में की जाती है। घनत्व $= \dfrac{\text{द्रव्यमान (ग्रामों में)}}{\text{आयतन (घन से० मी० में)}}$।

कुछ धातुएं बहुत भारी होती हैं, जैसे कि ऑस्मियम, जिसका घनत्व 22.5 ग्राम प्रति घन से० मी० के बराबर है, इरीडियम (22.4) प्लैटिनम (21.5), वुलफ़्रैम और सोना (19.3)। लोहे और तांबे का घनत्व क्रमश: 7.88 और 8.93 है।

मैग्नीशियम (1.74), बेरिलियम (1.83), ऐलुमिनियम (2.70) हलकी धातुएं हैं। कार्बनिक पदार्थ इनसे भी हल्के होते हैं: अनेक प्रकार की लकड़ी या प्लास्टिक, जिनका घनत्व 0.4 तक होता है।

यह बताना आवश्यक होगा कि यहां केवल ठोस पदार्थों (पिंडों) की चर्चा हो रही है। अगर ठोस पदार्थ में छिद्र हैं तो वह हलका होगा। उद्योग में सरंध्र पदार्थों जैसे कार्क, फेन-कांच आदि का कई जगह इस्तेमाल होता है। फेन-कांच का घनत्व 0.5 gm से भी कम हो सकता है हालांकि वह ठोस पदार्थ से बना है जिसका घनत्व एक से ज़्यादा है। सब पिंडों की तरह, जिनका घनत्व एक से कम है, फेन-कांच भी पानी पर तैरता है।

तरल हाइड्रोजन सबसे हलका द्रव है जो केवल बहुत ही कम तापमान पर पाया जाता है। एक घन सेंटीमीटर तरल हाइड्रोजन का द्रव्यमान 0.07 gm (ग्राम) है। कार्बनिक द्रवों – स्पिरिट, पैट्रोल, मिट्टी के तेल – का घनत्व पानी से ज़्यादा भिन्न नहीं है। पारा बहुत भारी है और उसका घनत्व 13.6 ग्राम प्रति घन से० मी० के बराबर है।

गैस के घनत्व का चित्रण किस प्रकार किया जाए? गैस को, जैसा कि मालूम है, जितना आयतन मिले उतना ही घेर लेती है। अगर किसी गैस सिलिंडर में से गैस की समान मात्रा को दो अलग-अलग आयतन वाले बर्तनों में भरा जाए, तो वह इन बर्तनों को एक समान भर देगी। ऐसी स्थिति में गैस के घनत्व से क्या अभिप्राय होता है?

गैसों का घनत्व तथाकथित सामान्य परिस्थितियों में – तापमान 0° सेंटीग्रेड और एक वायुमंडलीय दाब पर – मालूम करते हैं। सामान्य परिस्थितियों में हवा का घनत्व $0.00129 gm/cm^3$ और क्लोरीन का $0.00322 gm/cm^3$ होता है। हाइड्रोजन गैस तरल हाइड्रोजन की तरह सब गैसो में से हलकी है और उसका घनत्व $0.00009\ gm/cm^3$ के बराबर है।

हाइड्रोजन के बाद हीलियम का नम्बर आता है, जो उस से दुगुनी भारी है। कार्बन डाइआॅक्साइड हवा से 1.5 गुना भारी है। इटली में नेपुल्स के पास एक मशहूर "कुत्तों की गुफ़ा" है, उसके निचले भाग में से कार्बन डाइआॅक्साइड लगातार निकल रही है, यह गैस नीचे ही रहती है और धीरे-धीरे गुफ़ा में से निकलती है। मनुष्य तो बग़ैर किसी रुकावट के उस गुफ़ा के अन्दर जा सकता है, लेकिन कुत्ते इस गुफ़ा के अन्दर जाते ही मर जाते हैं। इस कारण ही यह गुफ़ा "कुत्तों की गुफ़ा" के नाम से प्रसिद्ध है।

गैसों का घनत्व बाह्य परिस्थितियों – तापमान और दाब – पर बहुत निर्भर करता है। इसलिए बाह्य परिस्थितियों के उल्लेख के बिना गैस के घनत्व का कोई अर्थ नहीं होता है। द्रव और ठोस पदार्थों (पिंडों) का घनत्व भी तापमान और दाब पर निर्भर करता है, परन्तु बहुत ही कम।

संहति-संरक्षण नियम

अगर चीनी को पानी में घोला जाए तो घोल का द्रव्यमान चीनी और पानी के द्रव्यमानों के योग के ठीक बराबर होगा।

इस और ऐसे ही अनेक प्रयोगों से पता चलता है कि द्रव्यमान पिंड का एक अचर गुण है। पिंड के चाहे कितने ही हिस्से कर दिए जाएं या उसे घोला जाए, उसका द्रव्यमान एक जैसा ही रहता है।

यही बात किसी भी रासायनिक रूपान्तरण के लिए भी सही है। कोयले के जल जाने के बाद अगर दहन पदार्थों को परिशुद्धता से तौला जाये तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि कोयले के द्रव्यमान और उसके दहन के वास्ते ख़र्च हुई वायु में विद्यमान् ऑक्सीजन के द्रव्यमान का योग दहन पदार्थों के द्रव्यमान के ठीक बराबर होगा।

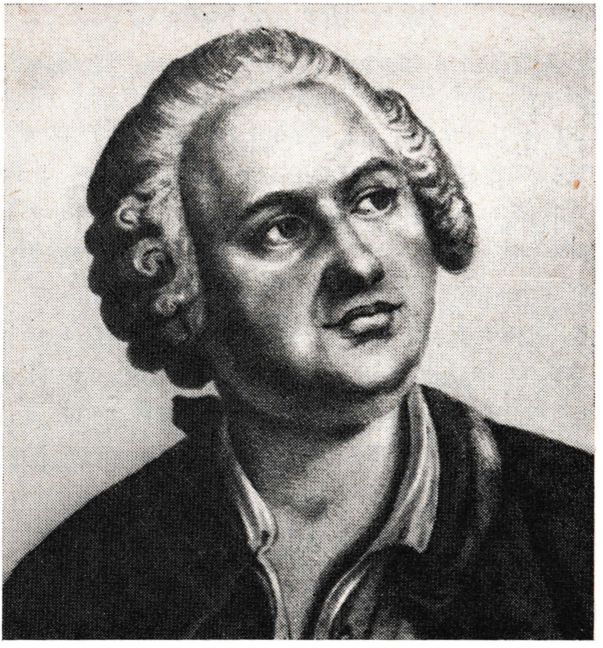
19 वीं सदी के अंत में संहति-संरक्षण नियम को अन्तिम बार सच्चा साबित किया गया था। उस समय तौलने की तकनीक बहुत ज़्यादा विकसित थी। इस जांच से पता चला कि किसी भी रासायनिक रूपान्तरण के दौरान द्रव्यमान में रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ता है।

संहति-संरक्षण नियम के बारे में प्राचीन काल में भी विज्ञानी जानते थे। इस नियम की सबसे पहले 1756 में मिखाईल वसीलियेविच लोमोनोसव ने प्रयोगतः जांच की और इसका वैज्ञानिक महत्त्व बताया। उन्होंने 1756 में प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि धातु को जलाने पर भी उसका द्रव्यमान बदलता नहीं है।

द्रव्यमान पिंड का सबसे महत्त्वपूर्ण अचर गुण है। पिंडों के अधिकांश गुण "मनुष्य के हाथ" में हैं। उदाहरण के लिए, नरम लोहे को कठोरीकरण द्वारा कठोर और भंगुर बनाया जा सकता है। गंदले घोल को पराश्रव्य तरंगों से साफ़ किया जा सकता है। बाह्य प्रभावों से पिंड के यांत्रिक, विद्युत् और ऊष्मा गुण बदले जा सकते हैं। लेकिन किसी भी तरह के बाह्य प्रभाव से पिंड का द्रव्यमान बदलना सम्भव नहीं है अगर पिंड में कोई और पदार्थ न मिलाया जाये या उसमें से कोई भी कण निकाला न जाए।*

---

* इस तथ्य की कुछेक पाबंदियों के बारे में आगे चलकर बताया जाएगा।



मिख़ाइल वासीलियेविच लोमोनोसोव (1711–1765) – एक प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक, रूस में विज्ञान के पायोनियर और महान ज्ञानोद्दीपक। उन्होंने 18 वीं शताब्दी में भौतिकी के क्षेत्र में विद्युत और तापीय " द्रवों " के बारे में प्रचलित धारणाओं का डटकर विरोध किया और द्रव्य के अणुगति सिद्धान्त का समर्थन किया। लोमोनोसोव ने सबसे पहले प्रयोगतः सिद्ध किया कि रासायनिक अभिक्रिया में भाग लेनेवाले पदार्थों का द्रव्य स्थिर रहता है। उन्होंने वायुमंडलीय विद्युत और मौसम विज्ञान के क्षेत्रों में बहुत अन्वेषण किए। प्रकाशिक यंत्रों का निर्माण किया और शुक्र ग्रह पर वायुमण्डल का पता लगाया। उन्होंने रूसी वैज्ञानिक भाषा के मूल-सिद्धान्त बनाए। उन्होंने मूलभूत भौतिक और रासायनिक परिभाषाओं का लातीनी भाषा से रूसी में काफ़ी अच्छा अनुवाद किया।

क्रिया और प्रतिक्रिया

हम प्रायः इस बात पर ध्यान नहीं देते कि प्रत्येक बल की क्रिया के साथ-साथ प्रतिक्रिया भी होती है। यदि हम स्प्रिंगदार पलंग पर कोई सन्दूक रखें तो पलंग थोड़ा-सा अन्दर की ओर धंस जाएगा। स्पष्ट है कि सन्दूक पलंग को दबा रहा है। लेकिन कभी-कभी हम यह भूल जाते हैं कि पलंग भी तो सन्दूक पर बल डाल रहा है। पर कैसे! पलंग पर रखा सन्दूक गिरता नहीं है, इसका अर्थ यह हुआ कि पलंग भी सन्दूक के भार के बराबर उस पर बल डालता है और यह बल ऊपर की ओर लगा होता है।

गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में लगे बलों को प्रायः टेक की प्रतिक्रिया कहते हैं। "प्रतिक्रिया" शब्द का अर्थ है "जवाबी प्रभाव"। मेज़ पर रखी किताब का उस पर प्रभाव, या पलंग पर रखे सन्दूक का उस पर प्रभाव—ये सब टेक की प्रतिक्रियाएं हैं।

जैसा कि हम ने ऊपर बताया है पिंड का भार कमानी-तुला से तौला जाता है। किसी पिंड का उसके नीचे रखी हुई स्प्रिंग पर दाब या किसी कमानी से लटकाये हुए वज़न की उस कमानी को खींचती हुई शक्ति उस पिंड के भार के बराबर होती है। अतः स्पष्ट है कि स्प्रिंग जिस बल से सिकुड़ेगी या फैलेगी, उतना ही टेक की प्रतिक्रिया का परिमाण होगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हम स्प्रिंग से किसी बल को नापते हैं तो हम एक नहीं, बल्कि दो एक दूसरे के विपरीत लगे बलों को नापते हैं। कमानी-तुला से तुला के पलड़े पर रखी वस्तु के दाब के अतिरिक्त, टेक की प्रतिक्रिया, अर्थात् पलड़े की ओर से वस्तु पर डाला जानेवाला प्रभाव भी नापा जाता है। यदि हम दीवार पर लगे हुए स्प्रिंग को हाथ से अपनी ओर खींचें तो हम उस बल को नाप सकते हैं जिससे कि हाथ स्प्रिंग को खींचता है, और इसके साथ ही उस बल को भी नाप सकते हैं जिससे कि स्प्रिंग हाथ को खींचता है।

इसका मतलब हुआ कि बल हमेशा दो-दो की जोड़ी में मिलते हैं और वे एक दूसरे के बराबर होते हैं, तथा विपरीत दिशा में लगे होते हैं। इन दोनों बलों को ही प्रायः क्रिया और प्रतिक्रिया कहते हैं।

प्रकृति में "एकीय" बलों का अस्तित्व नहीं है, वस्तव में पिंडों की केवल पारस्परिक क्रिया ही अस्तित्व रखती है; इस स्थिति में क्रिया और

प्रतिक्रिया एक दूसरे के बिलकुल बराबर होती हैं और उनका एक दूसरे से ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा कि वस्तु और आइने में उसके प्रतिबिम्ब का।

संतोलक बलों को क्रिया और प्रतिक्रिया से उलझाना नहीं चाहिए।

दो बल एक दूसरे को संतुलित तब ही करते हैं जब वे एक ही पिंड पर लगे होते हैं; उदाहरण के लिए, मेज़ पर पड़ी किताब का भार (पृथ्वी की किताब पर क्रिया) मेज़ की प्रतिक्रिया से संतुलित होता है (मेज़ की किताब पर क्रिया)।

उन बलों के विपरीत, जो दो पारस्परिक क्रियाओं के संतुलन से उत्पन्न होते हैं, क्रिया और प्रतिक्रिया केवल एक ही पारस्परिक क्रिया का चित्रण करती हैं, उदाहरण के तौर पर, मेज़ और किताब की पारस्परिक क्रिया। "मेज़-किताब"–क्रिया है, और "किताब-मेज़" प्रतिक्रिया है। वस्तुत: ये बल अलग-अलग पिंडों पर लगे हुए हैं।

"घोड़ा गाड़ी को खींचता है, लेकिन गाड़ी भी तो घोड़े को खींचती है, तो फिर वे चलते कैसे हैं?" यहां हम इस परम्परागत जटिल समस्या का हल करने की कोशिश करेंगे। सबसे पहले हम पाठक को यह बता दें कि अगर सड़क पर फिसलन है तो घोड़ा गाड़ी को खींच नहीं सकेगा। इसका अर्थ हुआ कि हरकत के लिए एक नहीं, बल्कि दो परस्पर क्रियाओं– "गाड़ी-घोड़ा" ही नहीं, बल्कि "घोड़ा-सड़क" को भी ध्यान में रखना होगा। हरकत तभी शुरू होगी जबकि घोड़े और सड़क (वह बल जिससे घोड़ा सड़क से धकेला जाता है) की पारस्परिक क्रिया का बल "घोड़ा-गाड़ी" (वह बल जिससे गाड़ी घोड़े को खींच रही है) की पारस्परिक क्रिया के बल से ज़्यादा होगा। जहां तक उन दो बलों–"गाड़ी घोड़े को खींचती है" और "घोड़ा गाड़ी को खींचता है",–का सम्बन्ध है तो वे एक ही पारस्परिक क्रिया का चित्रण करते हैं, अर्थात् ये दोनों बल विराम की स्थिति और गति के किसी भी क्षण में भी समान होंगे।

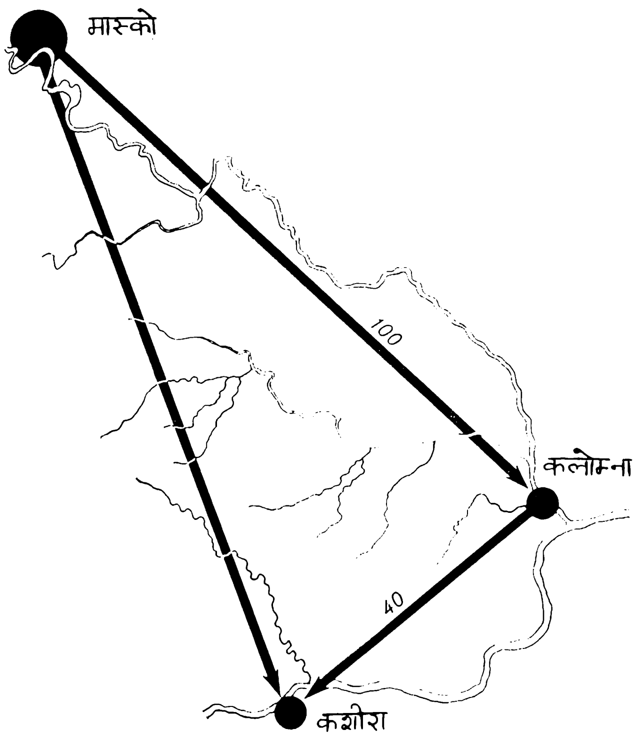
वेग को कैसे जमा करते हैं

अगर A ने पहले किसी का आधा घंटा और फिर एक घंटा इन्तज़ार किया हो तो यह कहा जा सकता है कि A ने कुल मिलाकर डेढ़ घंटा इन्तजार किया। अगर A को किसी ने पहले एक रूबल और फिर दो

रूबल दिए हों तो स्पष्ट है कि उसे तीन रूबल मिले। अगर किसी ने पहले 200 ग्राम और फिर 400 ग्राम अंगूर ख़रीदे हैं तो उसके पास कुल 600 ग्राम अंगूर होंगे। समय, द्रव्यमान, और ऐसे ही दूसरे परिमाणों को बीजतः जमा किया जाता है।

लेकिन हरेक परिमाण को इतनी आसानी से जमा या घटा नहीं किया जा सकता है। अगर कहा जाए कि कलोम्ना मास्को से 100 किलोमीटर और कशीरा कलोम्ना से 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि मास्को से कशीरा 140 किलोमीटर दूर है। दूरियां बीजतः जमा नहीं की जाती हैं।

तब उन्हें फिर कैसे जमा करते हैं? दिये गये उदाहरण का उपयोग



चित्र 4

तब हम दूरियों को जमा करने के आवश्यक नियम को आसानी से ढूंढ़ लेंगे। इसके लिए हम काग़ज़ पर तीन बिन्दु लगाएंगे, जो इन तीन शहरों की दूरियां व्यक्त करते हैं (देखिए चित्र 4)। इन तीन बिन्दुओं को मिलाकर एक त्रिकोण बनाएंगे। अगर इस त्रिकोण की दो भुजाएं ज्ञात हों तो तीसरी भुजा मालूम की जा सकती है। लेकिन इसके लिए दोनों भुजाओं (जो मालूम हैं) के बीच का कोण मालूम होना जरूरी है।

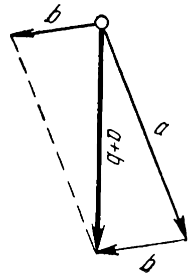
तीसरी भुजा यानी अज्ञात दूरी निम्नलिखित तरीक़े से मालूम की जाती है: पहले एक भुजा खींचते हैं, फिर उस पर ज्ञात कोण बनाते हैं और उसे दूसरी भुजा के बराबर बढ़ाते हैं। फिर पहली भुजा के आरम्भ बिन्दु को दूसरी भुजा के अन्त से मिलाते हैं। इस प्रकार जो भुजा मिलेगी वही वह दूरी होगी जो हमें मालूम करनी थी।

इस प्रकार के योग को ज्यामितीय जोड़ कहते हैं और इस विधि से जोड़े गये परिमाणों को वेक्टर कहते हैं।

वेक्टर (सदिश) के आरम्भ और अन्त बिन्दुओं में प्रभेद करने के लिए उसे तीर से व्यक्त करते हैं। ऐसा दिष्ट–वेक्टर–लम्बाई और दिशा दिखाता है।

इस नियम का कई वेक्टरों को जमा करने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। एक बिन्दु से दूसरे, दूसरे से तीसरे बिन्दु आदि तक जाने पर हम वह दूरी तय करेंगे जिसे खंडित रेखा से व्यक्त किया जा सकता हैं। लेकिन आरम्भ बिन्दु से अन्तिम बिन्तु तक सीधे भी पहुंचा जा सकता है। बहुभुज के अन्तिम और आरम्भ बिन्दुओं को मिलानेवाला यह दिष्ट ही वेक्टर-योग होगा।

सदिश त्रिभुज प्रदर्शित करता है कि एक वेक्टर को दूसरे में से कैसे घटाया जाता है। ऐसा करने के लिए उन्हें एक ही बिन्दु से खींचते हैं। दूसरे वेक्टर के अन्त से लेकर पहले के अन्त तक खींचा गया सदिश (वेक्टर) ही वेक्टरों का अन्तर होता है।



चित्र 5

त्रिभुज नियम के अतिरिक्त उसके एक समान नियम यानी समांतर चतुर्भुज नियम का उपयोग भी किया जा सकता है (देखिए चित्र 5)। इस

नियम के अनुसार योग किए जाने वाले वेक्टरों से एक समांतर चतुर्भुज बनाना और फिर उसके विकर्ण को खींचना होता है। चित्र से स्पष्ट है कि समांतर चतुर्भुज का विकर्ण ही त्रिभुज का परिणामी है। इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों नियम सही हैं।

वेक्टर न केवल दूरियों को ही व्यक्त करने के काम आते हैं, बल्कि वेक्टर राशियों का भौतिक विज्ञान में प्रायः उपयोग किया जाता है।

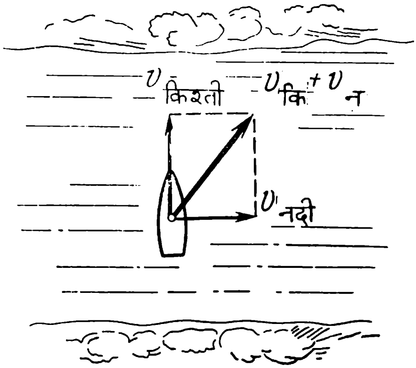
आइए, अब वेग का अध्ययन करें। वेग का अर्थ है एक सेकण्ड में तय की गयी दूरी। चूंकि दूरी वेक्टर है इसलिए वेग भी वेक्टर है जिसकी दिशा दूरी की दिशा के समान होती है। वक्ररेखीय गति में दूरी की दिशा हर समय बदलती रहती है। ऐसी स्थिति में वेग की दिशा क्या होगी? वक्र रेखा के किसी एक छोटे से हिस्से की दिशा वही होगी जो कि स्पर्श रेखा की होगी। इसलिए पिंड के वेग और स्थान परिवर्तन की दिशा हर समय स्पर्श रेखा की दिशा में होती है।

वेक्टर नियम का इस्तेमाल वेग को जोड़ने या घटाने के लिए अनेक स्थितियों में किया जाता है। वेगों को जमा करने की आवश्यकता तब पड़ती है जब पिंड एक ही समय पर दो गतियों में भाग लेता है। ऐसा अक्सर करना पड़ता है: उदाहरण के लिए कोई आदमी गतिमान् गाड़ी के डिब्बे में चल रहा है और इसके साथ ही साथ वह गाड़ी में आगे भी बढ़ रहा है; पानी की बूंद, जो अपने भार से गाड़ी के शीशे पर से नीचे आ रही है और गाड़ी के साथ-साथ चल भी रही है; पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है और सूर्य के साथ दूसरे नक्षत्रों के साथ गति भी करती है। ऐसी और इनके समान अनेक स्थितियों में वेगों को सदिश योग नियमानुसार जमा करते हैं।

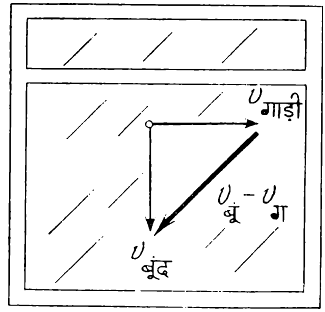
अगर दोनों गतियां एक ही दिशा में और एक ही रेखा पर हो रही हों तो वेक्टर योग साधारण योग में बदल जायेगा, और अगर दोनों गतियों की दिशा एक-दूसरे के विपरीत हो, लेकिन वे एक ही रेखा पर हो रही हों तो वेक्टरों का साधारण व्यवकलन किया जाता है।

यदि गतियां एक-दूसरे के साथ कोई कोण बनाती हैं, तो उनका योग ज्यामितीय तरीक़े से करते हैं।

अगर किसी तेज़ बहती हुई नदी को किश्ती पर पार करते समय आप किश्ती को बहाव के लंबवत् चलायेंगे तो आपकी किश्ती दूसरे किनारे पर



चित्र 6



चित्र 7

अपने ठीक सामने वाले स्थान से नीचे की ओर चली जाएगी। किश्ती एक ही समय पर दो गतियों में हिस्सा ले रही थी यानी नदी के बहाव की ओर और उसके लंबवत्। चित्र 6 में किश्ती का परिणामी वेग दिखाया गया है।

अब हम एक और उदाहरण पेश करते हैं। शायद आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि गाड़ी की खिड़की में से बौछार की गति कैसी दिखाई देती है? हवा चाहे न भी चल रही हो फिर भी बौछार तिरछी ही गिरती नज़र आती है, जैसे कि इंजन की दिशा के विपरीत चल रही हवा उसे तिरछा कर रही हो (देखिए चित्र 7)।

अगर हवा न चल रही हो तो पानी की बूंद को नीचे की ओर लंबवत् गिरना चाहिए। लेकिन जितनी देर में बूंद खिड़की के साथ-साथ लंबवत् नीचे गिरती है उतनी देर में गाड़ी अच्छा-खासा फ़ासला तय कर लेती है, और गिरती हुई बूंद अनुलम्ब से दूर होती जाती है, इस कारण लगता है कि पानी तिरछा बरस रहा है।

अगर गाड़ी का वेग $\mathbf{v}_\text{ग}$ और बूंद के गिरने का वेग $\mathbf{v}_\text{ब}$ है तो गाड़ी के यात्री की अपेक्षा बूंद के गिरने का वेग वेक्टरों के व्यवकलन के बराबर यानी $\mathbf{v}_\text{ब}-\mathbf{v}_\text{ग}$ होगा*। वेग-त्रिभुज चित्र 7 में दिखाया गया तिरछा

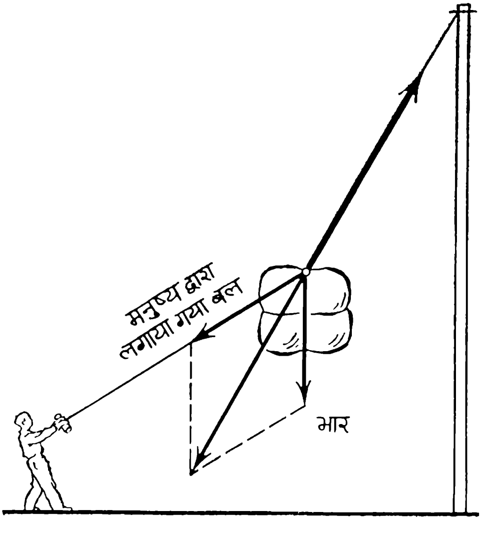
* यहां और आगे भी हम वेक्टरों यानी संलक्षणों को मोटे अक्षरों में लिखेंगे जिनके लिए परिमाण के अतिरिक्त दिशा भी महत्त्व रखती है।

वेक्टर बौछार की दिशा बताता है; अब आप समझ गये कि वर्षा तिरछी क्यों पड़ती है। तिरछे वेक्टर की लम्बाई दिए हुए मापक्रम में इस वेग के परिमाण को बताती है। गाड़ी जितनी तेज़ रफ़्तार से चलती है और जितनी मन्थर गति से बूंद गिरती है, वर्षा की बौछार उतनी ही तिरछी लगेगी।

बल – वेक्टर

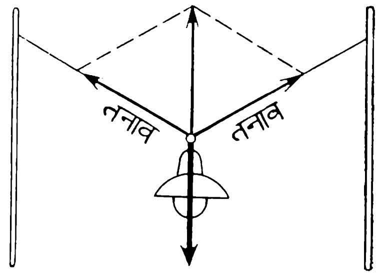
बल भी वेग की तरह एक वेक्टर परिमाण है, इसलिए कि बल किसी निश्चित दिशा में ही लगाया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि बल भी ऊपर दिये गये नियमों के अनुसार ही जोड़े जाने चाहिए।

दैनिक जीवन में ऐसे बहुत से उदाहरण सामने आते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बल भी वेक्टरों के नियमानुसार जोड़े जाते हैं। चित्र 8 में रस्से से लटका हुआ एक गट्ठा दिखाया गया है। अगर एक दूसरी रस्सी से गट्ठे को एक ओर खींचा जाए तो रस्सा दो बलों यानी रस्सी को खींच रहे व्यक्ति के बल और गुरुत्व आकर्षण बल के प्रभाव से तनाव में होता है।



चित्र 8

वेक्टरों को जमा करने के नियमानुसार हम यह मालूम कर सकते हैं कि तनाव बल कितना है और रस्से की दिशा क्या है। लट्टा चूंकि गतिहीन है, इसका अर्थ यह हुआ कि जो बल उस पर प्रभाव डाल रहे हैं उनका योग शून्य है। या यह कह सकते हैं कि रस्से का तनाव लट्टे के गुरुत्व बल और उसे खींचने के बल के बराबर है। इन दोनों बलों का योग समांतर चतुर्भुज का विकर्ण होगा जिसकी दिशा रस्से के साथ-साथ होगी (अन्यथा तनाव बल से ही वह "शून्य" कैसे हो सकता है)। इस तीर की लम्बाई रस्से के तनाव के बल के परिमाण के बराबर है। यही बल लट्टे पर लगे दो बलों के बराबर हो सकता है। इसीलिए बलों के वेक्टर-योग को कभी-कभी परिणामी बल कहते हैं।

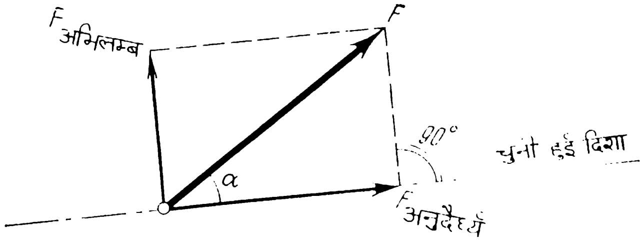


चित्र 9

प्रायः बलों के योग के विपरीत उनके व्यवकलन का प्रश्न उठता है। मान लैम्प दो सुतलियों से लटका हुआ है। हमें यह मालूम करने के लिए कि सुतलियों के तनाव का क्या बल है, लैम्प के भार को इन्हीं दो दिशाओं में वियोजित करना होगा (देखिए चित्र 9)।

परिणामी बल के सिरे से हम सुतलियों के समान्तर दो रेखाएं खींचते हैं जब तक वे उनसे मिल न जायें। फलस्वरूप बलों का समान्तर चतुर्भुज बन जाता है। समान्तर चतुर्भुज की भुजाओं की लम्बाई माप कर हम सुतलियों का तनाव (उसी मापक्रम में जिसमें कि लैम्प का भार व्यक्त किया गया है) मालूम कर सकते हैं।

इस प्रकार की रेखाचित्रीय रचना को बल-वियोजन कहते हैं। हरेक संख्या को जैसे हम अनेकानेक तरीक़ों से दो या अनेक संख्याओं के योग में व्यक्त कर सकते हैं, उसी ही तरह बल के वेक्टर को भी व्यक्त किया जा सकता है। किसी भी बल का दो बलों में—समान्तर चतुर्भुज की भुजाओं में—वियोजित किया जा सकता है जिनमें से किसी एक को



चित्र 10

इच्छानुसार कितना भी लिया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि हरेक वेक्टर को किसी भी बहुभुज से व्यक्त कर सकते हैं।

एक बल का दो परस्पर लम्ब बलों में वियोजन करना प्रायः आसान होता है—जिनमें से एक बल तो उसी दिशा में लगा होगा जिस दिशा में हमें चाहिए और दूसरा उस पर समकोण बनायेगा। इन्हें अनुदैर्घ्य तथा अभिलम्ब बल कहते हैं।

किसी भी दिशा में संघटक बल को, जो समकोण चतुर्भुज की भुजाओं के वियोजन से बना है, इस दिशा में बल का प्रक्षेप भी कहते हैं।

$$F^2 = F^2_{\text{अनुदैर्घ्य}} + F^2_{\text{अभिलम्ब}}$$

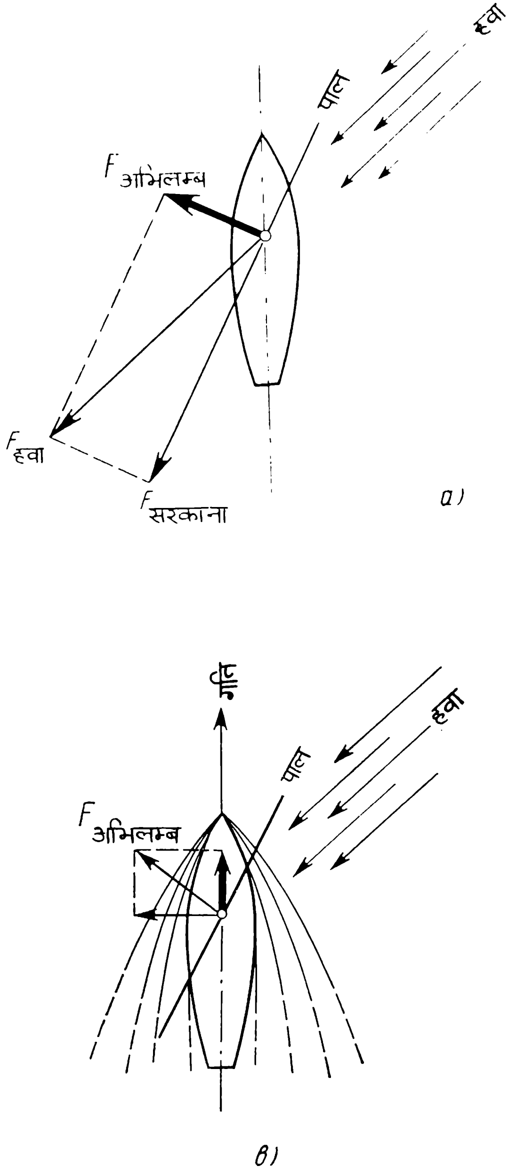
चित्र 10 से स्पष्ट है यहां कि $F_{\text{अनुदैर्घ्य}}$ और $F_{\text{अभिलम्ब}}$ किसी विशेष दिशा में बल का प्रक्षेप और उस पर लम्ब हैं।

त्रिकोणमिति का ज्ञान होने पर हम आसानी से मालूम कर सकते हैं कि

$$F_{\text{अनुदैर्घ्य}} = F \times \cos\alpha$$

जहां α—बल के वेक्टर और उस दिशा के बीच का कोण है जिस पर बल का प्रक्षेप गिराया जाता है।

बल-वियोजन का एक असाधारण उदाहरण है पालदार किश्ती की गति। हवा के विपरीत पालदार किश्ती कैसे चलती है? अगर कभी भी आपने दौड़ में भाग लेने वाली पालदार किश्ती देखी हो तो आपने यह जरूर नोट किया होगा कि किश्ती टेढ़े-मेढ़े चलती है। मल्लाह लोग ऐसी पति को दक्षिणावर्तन कहते हैं।



चित्र 11

पालदार किश्ती का हवा के एकदम विपरीत जाना वस्तुतः सम्भव नहीं है। लेकिन थोड़ा-सा झुकाव होने पर हवा के विपरीत जाना कैसे सम्भव हो जाता है?

पालदार किश्ती का हवा के विपरीत चलना दो कारणों से सम्भव होता है। पहला – हवा पाल को हमेशा उसके समतल के साथ समकोण बनाती हुई धकेलती है (देखिए चित्र 11, a)। यहां हवा के बल को दो संघटक बलों में वियोजित किया गया है। इनमें से एक हवा को पाल के साथ-साथ सरकने पर विवश करता तथा दूसरा यानी अभिलम्ब संघटक पाल पर दबाव डालता है। दूसरा – किश्ती उस ओर नहीं जाती है, जिधर हवा का बल उसे धकेलता है, बल्कि किश्ती की नाक की सीध में जाती है।

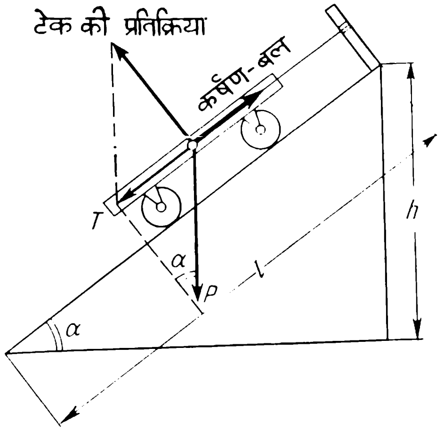
इसका कारण यह है कि किश्ती को अपनी नाक की सीध के लंबवत् जाने के वास्ते जल का बहुत प्रतिरोध सहना पड़ता है। किश्ती को उसकी नाक की सीध में चलाने के लिए जरूरी है कि पाल पर लगे बल का एक संघटक किश्ती की पठाण की रेखा के साथ आगे की ओर देखता हुआ लगा होना चाहिए।

चित्र 11,b से समझ में आ जाएगा कि किश्ती हवा के विपरीत कैसे चलती है। पाल को ऐसे रखते हैं कि उसका समतल किश्ती की चाल की दिशा और हवा की दिशा के बीच के कोण को दो बराबर भागों में विभाजित करे।

किश्ती को आगे धकेलने वाले बल को मालूम करने के वास्ते हमें हवा के बल का दो बार वियोजन करना होगा। पहले पाल के लंबवत् और उसके साथ-साथ – यहां सिर्फ़ लंबवत् संघटक ही विशेष महत्त्व रखता है, और फिर इसी अभिलम्ब संघटक को पठाण की लम्बाई में और उसके लंबवत् वियोजन करना होगा। अनुदैर्घ्य संघटक ही तो किश्ती को हवा की दिशा के साथ कोण बनाता हुआ आगे धकेलता है।

आनत समतल

कम ढालू चढ़ाई की अपेक्षा सीधी चढ़ाई चढ़ना ज़्यादा मुश्किल होता है। किसी पिंड को आनत समतल पर से ऊपर चढ़ाने की अपेक्षा उसे



चित्र 12

लंबवत् ऊपर ले जाना मुश्किल होता है। ऐसा क्यों और कितना आसान होता है? बलों को जोड़ने का नियम यह सब समझने में हमारी मदद करता है।

चित्र 12 में दिखाया गया है कि एक पहिया-गाड़ी आनत समतल पर रस्सी के तनाव के कारण स्थिर खड़ी है। कर्षण बल के अतिरिक्त उस पर दो और बल प्रभाव डाल रहे हैं—पहिया-गाड़ी का भार तथा टेक की प्रतिक्रिया का बल जो सतह के हमेशा अभिलम्ब होता है। यह इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि सतह आनत है या समतल।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अगर कोई पिंड किसी टेक पर दबाव डालता है तो टेक भी इस दबाव के विरुद्ध प्रभाव डालती है, अर्थात् वह प्रतिक्रिया बल को जन्म देती है।

हमें यह मालूम करना है कि आनत समतल पर पहिया-गाड़ी को ऊपर खींचने में उसे लंबवत् ऊपर चढ़ाने की अपेक्षा कितनी आसानी होती है।

हम बलों का वियोजन इस प्रकार करेंगे कि एक की दिशा तो समतल के साथ-साथ होगी, और दूसरे की दिशा उसके अभिलम्ब होगी (उस समतल के जिसके ऊपर पहिया-गाड़ी चलती है)। ताकि पिंड आनत समतल पर खड़ा रहे, रस्सी के तनाव-बल को अनुदैर्ध्य संघटक के बराबर होना चाहिए। जहां तक दूसरे संघटक का सवाल है, तो वह आलम्ब की प्रतिक्रिया के बराबर है।

रस्सी के तनाव-बल T को मालूम करने में हमें यहां रेखागणित या त्रिकोणमिति की सहायता लेनी होगी। रेखागणित में हमें भार-वेक्टर P के सिरे से समतल पर लम्ब खींचना होगा।

दिये गये चित्र में दो सदृश त्रिभुज ढूंढ़े जा सकते हैं। आनत समतल की लम्बाई l और उसकी ऊंचाई h में अनुपात बल-त्रिभुज की संगत भुजाओं के अनुपात के बराबर होगा। अर्थात्

$$\frac{T}{P} = \frac{h}{l}$$

आनत समतल की ढाल जितनी कम होगी (अनुपात $\frac{h}{l}$ जितना कम होगा) पिंड को ऊपर खींच ले जाना उतना ही आसान होगा।

दूसरा तरीक़ा त्रिकोणमिति जाननेवालों के लिए है: चूंकि भार के अभिलम्ब संघटक और भार-वेक्टर के बीच का कोण आनत समतल के कोण α के बराबर है (ये कोण परस्पर अभिलम्ब भुजाओं से बने हैं), अतः

$$\frac{T}{P} = \sin\alpha \text{ अथवा } T = P\sin\alpha$$

इसलिये α कोण बनाते हुए आनत समतल पर पहिया-गाड़ी को खींचना उसे लंबवत् ऊपर चढ़ाने से $\sin\alpha$ गुना आसान होता है।

इस कारण 30°, 45° और 60° के कोणों के वास्ते त्रिकोणमितीय फलनों के मान याद रखना लाभदायक है। sin 30°, sin 45°, sin 60° $\left(\sin 30° = \frac{1}{2}, \sin 45° = \frac{\sqrt{2}}{2}, \sin 60° = \frac{\sqrt{3}}{2}\right)$ का मान मालूम होने पर हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि आनत समतल पर चढ़ना कितना आसान होगा।

इन सूत्रों से स्पष्ट है कि अगर आनत समतल 30° का कोण बनाता है, तो किसी पिंड को ऊपर ले जाने के वास्ते उसके भार के आधे के बराबर ही बल लगाना होगा क्योंकि $T = P \times \frac{1}{2}$। समतल के 45° और 60° पर झुका हुआ होने पर रस्सी को पिंड के भार के क्रमशः 0.7 और 0.9 गुना बल से खींचना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समतल जितना ज़्यादा आनत होगा पिंड को उस पर ऊपर ले जाना उतना ही मुश्किल होगा।

२. गति-नियम

गति के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण

रेलगाड़ी की सीट पर एक सूटकेस पड़ा है। वह रेलगाड़ी के साथ-साथ आगे भी बढ़ रहा है। घर पृथ्वी पर बना हुआ है और वह पृथ्वी के साथ घूम भी रहा है। एक ही पिंड के बारे में कहा जा सकता है कि वह एक दिशा में चल रहा है, स्थिर है या घूम रहा है। ऐसा कहना ठीक होगा लेकिन अलग-अलग दृष्टिकोणों से।

गति ही नहीं, बल्कि गति के गुण भी अलग-अलग दृष्टिकोणों से अलग-अलग हो सकते हैं।

आपको मालूम ही है कि समुद्री जहाज़ के डोलने पर जहाज़ में रखी चीज़ों की क्या हालत होती है। वे सब इधर उधर बिखर जाती हैं। मेज़ पर पड़ी हुई राखदानी गिर जाती है और तेजी से पलंग के नीचे लुढ़क जाती है। जग में रखा पानी छलकता है और बिजली का बल्ब लोलक की तरह डोलता है। बिना किसी स्पष्ट कारणों के कुछ चीज़ें क्रिया में आ जाती हैं तो कुछेक रुक जाती हैं। समुद्री लहरों में डोल रहे जहाज़ पर खड़ा कोई भी प्रेक्षक कह सकता है कि गति का मुख्य नियम इस में निहित है कि किसी भी समय कोई भी खुली (बिना बंधी) हुई चीज़ किसी भी दिशा में विभिन्न वेग से चल सकती हैं।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गति के विभिन्न दृष्टिकोणों में कुछ सामान्यया असुविधाजनक भी हैं।

तब प्रश्न उठता है कि कौन-सा दृष्टिकोण सबसे ज़्यादा "उचित" है?

यदि मेज़ पर रखा टेबुल लैंप बिना किसी कारण ही एक ओर झुक जाए या पेपरवेट फुदकने लगे तो शायद आपके दिमाग में पहले यह विचार आयेगा कि किसी जादू का कमाल हो गया है। अगर ऐसा कमाल प्रायः होने लगे तो आप अवश्य ही सोचेंगे कि इन चीज़ों का अपने आप ही हिलने का क्या कारण है।

इसलिए स्वाभाविक ही है कि गति के बारे में उस दृष्टिकोण को ही ठीक

[illegible] बताए कि बिना किसी बाह्य-बल के प्रभाव [illegible] स्थान से हटाई नहीं जा सकती हैं।

[illegible] दृष्टिकोण अत्यन्त स्वाभाविक है। अगर कोई पिंड स्थिर है तो [illegible] मतलब है कि उस पर लगे हुए सब बलों का योग शून्य है। अगर पिंड अपने स्थान से हट जाता है तो यह कहना चाहिए कि ऐसा किसी बाह्य-बल के प्रभाव से हुआ है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार एक प्रेक्षक का होना आवश्यक है। लेकिन हमारे लिए प्रेक्षक की उपस्थिति से अधिक महत्त्व उस जगह का है जहां वह स्थित होगा। इसलिए "गति के बारे में दृष्टिकोण" की जगह हम कहेंगे: "निर्देशांक पद्धति जिसमें गति देखी जा रही है", या सिर्फ़ "निर्देशांक पद्धति"।

हम, पृथ्वी पर रहनेवालों के लिए पृथ्वी एक महत्वपूर्ण निर्देशांक पद्धति है। लेकिन प्रायः पृथ्वी पर चलते हुए पिंड जैसे पानी का जहाज़ या रेल भी निर्देशांक पद्धति का काम दे सकते हैं।

आइए, अब हम गति के उचित "दृष्टिकोण" पर फिर विचार करें। इस निर्देशांक पद्धति को जड़त्वीय तंत्र कहते हैं।

यह परिभाषा कहां से आयी इसके बारे में आगे बताया गया है।

जड़त्वीय निर्देशांक पद्धति के निम्नलिखित गुण हैं: जो पिंड इस पद्धति की अपेक्षा विराम की स्थिति में हैं उन पर बलों का प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह है कि इस पद्धति में बाह्य-बल लगाये बिना कोई भी गति नहीं होगी। इस पद्धति की सुविधा और सरलता स्पष्ट हैं। ज़ाहिर है कि इस पद्धति को ही आधार मानना चाहिए।

सबसे ज़्यादा महत्त्व की बात तो यह है कि पृथ्वी से सम्बन्धित निर्देशांक पद्धति, जड़त्वीय पद्धति से बहुत भिन्न नहीं है। इसलिए हम गति के मुख्य नियमों का अध्ययन पृथ्वी के दृष्टिकोण से कर सकते हैं। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि जो कुछ आगे बताया जाएगा वह जड़त्वीय निर्देशांक पद्धति से सम्बन्धित है।

जड़त्व नियम

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जड़त्वीय पद्धति सुविधाजनक है और उसकी अनेक अमूल्य श्रेष्ठताएं हैं।

क्या ऐसी एक ही पद्धति या अनेक जड़त्वीय पद्धतियां हैं? प्राचीन यूनानी तो पहले दृष्टिकोण का ही समर्थन करते थे। इसका उल्लेख उनके लेखों में मिलता है जिनमें गति के कारणों का बहुत सहज विचारों में वर्णन किया हुआ है। स्पष्ट रूप में इन विचारों का वर्णन अरस्तू के लेखों में मिलता है। इस दार्शनिक के मतानुसार पिंड की स्वाभाविक स्थिति, अवश्य, पृथ्वी की अपेक्षा विराम की होती है। पृथ्वी की अपेक्षा पिंड को अपने स्थान से हटाने के लिए किसी न किसी बाह्य-बल का प्रयोग आवश्यक है। अगर ऐसा कोई बल न हो तो पिंड को रुक जाना चाहिए और फिर अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाना चाहिए। वह स्वाभाविक दशा पृथ्वी की अपेक्षा विराम की है। इस दृष्टिकोण से पृथ्वी एकमात्र जड़त्वीय पद्धति है।

सचाई को ढूंढ़ने और इस मिथ्या लेकिन आम राय से मिलते-जुलते विचार को ग़लत साबित करने के लिए हम सब इटली के महान् भौतिक-विज्ञानी गैलीलीओ गैलीलेई (1564–1642) के आभारी हैं।

आइए, अब अरस्तू द्वारा गति के बारे में दी गयी व्याख्या पर विचार करें और उन सब तथ्यों के आधार पर, जो हमें मालूम हैं, पृथ्वी पर पिंड की प्राकृतिक स्थिति के बारे में विचार को सही या ग़लत साबित करने की कोशिश करें।

एक मिनट के लिए मान लें कि हम किसी हवाई जहाज़ में बैठे हैं, जो सुबह-सवेरे ही हवाई अड्डे से उड़ा था। सूर्य की किरणों ने अभी हवा को गरम नहीं किया है और इसलिए "वायु पॉकेट" नहीं हैं जिनकी वजह से बहुत से यात्रियों का दिल मचलता है। हवाई जहाज़ निर्विघ्न और बिना झटके के उड़ रहा है। अगर हम खिड़की में से नीचे न झांकें तो पता भी नहीं चलता कि हम उड़ रहे हैं या नहीं। एक खाली कुर्सी पर एक किताब पड़ी है और मेज़ पर एक सेब रखा है। हवाई जहाज़ के अन्दर रखीं ये सब चीज़ें स्थिर हैं। क्या अरस्तू के अनुसार ऐसा ही होना चाहिए? अवश्य नहीं। उसके अनुसार पृथ्वी पर पिंड की प्राकृतिक अवस्था विराम की स्थिति है। तब "प्राकृतिक" विराम की स्थिति में आने की "इच्छा" से और गति कम होने के कारण सब चीज़ें हवाई जहाज़ की पिछली दीवार के पास इकट्ठी क्यों नहीं हो गयीं? मेज़ पर रखे सेब को, जो मुश्किल से ही मेज़ की सतह को छू रहा है, ऐसी कौन सी शक्ति उसे कई सौ किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से चलने को बाध्य करती है?



गैलीलीश्रो गैलीलेई (1564-1642) – इटली के प्रसिद्ध भौतिक-विज्ञानी तथा खगोलशास्त्री। उन्होंने सबसे पहले विज्ञान में अनुसन्धान की प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया। जड़त्व की धारणा पेश की, आपेक्षिक गति का सिद्धान्त सिद्ध किया, गिरते पिंडों और आनत समतल पर पिंडों की गति के नियमों की जांच की, समय मापने के लिए लोलक का उपयोग किया। मानव इतिहास में पहली बार गैलीलीश्रो ने टेलीस्कोप का तारों के अध्ययन के लिए उपयोग किया। उन्होंने अनेक नए तारों की खोज की। यह सिद्ध किया कि आकाश गंगा में तारों की संख्या अपार है; बृहस्पति के स्पुत्निकों, सूर्य कलंक और सूर्य के घूर्णन का पता लगाया, चांद्र सतह संरचना का अध्ययन किया। उन्होंने उन दिनों चर्च द्वारा वर्जित कोपेर्निक की सूर्यकेन्द्रीय तंत्र की धारणा का डटकर समर्थन किया। सभ्य संसार से निकाल देने के कारण इस महान विज्ञानी के जीवन के अन्तिम दस वर्ष मुश्किलों में कटे।

इस गति का सही कारण क्या हो सकता है? आइए, सबसे पहले इस बात पर विचार करें कि चलते हुए पिंड रुक क्यों जाते हैं? उदाहरण के लिए धरती पर लुढ़कता हुआ गेंद रुक क्यों जाता है? इसका सही उत्तर देने के लिए हमें यह मालूम करना चाहिए कि किन स्थितियों में गेंद जल्दी रुक जाता है तो किन में धीरे-धीरे रुकता है? यह जानने के लिए विशेष प्रयोग करने की जरूरत नहीं है। सबको अच्छी तरह मालूम है कि वह सतह जिस पर गेंद लुढ़क रहा है जितनी ज्यादा चिकनी होगी, उतनी ही ज़्यादा दूर गेंद लुढ़केगा। ऐसे और ऐसे ही अनेक उदाहरणों से घर्षण-बल के बारे में एक स्वाभाविक विचार जन्म लेता है, अर्थात घर्षण किसी भी पिड की, चाहे वह लुढ़क रहा हो या सरक रहा हो, गति में रुकावट का कारण होता है। घर्षण विभिन्न तरीक़ों से कम किया जा सकता है। सड़क का चिकनापन, अच्छा स्नेहन और अच्छे बॉल बेयरिग गतिमान् पिंड को घर्षण-बल के प्रभाव के बिना ही रास्ता तय करने में मदद देते हैं। जितना ज़्यादा हम प्रतिरोधों को कम कर सकेंगे पिंड उतना ही ज़्यादा रास्ता तय करेगा।

तब प्रश्न उठता है कि अगर प्रतिरोध न हो और घर्षण-बल अप्राप्त हो तो क्या होगा? स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में गति एकसमान वेग से और एक ही दिशा में अनिश्चित काल तक जारी रहेगी।

हमने जड़त्व नियम का निरूपण लगभग उसी ढंग से किया है जैसा कि गैलीलीओ ने किया था। जड़त्व, पिंड की बिना किसी कारण के (अरस्तू के नियम के विपरीत) एकसमान वेग से और एक ही दिशा में चलते रहने की क्षमता है। जड़त्व ब्रह्मांड में हर कण का एक अखण्ड गुण है।

इस अद्भुत नियम की सत्यता को कैसे प्रमाणित किया जा सकता है? वास्तव में ऐसी परिस्थितियां पैदा करना तो संभव नहीं है जिनमें गतिशील पिंड पर कोई भी बल प्रभाव न डाले। यह सच है, लेकिन इसके विपरीत भी तो देखने में आता है—हर स्थिति में यानी जब पिंड की दिशा या वेग में परिवर्तन आता है तो हमेशा वह बल मालूम किया जा सकता है जिसके कारण यह परिवर्तन हुआ हो। धरती की ओर गिरते समय पिंड के वेग में वृद्धि होती है। इस वृद्धि का कारण है पृथ्वी का गुरुत्व-बल। अगर पत्थर को रस्सी से बांध कर घुमाया जाए तो वह एक वृत्त बनाता है; इसका कारण है: रस्सी का तनाव जो पत्थर की ऋजुरेखयि गति की

दिशा को हर क्षण बदलता है। अगर रस्सी टूट जाए तो पत्थर उस दिशा में जाएगा, जिस दिशा में वह रस्सी के टूटते समय था। यदि चलती हुई मोटर गाड़ी के इंजन को बंद कर दिया जाए तो उस की गति धीमी हो जाती है, इसका कारण है—हवा का प्रतिरोध तथा मोटर गाड़ी के पहियों का पृथ्वी के साथ घर्षण और बॉल बेयरिंगों का दोष।

जड़त्व नियम ही वह आधार है जिस पर गति का सारा विज्ञान निर्भर है।

आपेक्षिक गति

जड़त्व-नियम से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जड़त्वीय तंत्र बहुत-से हैं।

एक नहीं बल्कि बहुसंख्यक निर्देशांक पद्धतियां "अकारण" गतियों को असम्भव बना देती हैं।

अगर किसी ऐसे तंत्र के बारे में मालूम हो तो फ़ौरन दूसरा तंत्र भी मालूम हो जाता है, जो पहले की अपेक्षा एक ही दिशा में और एकसमान वेग से आगे बढ़ रहा होता है। इस प्रकार मालूम किया गया एक भी जड़त्वीय तंत्र दूसरों से ज़रा-सा भी घटिया और किसी भी तरह भिन्न नहीं होता है। बहुसंख्यक जड़त्वीय तंत्रों में से किसी एक सबसे अच्छे तंत्र को ढूंढ़ना मुश्किल है। पिंडों की गति के नियम हर जड़त्वीय तंत्र में समान है: बल के प्रभाव से ही पिंड गति में आते या रुकते हैं; अगर पिंड पर बल प्रभाव न डाल रहे हों तो वह विराम की स्थिति में होता है या एकसमान वेग से एक ही दिशा में चल रहा होता है।

यह तथ्य कि किसी भी प्रयोग द्वारा किसी एक जड़त्वीय तंत्र को दूसरों की अपेक्षा चुनना गैलीलीओ के आपेक्षिकता नियम का निष्कर्ष है। यह नियम भौतिक विज्ञान में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नियम है।

चाहे दो जड़त्वीय तंत्रों में घटनाओं का अध्ययन करते हुए प्रेक्षकों के दृष्टिकोण बिल्कुल एक-से होंगे, लेकिन एक ही तथ्य के बारे में उनकी भिन्न-भिन्न राएं होंगी। उदाहरण के लिए, चलती हुई गाड़ी में एक कुर्सी पर बैठा प्रक्षेक यह कह सकता है कि कुर्सी हर समय एक ही स्थान पर रहती है, जब कि प्लेटफ़ार्म पर खड़ा प्रेक्षक कहता है कि कुर्सी एक जगह

ा दूसरी जगह जा रही है। इसी तरह बन्दूक से गोली दागनेवाला प्रेक्षक हेगा कि गोली 500 मीटर/सेकण्ड के वेग से दागी गयी थी लेकिन गोली ी गति की दिशा में 200 मीटर प्रति सेकण्ड के वेग से जानेवाला प्रेक्षक हेगा कि गोली 300 मीटर प्रति सेकण्ड के वेग से चली थी।

दोनों में से कौन ठीक है? दोनों ही, चूंकि गति के आपेक्षिकता नियम ि अनुसार किसी भी एक जड़त्वीय तंत्र को तरजीह नहीं दी जा सकती।

इसका मतलब यह हुआ कि आकाश में स्थान और गति के वेग के बारे ं कोई एक ठीक एवं दृढ़ राय नहीं दी जा सकती है। आकाश में स्थान और गति का वेग आपेक्षिक संकल्पनाएं हैं। ऐसी आपेक्षिक संकल्पनाओं ा जिक्र करते समय यह बताना आवश्यक होता है कि किस जड़त्वीय निर्देशांक तंत्र को माना गया है।

अतः, गति के बारे में एक और केवल एक ही "सटीक" दृष्टिकोण ाने के कारण हमें आकाश की आपेक्षिकता को मानना पड़ता है। आकाश ा निरपेक्ष तभी कहा जा सकता है जब उसके अन्दर पिंड को विराम स्थिति में—सब प्रेक्षकों के दृष्टिकोण से विराम स्थिति में—पाया जाये। ेकिन यह असंभव है।

आकाश की आपेक्षिकता का अर्थ है कि आकाश को ऐसा नहीं समझना ाहिए जिसमें पिंड बिखरे हुए हैं।

आकाश की आपेक्षिकता को विज्ञान में एकदम ही मान्यता प्राप्त नहीं ई। न्यूटन जैसे महान और प्रतिभाशाली वैज्ञानिक भी आकाश को निरपेक्ष ानते थे, यह जानते हुए भी कि इसे किसी भी तरह सिद्ध करना असम्भव ा। यह गलत दृष्टिकोण 19 वीं शताब्दी के अन्त तक भौतिक वैज्ञानिकों ि बहुत बड़े हिस्से में प्रचलित रहा। इसका कारण स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक प्रकृति ही है: हम अपने चारों ओर "आकाश के वही अचल स्थानों को" ेखने के बहुत ही आदि हो गये हैं।

अब हमें यह मालूम करना है कि गति के बारे में कौनसी सुस्पष्ट रायें ा सकती है।

अगर पिंड एक ही निर्देशांक पद्धति की अपेक्षा $\mathbf{v}_1$ और $\mathbf{v}_2$ के वेग ा चल रहे हों तो वेगों का अन्तर $\mathbf{v}_1—\mathbf{v}_2$ (निस्सन्देह वेक्टर अन्तर) िसी भी जड़त्वीय प्रेक्षक के लिए समान होगा। कारण यह है कि दोनों ेग $\mathbf{v}_1$ और $\mathbf{v}_2$ निर्देशांक पद्धति के बदलने से एक ही परिमाण में दलते हैं।

इससे स्पष्ट है कि दो पिंडों के वेगों का वेक्टर-अन्तर निरपेक्ष है। अगर ऐसा है तो किसी निश्चित काल अंतराल में एक ही पिंड के वेग-वेक्टर में बढ़ोतरी भी निरपेक्ष होगी यानी वृद्धि सब जड़त्वीय प्रेक्षकों के लिए एकसमान ही होगी।

जैसे कि पिंड के वेग में परिवर्तन निरपेक्ष है, वैसे ही पिंड का घूर्णन भी निरपेक्ष है। घूर्णन की दिशा और एक मिनट में लगाये जाने वाले चक्करों की संख्या, सब जड़त्वीय तंत्रों के दृष्टिकोण से, एकसमान होगी।

नक्षत्र प्रेक्षक का दृष्टिकोण

अभी तक हमने जड़त्वीय तंत्रों के दृष्टिकोण से ही गति का अध्ययन करने का निश्चय किया है। तो फिर क्या हमें भू-स्थित प्रेक्षक की सेवाओं से इन्कार नहीं करना पड़ेगा? जैसा कि कोपेर्निक ने सिद्ध किया है, पृथ्वी अपनी धुरी और सूर्य के गिर्द घूमती है। यहां पाठक को शायद कोपेर्निक की खोज की क्रान्तिकारिता को समझना मुश्किल होगा। यह तो सोचा भी नहीं जा सकता कि अपने विचारों की सत्यता की रक्षा करने के कारण जोर्डानो ब्रूनो को जिन्दा ही जला दिया गया और गैलीलीओ को अनेक अपमान सहने पड़े और उसे देश निकाला दिया गया था।

प्रतिभाशाली कोपेर्निक की खोज का महत्त्व किस बात में निहित है? पृथ्वी के घूमने की खोज को और मानवता की सत्यता के विचारों को एक पंक्ति में क्यों रखा जा सकता है जिनके कारण अग्रणी लोगों ने अपनी जान तक भी दे दी?

गैलीलीओ ने "संसार की दो मुख्य पद्धतियों – प्तोलोमे और कोपेर्निक पद्धतियों – के बारे में" अपने लेख में, जिसके कारण उसे गिरजाघर के जुल्म सहने पड़े थे, कोपेर्निक पद्धति के विरोधियों को "सिंप्लिचिओ" का नाम नाम दिया था। इतालवी भाषा में "सिंप्लिचिओ" का अर्थ है – "अनाड़ी"।

वास्तव में उस सरल दृष्टिकोण से, जिससे कि हम समस्त संसार को देखने के आदि हो चुके हैं और जिसे "उचित तात्पर्य" का ग़लत नाम दिया गया है, कोपेर्निक पद्धति हास्यास्पद मालूम पड़ती है। यह कैसे हो

सकता है कि पृथ्वी घूमती है? हम देखते हैं कि वह स्थिर है। लेकिन सूर्य ग्रौर तारे तो वास्तव में ही चल रहे हैं।

सन् 1616 में हुए धर्मशास्त्रियों के सम्मेलन में पास किये गये निम्नलिखित मत से पता चलता है कि भगवान-पुजारियों का कोपेर्निक की खोज के प्रति क्या रवैया था :

"यह कहना कि सूर्य ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित ग्रौर ग्रचल है बिलकुल झूठी ग्रौर बेतुकी बात है, ग्रौपचारिक रूप से यह एक ग्रप्रामाणिक बात ग्रौर बाइबिल में लिखे के ख़िलाफ़ है, ग्रौर यह कहना कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के मध्य में नहीं है ग्रौर घूमती है, ग्रौर इसके ग्रतिरिक्त यह कि वह ग्रपनी धुरी के गिर्द चौबीस घन्टों में सूर्य के गिर्द चक्कर लगाती है, दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से सरासर झूठी ग्रौर बेतुकी तथा धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण से कम से कम ग़लत बात है।"

यह निष्कर्ष, जिसमें प्रकृति के नियमों की नासमझी ग्रौर धर्म के सूत्रों की निर्दोषता में विश्वास ग़लत "उचित तात्पर्य" से उलझा हुग्रा है, कोपेर्निक ग्रौर उसके ग्रनुयायियों, जिन्होंने 17 वीं सदी की "सच्चाइयों" से इतनी दृढ़ता से सम्बन्ध तोड़ा था, के साहस ग्रौर तर्क का सबसे ग्रच्छा प्रमाण है।

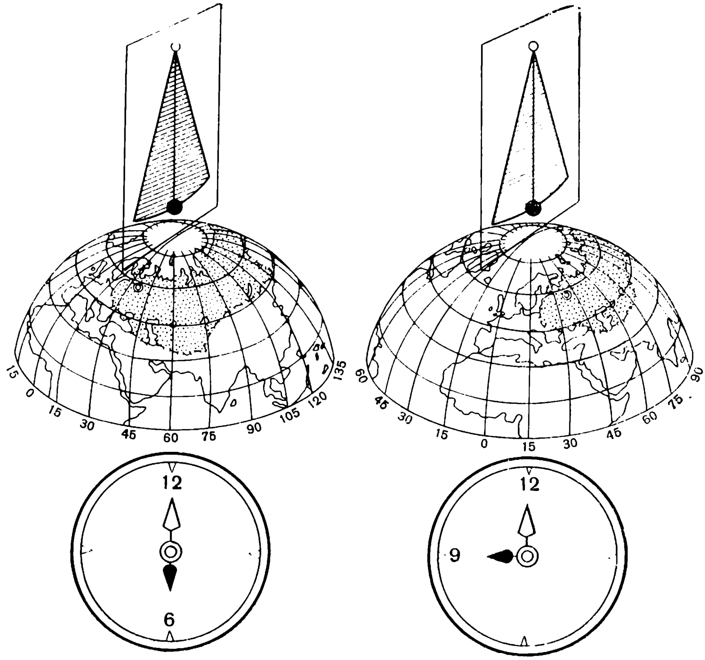
ग्राइए, ग्रब इस ग्रनुच्छेद के शुरू में उठाये गये प्रश्न पर विचार करें।

ग्रगर प्रेक्षक की गति का वेग बदलता है या ख़ुद प्रेक्षक घूमता है तो वह "ठीक" प्रेक्षकों की श्रेणी में नहीं ग्राता है। ऐसी ही स्थितियों में ही तो प्रेक्षक पृथ्वी पर होता है। लेकिन हां, ग्रगर वेग में परिवर्तन या प्रेक्षक का घूमना उस ग्रवधि में, जिसमें वह गति का ग्रध्ययन कर रहा है, काफ़ी कम हो, तो ऐसे प्रेक्षक को सहप्रतिबंध "ठीक" प्रेक्षक मान सकते हैं। क्या पृथ्वी पर खड़े प्रेक्षक पर भी यही बात लागू होगी या नहीं?

एक सेकण्ड में पृथ्वी 1/240 डिग्री ग्रर्थात 0.00007 रेडियन के लगभग ग्रपनी धुरी के गिर्द घूमती है। यह घुमाव कोई ज्यादा नहीं है इसलिए पृथ्वी के घुमाव को ध्यान में रखे बिना पृथ्वी की ग्रनेकानेक क्रियाग्रों को समझने के लिए पूर्णतया जड़त्वीय तंत्र माना जा सकता है।

लेकिन ग्रगर कोई क्रिया लम्बे ग्ररसे तक होती है, तो पृथ्वी के घुमाव को ध्यान में रखना जरूरी होता है।

लेनिनग्राद में इसाकियेव्स्क गिरजाघर की गुम्बद से कभी एक बहुत बड़ा



चित्र 13

लोलक लटकाया हुआ था। अगर एक ऐसे लोलक को दोलन-गति में लाया जाए, तो थोड़ी ही देर बाद लोलक का दोलन-तल धीरे-धीरे बदलने लगता है और कुछेक घंटे बाद दोलन-तल एक बड़े कोण तक बदल जाता है। ऐसा प्रयोग सबसे पहली बार फ्रांस के वैज्ञानिक फ़ूको ने किया था और तभी से इसे फ़ूको-प्रयोग कहते हैं। फ़ूको-प्रयोग से पृथ्वी का घूमना स्पष्ट होता है (देखिए चित्र 13)।

अगर विचाराधीन गति लम्बे अरसे तक होती है तो हमें भू-प्रक्षेक की मदद से इन्कार करना पड़ेगा और फिर निर्देशांक पद्धति, जो सूर्य या तारों से सम्बन्धित है, को आधार मानना पड़ेगा। कोपेर्निक ने इसी पद्धति को अपनाया था। उसके अनुसार सूर्य और तारे, जो हम देखते हैं, अचल हैं।

लेकिन वास्तव में कोपेर्निक की पद्धति भी पूर्णतया जड़त्वीय नहीं है?

ब्रह्माण्ड तारों के असंख्य झुण्डों – ब्रह्माण्ड द्वीपों – से बना है, जिन्हें गैलेक्सी (आकाशगंगा) कहते हैं। इस आकाशगंगा में, जिसमें हमारा सौर्य परिवार आता है, लगभग एक खरब तारें हैं। इस आकाशगंगा के केन्द्र के गिर्द सूर्य लगभग 18 करोड़ साल में 250 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से एक चक्कर लगाता है।

अगर सौर-प्रेक्षक को जड़त्वीय मान लें तो हम कितनी अशुद्धि करेंगे?

सौर और भू-प्रक्षेकों के गुणों की तुलना करने के लिए हम यह मालूम करते हैं कि एक सेकण्ड में सौर निर्देशांक तंत्र किस कोण पर मुड़ जाता है। अगर एक चक्कर 180×10^6 साल (6×10^{15} सेकण्ड) में पूरा होता है तो एक सेकण्ड में सौर निर्देशांक तंत्र केवल 6×10^{-14} डिग्री या 10^{-15} रेडियन पर घूमेगा। इससे स्पष्ट है कि सौर-प्रक्षेक भू-प्रक्षेक से एक खरब गुना "बेहतर" है।

प्रक्षेक को जड़त्वीय तंत्र जैसा बनाने के लिए खगोलशास्ती ऐसी निर्देशांक पद्धति को आधार मानते हैं जो कई आकाशगंगाओं से सम्बन्धित होती है। ऐसी निर्देशांक पद्धति सब सम्भव पद्धतियों में से सबसे अधिक जड़त्वीय होगी। इससे बढ़िया पद्धति ढूंढ़ना संभव नहीं है।

खगोलशास्त्रिओं को दो अभिप्रायों से नक्षत्र-प्रेक्षक कहा जा सकता है: वे नक्षत्रों का प्रेक्षण करते हैं और खगोलीय पिंडों की गति का अध्ययन नक्षत्रों के दृष्टिकोण से करते हैं।

त्वरण

बदलते वेग को व्यक्त करने के लिए भौतिक विज्ञान में त्वरण की संकल्पना का उपयोग किया जाता है।

वेग में एक सेकण्ड में आये परिवर्तन को त्वरण कहते हैं। यह कहने के बजाय कि "एक सेकण्ड में पिंड के वेग में आया परिवर्तन a के बराबर है", हम संक्षिप्त रूप में कहते हैं कि "पिंड का त्वरण a है।"

अगर हम यह कहें कि शुरू में ऋजुरेखीय वेग v_1 था और बाद में v_2 हो गया तो त्वरण a को निम्नलिखित सूत्र से मालूम करते हैं:

$$a = \frac{v_2 - v_1}{t}$$

जिसमें t – वह समय है जिस के दौरान वेग में वृद्धि होती है।

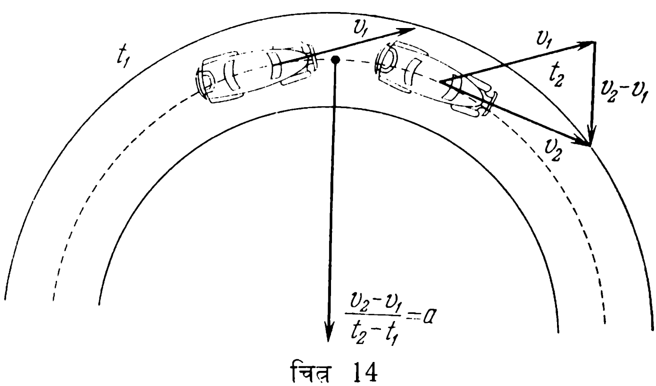
वेग सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड (या मीटर प्रति सेकण्ड) में, और समय सेकण्डों में मापा जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि त्वरण को सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड^2 में मापते हैं। यानी सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड की संख्या को सेकण्डों से विभाजित करते हैं। इस प्रकार त्वरण का मात्रक सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड^2 या मीटर प्रति सेकण्ड^2 है।

स्वभावत: त्वरण गति के समय भी बदल सकता है। लेकिन यहां हम इस असैद्धांतिक बात पर ध्यान नहीं देंगे ताकि त्वरण का वर्णन पाठक को समझ में आने लायक रहे। इसलिए हम मानेंगे कि गति के समय वेग एकसमान ही बढ़ता है। ऐसी गति को एकसमान त्वरित गति कहते हैं।

वक्ररेखीय गति का त्वरण क्या है?

वेग वेक्टर है और वेगों में परिवर्तन (अन्तर) भी वेक्टर है। इसका मतलब हुआ कि त्वरण भी वेक्टर है। त्वरण-वेक्टर ढूंढ़ने के लिए हमें वेग-वेक्टरों के अन्तर को समय से विभाजित करना होगा। और वेग-परिवर्तन-वेक्टर का पता लगाने की विधि का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं।

आइए, अब सड़क के मोड़ पर कार की दो पास-पास की स्थितियों को देखें और इन स्थितियों में उसके वेगों को वेक्टरों से व्यक्त करें (देखिए चित्र 14)। इन वेक्टरों को घटाने से जो परिमाण मिलेगा वह शून्य के बराबर नहीं होगा; इस परिमाण को काल अंतराल (समय) से विभाजित करके हम त्वरण मालूम कर सकते हैं। गति वर्द्धन (त्वरण) तो उस



चित्र 14

समय भी हो रहा था जब मुड़ते समय कार के वेग में परिवर्तन नहीं आया था। वक्ररेखीय गति हमेशा त्वरित होती है। केवल एकसमान ऋजुरेखीय गति ही त्वरित नहीं होती है।

पिंड के वेग की चर्चा करते समय हम गति के दृष्टिकोण का उल्लेख ज़रूर करते हैं। पिंड का वेग आपेक्षिक होता है। एक जड़त्वीय तंत्र के दृष्टिकोण से वेग तेज़ होता है और दूसरे के दृष्टिकोण से धीमा। त्वरण की चर्चा करते समय भी क्या ऐसी शर्तें लगानी चाहिए? नहीं, बिलकुल नहीं, क्योंकि त्वरण वेग के विपरीत एक निरपेक्ष परिमाण है। सब कल्पित जड़त्वीय तंत्रों के दृष्टिकोण से त्वरण एक ही होगा। कारण यह है कि त्वरण किसी काल अंतराल में पिंड के वेगों के अन्तर पर निर्भर करता है और यह अन्तर, जैसा कि हमें मालूम है, सब दृष्टिकोणों से एकसमान अर्थात् निरपेक्ष होगा।

त्वरण और बल

अगर किसी पिंड पर कोई बल प्रभाव नहीं डालता है तो वह केवल त्वरण के बिना ही चल सकता है। अगर पिंड पर बल प्रभाव डालता है तो गतिवर्द्धन शुरू होता है और बल जितना ज़्यादा होगा उतना ही ज़्यादा त्वरण होगा। जितना तेज़ी से हम किसी भरी हुई पहिया-गाड़ी को चलाना चाहेंगे उतना ही ज़्यादा बल हमें लगाना पड़ेगा। साधारणतः किसी भी गतिमान् पिंड पर दो बल प्रभाव डालते हैं: एक तो पिंड को त्वरित करने वाला अर्थात् कर्षण-बल और दूसरा, उस पिंड को रोकनेवाला बल, जैसे घर्षण-बल या हवा का प्रतिरोध होता है।

इन दोनों बलों का अन्तर, तथाकथित परिणामी बल गति की दिशा में या उसके विपरीत लगा हो सकता है। पहली स्थिति में गाड़ी की गति बढ़ती है और दूसरी में—कम हाती है। अगर एक दूसरे के विपरीत लगे हुए ये बल एक दूसरे के बराबर हों तो पिंड एकसमान गति से चलेगा, जैसे कि उस पर कोई भी बल प्रभाव नहीं डाल रहा हो।

बल और उससे पैदा हुआ त्वरण परस्पर कैसे सम्बन्धित हैं? इसका उत्तर बहुत ही सरल है। त्वरण बल के अनुपातिक है।

$$a \propto F$$

($\propto$ का मतलब है "अनुपात")।

लेकिन अभी एक और प्रश्न का उत्तर देना बाकी है: पिंड के गुण उस पर लगे किसी बल के प्रभाव से त्वरित होने की उसकी योग्यता पर कैसे प्रभाव डालते हैं? यह बात स्पष्ट है कि विभिन्न पिंडों पर लगा एक जैसा ही बल उन्हें अलग-अलग त्वरण देता है।

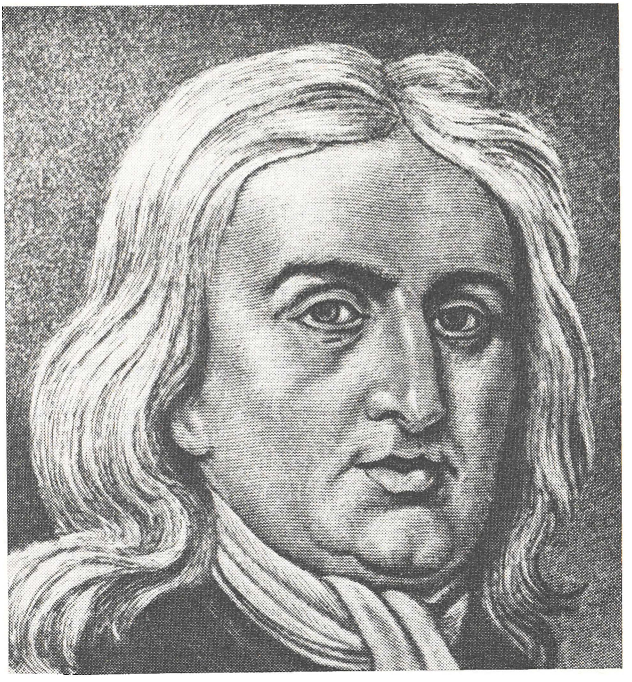
इस प्रश्न का उत्तर हमें उस अनुपम स्थिति से मिलता है कि सब पिंड पृथ्वी की ओर एक ही त्वरण से गिरते हैं। इस त्वरण को g से व्यक्त करते हैं। मास्को में त्वरण $g = 981$ सेंटीमीटर/सेकण्ड^2 के बराबर है।

लेकिन पृथ्वी की ओर गिरते हुए पिंडों को देख कर इस बात की पुष्टि करना मुश्किल है कि सब पिंड एकसमान त्वरण से गिरते हैं। कारण यह है कि साधारण परिस्थितियों में गिर रहे पिंडों पर गुरुत्व-बल के अतिरिक्त उनकी गति में "विघ्न डालनेवाला" बल – हवा का प्रतिरोध – भी प्रभाव डाल रहा होता है। हल्के और भारी पिंडों के गिरने की त्वरता में असमानता ने प्राचीन दार्शनिकों को बहुत भ्रम में डाला। लोहे का टुकड़ा बहुत जल्दी गिरता है जबकि एक पंख हवा में काफ़ी देर तक उड़ता रहता है। ऐसे ही काग़ज़ का टुकड़ा पृथ्वी की ओर धीरे-धीरे गिरता है, जबकि इसी कागज़ का बनाया हुआ गेंद जल्दी नीचे गिर जाता है। प्राचीन यूनानी यह जानते थे कि हवा पृथ्वी की ओर गिर रहे पिंड की "सही" गति को विकृत कर देती है। लेकिन डिमोक्रीट कहता था कि अगर हवा को हटा भी दिया जाए तो भी भारी पिंड हलके पिंडों की अपेक्षा जल्दी ही गिरेंगे। हवा के प्रतिरोध का प्रभाव इसके विपरीत भी हो सकता है, उदाहरण के लिए ऐलुमिनियम की पन्नी (पूरी तरह खुली) धीरे-धीरे गिरेगी लेकिन उसी पन्नी का बनाया हुआ गेंद जल्दी गिरेगा।

लगे हाथ यह भी बता दें कि आजकल धातु की कुछ ही माइक्रोन मोटी तारें बनायी जाती हैं। ऐसी तारें पंख की तरह ही हवा में तैरती हैं।

अरस्तू का विचार था कि निर्वात में सब पिंड एक ही त्वरण से गिरने चाहिए। लेकिन इस परिकल्पित विचार से उसने निम्नलिखित विरोधाभासी परिणाम निकाला कि "पिंडों का समान वेग से गिरना इतनी बेतुकी बात है, कि निर्वात के अस्तित्व की असम्भवता स्पष्ट है।"

प्राचीन या मध्यकालीन युग के किसी भी वैज्ञानिक ने इस बात को प्रयोग



इसाक न्यूटन (1643–1727) – इंगलैंड के प्रतिभाशाली भौतिक विज्ञानी तथा गणितज्ञ। मानव इतिहास में संसार के सर्वोत्तम वैज्ञानिकों में उन्हें विशेष स्थान प्राप्त है। उन्होंने यांत्रिकी की ग्राधारभूत संकल्पनाग्रों ग्रौर नियमों को सूत्रबद्ध किया। गुरुत्वाकर्षण नियम की खोज की। इस नियम के ग्राधार पर संसार का भौतिक चित्र बनाया, जो बीसवीं शताब्दी के ग्रारम्भ तक ग्रपरिवर्तित रहा। उन्होंने खगोलीय पिंडों की गति का सिद्धान्त पेश किया, चन्द्रमा की गति की महत्त्वपूर्ण विशेषताग्रों की व्याख्या दी, ज्वार ग्रौर भाटे के ग्राने के कारण बताए। प्रकाश-विज्ञान में महत्त्वपूर्ण खोजें कीं, जिनकी बदौलत भौतिकी के इस क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। उन्होंने प्रकृति का गणितीय तरीक़े से ग्रध्ययन करने की विधि बनाई। ग्रवकल ग्रौर समाकलन गणित के बनाने का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त है। इसका भौतिक विज्ञान की प्रगति पर बहुत प्रभाव पड़ा ग्रौर इससे ग्रनुसन्धान में गणितीय तरीक़ों का उपयोग करना सम्भव हुग्रा।

करके सिद्ध करने की न सोची कि क्या पिंड एक ही या विभिन्न त्वरणों से पृथ्वी पर गिरते हैं। केवल गैलीलीओ ने ही अपने अद्भुत प्रयोगों से यह सिद्ध किया (उसने आनत समतल पर गेंदों की गति और पिज़ा के टेढ़े बुर्ज पर से गिराये पिंडों की गति का अध्ययन किया) कि सब पिंड, चाहे उनका द्रव्यमान कितना भी हो, पृथ्वी पर एक ही जगह और एक ही त्वरण से गिरते हैं। आजकल ऐसे प्रयोग करना बहुत आसान है। इसके वास्ते एक लम्बी ट्यूब लेते हैं जिसमें से हवा बिल्कुल निकाल दी जाती है। ऐसी ट्यूब में गिराया गया पंख और पत्थर एक जैसे त्वरण से ही गिरेंगे: पिंड पर एक ही बल प्रभाव डालता है और वह है उसका भार। हवा का प्रतिरोध शून्य है क्योंकि ट्यूब में हवा है ही नहीं। जब हवा का प्रतिरोध शून्य होता है तब सब पिंड एकसमान त्वरित गति से ही गिरते हैं।

अब हम दोबारा उसी ही प्रश्न पर लौट आते हैं जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। वह है: बल के प्रभाव के अन्तर्गत पिंडों की त्वरित होने की योग्यता उन के गुणों पर कैसे निर्भर करती है?

गैलीलीओ के नियम के अनुसार सब पिंड, चाहे उनका द्रव्यमान कितना भी क्यों न हो, एक ही त्वरण से गिरते हैं: इसका अभिप्राय यह हुआ कि m kg द्रव्यमान, m kg · f बल के प्रभाव से g त्वरण से चलता है।

अब ज़रा यह सोचें कि पिंड गिर नहीं रहा है और m kg द्रव्यमान पर 1 kg · f बल लगा हुआ है। चूंकि त्वरण बल के अनुपातिक है, इसलिए वह g से m गुना कम होगा।

इससे यह परिणाम निकलता है कि पिंड का त्वरण a किसी दिए गए बल (लिए गये उदाहरण में यह बल 1 kg · f के बराबर है) के लिए द्रव्यमान के व्युत्क्रमानुपातिक होता है।

दोनों परिणामों को मिलाने पर हम लिख सकते हैं:

$$a \backsim \frac{F}{m}$$

यानी अपरिवर्तनीय द्रव्यमान के लिए त्वरण बल के समानुपातिक होता है और स्थिर बल के लिए द्रव्यमान के व्युत्क्रमानुपातिक होता है।

उस नियम को जो पिंड के त्वरण को उसके द्रव्यमान और उस पर लगे बल में सम्बन्ध व्यक्त करता है, इंगलैंड के महान वैज्ञानिक इसाक

्यटन (1643—1727) ने खोजा था। इसलिए इसे न्यूटन का नियम भी कहते हैं ।*

त्वरण पिंड पर लगाए गए बल के समानुपातिक और उसके द्रव्यमान का व्युत्क्रमानुपातिक होता है तथा पिंड के किसी अन्य गुण पर निर्भर नहीं करता है। न्यूटन के नियमानुसार द्रव्यमान ही पिंड के जड़त्व का मात्रक है। बड़े द्रव्यमान वाले पिंड को त्वरित करना मुश्किल होता है, अगर उस पर बराबर के बल प्रभाव डाल रहे हों। यहां हम देखते हैं कि द्रव्यमान, जिससे हम एक "साधारण" परिणाम के तौर पर परिचित हैं और जिसे भौतिक तुला में तौला जा सकता है, की संकल्पना ने एक नया और गहन अर्थ प्राप्त कर लिया है: द्रव्यमान पिंड के गतिक गुणों को व्यक्त करता है।

न्यूटन के नियम को हम निम्नलिखित सूत्र में व्यक्त कर सकते हैं:

$$kF = ma$$

जहां k एक स्थिर गुणांक है। यह गुणांक हमारे द्वारा चुने गए मात्रकों पर निर्भर करता है।

बल के प्रचलित मात्रक (kg · f) का उपयोग करने के बजाय हम कोई दूसरा मात्रक लेंगे। जैसा कि भौतिक विज्ञानी अक्सर करते हैं, हम बल का मात्रक ऐसे चुनेंगे कि न्यूटन के नियम में प्रकट होनेवाला अनुपात गुणांक एक के बराबर हो जाए तब न्यूटन का नियम नीचे दिया गया रूप ले लेता है:

$$F = ma$$

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, भौतिक विज्ञान में द्रव्यमान ग्रामों में, दूरी सेंटीमीटरों में और समय सेकण्डों में नापे जाते हैं। इन तीनों परिमाणों पर आधारित मात्रक पद्धति को CGS (सी. जी. एस) पद्धति कहते हैं।

आइए, अब ऊपरलिखित सिद्धान्त के अनुसार बल के मात्रक को चुनें। स्पष्ट है कि बल केवल तभी एक के बराबर होगा जब एक ग्राम के

---

*स्वयं न्यूटन ने कहा था कि गति तीन नियमों पर निर्धारित होती है। यह नियम, जिसका आगे चलकर उल्लेख किया जायेगा, न्यूटन का द्वितीय नियम कहलाता है। पहले नियम को उसने जड़त्व-नियम और तीसरे को क्रिया और प्रतिक्रिया-नियम की संज्ञा दी है।

द्रव्यमान में 1 cm/sec^2 का त्वरण पैदा होगा। ऐसे बल को CGS पद्धति में डाइन कहते हैं।

न्यूटन के नियम के अनुसार, $F = ma$ बल डाइन में नापा जाता है यानी m ग्राम को a cm/sec^2 से गुणा किया जाता है। इस कारण

$$1 \text{ डाइन} = 1 \frac{\text{ग्राम} \cdot \text{से० मी०}}{\text{सेकण्ड}^2}$$

प्रायः पिंड के भाग को अक्षर P से व्यक्त करते हैं। बल P पिंड को g त्वरण, स्पष्टतया (डाइन में), देता है तो:

$$P = mg$$

लेकिन हमारे पास पहले भी तो बल का एक मात्रक – kg · f – था। इन दोनों यानी नए और पुराने मात्रकों में सम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र से मालूम होता है:

$$1 \text{ किलोग्राम (भार)} = 981000 \text{ डाइन}$$

डाइन एक बहुत छोटा बल है। वह लगभग 1 मिलीग्राम भार के बराबर है।

हमने पिछले अध्याय में एक नई पद्धति यानी (*SI*) पद्धति की चर्चा की थी, जिसे कुछ साल पहले ही अपनाया गया है। इस पद्धति के अनुसार बल न्यूटनों (*N*) में नापा जाता है। बल के इस नए मात्रक का प्रयोग कर न्यूटन के नियम को लिखना और भी सरल हो गया है और अब इस मात्रक को ऐसे लिखते हैं:

$$1 \text{ न्यूटन} = 1 \frac{kg \cdot m}{sec^2}$$

अर्थात्, 1 न्यूटन वह बल है जो 1 kg द्रव्यमान में 1 मीटर/सेकण्ड^2 त्वरण पैदा करता है।

इस नए मात्रक का डाइन और किलोग्राम के साथ सम्बन्ध मालूम करना मुश्किल नहीं है:

$$1 \text{ न्यूटन} = 100000 \text{ डाइन} = 1/9.8 \text{ kg} \cdot \text{f}$$

ऋजुरेखीय एकसमान गति

ऐसी गति, न्यूटन के नियम के अनुसार, तभी सम्भव हो सकती है जब पिंड पर उसे ढकेलने या रोकने वाला कोई एक स्थिर बल लगा हो।

यह कहना बिल्कुल सही तो नहीं है कि ऐसा प्रायः देखने में आता है। उदाहरण के लिए, अगर मोटरगाड़ी के इंजन को बंद कर दिया जाए तो वह लगभग अचर धर्षण-बल के प्रभाव से रुक जाएगी; भारी पिंड ऊपर से स्थिर गुरुत्व-बल के प्रभाव से नीचे गिरता है।

अगर हमें परिणामी बल और पिंड का द्रव्यमान मालूम हैं तो $a=\frac{F}{m}$ सूत्र से त्वरण मालूम किया जा सकता है। चूंकि:

$$a=\frac{v-v_0}{t}$$

जहां t – गति का काल, v – अंतिम वेग, v_0 – प्रारंभिक वेग है। इस सूत्र की मदद से अनेक सवालों का जवाब दिया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए, यह मालूम किया जा सकता है कि कितने समय बाद रेलगाड़ी रुक जाएगी अगर ब्रेक-बल, गाड़ी का द्रव्यमान और प्रारंभिक वेग मालूम हों? मोटरगाड़ी का अधिकतम वेग कितना होगा, अगर उसके इंजन की अश्वशक्ति (हार्सपावर), घर्षण-बल, मोटरगाड़ी का द्रव्यमान और इंजन की कार्यावधि मालूम हैं?

अक्सर हमें एकसमान-त्वरित गति से पिंड द्वारा तय की गयी दूरी का मालूम करना ज़रूरी होता है। अगर गति एकसमान है तो उसके वेग को समय से गुणा कर तय की गयी दूसरी मालूम करते हैं। अगर गति एकसमान-त्वरित है तो तय किया गया फ़ासला ऐसे मालूम किया जाता है मानों पिंड t काल में एसमान वेग से, यानी प्रारंभिक और अंतिम वेगों के योग के आधे के बराबर वेग से चल रहा हो, अर्थात्:

$$S=\frac{1}{2}(v_0+v)t$$

अर्थात् एकसमान-त्वरित (या मन्द) गति से पिंड द्वारा तय किया गया फ़ासला प्रांरभिक और अंतिम वेगों के योग के आधे और गति के समय के गुणनफल के बराबर होगा। इतने ही समय में उतना ही फ़ासला तय

हो जाता अगर पिंड का वेग $1/2\,(v_0+v)$ के बराबर होता। या यह कहा जा सकता है कि $1/2\,(v_0+v)$ एकसमान-त्वरित गति का औसत वेग है।

उस सूत्र को भी मालूम करना लाभदायक होगा जिससे पता चले कि तय किया गया फ़ासला त्वरण पर कैसे निर्भर करता है। $v=v_0+at$ को ऊपरलिखित सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं

$$S=v_0t+\frac{at^2}{2}$$

अगर प्रारंभिक वेग शून्य हो तो,

$$S=\frac{at^2}{2}$$

अगर एक सेकण्ड में पिंड 5 मीटर चलता है, तो दो सेकण्ड में वह (4×5) मीटर और तीन सेकण्ड में (9×5) मीटर रास्ता तय करेगा, आदि। तय किया गया फ़ासला समय के वर्ग के अनुक्रमानुपात में बढ़ता है।

इसी नियम के अनुसार ही भारी पिंड ऊंचाई से गिरता है। अगर पिंड स्वतन्त्र रूप से गिरे तो त्वरण g के बराबर होता है, अत:

$$S=\frac{981}{2}\times t^2\,(\text{cm})$$

अगर t यानी समय सेकण्डों में हो।

अगर कोई पिंड बिना किसी रुकावट के 100 सेकण्ड के लिए गिर सके तो वह गिरने के शुरू से काफ़ी लम्बा रास्ता तय कर लेगा – लगभग 50 किलोमीटर। जबकि पहले 10 सेकण्डों में वह केवल आधा किलोमीटर ही रास्ता तय करेगा। इससे स्पष्ट है कि वेग के बढ़ने की दर क्या है।

अगर किसी ऊंचाई से पिंड को गिराया जाए तो गिरने पर उसका वेग क्या होगा? इसका उत्तर पाने के लिए हमें उन सूत्रों की ज़रूरत पड़ेगी जो तय की गयी दूरी, वेग और त्वरण को व्यक्त करते हैं। $S=\frac{1}{2}(v_0+v)t$ में गति काल $t=\frac{v-v_0}{a}$ प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं

$$S=\frac{1}{2a}(v^2-v_0^2)$$

और अगर प्रारंभिक वेग शून्य के बराबर है, तो

$$S=\frac{v^2}{2a}, \quad v=\sqrt{2aS}$$

10 मीटर तो दो या तीन मंज़िला-मक़ान की ऊंचाई होती है। इतने ऊंचे मक़ान की छत से धरती पर कूदना ख़तरनाक क्यों होता है? साधारण परिकलन बताता है कि अगर इतनी ऊंचाई से पिंड स्वतन्त्र रूप से गिरे तो उसका वेग $v=\sqrt{2\times 9.8\times 10}$ मीटर प्रति सेकण्ड अर्थात् 14 मीटर/सेकण्ड या लगभग 50 किलोमीटर/घण्टा होगा। इतने वेग से तो मोटर-गाड़ी शहर में चलती है।

हवा के प्रतिरोध से यह वेग कुछ कम हो जायेगा।

ऊपरलिखित सूत्रों का अनेक परिकलनों में उपयोग किया जाता है। आइए, अब इन सूत्रों का चांद पर गति का अध्ययन करने के लिए उपयोग करें।

वेल्ज़ के उपन्यास "चांद पर पहले आदमी" में चांद पर इस काल्पनिक यात्रा के दौरान आयीं अप्रत्याशित मुश्किलों का वर्णन किया हुआ है। चांद पर गुरुत्वीय त्वरण पृथ्वी के गुरुत्वीय त्वरण से लगभग 6 गुना कम है। अगर पृथ्वी पर गिरता हुआ पिंड पहले सेकण्ड में 5 मीटर का फ़ासला तय करता है तो चांद पर वह सिर्फ़ 80 सेंटीमीटर फ़ासला ही तय करेगा (वहां त्वरण लगभग 1.6 मीटर/सेकण्ड^2 है)।

ऊपरलिखित सूत्रों का उपयोग कर चांद "चमत्कारों" के बारे में आसानी से जान सकते हैं।

h ऊंचाई से नीचे तक आने में $t=\sqrt{\frac{2h}{g}}$ समय लगता है। चूंकि चांद पर पृथ्वी की अपेक्षा त्वरण 6 गुना कम है तो चांद पर इसी कुदान के लिए लगभग $\sqrt{6}\approx 2.45$ गुना अधिक समय लगेगा। और कुदान का अंतिम वेग $(v=\sqrt{2gh})$ कितने गुना कम हो जायेगा?

चांद पर 10 मीटर ऊंचे मकान की छत पर से बिना किसी ख़तरे के कूदा जा सकता है। उतने ही प्रारंभिक वेग से लगायी गयी कुदान की ऊंचाई 6 गुना अधिक हो जाती है (सूत्र $h=\frac{v^2}{2g}$)। ऊंची कुदान के विश्व रिकार्ड को तो चांद पर एक बच्चा भी आसानी से तोड़ देगा।

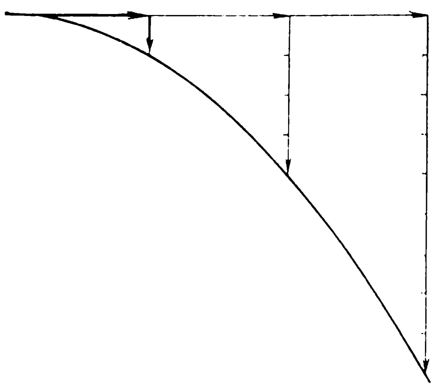
गोली का पथ

किसी चीज़ को ज़्यादा से ज़्यादा दूरी तक कैसे फेंका जाए, इस प्रश्न का समाधान करने में मनुष्य अत्यन्त प्राचीन काल से लगा हुआ है। हाथ से या गुलेल से फेंका गया पत्थर, कमान से निकला तीर, बन्दूक की गोली, तोप का गोला, प्रक्षेपास्त्र – यह हैं कुछ उदाहरण, जो फेंकने की क्रिया को प्रवीण करने की सफलताओं के बारे में बताते हैं।

फेंकी गयी हर कोई चीज़ वक्र रेखा के साथ-साथ चलती है, जिसे परवलय कहते हैं। परवलय आसानी से बनाया जा सकता है, अगर फेंके गये पिंड की गति को दो गतियों यानी क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर गतियों का योग माना जाए, जो एक ही समय होती हों और एक-दूसरे पर निर्भर न करती हों। गुरुत्व बल का त्वरण ऊर्ध्वाधर रेखा के साथ होता है। इसलिए बन्दूक से निकली गोली पृथ्वी के समान्तर एक ही गति से जड़त्व के कारण चलती है और साथ-साथ वह एकसमान त्वरण के कारण नीचे पृथ्वी पर गिरती है। इन दो गतियों का योग कैसे किया जाये?

यह समझने के लिए हम एक साधारण मामले से शुरू करते हैं – प्रारंभिक वेग क्षैतिज है (यहां हमारा अभिप्राय बन्दूक की नाल, जो क्षैतिज स्थिति में है, से निकली गोली से है)।

अब हम एक ग्राफ़-पेपर पर दो रेखाएं – ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज – खेंचते हैं (चित्र 15)। चूंकि दोनों गतियां एक दूसरे पर निर्भर नहीं करती हैं



चित्र 15

इसलिए गोली t सेकण्ड बाद पर दाईं ग्रोर v_0t दूरी ग्रौर नीचे की ग्रोर $\frac{gt^2}{2}$ दूरी पर होगी। क्षैतिज रेखा पर फ़ासला v_0t के बराबर खींचेंगे ग्रौर उसके कोने से ऊर्ध्वाधर रेखा पर $\frac{gt^2}{2}$ के बराबर फ़ासला खींचेंगे। ऊर्ध्वाधर रेखा का ग्रंतिम बिन्दु गोली की t सेकण्ड बाद स्थिति को व्यक्त करेगा।

ऐसी रचना कई बिंदुग्रों के लिए यानी ग्रलग-ग्रलग समयों के लिए करनी पड़ेगी। इन बिन्दुग्रों को मिलाने पर जो निष्कोण वक्र (smooth curve) मिलती है उसे परवलय (पैराबोला) कहते हैं। यह पैराबोला गोली का प्रक्षेप-पथ है। ये बिंदु जितने पास होंगे, उतनी ही परिशुद्धता से गोली का प्रक्षेप-पथ बनाया जा सकेगा।

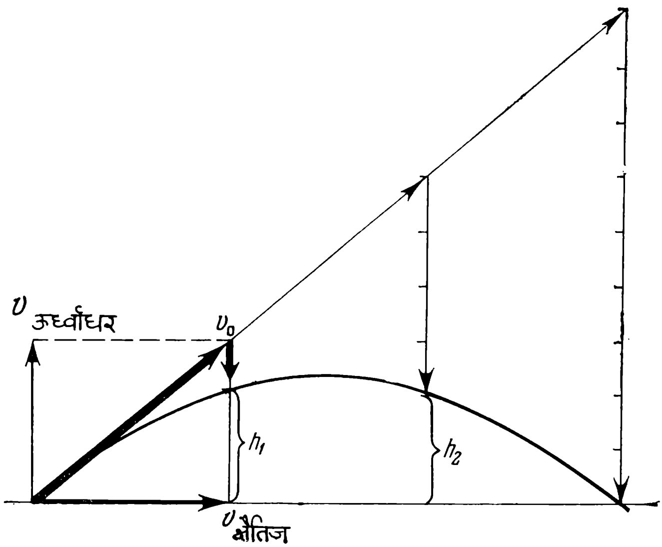
चित्र 16 में दिखाया गया है कि ग्रगर प्रारंभिक वेग v_0 क्षैतिज के साथ कोई कोण बनाता है तो गोली का प्रक्षेप-पथ कैसा होगा।

सबसे पहले तो वेक्टर v_0 का क्षैतिज ग्रौर ऊर्ध्व घटकों में वियोजन करना पड़ता है। क्षैतिज रेखा पर हम $v_{\text{क्षै}}\,t$ के बराबर फ़ासला खींचेंगे, यह वह दूरी है जो गोली t सेकण्ड में क्षैतिज दिशा में तय करती है।

लेकिन गोली साथ-साथ ऊपर की ग्रोर भी जा रही है। t सेकण्ड बाद वह $h = v_{\text{ऊर्ध्वाधर}} \times t - \frac{gt^2}{2}$ ऊंचाई तक पहुंच जाएगी। इसी सूत्र से ग्रलग-ग्रलग समयों पर गोली के ऊर्ध्वाधर विस्थापनों को मालूम कर उन्हें ऊर्ध्वाधर ग्रक्ष पर खींचना चाहिए। इससे यह पता चलता है कि h शुरू में तो बढ़ता है ग्रौर फिर कम होने लगता है।

प्रक्षेप-पथ जानने के वास्ते ग्रब हमें ग्राफ-पेपर पर केवल बिन्दु ही लगाने होंगे जैसा कि पहलेवाले उदाहरण में किया था, ग्रौर उन्हें निष्कोण वक्र (smooth curve) से मिलाना होगा।

ग्रगर बन्दूक की नली को क्षैतिज स्थिति में रखा जाए तो गोली जल्द ही पृथ्वी पर ग्रा गिरेगी, ग्रगर नली को ऊर्ध्व स्थिति में रखकर गोली दागी जाए तो वह वहीं ग्रा गिरेगी जहां से उसे दागा गया था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रगर गोली को दूर फेंकना हो तो बन्दूक की नली को क्षैतिज के साथ कोई कोण बनाना चाहिए। पर यह कोण कितनी डिग्री का होना चाहिए?



चित्र 16

यह जानने के वास्ते हम प्रारंभिक वेग के वेक्टर का दो घटकों में वियोजन करेंगे: ऊर्ध्वाधर दिशा में वेग v_1 और क्षैतिज दिशा में v_2 के बराबर है। गोली दाग़ने के क्षण से लेकर अधिकतम ऊंचाई पर पहुंचने के समयों का अन्तर v_1/g के बराबर है। यहां हम यह भी बता दें कि इतने ही समय में गोली नीचे आएगी यानी गोली धरती पर $2\frac{v_1}{g}$ समय बाद आ गिरेगी।

चूंकि गोली की क्षैतिज गति एकसमान है तो उस द्वारा तय की गयी दूरी $S=\frac{2v_1a_2}{g}$ के बराबर होगी। (यहां हमने बन्दूक की पृथ्वी पर से ऊंचाई की उपेक्षा की है)।

इस सूत्र से हम यह देखते हैं कि गोली द्वारा तय की गयी अधिकतम दूरी (परास) वेग के घटकों के गुणनफल के अनुपातिक है। गोली किस दिशा में चलायी जाये कि यह गुणनफल अधिकतम हो? इस प्रश्न का उत्तर ज्यामितीय व्याख्या द्वारा दिया जा सकता है। v_1 और v_2 वेग एक आयत

बनाते हैं, जिसका विकर्ण पूर्ण वेग v के बराबर है। गुणनफल v_1v_2 इस आयत के क्षेत्रफल के बराबर होगा।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि विकर्ण की निश्चित लम्बाई के लिए आयत की भुजाओं की लम्बाई कितनी होनी चाहिए ताकि उसका क्षेत्रफल अधिकतम हो? ज्यामिती से हमें मालूम है कि केवल वर्ग ही यह शर्त को पूरी करता है। इसका मतलब यह हुआ कि परास अधिकतम तभी होगा जब $v_1 = v_2$ अर्थात् जब वेगों का आयत वर्ग में परिवर्तित हो जाएगा। ऐसी स्थिति में वेगों के वर्ग का विकर्ण क्षैतिज रेखा से 45 डिग्री का कोण बनाता है। बन्दूक को इतने कोण पर ही रखकर गोली को दागना चाहिए ताकि गोली अधिकतम दूरी तय करे।

अगर v – गोली का पूर्ण वेग है तो वेगों के वर्ग में $v_1 = v_2 = \frac{v}{\sqrt{2}}$। इस स्थिति में गोली द्वारा तय किया गया फ़ासला $S = \frac{v^2}{g}$ अर्थात् परास ऊपर की ओर दागी गयी गोली की ऊंचाई से दुगुना होगा अगर गोली को पहले जैसे प्रारंभिक वेग से दागा गया हो।

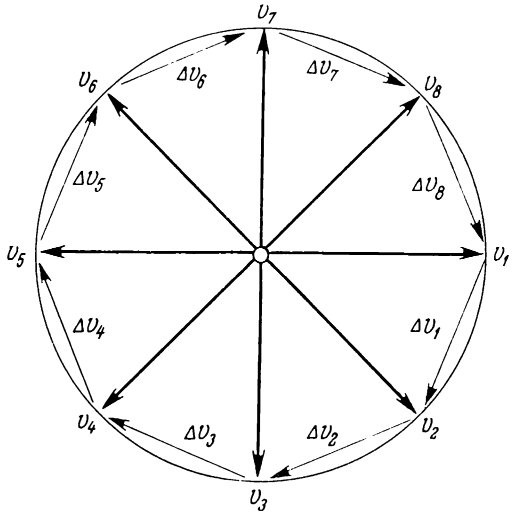
अगर 45 डिग्री के कोण पर गोली दागी गयी है तो उसकी ऊंचाई $h = \frac{v_1^2}{2g} = \frac{v^2}{4g}$ परास से चार गुना कम होगी।

यहां यह बताना उचित होगा कि इस्तेमाल किये गये सूत्रों से प्राप्त परिणाम परिशुद्ध तभी होंगे जब हवा का प्रतिरोध नहीं होगा, लेकिन ऐसा वास्तव में होता नहीं है। हवा का प्रतिरोध कई मामलों में निर्णायक भूमिका अदा करता है और ऊपरलिखित में बुनियादी तौर पर अदल-बदल कर देता है।

वर्तुल गति

अगर कोई बिन्दु वृत्त पर चलता है तो उसकी गति त्वरित होती है, कारण यह है कि हर समय बिन्दु के वेग की दिशा बदलती रहती है। वेग का परिमाण अचर रह सकता है और हम यहां एक ऐसे ही उदाहरण का अध्ययन करेंगे।

इसके लिए हम उत्तरोत्तर समय-कालों के लिए एक ही आरंभ बिन्दु



चित्र 17

से वेग के वेक्टरों को खींचेंगे। (ऐसा हम कर सकते हैं।) अगर वेग-वेक्टर किसी छोटे से कोण पर मुड़ता है तो वेग में आया परिवर्तन, जैसा कि हम जानते हैं, एक समद्विबाहु त्रिभुज के आधार से व्यक्त किया जाता है। आइए, अब एक पूरे चक्कर के दौरान पिंड के वेग में आये परिवर्तनों को चित्रित करें (चित्र 17)। एक पूरे चक्कर के दौरान वेगों में आये परिवर्तनों के परिमाणों का योग चित्रित बहुभुज की भुजाओं के योग के बराबर होगा। हर छोटे त्रिभुज को बनाते समय हमने यह माना था कि वेग-वेक्टर में एकदम परिवर्तन हुआ था, लेकिन वास्तव में वेग-वेक्टर निरन्तर बदलता रहता है। स्पष्ट है कि त्रिभुज का कोण जितना कम होगा उतनी ही कम ग़लती होगी। और बहुभुज की भुजा जितनी छोटी होगी उतना ही बहुभुज उस वृत्त जैसा होगा जिसका अर्धव्यास v के बराबर है। इसलिए बिन्दु द्वारा पूरा चक्कर लगाने के दौरान वेग में आये परिवर्तनों के निरपेक्ष परिमाणों का ठीक योग वृत्त की परिधि $2\pi v$ के बराबर होगा। $2\pi v$ को पूरा चक्कर लगाने में ख़र्च हुए समय T से विभाजित कर त्वरण मालूम हो जायेगा।

एकसमान वृत्तीय गति में त्वरण $a=\frac{2\pi v}{T}$ होगा।

R अर्धव्यास वाले वृत्त का पूरा चक्कर लगाने में जो समय लगेगा वह बराबर होगा: $T = \frac{2\pi R}{v}$

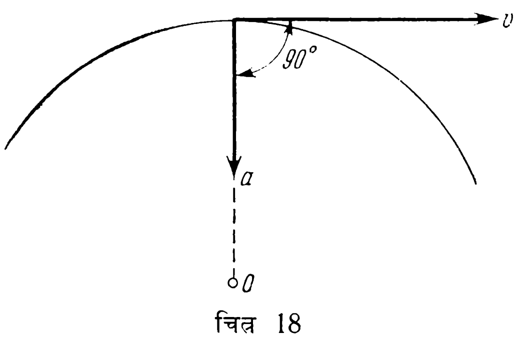
इसे पहलेवाले सूत्र में प्रतिस्थापित कर हम पाते हैं $a = \frac{v^2}{R}$ ।

घूर्णन-त्रिज्या के अचर होने पर त्वरण वेग के वर्ग के समानुपातिक होता है। किसी दिये हुए वेग के लिए त्वरण त्रिज्या के व्यत्क्रमानुपातिक होता है।

यही तर्क हमें बताता है कि निश्चित क्षण पर वृत्ताकार गति का त्वरण किस दिशा में लगा होगा। समद्विबाहु त्रिभुजों, जिन्हें हमने सिद्ध करने के लिए इस्तेमाल किया था, का शीर्ष कोण जितना कम होगा उतना ही वेग और वेग-वृद्धि के बीच का कोण 90 डिग्री के क़रीब होगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि एकसमान वृत्ताकार गति का त्वरण वेग पर लंबवत् है; लेकिन वेग और त्वरण की दिशा प्रक्षेप-पथ की अपेक्षा क्या होगी? चूंकि वेग पथ पर स्पर्शज्या (टैन्जैंट) है, इसलिए त्वरण अर्धव्यास के साथ और वृत्त के केन्द्र की ओर लगा होता है (देखिए चित्र 18)।

पत्थर को रस्सी से बांध कर घुमाएं तो आप स्पष्टतः महसूस करेंगे कि ऐसा करने के लिए काफ़ी बल लगाने की आवश्यकता पड़ती है। बल लगाने की क्या ज़रूरत है? पिंड एकसमान गति से घूम रहा है? जी नहीं, पिंड समान गति से नहीं घूम रहा है। पिंड का वेग अचर है, लेकिन वेग की दिशा में आनेवाला लगातार परिवर्तन पिंड की गति को त्वरित करता है। जड़त्वीय ऋजु पथ से पिंड की दिशा बदलने के लिये ही तो बल लगाने



चित्र 18

की ज़रूरत होती है। v^2/R के बराबर त्वरण पैदा करने के लिये ही तो बल लगाना पड़ता है।

न्यूटन के नियमानुसार जिस दिशा में त्वरण होता है उसी दिशा में बल लगा होता है। अर्थात एकसमान वेग से वृत्त में घूम रहा पिंड किसी बल के प्रभाव में होना चाहिए, जो अर्धव्यास के साथ-साथ घूर्णन-केन्द्र की तरफ़ लगा हो। रस्सी की तरफ़ से पत्थर पर लगा बल ही तो v^2/R के बराबर त्वरण पैदा करता है। इसका मतलब यह हुआ कि यह बल mv^2/R के बराबर है।

रस्सी पत्थर को खींच रही है और पत्थर रस्सी को। ये दोनों बल ही "पिंड और आईने में उसका प्रतिबिम्ब"—क्रिया और प्रतिक्रिया के बल हैं। प्रायः उस बल को जिससे कि पत्थर रस्सी पर प्रभाव डालता है अपकेन्द्र बल कहते हैं। यह mv^2/R के बराबर होता है और इसकी दिशा वृत्त के अर्धव्यास के साथ-साथ केंद्र से उलटे, बाहर की तरफ़ होती है। अपकेन्द्र बल केवल उसी पिंड पर लगा होता है जो घूर्णी पिंड की ऋजुरेखीय गति से चलने की जड़त्वीय प्रवृत्ति नहीं रखता है।

यह बात उस स्थिति में भी सत्य है जब कि "रस्सी" की भूमिका गुरुत्व-बल अदा कर रहा हो। चांद पृथ्वी के गिर्द घूमता है। उपग्रह (स्पुत्निक) को कौन-सी शक्ति अपने पथ पर चलने को बाध्य करती है? और जड़त्व नियम के अनुसार वह अंतर्ग्रहीय यात्रा पर क्यों नहीं चला जाता? पृथ्वी ने चंद्रमा को "एक अदृश्य रस्सी" अर्थात आकर्षण-बल से बांध रहा है। यह बल mv^2/R के बराबर है। यहां v—चांद्र कक्षीय वेग और R—पृथ्वी और चांद के बीच का फ़ासला हैं। अपकेन्द्र बल, इस उदाहरण में, पृथ्वी पर प्रभाव डालता है, लेकिन पृथ्वी का द्रव्यमान अत्यधिक होने के कारण यह बल पृथ्वी की गति पर नाममात्र प्रभाव ही डालता है।

मान लीजिए कि हमें पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह को पृथ्वी की सतह से ३०० किलोमीटर की ऊंचाई पर वृतीय कक्षा में भेजना है तो ऐसे उपग्रह का वेग क्या होना चाहिए? ३०० किलोमीटर की ऊंचाई पर गुरुत्व बल का त्वरण पृथ्वी की अपेक्षा कुछ कम होगा यानी 8.9 मीटर/सेकण्ड^2 के बराबर होगा। वृतीय पथ पर घूम रहे उपग्रह का त्वरण v^2/R के बराबर होगा, जहां R—पृथ्वी के केन्द्र से उपग्रह की दूरी जो लगभग 6.600

किलोमीटर अर्थात 6.6×10^6 मीटर के बराबर है। दूसरी तरफ़ यह त्वरण गुरुत्व बल के त्वरण अर्थात g के बराबर है। परिणामस्वरूप $g = \frac{v^2}{R}$ अर्थात वृत्तीय कक्षा में घूम रहे उपग्रह का वेग $v = \sqrt{gR} = \sqrt{8.9 \times 6.6 \times 10^6} =$ 7 700 मीटर प्रति सेकण्ड = 7.7 किलोमीटर प्रति सेकण्ड होगा।

उस कम से कम वेग को, जिससे क्षैतिजत: फेंका पिंड पृथ्वी का उपग्रह बन जाये, पहला कॉस्मिक वेग कहते हैं। उपरोक्त उदाहरण से पता चलता है कि यह वेग लगभग 8 किलोमीटर प्रति सेकण्ड के बराबर है।

३. "बुद्धि विपरीत" दृष्टिकोण से गति

तुल्यता-नियम

पिछले अध्याय में हमने गति के बारे में "बुद्धिसंगत दृष्टिकोण" ढूंढ़ा था। यह सच है कि "बुद्धिसंगत" दृष्टिकोण, जिन्हें हमने जड़त्वीय तंत्रों का नाम दिया था, असंख्य हैं।

अब, जब हमें गति-नियम का ज्ञान हो गया है, हम यह जानना चाहेंगे कि "बुद्धि विपरीत" दृष्टिकोणों से गति कैसी होगी। अजड़त्वीय तंत्रों में रहनेवाले लोगों के जीवन के बारे में जानना कोई रोचक बात नहीं है, शायद इस कारण कि हम स्वयं भी ऐसे ही एक अजड़त्वीय तंत्र के निवासी हैं।

आइए, एक मिनट के लिए यह सोचें कि हम मापक यंत्रों सहित अंतर्ग्रहीय यान में तारों की सैर पर निकल पड़े हैं।

अंतर्ग्रहीय यान तेजी से आगे बढ़ रहा है। सूर्य अब एक छोटे-से तारे जैसा लग रहा है। अपने यान का इंजन बंद कर देते हैं, अंतर्ग्रहीय यान उसे आकर्षित करने वाले पिंडों से बहुत दूर है।

आइए, अब यह देखें कि हमारी उड्डीयमान् प्रयोगशाला में क्या हो रहा है। थर्मामीटर, जो कील पर से लटका हुआ था अब हवा में क्यों लटक रहा है, फर्श पर क्यों नहीं गिरता है? दीवार पर टंगा लोलक, जो दोलन कर रहा था, "ऊर्ध्वाधर" दशा से हट कर एक अजीब ही स्थिति में आकर रुक गया है। इस पहेली को हम फ़ौरन बूझ सकते हैं: अंतर्ग्रहीय यान पृथ्वी पर तो नहीं है, बल्कि अंतर्ग्रहीय आकाश में है। यहां चीज़ें भारहीन हो गयी हैं।

इस अजीबोग़रीब दृश्य को देखने के बाद अब हम अपने अंतर्ग्रहीय यान की दिशा बदलते हैं। बटन दबाकर उसके जेट-इंजन को चालू करते हैं और देखते क्या हैं कि सब चीज़ों में जैसे जान आ गयी हो। वे सब चीज़ें, जो

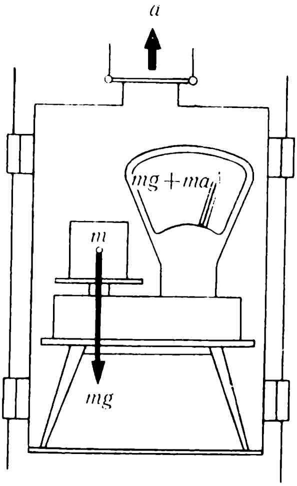
बंधी नहीं हुई थीं, गतिमान् हो जाती हैं। थर्मामीटर गिर जाता है, लोलक फिर से दोलन शुरू कर देता है और धीरे-धीरे ऊर्ध्वाधर स्थिति में आने लगता है। सूटकेस के नीचे पड़ा तकिया भी पिचक जाता है। आइए, अब ज़रा उन उपकरणों पर दृष्टि डालें, जो यह बताते हैं कि हमारे अंतर्ग्रहीय यान ने किस दिशा में त्वरित होना शुरू किया है। निस्संदेह, त्वरण ऊपर की ओर होगा। उपकरणों के पाठ्यांक दिखाते हैं कि हमने जहाज़ की संभावनाओं के मुकाबले बहुत कम त्वरण 9.8 m/sec^2 चुना है। इस स्थिति में हम ऐसे महसूस करते हैं मानो पृथ्वी पर हों। लेकिन ऐसा क्यों होता है? पहले की तरह अब भी तो हमारा अंतर्ग्रहीय यान उसे आकर्षित करने वाले द्रव्यमानों से अति दूर है, आकर्षण बल विद्यमान नहीं हैं, लेकिन चीज़ों में भार आ गया है।

अब हम एक गोली को अंतर्ग्रहीय यान के फ़र्श पर गिराते और उस त्वरण को नापते हैं जिससे वह जहाज़ के फ़र्श पर गिरती है। देखते हैं कि त्वरण 9.8 m/sec^2 के बराबर है। अंतर्ग्रहीय यान के त्वरण नापनेवाले उपकरणों के पाठ्यांक भी इसी परिणाम के समान हैं। अंतर्ग्रहीय यान उसी त्वरण से ऊपर जा रहा है, जिससे पिंड उड्डीयमान् प्रयोगशाला के फ़र्श पर गिरते हैं।

मगर उड्डीयमान् प्रयोगशाला में "ऊपर" या "नीचे" से क्या अभिप्राय है? पृथ्वी पर यह समझना तो आसान था क्योंकि वहां आकाश ऊपर था और पृथ्वी नीचे। और यहां? उड्डीयमान् प्रयोगशाला में "ऊपर" का मतलब – राकेट के त्वरण की दिशा है।

हमारे प्रेक्षणों के अभिप्राय को समझना मुश्किल नहीं है: हाथ से निकाली गयी गोली पर कोई भी बल प्रभाव नहीं डाल रहे हैं। गोली अपने जड़त्व से चलती है। राकेट गोली की अपेक्षा त्वरण से चल रहा है और हमें, राकेट में बैठे हुए, लगता है कि गोली राकेट के त्वरण की दिशा के विपरीत "गिर" रही है। अवश्य, गोली की इस "गिरावट" का त्वरण राकेट के वास्तविक त्वरण के बराबर होगा। यह भी स्पष्ट है कि राकेट में सब पिंड एक ही त्वरण से गिरेंगे।

ऊपरलिखित से हम एक रोचक परिणाम निकाल सकते हैं। अगर कोई राकेट त्वरित गति से चलता है तो उसमें पिंड "भार ग्रहण" करने लगते हैं। इस स्थिति में "आकर्षण बल" राकेट के त्वरण की दिशा के विपरीत दिशा में लगा होता है, और स्वतन्त्र रूप से "गिरते" पिंडों का त्वरण



चित्र 19

राकेट के जेट-इंजन के त्वरण के बराबर होता है। सबसे अनोखी बात तो यह है कि हम व्याव्हारिक तौर पर किसी तंत्र की त्वरित गति और उसके गुरुत्व बल के बीच अन्तर नहीं बता सकते हैं। * अंतरिक्ष यान में, जिसकी खिड़कियां बन्द हैं, बैठे हुए हम यह नहीं जान सकते कि वह पृथ्वी पर विराम स्थिति में है या 9.8 मीटर/सेकण्ड^2 के त्वरण से चल रहा है। गुरुत्व बल की क्रिया और त्वरण के आपस में बराबर होने को ही भौतिक विज्ञान में तुल्यता-नियम कहते हैं।

यह नियम, जैसा कि हमें आगे दिये अनेक उदाहरणों से पता चलेगा, बहुत से प्रश्नों को हल करने में हमारी सहायता करता है। ऐसा करने के लिए वास्तविक बलों में त्वरित गतिवाले तन्त्रों में मौजूद आभासी गुरुत्व-बल जोड़ना होता है।

पहला उदाहरण है लिफ़्ट। एक तुला और बाटों को लेकर हम लिफ़्ट में ऊपर जाते हैं। ऊपर जाते समय हम तुला की सूई को देखेंगे, जिसमें एक किलोग्राम का बाट रखा हुआ है (देखिए चित्र 19)। लिफ़्ट ऊपर की ओर जाने लगी है; हम देखते हैं कि तुला की सूई अब पहले से ज्यादा भार दिखाती है, मानो बाट का भार एक किलोग्राम से ज्यादा हो गया हो। तुल्यता-नियम से इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। जब लिफ़्ट

---

* केवल व्याव्हारिक तौर पर। सिद्धान्तः अन्तर तो है। पृथ्वी पर गुरुत्व बल पृत्वी के केद्र की तरफ़ अर्धव्यास के साथ-साथ प्रभाव डालते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि दो अलग-अलग बिन्दुओं पर त्वरण की दिशाएं एक-दूसरे के साथ कोई कोण बनाती हैं। त्वरित गति से चल रहे राकेट में गुरुत्व-बल की दिशाएं सभी बिन्दुओं पर एकदम समान्तर होती हैं। पृथ्वी पर त्वरण ऊंचाई पर भी निर्भर करता है। लेकिन त्वरित गति से चलने वाले राकेट में ऐसा नहीं होता है।

a त्वरण से ऊपर की ओर जाती है तो अतिरिक्त गुरुत्व-बल पैदा होता है, जो नीचे की ओर प्रभाव डालता है। चूंकि इस बल का त्वरण a है तो अतिरिक्त भार ma के बराबर होगा। इसका मतलब हुआ कि तुला की सुई जो भार बता रही है वह $mg+ma$ के बराबर है। त्वरण समाप्त हो जाता है और लिफ़्ट एकसमान गति से चलने लगती है; देखते क्या हैं कि सूई अब अपनी पहलेवाली जगह पर आ गयी है और फिर 1 kg · f भार दिखाती है। ऊपरी मंज़िल के करीब पहुंचने पर लिफ़्ट की गति धीमी हो जाती है। अब तुला की सूई कितना भार दिखाएगी? निस्संदेह, बाट का भार एक किलोग्राम से कम होगा। लिफ़्ट की गति धीमी होने पर त्वरण के वेक्टर की दिशा नीचे की ओर हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि अतिरिक्त आभासी गुरुत्व बल ऊपर की ओर लगा होता है यानी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल की दिशा के विपरीत होता है। यहां त्वरण a ऋणात्मक है इसलिए तुला की सूई जो वज़न बताएगी वह वास्तविक भार mg से कम होगा। जब लिफ़्ट रुक जाती है तो सूई अपनी पहलेवाली जगह पर आ जाती है। आइए, अब लिफ़्ट से नीचे आएं। लिफ़्ट का त्वरण बढ़ना शरू होता है, त्वरण-वेक्टर की दिशा नीचे की ओर होती है। इसका मतलब यह हुआ कि अतिरिक्त गुरुत्व-बल की दिशा ऊपर की ओर है। अब बाट का भार एक किलोग्राम से कम होगा। जब लिफ़्ट की गति एकसमान हो जाती है तो अतिरिक्त गुरुत्व-बल शून्य हो जाता है; और जब हम नीचे पहुंचने वाले होते हैं तो लिफ़्ट की गति धीमी हो जाती है और बाट का भार एक किलोग्राम से ज़्यादा हो जाएगा।

तेज़ गतिवाले लिफ़्ट से ऊपर जाते या नीचे आते समय जी कुछ मिचलाता है, इसका कारण भी भार में आया परिवर्तन ही होता है।

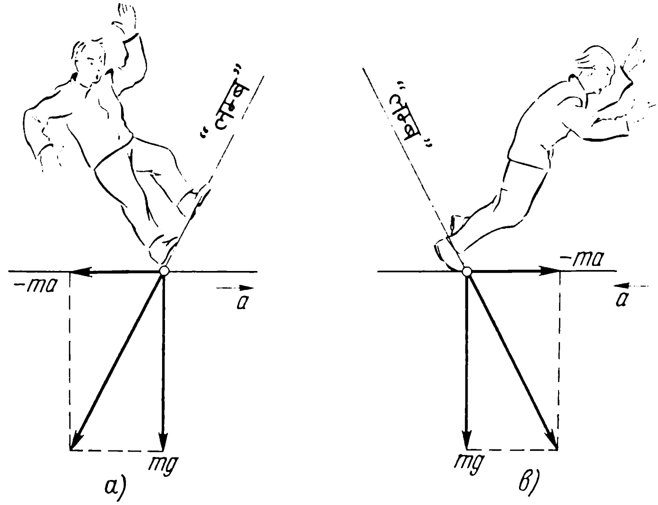
अगर लिफ़्ट त्वरण से नीचे आती है तो उसमें स्थित पिंड मानो हल्के हो जाते हैं; त्वरण जितना अधिक होगा भार उतना ही ज़्यादा कम होगा। अगर तन्त्र स्वतन्त्र रूप से नीचे आए तो क्या होगा? इसका उत्तर तो स्पष्ट है: इस स्थिति में पिंड लिफ़्ट के फ़र्श पर दबाव डालना बंद कर देंगे और अपना भार बिल्कुल खो देंगे। कारण यह है कि पिंड के स्वतन्त्र रूप से नीचे गिरते समय पैदा हुआ अतिरिक्त गुरुत्व बल और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल एक दूसरे के बराबर होंगे। ऐसी "लिफ़्ट" में तो हम आसानी से एक टन भार उठा सकते हैं।

इस अनुच्छेद के शुरू में हमने अंतर्ग्रहीय यान में, जिस पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है, पिंडों की "भारहीन" स्थिति का ज़िक्र किया था। अगर गति एकसमान और ऋजुरेखीय हो तो ऐसे जहाज़ में भार नहीं होगा। बिल्कुल ऐसा ही होता है जब कोई तन्त्र स्वतन्त्र रूप से गिरता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गुरुत्वाकर्षण बल की सीमा से बाहर जाना ज़रूरी नहीं है। हर किसी अंतर्ग्रहीय यान में, जिसका इंजन बन्द कर दिया गया हो, वज़न शून्य होगा। स्वतन्त्र रूप से गिरने पर भी ऐसे तन्त्रों में वज़न शून्य हो जाता है। तुल्यता-नियम से परिणाम निकलता है (देखिए पृष्ठ ६४ पर टिप्पणी) कि गुरुत्व-बल की प्रभाव सीमा से दूर एकसमान ऋजुरेखीय गति से चल रहा निर्देश तंत्र और वह निर्देश तंत्र, जिसमें गुरुत्व-बल के प्रभाव से पिंड स्वतंत्र रूप से नीचे आता है, लगभग समान होते हैं। पहले तंत्र में भार होता ही नहीं, और दूसरे में वज़न "नीचे की ओर", "ऊपर से डाले जानेवाले भार" से संतुलित होता है। इन दोनों तंत्रों में हम कोई अन्तर नहीं पाते हैं।

पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह में "वज़न शून्य" के बराबर तब होता है जब वह कक्ष में आ जाता है और राकेट के बन्द करने पर अपनी गति शुरू करता है।

सबसे पहले अंतरिक्ष यात्रा पर लाइका नाम के कुत्ते को भेजा गया था, और इसके शीघ्र ही बाद मनुष्य ने भी अंतरिक्ष यान में "भारहीन" स्थिति में रहना सीख लिया। अंतरिक्ष में जानेवाला सबसे पहला यात्री सोवियत नागरिक यूरी अ० गगारिन था।

यह कहना गलत होगा कि अंतरिक्ष यान का जीवन साधारण जीवन की तरह ही होता है। अंतरिक्ष यान में उन सब चीज़ों को, जो गुरुत्व बल होने पर अपनी जगह पर टिकी रहती है, अपने काबू में रखने के लिए काफ़ी दिमाग लगाना पड़ा। उदाहरण के लिए, क्या बोतल में से पानी को गिलास में उंडेल सकते हैं? गुरुत्व बल के प्रभाव से पानी तो "नीचे" की ओर बहता है। अगर चुल्हे पर पानी गर्म ही नहीं किया जा सकता तो क्या खाना पकाया जा सकता है? (गर्म पानी ठंडे से मिलेगा ही नहीं।) कागज़ पर पेंसिल से कैसे लिखेंगे, जबकि पेंसिल से मेज़ को ज़रा-सा भी धक्का लगने पर लिखनेवाला एक तरफ़ जा गिर सकता है। न माचिस, न गैस, न चुल्हा जलेंगे चूंकि दग्ध गैसें ऊपर उठेंगी ही नहीं (ऊपर



चित्र 20

ना है ही नहीं) और दहन के वास्ते आक्सीजन को आने नहीं देंगी। यह भी सोचना पड़ा कि मनुष्य के शरीर में होनेवाली प्राकृतिक प्रक्रियाओं को ऐसी स्थिति में कैसे सहज बनाया जाए, चूंकि ये प्रक्रियाएं भी तो पृथ्वी के गुरुत्व बल की "आदी" होती हैं।

आइए, अब देखें कि त्वरित गति से चलती बस या ट्राम में कैसी भौतिक घटनाएं हमें देखने को मिलेंगी। यह उदाहरण ऊपरलिखित उदाहरण से निम्नलिखित ढंग से भिन्न है। लिफ़्ट के उदाहरण में अतिरिक्त भार और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण एक ही रेखा पर निर्देशित थे। जब ट्राम का वेग कम या ज़्यादा होता है तो अतिरिक्त गुरुत्व बल पृथ्वी के आकर्षण बल के ऊर्ध्वाधर होता है। इसका भी यात्री पर अपनी ही तरह का असर पड़ता है, हालांकि उसका मनुष्य आदी हो चुका है। अगर ट्राम का वेग बढ़ता है तो अतिरिक्त बल उत्पन्न होता है जिसकी दिशा ट्राम की गति की दिशा के विपरीत होती है। आइए, इस बल को पृथ्वी के आकर्षण बल में जोड़ दें। कुल मिलाकर, ट्राम में बैठे यात्री पर एक बल लगेगा, जो गति की दिशा के साथ अधिक कोण बनाता होगा। ट्राम में सामने की तरफ़ मुंह कर बैठे हुए हम प्रायः महसूस करते हैं कि हमारा धड़ थोड़ा

पीछे की तरफ़ झुक गया है। गिरने से बचने के लिए, हमें सीधा खड़ा होना चाहिए जैसा कि चित्र 20,a में दिखाया गया है। हमारी "ऊर्ध्वाधर-रेखा" तिरछी है। वह गति की दिशा से एक न्यून कोण बनाती है। अगर मनुष्य किसी चीज़ का सहारा लिए बिना खड़ा है तो वह अवश्य ही पीछे की ओर गिरेगा।

आख़िरकार ट्राम की गति एकसमान हो जाती है और तब हम आराम से खड़े हो सकते हैं। लेकिन शीघ्र ही ट्राम का अगला स्टाप निकट आ जाता है और चालक ट्राम की गति धीमी करता है। हमारी "ऊर्ध्वाधर-रेखा" फिर झुक जाती है। अब उसकी दिशा, जैसा कि चित्र 20,b में दिखाया गया है, वैसी होगी और गति की दिशा के साथ अधिक कोण बनाएगी। गिरने से बचने के लिए यात्री को अब पीछे झुकना होगा। मगर वह अधिक देर ऐसी दशा में नहीं रहता। ट्राम रुक जाती है, गति का कम होना समाप्त हो जाता है और "ऊर्ध्वाधर-रेखा" अपनी पहली स्थिति में आ जाती है। बदन की स्थिति फिर बदलने की ज़रूरत पड़ती है। अपने ऐसे अनुभवों को ज़रा याद तो कीजिए। यह सच है न कि ब्रेक लगने पर आपको ऐसा लगता है मानो किसी ने पीछे से धक्का दिया हो (ऊर्ध्वाधर-रेखा पीठ के पीछे होती है)। आप सीधे खड़े होने की कोशिश करते हैं लेकिन इतने में ट्राम रुक जाती है – ऊर्ध्वाधर-रेखा आपके आगे होगी इसीलिए ऐसा लगेगा जैसे किसी ने आपके सीने में घूंसा दिया हो।

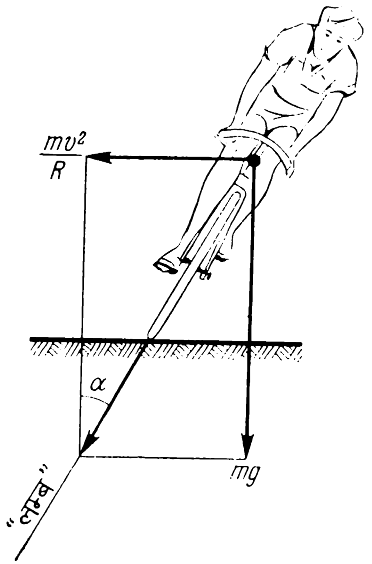
ऐसा तब भी होता है जब ट्राम मोड़ काटती है। यह तो हम जानते ही हैं कि एकसमान वेग के साथ हो रही वृत्ताकार गति त्वरित होती है। त्वरण v^2/R उतना ही ज़्यादा होगा जितना अधिक ट्राम का वेग और जितना कम वक्रता त्रिज्या R होगा। ऐसी गति का त्वरण त्रिज्या के साथ-साथ केन्द्र की ओर दिष्ट होगा। लेकिन यह त्वरण अतिरिक्त गुरुत्व बल, जो केन्द्र से बाहर की ओर दिष्ट होता है, के बराबर होगा। इसका मतलब यह हुआ कि ट्राम जब मोड़ काटती है तो उसमें बैठे यात्री पर mv^2/R अतिरिक्त बल का प्रभाव पड़ता है जो उसे वक्रता की बाह्य सतह की ओर धकेलता है। अरीय (रेडियल) बल mv^2/R अपकेन्द्र बल कहलाता है। इसी बल के बारे में हमने कुछ पहले यानी पृष्ट ६४ पर चर्चा की थी लेकिन वहां हमारा दृष्टिकोण इससे कुछ भिन्न था।

मोड़ काट रही ट्राम या बस पर प्रभाव डाल रहा अपकेन्द्री बल केवल

कुछ मुश्किलों का कारण हो सकता है। इस उदाहरण में mv^2/R बल बड़ा नहीं है। लेकिन मोड़ काटते समय अगर ट्राम की रफ़्तार तेज हो तो अपकेन्द्री बल बहुत बड़ा हो सकता है और ट्राम में बैठे यात्रियों के जीवन के लिए एक ख़तरा भी बन सकता है। mv^2/R के विशाल परिमाणों का अनुभव हवाई जहाज़-चालकों को तब होता है जब जहाज़ कैंची-मोड़ काटता या कलाबाज़ी लगाता है। ऐसा करते समय पैदा होनेवाला अपकेन्द्री बल चालक को उसकी कुर्सी से भींच देता है। वक्रता त्रिज्या जितना कम होगा उतना ही अधिक वह अतिरिक्त बल होगा जिससे चालक अपनी कुर्सी से भींच जाता है। अगर यह बल अत्यधिक बड़ा है तो मनुष्य का बदन "तार-तार" हो जाएगा—आप जानते ही हैं कि शरीर के ऊतकों की मज़बूती तो सीमित ही होती है, तथा वे हर कोई बल को सहन नहीं कर सकते हैं।

मनुष्य अपने जीवन को ख़तरे में डाले बिना कितना "भारी" हो सकता है? यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य पर यह बल कितनी देर तक प्रभाव डालता है। अगर मनुष्य को इस बल के प्रभाव को एक सेकण्ड के बहुत छोटे से हिस्से के बराबर समय के लिए ही सहना पड़ता है तो मनष्य $7-9g$ अर्थात् $8-10$ गुना अधिक बल सह सकता है। विमान चालक 10 सेकण्ड तक $3-5g$ के बराबर बल सह सकता है। अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए यह जानना ज़रूरी होता है कि वे दसियों मिनटों तक, या घंटों तक ज़्यादा से ज़्यादा कितना अतिभार सह सकते हैं। इन स्थितियों में सम्भवतय: आतिभार काफ़ी कम होना चाहिए।

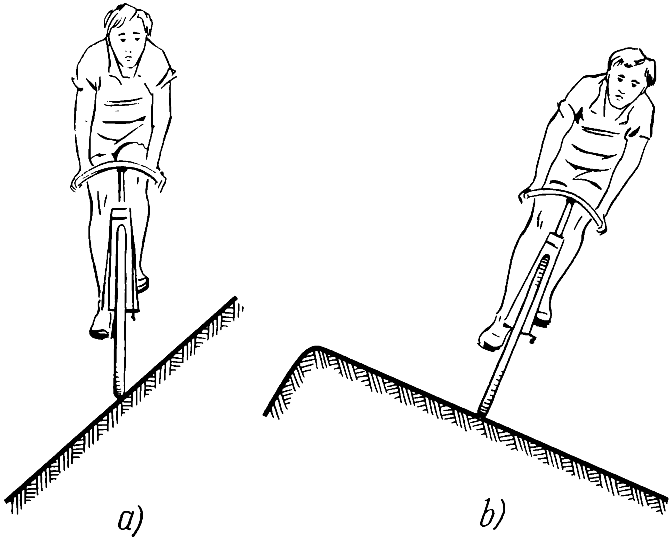
आइए, अब उन कलाबाज़ियों के लिए वक्रता त्रिज्या मालूम करें, जिन्हें विमान चालक अपने जीवन को संकट में डाले बिना भिन्न-भिन्न वेगों पर लगा सकते हैं। इसके लिए हम एक औसत अंक $4g$ लेते हैं। यह त्वरण का परिमाण है यानी $\frac{v^2}{R}=4g$ अथवा $R=\frac{v^2}{4g}$। अगर वेग 360 किलोमीटर प्रति घंटा या 100 मीटर प्रति सेकण्ड है तो कलाबाज़ी का वक्रता त्रिज्या 250 मीटर होगा; अगर विमान इससे चार गुना तेज़ यानी 1440 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से (वर्तमान जेट विमान तो इससे भी तेज़ रफ़्तार से उड़ानें भरते हैं) उड़ता है तो कलाबाज़ी का वक्रता त्रिज्या 16 गुना अधिक होना चाहिए। कलाबाज़ी का कम-से-कम वक्रता त्रिज्या 4 किलोमीटर के बराबर होगा।



चित्र 21

अब हम परिवहन के सब से साधारण साधन – साइकिल – का उदाहरण लेंगे। यह तो हर किसी ने देखा है कि मोड़ पर साइकिल सवार थोड़ा-सा झुक जाता है। आइए, अब साइकिल-सवार से अनुरोध करें कि वह v वेग से R त्रिज्या के बराबर एक वृत्त बनाए यानी v^2/R त्वरण से चले जो इस वृत्त के केन्द्र की ओर दिष्ट हो। ऐसी स्थिति में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के अलावा एक और अतिरिक्त बल यानी अपकेन्द्र बल भी साइकिल- सवार पर लगेगा, जो वृत्त के केन्द्र से बाहर की तरफ़ क्षैतिजतः लगा हुआ होगा। चित्र 21 में ये बल और उनका योग दिखाया गया है। स्पष्ट है कि साइकिल-सवार को अपने आप को "उदग्र स्थिति" में रखना पड़ेगा, अन्यथा वह गिर जाएगा। लेकिन उसका ऊर्ध्व पृथ्वी के ऊर्ध्व से नहीं मिलता है। चित्र से स्पष्ट है कि वेक्टर mv^2/R तथा mg एक समकोण त्रिभुज की भुजाएं हैं। कोण α के सामनेवाली भुजा और उसकी संलग्न भुजा के अनुपात को त्रिकोणमिति में कोण α की स्पर्शज्या (टैन्जैंट) कहते हैं। इस त्रिभुज से हम पाते हैं $\tan\alpha = \frac{v^2}{Rg}$; द्रव्यमान तुल्यता नियम के अनुसार कम हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि साइकिल-सवार के झुकाव का कोण उसके द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता है। सवार चाहे मोटा हो या पतला दोनों को एक जैसा ही झुकना पड़ेगा। सूत्र से और चित्र में दिखाए गए त्रिभुज से झुकाव का साइकिल के वेग (वेग के बढ़ने से झुकाव भी बढ़ जाता है) और वक्रता त्रिज्या (त्रिज्या कम होने पर झुकाव बढ़ जाता है) से संबंध दिखाते हैं।

यहां हमने यह देखा है कि साइकिल-सवार का ऊर्ध्व पृथ्वी के ऊर्ध्व



चित्र 22

ग नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में साइकिल-सवार क्या अनुभव करेगा? यह जानने के लिए हम चित्र 21 को उलटा देते हैं। अब सड़क एक पहाड़ की ढलान जैसी लगती है (देखिए चित्र 22,a) और हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि अगर सड़क और साइकिल के टायरों के बीच काफ़ी घर्षण नहीं है (सड़क गीली है) तो साइकिल फ़िसल सकती है और बहुत तीक्ष्ण मोड़ काटते समय सवार गिर जाएगा।

गिरने से बचने के लिए तीक्ष्ण मोड़ों पर सड़क को थोड़ा-सा ढलवां अर्थात् साइकिल-सवार के लिए क्षैतिज बनाते हैं जैसा कि चित्र 22,b में दिखाया गया है। ऐसा करने से फ़िसलन काफ़ी कम, या बिलकुल ही समाप्त की जा सकती है। साइकिल या कार दौड़ के लिए बनाये मार्ग में मोड़ इन सब बातों को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं।

घूर्णन

आइए, अब हम घूर्णन-तन्त्रों का अध्ययन करें। अपने अक्ष पर चक्कर काटनेवाले ऐसे एक तंत्र की गति उस द्वारा एक सेकण्ड में लगाये चक्करों

की संख्या से मालूम की जाती है। निस्सन्देह, घूर्णन ग्रक्ष की दिशा भी मालूम होनी चाहिए।

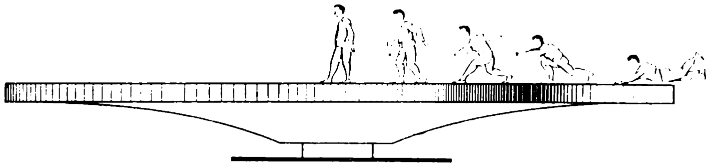
घूर्णी तन्त्रों में जीवन की विशेषताएं जानने ग्रौर समझने के लिए, ग्राइए, हम एक "हंसी के झूले" पर बैठें। यह एक साधारण झूला है। केवल एक चिकनी चक्रिका, जिसका व्यास कुछेक मीटर के बराबर होता है, तेज़ी से घूमती है। इच्छुकों को इस पर बैठने को तथा ग्रपने ग्राप को गिरने न देने की कोशिश करने के लिए कहते हैं। भौतिक विज्ञान का ज्ञान न रखनेवाले भी जल्द ही ग्रपनी सफलता का रहस्य जान लेते हैं: चक्रिका के केंद्र पर बैठना चाहिए, चक्रिका के केंद्र से जितनी ज्यादा दूर बैठेंगे, उतनी ही ग्रधिक ग्रपने ग्राप को सम्भालने में कठिनाई होगी।

ऐसी चक्रिका एक ग्रजड़त्वीय-तंत्र है जिसकी कई विशेषताएं हैं। चक्रिका पर बंधी हर कोई चीज R के बराबर ग्रर्धव्यासवाले वक्र में v वेग से चलती है, यानी उसका त्वरण v^2/R है। हम यह जानते हैं कि यहां, ग्रजड़त्वीय प्रेक्षक के दृष्टिकोण से mv^2/R के बराबर ग्रतिरिक्त गुरुत्व बल का ग्रस्तित्व है जिसकी दिशा ग्रर्धव्यास के साथ-साथ केन्द्र से बाहर की ग्रोर है। इस चक्रिका के किसी भी बिन्दु पर यह ग्ररीय गुरुत्व बल प्रभाव डालता है ग्रौर हर बिन्दु पर v^2/R के बराबर ग्ररीय त्वरण पैदा करता है। एक ही वृत्त पर स्थित बिन्दुग्रों का त्वरण एक-सा ही होगा। लेकिन ग्रगर वे विभन्न वृत्तों पर स्थित हों तो क्या होगा? इसका उत्तर देने की जल्दी न कीजिए। सूत्र v^2/R के ग्रनुसार बिन्दु की चक्रिका के केन्द्र से दूरी जितनी कम होगी उतना ही ज़्यादा उसका त्वरण होगा। ऐसा उत्तर ग़लत है। बिन्दु केन्द्र से जितनी दूर होगा उतना ही उसका वेग ग्रधिक होगा। वास्तव में, ग्रगर चक्रिका द्वारा एक सेकण्ड में लगाये गये चक्करों की संख्या को n से व्यक्त करें तो उसके केन्द्र से R दूरी पर स्थित बिन्दु द्वारा एक सेकण्ड में तय की गयी दूरी, यानी उसका वेग, $2\pi Rn$ के बराबर होगी।

किसी बिन्दु का वेग केन्द्र से उसकी दूरी के ग्रनुक्रमानुपात होता है। ग्रब त्वरण के सूत्र को ऐसे लिखा जा सकता है:

$$a = 4\pi^2 n^2 R$$

चूंकि चक्रिका का हर बिन्दु एक सेकण्ड में एकसमान चक्कर लगाता है तो हम इस परिमाण पर पहुचते हैं: घूर्णी चक्रिका पर प्रभाव डालनेवाला



चित्र 23

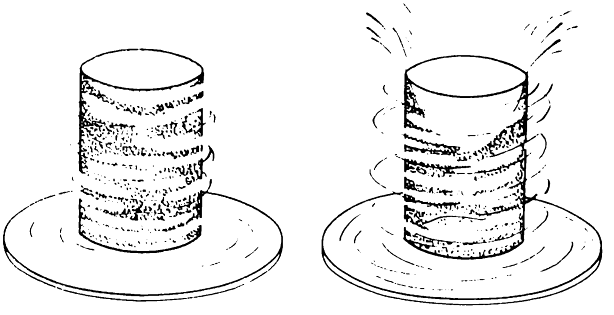
"अरीय गुरुत्व बल" का त्वरण बिन्दु की केन्द्र से दूरी के अनुक्रमानुपात होता है।

इस रोचक अजड़त्वीय तंत्र में गुरुत्व बल अलग-अलग वृत्तों के लिए अलग-अलग है। अर्थात् केन्द्र से विभिन्न दूरियों पर स्थित पिंडों की "ऊर्ध्वाधर रेखाओं" की दिशाएं भी अलग-अलग होंगी। पृथ्वी का गुरुत्व बल, निस्सन्देह, चक्रिका के सब बिन्दुओं पर एकसमान है। लेकिन अतिरिक्त अरीय गुरुत्व को व्यक्त करनेवाले वेक्टर की लम्बाई उतनी ही अधिक होती जाती है जितना हम केन्द्र से दूर होते जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आयतों के विकर्ण पृथ्वी की ऊर्ध्वाधर रेखा से और अधिक दूर होते जाते हैं।

अगर "हंसी के झूले" के विभिन्न बिन्दुओं पर से फिसलने वाले मनुष्यों के अनुभवों को क्रमबद्ध किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि चक्रिका के केन्द्र से दूरी जितनी अधिक होती जाती है उतना ही मनुष्य को अपने आपको सम्भालना मुश्किल होता जाता है।

क्या ऐसे जड़त्वीय तंत्र के लिए भी आनत सड़क की तरह कुछ सोचा नहीं जा सकता है? क्यों नहीं, इसके लिए हमें चक्रिका की सतह को ऐसा बनाना पड़ेगा कि उसके हर बिन्दु पर गुरुत्व का पूर्ण बल सतह पर लम्ब हो। ऐसी सतह का आकार मालूम किया जा सकता है। ऐसे आकार को परवलयज (पैराबोलॉइड) कहते हैं। इसे यह नाम बिना सोच-समझ के नहीं दिया गया है: परवलयज की हर खड़ी काट से परवलय मिलता है यानी एक वक्र रेखा मिलती है जिसके साथ-साथ पिंड गिरता है। पर परवलय को उसके अक्ष के गिर्द घुमाने से परवलयज बनता है।

ऐसी सतह बनाना आसान है, अगर जल से भरे बर्तन को तेज़ी से घुमाया जाए। परिक्रामी द्रव्य की सतह ही परवलयज है। जल के कण उस



चित्र 24

क्षण सरकना बद कर देंगे, जब हर कण को सतह पर दबानेवाला बल सतह के लम्ब हो जायगा। घूर्णन की हर गति के लिए अपना ही परवलयज होता है (देखिए चित्र 24)।

अगर एक ठोस परवलयज बनाया जाए तो उसके गुण को स्पष्टतः बताना सम्भव होगा। अगर किसी एक छोटी-सी गोली को किसी निश्चित वेग से घूर्णन कर रहे परवलयज के किसी बिन्दु पर रखा जाए तो गेंद विराम-अवस्था में ही रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि उस पर लगा बल सतह के अभिलम्ब होगा। या दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि घूर्णी परवलयज की सतह क्षैतिज सतह की तरह ही काम करती है। ऐसी सतह पर वैसे ही चला जा सकता है जैसा कि पृथ्वी पर, और गिरने का कोई ख़तरा नहीं होता है। लेकिन, यहां यह बता दें कि चलते समय अभिलम्ब की दिशा बदलेगी।

अपकेन्द्री-परिघटनाओं का मशीनों में अक्सर उपयोग किया जाता है। अपकेन्द्रण यंत्र की बनावट भी इन्हीं परिघटनाओं पर ही आधारित है।

अपकेन्द्रण यंत्र अपने अक्ष पर तेज़ी से घूर्णन करता हुआ एक पात्र होता है। आइए, ज़रा देखें कि पूरी तरह जल से भरे एक ऐसे पात्र में विभिन्न चीज़ें डालने पर क्या होगा।

आइए, उसमें धातु की बनी एक गोली डालें—वह तले पर जा बैठेगी, लेकिन हमारी अभिलम्ब रेखा के साथ नहीं बल्कि हर समय घूर्णन अक्ष से दूर होती हुई पात्र की दीवार के पास रुक जाएगी। आइए, अब कॉर्क का

बना एक गेंद फेंकें – वह, पहले उदाहरण के विपरीत, तुरन्त घूर्णन ग्रक्ष की दिशा में घूमने लगेगा ग्रौर वहां ही टिक जाएगा।

ग्रगर इसी नमूने के ग्रपकेन्द्रण यंत्र के पात्र का व्यास ग्रधिक हो तो हम देखते हैं कि जैसे-जैसे गेंद केन्द्र से दूर होता जाता है वैसे-वैसे त्वरण तेज़ी से बढ़ता जाता है।

ये परिघटनाएं तो ग्रासानी से हमने समझ ली हैं। ग्रपकेन्द्रण यंत्र में एक ग्रतिरिक्त ग्ररीय गुरुत्व होता है। ग्रगर ग्रपकेन्द्रण यंत्र काफ़ी तेज़ी से घूमता है तो उसका "तला" होता है – पात्र की दीवारें। धातु का बना गेंद जल में डूब जाता है, जबकि कॉर्क का बना गेंद "तैरता" है। पानी में "गिरनेवाला" पिंड घूर्णन ग्रक्ष से जितनी ग्रधिक दूरी पर होगा उतना ही ज़्यादा वह भारी हो जायेगा।

ग्राधुनिक ग्रपकेन्द्रण यंत्रों की गति 60000 चक्कर प्रति मिनट या 10^3 चक्कर प्रति सेकण्ड होती है। घूर्णन ग्रक्ष से 10 सेंटीमीटर की दूरी पर ग्ररीय गुरुत्व बल का त्वरण

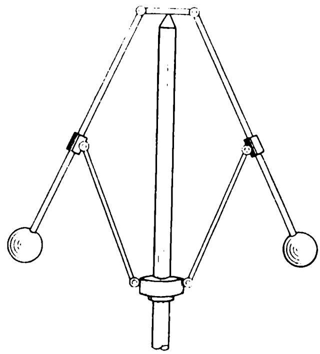
$$40 \times 10^6 \times 0.1 = 4 \times 10^6 \text{ m/sec}^2,$$

यानी पृथ्वी के त्वरण से 400000 गुना ग्रधिक होगा।

यह स्पष्ट है कि ऐसी मशीनों में पृथ्वी के गुरुत्व की उपेक्षा की जा सकती है ग्रौर हमें वास्तव में ही यह मानने का हक है कि पात्र की दीवारें ग्रपकेन्द्रण यंत्र का "तला" हैं।

उपरलिखित से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रपकेन्द्रण यंत्र का कहां-कहां उपयोग किया जा सकता है। यदि हम किसी मिश्रण में से भारी ग्रौर हल्के कणों को ग्रलग करना चाहें तो ग्रपकेन्द्रण यंत्र का प्रयोग करना ही ठीक होगा। सभी ने यह वाक्य सुना होगा कि "गंदला पानी निथर गया है"। ग्रगर गंदले जल को काफ़ी देर तक किसी पात्र में रहने दिया जाय तो गन्दगी (जो प्रायः पानी से भारी होती है) पात्र के तल पर बैठ जाती है। मगर निथारने की क्रिया को पूरी होने में कई बार महीने भी लग जाते हैं, लेकिन एक ग्रच्छे ग्रपकेन्द्रण यंत्र का उपयोग कर गंदले जल को थोड़े ही समय में साफ किया जा सकता है।

एक मिनट में दसियों हज़ारों चक्र लगानेवाले ग्रपकेन्द्रण यंत्रों का केवल गंदले जल में से ही गंदगी के ग्रति सूक्ष्म कणों को निकालने के लिए



चित्र 25

ही नहीं, बल्कि श्यान (विस्कासी) द्रव्यों को भी साफ़ करने के वास्ते उपयोग किया जाता है।

रसायन उद्योग में अपकेन्द्रण यंत्रों का घोलों में से उनके स्फटिक निकालने, लवणों को निर्जल करने और वार्निशों को साफ करने के लिए उपयोग किया जाता है। वे खाद्य उद्योग में शीरे (मोलैसेज) में से चीनी निकालने के काम भी आते हैं।

अपकेन्द्रण यंत्रों को, जिनका इस्तेमाल बहुत ज़्यादा द्रव में से ठोस या द्रव अपद्रव्यों को अलग करने के लिए किया जाता है, पृथक्कारी कहते हैं। इनका उपयोग अधिकतर दूध में से मक्खन निकालने के लिए किया जाता है। ऐसे पृथक्कारी एक मिनट में 2 से 6 हज़ार चक्कर लगाते हैं और उनके ढोल का व्यास 5 मीटर तक का होता है।

धातुकर्म में अपकेन्द्री ढलाई का अधिकतर उपयोग किया जाता है। एक मिनट में 300-400 परिक्रमण कर रहे पात्र में जब गलित धातु गिरती है तो वह परिक्रामी पात्र की बाहरी दीवारों पर पर्याप्त दाब से चिपक जाती है। इस विधि से ही धातु की पाइपें बनाई जाती हैं। इस तरीक़े से बनाई गई पाइपें अच्छी कोटि की होती हैं, उनकी मोटाई एक-समान होती है तथा उनमें दरारें या कोटर नहीं होते हैं।

अपकेन्द्र बल के उपयोग का हम एक और उदाहरण पेश करते हैं। चित्र 25 में एक साधारण उपकरण दिखाया गया है जिसका मशीन के घूमते हुए हिस्सों के परिक्रमणों की संख्या को कम करने या बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। इसे अपकेन्द्री नियन्त्रक कहते हैं। घूर्णन गति जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे-वैसे अपकेन्द्री बल भी बढ़ता जाता है और नियन्त्रक के गोले अक्ष से दूर होते जाते हैं। गोलों से जुड़ी हुई छड़ियां दूर हट जाती हैं, और वे एक विशेष स्थिति पर पहुंचकर किसी विद्युत् सम्पर्क को काट सकती हैं, और भाप के इंजन में, उदाहरण के तौर पर, वे अधिक वाष्प को बाहर फेंकनेवाले वाल्वों को खोल सकते हैं। ऐसा होने पर घूर्णन की

गति कम हो जाती है और छड़ियां फिर अपनी पहलेवाली स्थिति में आ जाती है।

आइए, अब हम एक रोचक प्रयोग करें। विद्युत् मोटर के अक्ष पर गत्ते का एक वृत्त लगाकर मोटर को चालू करते हैं और घूमते हुए गत्ते के वृत्त के पास लकड़ी का एक टुकड़ा लाते हैं। देखते क्या हैं – लकड़ी का यह टुकड़ा, जो काफ़ी मोटा है, आसानी से कट रहा है मानो लोहे की आरी उसे काट रही हो।

अगर इसी लकड़ी के टुकड़े को गत्ते से, यानी गत्ते को आरी मानकर, काटने की कोशिश करें तो हमारी इस चेष्ठा पर लोग केवल हंस देंगे। क्या कारण है कि तेज़ गति से घूमता हुआ गत्ता लकड़ी को काट देता है? ऐसे गत्ते की परिधि पर स्थिति कणों पर एक बहुत बड़ा अपकेन्द्री बल लगा होता है। पार्श्व बल, जो गत्ते को टेढ़ा कर सकते हैं, अपकेन्द्री बल की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। तेज गति से घूमता हुआ गत्ता अपने समतल को अपरिवर्तित रखकर ही लकड़ी के टुकड़े को काटता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अपकेन्द्री बल, जो पृथ्वी के घूर्णन के कारण उत्पन्न होता है, पृथ्वी के अलग-अलग अक्षान्तरों पर पिंड के भार में अन्तर लाता है।

भूमध्य रेखा पर पिंड का भार कम और ध्रुवों पर अधिक होता है। इसके दो कारण हैं। पृथ्वी की सतह पर पड़े पिंड उसके अक्ष से अलग-अलग दूरी पर होते हैं; यह दूरी उस जगह के अक्षान्तर पर निर्भर करती है जहां पिंड स्थित होता है। यह बात तो हमें मालूम ही है कि ध्रुव से भूमध्य रेखा की ओर जाने पर यह दूरी अधिक होती जाती है। ध्रुव पर रखा पिंड पृथ्वी के अक्ष पर स्थित होता है, अर्थात्: $R=O$, इसीलिए अपकेन्द्री त्वरण $a=4\pi^2n^2R$ भी शून्य के बराबर होगा। इसके विपरीत भूमध्य रेखा पर यह त्वरण अधिकतम होता है। यहां अपकेन्द्री बल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल को कम कर देता है। इसीलिए भूमध्य रेखा पर पिंड का भार निम्नतम होगा।

अगर पृथ्वी गोलाकार होती तो ध्रुव से भूमध्य रेखा पर लाये गये एक किलोग्राम के बाट के भार में सिर्फ़ 3.5 ग्राम का अन्तर ही आता। यह निम्नलिखित सूत्र

$$4\pi^2n^2Rm$$

में $n=1$ (24 घंटों में लगाया गया चक्कर), $R=6300$ किलोमीटर, $m=1000$ ग्राम रखने पर ग्रासानी से मालूम किया जा सकता है। यहां केवल सब मात्रकों को सेकण्डों ग्रौर सेंटीमीटरों में व्यक्त करना मत भूलिए।

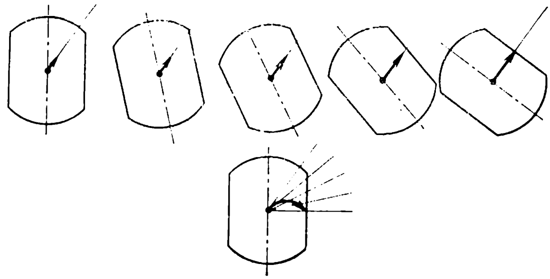
लेकिन वास्तव में एक किलोग्राम का बाट 3.5 ग्राम नहीं, बल्कि 5.3 ग्राम भार खोता है। इसका कारण यह है कि पृथ्वी गोलाकार नहीं, बल्कि एक चपटे गोले की तरह है, जिसे रेखागणित में दीर्घवृत्तज (ellipsoid) कहते हैं। ध्रुव से केन्द्र तक की दूरी पृथ्वी के भूमध्य-रेखावाले ग्रर्धव्यास से लगभग 1/300 गुना कम है।

पृथ्वी के ऐसे ग्राकार का कारण भी ग्रपकेन्द्री बल है। बात यह है कि यह बल पृथ्वी के हर कण पर प्रभाव डाल रहा है। प्राचीन काल में ग्रपकेन्द्री बल ने ही पृथ्वी को ऐसा चपटा बना दिया।

कोरिग्रॉलिस बल

घूमने वाले तन्त्रों के जगत की विशेषता गुरुत्व के ग्ररीय बलों पर ही समाप्त नहीं हो जाती। ग्राइए, ग्रब एक ग्रौर रोचक प्रभाव का ग्रध्ययन करें, जिसका सिद्धान्त सबसे पहले फ़्रांस के वैज्ञानिक कोरिग्रॉलिस ने 1835 में पेश किया था।

सबसे पहले हम ग्रपने से यह प्रश्न करते हैं: एक परिक्रामी प्रयोगशाला के दृष्टिकोण से ऋजुरेखीय गति कैसी लगती है? ऐसी एक प्रयोगशाला की योजना चित्र 26 में दिखाई गई है। केन्द्र में से गुज़रती हुई रेखा किसी पिंड के ऋजुरेखीय पथ को व्यक्त करती है। हम उस स्थिति का ग्रध्ययन करेंगे जब पिंड का पथ परिक्रामी प्रयोगशाला के केन्द्र से गुज़रता है। चक्रिका (डिस्क), जिसपर हमारी प्रयोगशाला स्थित है, एकसमान गति से परिक्रमण कर रही है। चित्र 26 में ऋजुरेखीय प्रक्षेप-पथ के सम्बन्ध में प्रयोगशाला की पांच स्थितियां दिखाई गई हैं। प्रयोगशाला ग्रौर ऋजुरेखीय प्रक्षेप-पथ की परस्पर स्थितियों को एक, दो, तीन, चार... ग्रादि सेकण्डों के बाद दिखाया गया है। ऊपर से देखने पर ज्ञात होता है कि प्रयोगशाला घड़ी की सूइयों की दिशा के विपरीत (वामावर्त) घूर्णन कर रही है।



चिग 26

एक, दो, तीन... ग्रादि सेकण्डों के बाद पिँड द्वारा तय की गयी दूरी के बराबर पथ-रेखा पर तीर लगाए गए हैं। हर सेकण्ड में पिंड एकसमान दूरी तय करता है, चूंकि, जैसा कि ऊपर कहा गया है, गति एकसमान ग्रौर ऋजुरेखीय है (स्थिर प्रेक्षक के दृष्टिकोण से)।

ग्रब ज़रा एक मिनट के लिए यह मान लीजिए कि गतिमात पिंड – हाल ही में रंगा ग्रौर डिस्क पर लुढ़कता हुग्रा एक गोला है। यह लुढ़कता हुग्रा गोला डिस्क पर कैसा चिन्ह छोड़ेगा? इस प्रश्न का उत्तर हमारी रचना से मिल जाता है। ग्रब पांचों स्थितियों में दिखाये गये तीरों को एक ही रेखा-चित्र में दिखाते ग्रौर उनके ग्रंत-बिन्दुग्रों को एक निष्कोण वक्र से मिलाते हैं। इस रचना को देखकर हमें कोई ग्राश्चर्य नहीं होता है: ऋजुरेखीय ग्रौर एकसमान गति से परिक्रमा करते हुए प्रेक्षक के दृष्टिकोण से वक्ररेखीय होगी। निम्नलिखित सिद्धान्त ग्रपनी ग्रोर हमारा ध्यान ग्राकर्षित करता है: घूर्णन करता हुग्रा पिंड ग्रपनी गति के दौरान केवल दाईं ग्रोर ही विचलित होता है। ग्रगर कल्पना करें कि चक्रिका दक्षिणावर्त्त दिशा में परिक्रमण कर रही है, ग्रौर पाठक से रेखाचित्र की रचना को दोहराने का ग्रनुरोध करें तो पता चलेगा कि इस उदाहरण में गतिमान् पिंड घूर्णन करते हुए प्रेक्षक के दृष्टिकोण से गति के दौरान बाईं ग्रोर विचलित होता है।

हम यह जानते हैं कि परिक्रामी तन्त्रों में ग्रपकेन्द्री बल प्रकट होता है। लेकिन इस बल का प्रभाव पथ को विचलित करने का कारण नहीं हो सकता है – यह बल तो ग्रर्धव्यास के साथ-साथ लगा होता है। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि परिक्रामी तन्त्रों में ग्रपकेन्द्री बल के ग्रलावा एक ग्रौर ग्रतिरिक्त बल उत्पन्न होता है जिसे कोरिग्रॉलिस बल कहते हैं।

तब प्रश्न यह उठता है कि इससे पहलेवाले उदाहरणों में कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव पर विचार क्यों नहीं किया गया ग्रौर केवल ग्रपकेन्द्री बल से ही हमने काम कैसे चला लिया? इसका कारण यह है कि ग्रभी तक हमने घूर्णन करते हुए प्रेक्षक के दृष्टिकोण से गति पर विचार नहीं किया था ग्रौर कोरिग्रॉलिस बल केवल इसी उदाहरण में ही प्रकट हुग्रा है। लेकिन उन पिंडों पर, जो घूर्णन करते तंत्र में विराम स्थिति में होते हैं, केवल ग्रपकेन्द्री बल ही प्रभाव डालता है। घूर्णन करती हुई प्रयोगशाला में रखी मेज़ को उसके फ़र्श पर पेच से कस रखा है – इसलिए उस पर सिर्फ़ ग्रपकेन्द्री बल ही प्रभाव डालता है। लेकिन उस गेंद पर, जो मेज़ से गिर जाता है ग्रौर घूर्णन करती हुई प्रयोगशाला के फ़र्श पर लुढ़कता है, ग्रपकेन्द्री बल के ग्रलावा कोरिग्रॉलिस बल भी प्रभाव डालता है।

कोरिग्रॉलिस बल का मान किन-किन परिमाणों पर निर्भर करता है? यह मान मालूम किया जा सकता है लेकिन इसके लिए बहुत जटिल परिकलनों की ज़रूरत है तथा हम उन्हें इस पुस्तक में पेश नहीं करेंगे। केवल यहां परिकलनों का परिमाण ही लिखेंगे।

ग्रपकेन्द्री बल के विपरीत, जिसका मान घूर्णन ग्रक्ष से दूरी पर निर्भर करता है, कोरिग्रॉलिस बल पिंड की स्थिति पर निर्भर नहीं करता है। यह बल न केवल पिंड के इस वेग के मान बल्कि घूर्णन ग्रक्ष के ग्रनुसार उसकी दिशा से मालूम किया जाता है। यदि कोई पिंड घूर्णन ग्रक्ष के साथ-साथ चलता है तो कोरिग्रॉलिस बल शून्य के बराबर होगा। वेग के वेक्टर ग्रौर घूर्णन ग्रक्ष के बीच कोण जितना ग्रधिक होगा उतना ही ग्रधिक कोरिग्रॉलिस बल होगा। इस बल का मान ग्रधिकतम तब होगा जब पिंड की गति घूर्णन ग्रक्ष के ग्रभिलम्ब होगी।

जैसा कि हमें ज्ञात है वेग के वेक्टर को कितने भी संघटकों में वियोजित किया जा सकता है ग्रौर इस प्रकार से उत्पन्न हुई दो गतिग्रों का, जिनमें पिंड एक ही समय भाग ले रहा है, ग्रलग-ग्रलग ग्रध्ययन कर सकते हैं।

ग्रगर पिंड के वेग को दो घटकों $v_{\parallel}$ ग्रौर $v_{\perp}$ में वियोजित किया जाए, जहां $v_{\parallel}$ ग्रौर $v_{\perp}$ घूर्णन ग्रक्ष के समान्तर ग्रौर ग्रभिलम्ब घटक हैं, तो पहले घटक पर कोरिग्रॉलिस बल का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। कोरिग्रॉलिस बल F_k का मान वेग के $v_{\perp}$ संघटक से मालूम किया जाता है। परिकलन से पता चलता है कि

$$F_k = 4\pi n v_{\perp} m$$

जहां m पिंड का द्रव्यमान, n परिक्रमी तन्त्र द्वारा एक सेकण्ड में लगाये गये चक्करों की संख्या है। इस सूत्र से पता चलता है कि कोरिऑलिस बल उतना अधिक होगा जितनी तेजी से तन्त्र घूर्णन करेगा और जितने अधिक वेग से पिंड चलेगा।

परिकलन से कोरिऑलिस बल की दिशा भी मालूम होती है। यह बल घूर्णन अक्ष और गति की दिशा के हमेशा अभिलम्ब होता है। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, यह बल उस तन्त्र में, जो घड़ी की सूइयों की दिशा के विपरीत घूर्णन कर रहा है, गति के दाईं ओर दिष्ट होगा।

पृथ्वी पर हो रही बहुत-सी दिलचस्प घटनाओं का उत्तर कोरिऑलिस बल के प्रभाव से दिया जा सकता है। पृथ्वी गेंद की तरह गोल है, न कि डिस्क (चक्रिका) की भांति चपटी। इसलिए कोरिऑलिस बलों के प्रभाव को मालूम करना बहुत कठिन है। ये बल पृथ्वी की सतह पर हो रही गति में और पृथ्वी पर गिरते हुए पिंड पर भी प्रभाव डालते हैं।

क्या पिंड एकदम "अभिलम्ब रूप" से गिरते हैं? पूरी तरह नहीं। केवल ध्रुव पर ही पिंड ऐन अभिलम्ब रूप से गिरता है। ध्रुव पर गिरते हुए पिंड की गति की दिशा और पृथ्वी के घूर्णन का अक्ष एक रेखा में होते हैं। इसलिए कोरिऑलिस बल शून्य के बराबर होता है। लेकिन भूमध्य-रेखा पर दूसरा ही दृश्य सामने आता है, यहां पिंड की गति की दिशा पृथ्वी के घूर्णन अक्ष के साथ समकोण बनाती है। यदि हम उत्तरी ध्रुव की ओर से देखें तो पृथ्वी का घूर्णन वामावर्त होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि पिंड को अपनी गति की दिशा से दाईं ओर अर्थात् पूर्व की ओर गिरना चाहिए। भूमध्य-रेखा पर पूर्व की ओर विचलन अधिकतम होता है और ध्रुवों के पास पहुचते हुए शून्य के बराबर हो जाता है।

आइए, अब भूमध्य-रेखा पर इस विचलन का परिमाण मालूम करें। चूंकि स्वतन्त्र रूप से गिरता हुआ पिंड एकसमान त्वरण से चलता है, इसलिए जितना वह पृथ्वी के निकट आता जाता है उतना ही कोरिऑलिस बल बढ़ता जाता है। इसलिए हम सन्निकट परिमाण ही लेंगे। अगर पिंड 80 मीटर की ऊंचाई से गिरता है, तो उसे पृथ्वी पर पहुंचने में 4 सेकण्ड लगेंगे (सूत्र $t=\sqrt{\frac{2h}{g}}$ के अनुसार) यानी गिरने का औसत वेग 20 मीटर प्रति सेकण्ड होगा।

वेग के इसी मान को कोरिऑलिस-त्वरण के सूत्र $4\pi nv$ में प्रतिस्थापित करेंगे। $n = 1$ दर्शाता है कि 24 घंटों में एक चक्कर लगाया गया है। 24 घंटों में 24×3600 सेकण्ड होते हैं यानी $n = \frac{1}{86400}$ चक्कर/सेकण्ड होगा। फलस्वरूप, कोरिऑलिस बल द्वारा उत्पन्न हुआ त्वरण $\frac{\pi}{1080}$ m/sec^2 के बराबर होगा। चार सेकण्डों में तय की गयी दूरी $\frac{1}{2} \times \frac{\pi}{1080} \times 4^2 = 2.3$ सेंटीमीटर के बराबर होगी। हमारे उदाहरण में पिंड इतने ही मान के बराबर पूर्व की ओर विचलित होगा। यदि परिकलन परिशुद्ध हों, जिनमें यह बात ध्यान मे रखी गई हो कि पिंड असमान गति से गिरता है, तो विचलन 3.1 सेंटीमीटर के बराबर होगा।

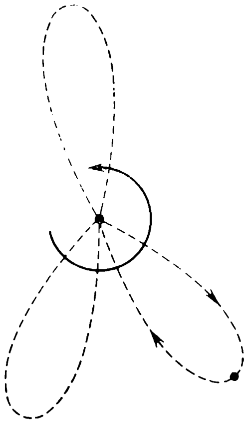
अगर स्वतंत्र रूप से गिरते हुए पिंड का विचलन भूमध्य-रेखा पर अधिकतम और ध्रुवों पर शून्य है तो कोरिऑलिस बल के प्रभाव से क्षैतिज समतल पर चलते पिंड में होनेवाले विचलन का दूसरा ही दृश्य होगा।

क्षैतिज समतल उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवों पर परिक्रामी चक्रिका से, जिसकी सहायता से हमने कोरिऑलिस बल का अध्ययन किया था, किसी भी तरह भिन्न नहीं होता है। ऐसे समतल पर चल रहा पिंड कोरिऑलिस बल के प्रभाव से उत्तरी ध्रुव पर गति की दिशा की दाईं ओर और दक्षिणी ध्रुव पर बाईं ओर विचलित होगा। पाठक बिना किसी मुश्किल के, कोरिऑलिस त्वरण के उसी सूत्र की सहायता से मालूम कर सकता है कि 500 m/sec के प्रारंभिक वेग से दागी गयी गोली क्षैतिज समतल में एक सेकण्ड में (500 मीटर दूरी तय करने में) अपने लक्ष्य से 3.5 सेंटीमीटर विचलित हो जाएगी।

लेकिन भूमध्य-रेखा पर क्षैतिज समतल में विचलन शून्य के बराबर क्यों होना चाहिए? बिना किसी ठोस प्रमाण के यह समझ में आ जाता है कि ऐसा ही होना चाहिए। पिंड उत्तरी ध्रुव पर गति की दिशा की दाईं ओर विचलित होता है, दक्षिणी ध्रुव पर बाईं ओर, तो दोनों ध्रुवों के बीच, अर्थात् भूमध्य-रेखा पर उसका विचलन शून्य के बराबर होगा।

आइए, ज़रा फ़ूको के लोलक वाले प्रयोग को याद करें। ध्रुव पर दोलन कर रहा ऐसा लोलक अपने दोलन के समतल को बनाए रखता है। पृथ्वी घूर्णन करती हुई लोलक के नीचे से निकल जाती है। फ़ूको प्रयोग के बारे

में ऐसा केवल नक्षत्र-प्रेक्षक ही कह सकता है। लेकिन पृथ्वी के साथ-साथ घूर्णन कर रहा प्रेक्षक कहेगा कि यह कोरिम्रॉलिस बल के कारण हो रहा है। वास्तव में, कोरिम्रॉलिस बल पृथ्वी के घूर्णन ग्रक्ष के ग्रौर लोलक की गति की दिशा के ग्रभिलम्ब होता है, या दूसरे शब्दों में कोरिम्रॉलिस बल लोलक के दोलन-तल के ग्रभिलम्ब होता है ग्रौर इसलिए इस तल को लगातार विचलित करेगा। ऐसा भी कर सकते हैं कि लोलक का कोना गति के पथ का चित्रण करे। इस प्रकार जो पथ खिंचेगा वह चित्र 27 में दिखाई गई "पत्ती" जैसा होगा। इस चित्र में लोलक के दोलन की हर डेढ़ दोलन-ग्रवधि में "पृथ्वी" 1/4 चक्कर के बराबर घूम जाती है। फ़ूको का लोलक इससे बहुत धीमी गति से घूमता है। ध्रुव पर एक मिनट में लोलक के दोलन का समतल 1/4 डिग्री पर घूम जाता है। उत्तरी ध्रुव पर यह समतल गति की दिशा की दाईं ग्रोर ग्रौर दक्षिणी ध्रुव पर बाईं ग्रोर घूमेगा।

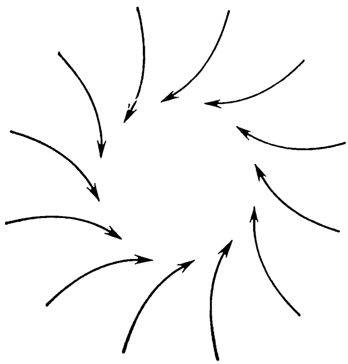


चित्र 27

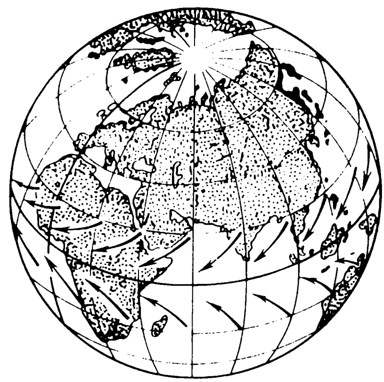
मध्य यूरोप के ग्रक्षान्तरों पर कोरिम्रॉलिस बल का प्रभाव भूमध्य रेखा की ग्रपेक्षा कुछ कम होगा। उस उदाहरण में, जो कुछ पहले पेश किया गया था, गोली 3.5 सेंटीमीटर विचलित नहीं होगी बल्कि केवल 2.5 सेंटीमीटर। फ़ूको का लोलक एक मिनट में लगभग 1/6 डिग्री मुड़ेगा।

क्या तोपचियों को कोरिम्रॉलिस बल को ध्यान में रखना चाहिए? बेर्त-तोप जिससे कि जर्मन सैनिकों ने पहले विश्व युद्ध में पेरिस पर गोले बरसाए थे, ग्रपने लक्ष्य से 110 किलोमीटर दूर स्थित थी। इस दूरी के लिए कोरिम्रॉलिस विचलन 1600 मीटर होगा। यह कोई छोटा-सा परिमाण नहीं है।

ग्रगर उड्डयन मिसाइल को कोरिम्रॉलिस बल को ध्यान में न रखकर ग्रधिक दूरी पर दागा जाए, तो वह ग्रपने लक्ष्य से बहुत विचलित हो जाएगा। यह विचलन ग्रधिक इसलिए नहीं होगा कि बल बहुत बड़ा है (यदि मिसाइल का भार 10 टन ग्रौर वेग 1000 किलोमीटर प्रति घण्टा



चित्र 28



चित्र 29

है, तो कोरिग्रॉलिस बल 25 kg · f होगा), बल्कि इसलिए कि यह बल बहुत अरसे तक लगातार प्रभाव डालता है।

निस्सन्देह, मिसाइल पर हवा के प्रतिरोध का प्रभाव भी कम महत्व नहीं रखता है। विमान चालक पथ में जो परिवर्तन करता है वे हवा और कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव तथा वायुयान एवं वायुयान-मिसाइल के परिपूर्ण न होने के कारण करने पड़ते है।

विमान चालकों और तोपचियों के अलावा और किन-किन विशेषज्ञों को कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव को ध्यान में रखना जरूरी होता है? आपको यह जानकर हैरानी तो होगी कि रेलवे कर्मचारियों को भी इस बल के प्रभाव का ध्यान रखता पड़ता है। कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव के कारण अन्दर की ओर से एक पटरी दूसरी पटरी की अपेक्षा अधिक घिसती है। यह स्पष्ट है कि उत्तरी गोलार्द्ध में दाईं पटरी (गति की दिशा के) और दक्षिणी गोलार्द्ध में बाईं पटरी अधिक घिसती है। केवल भूमध्य-रेखा पर स्थित देशों के रेलवे कर्मचारी ही कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव से मुक्त हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध में नदी के दाएं तटों के धुलने का कारण भी वही है जो कि पटरियों के घिसने का। नदियों के बहाव में आनेवाले परिवर्तन भी कोरिग्रॉलिस बल के प्रभाव से अधिकतर सम्बन्धित होते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में नदियां अपने मार्ग में आनेवाली रुकावटों की दाईं ओर बहती हैं।

हमें यह भी पता है कि कम दाबवाले क्षेत्रों की ओर हवा तेजी से बहती है। मगर हवा के ऐसे बहाव को चक्रवात (यानी चक्कर खाती हुई तेज़ हवा) क्यों कहते हैं?

वास्तव में हवा तेज़ी से चक्कर खाती हुई यानी चक्रीय गति के साथ कम दाबवाले क्षेत्र की ओर आती है (देखिए चित्र 28)। ऐसी गति का कारण है कोरिऑलिस बल का प्रभाव। उत्तरी गोलार्द्ध में कम दाबवाले क्षेत्र की ओर आनेवाली सब हवाई धाराएं अपनी गति की दिशा से दाईं ओर विचलित होती हैं। चित्र 29 में आप देखेंगे कि यह बल दोनों गोलार्द्धों में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों से भूमध्य-रेखा की ओर बहनेवाली हवाओं (व्यापारिक पवनों) को पश्चिम की ओर विचलित करता है।

क्या कारण है कि इतना कम बल हवा के विशाल द्रव्यमानों को गति प्रदान करता है?

इसका कारण है नगण्य घर्षण बल। हवा आसानी से चलती है। बल चाहे कम भी हो लेकिन उसका निरन्तर प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण परिमाणों को जन्म दे सकता है।

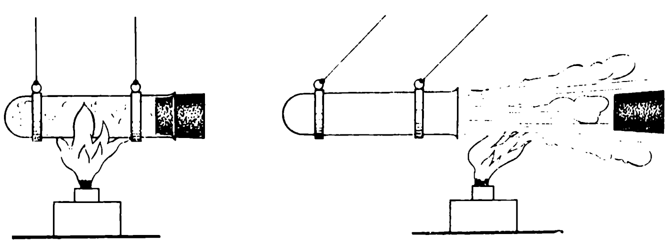
४. संहति-संरक्षण नियम

प्रतिक्षेप

चाहे किसी ने युद्ध में भाग लिया हो या नहीं लेकिन हर कोई यह जानता है कि यदि बन्दूक से गोली दाग़ी जाए तो बन्दूक तेज़ी से पीछे की ओर हटती है। गोली दाग़ते समय कंधे पर बन्दूक का प्रतिक्षेप होता है। लेकिन अग्निशस्त्रों का उदाहरण दिये बिना भी प्रतिक्षेप को समझाया जा सकता है। परखनली में थोड़ा-सा पानी लीजिए और उसको कार्क से बन्द कर दो धागों से क्षैतिज स्थिति में, जैसा कि चित्र 30 में दिखाया गया है, लटका दें। अब परखनली को एक बर्नर से गरम करें। कुछ समय बाद पानी खौलने लगेगा तथा इसके एक दो मिनट बाद कार्क खटाक से एक तरफ जा गिरेगा और परखनली उसकी विपरीत दिशा में विचलित होगी।

जिस बल से कार्क परखनली से बाहर निकलता है उसे वाष्प दाब कहते हैं; और परखनली जिस बल से विचलित होती है उसे भी वाष्प दाब कहते हैं। दोनों गतियां एक ही बल के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं। गोली चलाते समय भी ठीक यही होता है; अन्तर केवल इतना है कि गोली वाष्प दाब से नहीं बल्कि बारूद के जलने से पैदा हुई गैसों के दाब से चलती है।

प्रतिक्षेप क्रिया और प्रतिक्रिया के नियम से संबंधित है। यदि वाष्प कार्क पर प्रभाव डालता है तो कार्क भी वाष्प पर प्रभाव डालता है, लेकिन



चित्र 30

वाष्प के प्रभाव की विपरीत दिशा में और वाष्प अपनी प्रतिक्रिया परखनली को दे देता है।

हो सकता है कि आप इस बात से सहमत न हों: क्या एक ही बल के इतने विभिन्न परिणाम हो सकते हैं? बन्दूक तो थोड़ा ही पीछे हटती है, लेकिन गोली तो बहुत दूर जाती है। लेकिन फिर भी हम यह आशा करते हैं कि पाठक के मन में ऐसी कोई शंका पैदा नहीं होगी। यह बात सही है कि एकसमान बलों के विभिन्न परिणाम हो सकते हैं: पिंड द्वारा प्राप्त त्वरण (और यही है बल के प्रभाव का फल) उसके द्रव्यमान के व्युत्क्रमानुपात होता है। किसी एक पिंड (गोला, गोली, कार्क) के त्वरण को हम निम्नलिखित सूत्र से $a_1 = \frac{F}{m_1}$ और प्रतिक्षिप्त वस्तु (तोप, बन्दूक, परखनली) के त्वरण को $a_2 = \frac{F}{m_2}$ से व्यक्त करेंगे। चूंकि बल समान है, इसलिए इन दोनों सूत्रों में से हम एक महत्त्वपूर्ण परिणाम पर पहुंचते हैं कि गोली दागने की क्रिया में हिस्सा लेने वाले दो पिंडों की पारस्परिक क्रिया के दौरान प्राप्त हुए त्वरण पिंडों के द्रव्यमानों के व्युत्क्रमानुपात होंगे;

$$\frac{a_1}{m_1} = \frac{a_2}{m_2}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि त्वरण, जो पीछे की ओर हट रही तोप प्राप्त करती है, गोले के त्वरण से उतने गुने कम होगा जितने गुने उस तोप का भार अधिक होगा जिसमें से गोला दागा गया हो।

गोली का और प्रतिक्षेप के समय बन्दूक का त्वरण भी उतनी ही देर तक रहता है जितनी देर गोली बन्दूक की नली में रहती है। आइए, इस समय को t से व्यक्त करें। इस समय के बाद त्वरित गति एकसमान गति में बदल जाती है। आसानी के लिए हम त्वरण को अपरिवर्तित ही मानेंगे। तब बन्दूक की नली से बाहर निकलने पर गोली का वेग $v_1 = a_1 t$ के और प्रतिक्षेप का वेग $v_2 = a_2 t$ के बराबर होगा। चूंकि त्वरण का समय एक ही है, इसलिए वे वेग जिनसे पारस्परिक क्रिया के बाद पिंड

$$\frac{v_1}{v_2} = \frac{a_1}{a_2} \quad \text{अत :} \quad \frac{v_1}{v_2} = \frac{m_1}{m_2}$$

विभिन्न-विभिन्न दिशाओं में जाते हैं, इन पिंडों के द्रव्यमानों के व्युत्क्रमानुपात होंगे।

वेग-वेक्टर की विशेषता को ध्यान में रखकर हम बाद वाले सूत्र को इस तरह लिख सकते हैं : $m_1\mathbf{v}_1 = -m_2\mathbf{v}_2$; ऋण चिन्ह यह व्यक्त करता है कि $\mathbf{v}_1$ और $\mathbf{v}_2$ वेगों की दिशाएं एक दूसरे के विपरीत हैं।

आइए, अब इसी सूत्र को एक बार फिर लिखें। इस बार द्रव्यमान और वेग के गुणनफलों को समता चिन्ह के एक ओर लिखेंगे :

$$m_1\mathbf{v}_1 + m_2\mathbf{v}_2 = 0$$

आवेग-संरक्षण नियम

पिंड के द्रव्यमान और वेग का गुणनफल आवेग कहलाता है (इसका दूसरा नाम है संवेग)। चूंकि वेग वेक्टर है, इसका मतलब यह हुआ कि आवेग भी वेक्टर है। निस्सन्देह, आवेग की दिशा और पिंड के वेग की दिशा एक जैसी हैं।

इस नई धारणा की मदद से हम न्यूटन के नियम $F = ma$ को दूसरी प्रकार भी लिख सकते हैं। चूंकि $a = \frac{v_2 - v_1}{t}$ अत : $F = \frac{mv_2 - mv_1}{t}$ या $Ft = mv_2 - mv_1$ बल और उसकी क्रिया के समय का गुणनफल पिंड के आवेग में आये परिवर्तन के बराबर है।

आइए, अब हम फिर प्रतिक्षेप की चर्चा करें।

अब तोप के प्रतिक्षेप के परिणाम को संक्षेप रूप में सूत्रित किया जा सकता है : दागने के बाद तोप और गोले के आवेगों का योग शून्य के बराबर होता है। स्पष्ट है कि दागने से पहले भी यह योगफल शून्य के बराबर ही था, जब तोप और गोला विराम स्थिति में थे।

$m_1\mathbf{v}_1 + m_2\mathbf{v}_2 = 0$ समीकरण में प्रकट होनेवाले वेग वे हैं जो गोली दागने के तत्काल बाद होते हैं। इसके बाद गोले और तोप की गति के समय उन पर गुरुत्व-बल, हवा का प्रतिरोध तथा तोप पर एक और बल, पृथ्वी का घर्षण, भी प्रभाव डालता है। यदि निर्वात (वैकुअम) में रखी तोप में से गोला दागा जाए तो $\mathbf{v}_1$ और $\mathbf{v}_2$ वेगों से होनेवाली गति अनिश्चित काल तक जारी रहेगी। तोप एक ओर और गोला उसकी विपरीत दिशा में चलता रहेगा।

आजकल ऐसी तोपों का उपयोग अधिकतर किया जाता है। ऐसी तोपें एक चबूतरे पर स्थित होती हैं और गतिमान् दशा में वार कर सकती हैं। ऊपरलिखित समीकरण को कैसे लिखा जाय कि उसका चलती हुई तोप में से दागे गये गोले के लिए भी प्रयोग किया जा सके। हम लिख सकते हैं:

$$m_1\mathbf{u}_1+m_2\mathbf{u}_2=0$$

जहां $\mathbf{u}_1$ और $\mathbf{u}_2$ गोले और तोप के चलते हुए चबूतरे के सापेक्ष वेग हैं। अगर चबूतरे का वेग $\mathbf{V}$ है तो गोले और तोप के वेग निश्चल प्रेक्षक के अनुसार होंगे:

$$\mathbf{v}_1=\mathbf{u}_1+\mathbf{V} \quad \text{और} \quad \mathbf{v}_2=\mathbf{u}_2+\mathbf{V}$$

$\mathbf{u}_1$ और $\mathbf{u}_2$ को अंतिम समीकरण में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते है:

$$(m_1+m_2)\ \mathbf{V}=m_1\mathbf{v}_1+m_2\mathbf{v}_2$$

समता की दायीं ओर गोला दागने के बाद गोले और तोप के आवेगों का योग है। लेकिन बाईं ओर क्या है? गोला दागने से पहले तोप और गोला, जिनका कुल द्रव्यमान m_1+m_2 है, एक साथ $\mathbf{V}$ वेग से चलते हैं। मतलब यह हुआ कि समता के बायीं ओर भी गोले और तोप का कुल आवेग लिखा हुआ है, मगर यह आवेग गोला दागने के पहले था।

हमने प्रकृति के एक बहुत महत्त्वपूर्ण नियम को, जो आवेग-संरक्षण नियम कहलाता है, सिद्ध किया है। यहां इस नियम को दो पिंडों के लिए सिद्ध किया गया है, लेकिन यह भी सरलता से सिद्ध किया जा सकता है कि यह नियम पिंडों की हर संख्या के लिए लागू होता है। इस नियम का सारांश किस बात में निहित है? आवेग-संरक्षण नियम के अनुसार पारस्परिक क्रिया कर रहे अनेक पिंडों के आवेगों का योग इस क्रिया के कारण बदलता नहीं है।

यह बात स्पष्ट है कि आवेग-संरक्षण नियम केवल तब ठीक उतरेगा जब पिंडों के उस समूह पर, जिसका अध्ययन किया जा रहा है, कोई भी बाह्य बल प्रभाव न डाल रहा हो। पिंडों के ऐसे समूह को भौतिक विज्ञान में बन्द-समूह कहते हैं।

गोला दागते समय तोप और गोला दो पिंडों के बन्द समूह की तरह बरताव करते हैं, इस बात के बावजूद कि उनपर गुरुत्वाकर्षण बल प्रभाव डालता है। गोली का भार बारूद की गैसों के बल की अपेक्षा कम होता है और प्रतिक्षेप के लिए पहलेवाले नियम ही लागू होंगे। इन नियमों की मान्यता इस बात पर निर्भर नहीं करेगी कि गोला किस जगह दागा गया है—पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष में उड़ रहे राकेट में से।

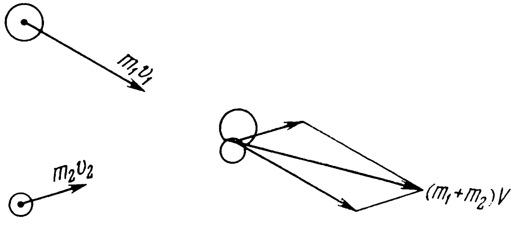
आवेग-संरक्षण नियम हमें पिंडों के टकराव से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों को हल करने के योग्य बनाता है। आइए, हम मिट्टी के एक गेंद से दूसरे गेंद पर निशाना लगायें—वे दोनों जुड़ जाएंगे और एक साथ अपनी गति जारी रखेंगे, यदि बन्दूक से किसी लकड़ी के गेंद को दागें तो वह उसमें धंस गई गोली के साथ-साथ लुढ़केगा, यदि किसी खड़ी बग्घी में कोई भाग कर कूद जाय तो वह चलना शुरू कर देगी। ये सब उदाहरण भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से एक जैसे हैं। पिंडों के टकराने पर उनके वेगों को ज्ञात करनेवाला नियम आवेग-संरक्षण नियम से सरलता से मिल जाता है।

टकराने से पहले पिंडों के आवेग $m_1\mathbf{v}_1$ और $m_2\mathbf{v}_2$ थे, टकराने के बाद दोनों पिंड जुड़ गए और उनका कुल द्रव्यमान m_1+m_2 के बराबर हो गया। अगर इन जुड़े हुए पिंडों की गति को $\mathbf{V}$ से व्यक्त करें तो हम पाते हैं:

$$m_1\mathbf{v}_1+m_2\mathbf{v}_2=(m_1+m_2)\,\mathbf{V}$$

$$\text{या}\quad \mathbf{V}=\frac{m_1\mathbf{v}_1+m_2\mathbf{v}_2}{m_1+m_2}$$

यहां हम आपको आवेग-संरक्षण नियम की वेक्टर-विशेषता की याद



चित्र 31

दिलवा दें। सूत्र के ग्रंश में लिखे ग्रावेगों mv को वेक्टरों की तरह योग करना चाहिए।

चित्र 31 में "संयुक्त" टकराव, जब दो पिंड एक दूसरे से किसी कोण पर टकराते हैं, दिखाया गया है। वेग के परिमाण को निकालने के लिए टकरानेवाले पिंडों के ग्रावेगों के वेक्टरों से रचित समान्तर चतुर्भुज के विकर्ण की लम्बाई को उनके द्रव्यमानों के योग से भाग देना होगा।

जेट-गति

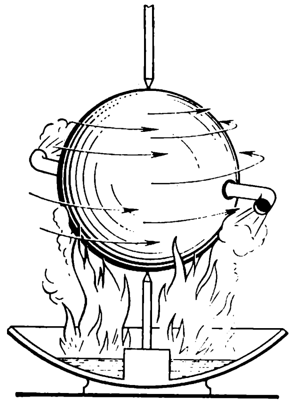
मनुष्य पृथ्वी से प्रतिकर्षित होता हुग्रा चलता है। नौका इसलिए चलती है कि मल्लाह चप्पू से पानी को धकेलता है; ऐसे ही स्टीमर-जहाज़ भी पानी से प्रतिकर्षित होता है, लेकिन इस उदाहरण में चप्पू नहीं बल्कि जहाज़ के बड़े-बड़े पंखे पानी को धकेलते हैं। ऐसे ही रेल की पटरी पर रेल तथा कार पृथ्वी से प्रतिकर्षित होकर चलती है। यह तो ग्राप जानते ही हैं कि शीशे की तरह चिकनी बर्फ़ की सतह पर कार चलाना कितना मुश्किल होता है।

इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि ग्रालंब से प्रतिकर्षित होना गति में ग्राने के लिए एक ग्रावश्यक शर्त है। हवाई जहाज़ भी हवा को ग्रपने शक्तिशाली पंखे से पीछे की ग्रोर धकेलकर ही ग्रागे बढ़ता है।

क्या सचमुच ऐसा ही होता है? क्या ऐसा भी कोई तरीक़ा हो सकता है कि प्रतिकर्षण के बिना ही गति सम्भव हो जाय? यदि ग्राप स्केटिंग करते हैं तो ग्राप ग्रपने ही ग्रनुभव से इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि ऐसी गति बिल्कुल सम्भव है। हाथ में एक मोटी-सी छड़ी लीजिए ग्रौर बर्फ़ पर खड़े हो जाइए। छड़ी को ग्रागे की ग्रोर फेंकिए, क्या होगा? ग्राप पीछे की तरफ जाने लगेंगे हालांकि ग्रापने पैर से बर्फ़ को प्रतिकर्षित करने की सोची तक भी नहीं थी।

प्रतिक्षेप, जिसका हमने पिछले ग्रनुच्छेद में ही ग्रध्ययन किया है, हमें बताता है कि किसी ग्रालम्ब के या प्रतिकर्षण के बिना गति कैसे हो सकती है। प्रतिक्षेप से गति को त्वरित करना सम्भव है चाहे वह हवा रहित स्थान ही क्यों न हो, जहां किसी भी पदार्थ से प्रतिकर्षित होना सम्भव नहीं है।

प्रतिक्षेप का, जो बर्तन से वाष्प की धारा निकलने के कारण सम्भव



चित्र 32

होता है (वाष्प की धारा की प्रतिक्रिया) प्राचीन काल में मनोरंजक खिलौने बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। चित्र 32 में एक प्राचीन वाष्प टर्बाइन दिखाई गई है, जिसकी खोज ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में की गई थी। एक गोलाकार बर्तन ऊर्ध्व ग्रक्ष पर रखा हुग्रा है। बर्तन की कोहनी-नुमा ट्यूबों से निकल रहा वाष्प उन्हें निकास की विपरीत दिशा में धकेलता है तथा बर्तन घूमता है।

वर्तमान काल में जेट गति का न केवल खिलौने बनाने ग्रौर रोचक ग्रवलोकन करने के लिए, बल्कि ग्रनेक मशीनों में भी इस्तेमाल किया जाता है। बीसवीं शताब्दी को प्रायः परमाणु-ऊर्जा-शताब्दी कहते हैं, लेकिन इस शताब्दी को जेट-युग कहना भी उतना ही उचित होगा, क्योंकि शक्तिशाली जेट इंजनों का उपयोग ग्रधिकतर बढ़ रहा है। इससे न केवल विमान-निर्माण-उद्योग में क्रांति ग्रायी, बल्कि मनुष्य ब्रह्माण्ड से भी सम्पर्क स्थापित करने में सफल हो गया।

जेट गति के सिद्धान्त के ग्राधार पर हज़ारों किलोमीटर प्रति घण्टे के वेग से उड़नेवाले हवाई जहाज़ों ग्रौर उड्डयन मिसाइलों का भी निर्माण हो चुका है, जो सैंकड़ों किलोमीटर ऊंचे उठ सकते हैं। पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह ग्रौर ग्रन्तरिक्ष राकेट भी बनाये जा चुके हैं जो एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक जा सकते हैं।

जेट इंजन एक मशीन है जिसमें ईंधन के जलने पर बहुत बड़े बल से गैसें निकलती हैं। राकेट गैस की धारा की दिशा के विपरीत चलता है।

राकेट को ब्रह्माण्ड में ले जानेवाला प्रणोद (thrust) किस के बराबर होता है? हम जानते हैं कि बल एक सेकण्ड में ग्रावेग में ग्राये परिवर्तन के बराबर होता है। ग्रावेग-संरक्षण नियमानुसार राकेट का ग्रावेग निकली हुई गैसों के ग्रावेग mv के परिमाण से बदलता है।

प्रकृति के इस नियम का जेट-प्रणोद ग्रौर इस बल को पैदा करने के लिए ख़र्च किये गये ईंधन की मात्रा में सम्बन्ध मालूम करने के वास्ते

उपयोग किया जाता है। लेकिन यह जानने के लिए दहन पदार्थों के निकास वेग को मान कर चलना पड़ता है। उदाहरण के लिए, अगर एक सेकण्ड में दस टन गैस 2000 मीटर प्रति सेकण्ड के वेग से निकलती है तो प्रणोद 2×10^{12} डाइन अर्थात् लगभग 2000 T के बराबर होगा।

आइए, अन्तरिक्ष में उड़ रहे राकेट के वेग में आये परिवर्तन को मालूम करें।

गैस के द्रव्यमान ΔM का, जो u गति से फेंकी गई है, आवेग $u \cdot \Delta M$ के बराबर होगा। M द्रव्यमान वाले राकेट का आवेग इसी समय के बीच $M \cdot \Delta v$ के बराबर बढ़ जाएगा। तब आवेग-संरक्षण नियम के अनुसार ये दोनों परिमाण एक दूसरे के बराबर होंगे :

$$u \cdot \Delta M = M \cdot \Delta v \text{ अर्थात् } \Delta v = u \cdot \frac{\Delta M}{M}$$

गैसों के निकलने पर, जिनकी राकेट के द्रव्यमान से तुलना की जाती है, अगर हम राकेट का वेग मालूम करना चाहें तो प्राप्त सूत्र बेकार साबित होता है। यह सूत्र तो राकेट के अपरिवर्तित द्रव्यमान के लिए प्राप्त किया गया था लेकिन निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिणाम अवश्य लागू होता है: जब द्रव्यमान में एकसमान सापेक्ष परिवर्तन होते हैं तो वेग एक ही परिमाण से बढ़ता है। परिशुद्ध सूत्र के परिकलनों से मालूम होता है कि राकेट के द्रव्यमान को आधा करने पर उसका वेग $0.7u$ के बराबर हो जाएगा।

राकेट के वेग को $3u$ तक बढ़ाने के लिए हमें ईंधन के $m=\frac{19}{20}M$ द्रव्यमान को जलाना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम वेग को $3u$ अर्थात् 6-8 किलोमीटर प्रति सेकण्ड तक बढ़ाना चाहें तो राकेट के द्रव्यमान का केवल 1/20 भाग ही बचाया जा सकता है।

यदि हम वेग को $7u$ करना चाहें तो राकेट का द्रव्यमान आगे बढ़ते समय 1000 गुना कम हो जाना चाहिए।

ये परिकलन हमें राकेट में ईंधन के द्रव्यमान को, जो कि राकेट में ले जाया जा सकता है, अनन्त मात्रा तक बढ़ाने से रोकते हैं। जितना अधिक ईंधन हम राकेट में ले जाएंगे, उतना ही अधिक उसे जलाना भी पड़ेगा। गैसों के एक निश्चित निकास वेग के लिए राकेट के वेग को बढ़ाना बहुत मुश्किल है।

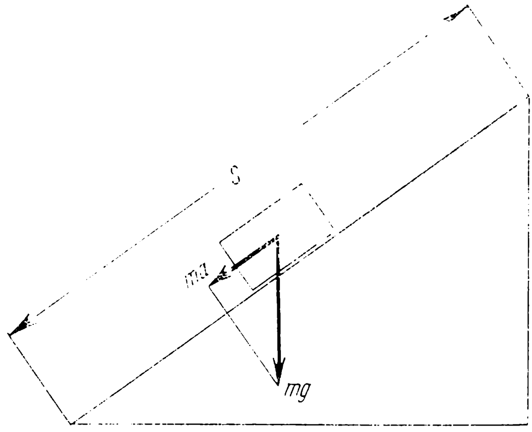
राकेट के वेग को बढ़ाने का एकमात्र मूल साधन है कि उसमें से निकल रहीं दहन गैसों के वेग को बढ़ाया जाए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राकेट के इंजनों मे ग्राजकल न्यूक्लीय ईंधन इस्तेमाल किया जाता है। दहन गैसों का निकास वेग ग्रपरिवर्तित होने पर उतने ही ईंधन के लिए बहुचरणी राकेटों का उपयोग कर राकेट के वेग में बढ़ौती की जा सकती है। एक चरण राकेट में ईंधन का द्रव्यमान कम हो जाता है ग्रौर खाली टंकियां राकेट के साथ ही ग्रागे बढ़ती रहती हैं। इन ग्रनावश्यक टंकियों को त्वरित करने के लिए ग्रतिरिक्त ऊर्जा की ग्रावश्यकता पड़ती है। ग्रच्छा तो यह होता कि जब ईंधन-टंकी खाली हो तभी ही उसे फेंक दिया जाए। ग्राधुनिक बहुचरणी राकेटों में केवल ग्रनावश्यक टंकियों ग्रौर पाइप-लाइनों को ही नहीं फेंका जाता है, बल्कि उस चरण के इंजनों को भी, जो ग्रपना काम समाप्त कर चुके होते हैं, फेंक दिया जाता है।

निस्सन्देह, राकेट के ग्रनावश्यक द्रव्यमान को लगातार फेंकते रहना सबसे ग्रच्छा होता, लेकिन ग्रभी तक ऐसा राकेट बनाया नहीं गया है। एक चरण राकेट जितने ऊंचे तीन चरणी राकेट का प्रारंभिक भार 6 गुना कम किया जा सकता है। ग्रनावश्यक द्रव्यमान को "लगातार" फेंकनेवाला राकेट तीन चरणी राकेट से 15% ग्रौर हल्का होगा।

गुरुत्व-बल के प्रभाव में गति

हम एक छोटी-सी पहिया-गाड़ी को दो चिकने ग्रानत समतलों से नीचे लुढ़काएंगें। इनमें से एक पट्टे को दूसरे से काफ़ी छोटा लेंगे ग्रौर दोनों को एक ही ग्रालम्ब पर रखेंगे। ऐसा करने पर एक ग्रानत समतल ग्रधिक झुका हुग्रा होगा ग्रौर दूसरा कम। दोनों पट्टों का शीर्श बिन्दु – पहिया-गाड़ी को लुढ़काने का प्रारंभिक बिन्दु – एक ही ऊंचाई पर होगा। ग्रापके विचार में ग्रानत समतल से नीचे की ग्रोर लुढ़कने पर किस पहिया-गाड़ी का वेग ग्रधिक होगा? ग्रधिकतर लोग कहेंगे कि उस पहिया-गाड़ी का जो ग्रधिक झुके हुए समतल से नीचे ग्रायेगी।

लेकिन प्रयोग बताता है कि उनका विचार ग़लत है। दोनों पहिया-गाड़ियों का एक ही वेग होगा। जब पिंड ग्रानत समतल पर चलता है तो उस पर एक बल लगातार प्रभाव डाल रहा होता है, ग्रौर यह है



चित्र 33

गति की दिशा के साथ-साथ लगा हुआ गुरुत्व-बल का संघटक (चित्र 33)। जैसा कि हमें मालूम है a त्वरण से चल रहा पिंड S पथ पर v वेग प्राप्त करता है, यानी $v=\sqrt{2aS}$

इस सूत्र से हम देखते हैं कि यह वेग आनत समतल के झुकाव पर निर्भर नहीं करता है? चित्र 33 में दो त्रिभुज दिखाए गए हैं। इनमें से एक आनत समतल को व्यक्त करता है और इस त्रिभुज की छोटी भुजा, जिसे h से व्यक्त किया गया है, आनत समतल की ऊंचाई है। इस ऊंचाई से पहिया-गाड़ियों ने गति शुरू की थी। त्रिभुज का कर्ण S वह पथ है जो पहिया-गाड़ियां त्वरित गति से तय करती हैं। छोटा बल-त्रिभुज, जिस की एक भुजा ma और कर्ण mg के बराबर हैं, बड़े त्रिभुज के सदृश है चूंकि वे समकोण त्रिभुज हैं और उनके कोण बराबर हैं, क्योंकि वे परस्पर अभिलम्ब भुजाओं के बीच के कोण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भुजाओं का अनुपात उनके कर्णों के अनुपात के बराबर होना चाहिए, अर्थात्

$$\frac{h}{ma}=\frac{S}{mg} \text{ अथवा } aS=gh$$

हमने यह सिद्ध किया है कि गुणनफल aS अर्थात् पिंड का अन्तिम

वेग, जब वह ग्रानत समतल से नीचे की ग्रोर लुढ़कता हुग्रा ग्राता है, ग्रानत समतल के झुकाव पर नहीं बल्कि उसकी ऊंचाई पर निर्भर करता है, यानी उस ऊंचाई पर जहाँ से वह नीचे की ग्रोर गति शुरू करता है। वेग $v=\sqrt{2gh}$ सब ग्रानत समतलों के लिए बराबर होगा बशर्ते कि पिंड ने गति एक ही ऊंचाई h से शुरू की हो। यह वेग स्वतन्त्र रूप से h ऊंचाई से गिरे पिंड के वेग के बराबर होता है।

ग्राइए, ग्रब पिंड की गति को ग्रानत समतल की दो ग्रलग-ग्रलग ऊंचाइयों h_1 ग्रौर h_2 पर नापें। पहले बिन्दु पर पिंड के वेग को v_1 ग्रौर दूसरे बिन्दु पर वेग को v_2 से व्यक्त करेंगे।

यदि प्रारंभिक ऊंचाई, जहां से पिंड ने चलना शुरू किया था, h है तो पिंड के वेग का वर्ग पहले बिन्दु पर $v_1^2=2g(h-h_1)$ के ग्रौर दूसरे बिन्दु पर $v_2^2=2g(h-h_2)$ के बराबर होगा। पहले को दूसरे में से घटाने पर पता चलेगा कि ग्रानत समतल के किसी भी हिस्से के ग्रारम्भ या ग्रंत में पिंड के वेग इन बिन्दुग्रों की ऊंचाइयों से कैसे सम्बन्धित हैं :

$$v_2^2-v_1^2=2g(h_1-h_2)$$

वेगों के वर्गों का ग्रन्तर केवल ऊंचाइयों के ग्रन्तर पर ही निर्भर करता है। यहां यह भी बता दें कि यह समीकरण दोनों दिशाग्रों के लिए एकसमान ही लागू होता है यानी जब पिंड ऊपर की ग्रोर जाता तथा नीचे की ग्रोर लुड़कता है। ग्रगर पहली ऊंचाई दूसरी ऊंचाई से कम है (पिंड ऊपर की ग्रोर जाता है) तो दूसरा वेग पहले से कम होगा।

इस सूत्र को दूसरी तरह भी लिखा जा सकता है :

$$\frac{v_1^2}{2}+gh_1=\frac{v_2^2}{2}+gh_2$$

हम यहां इस बात पर बल देना चाहेंगे कि वेग के वर्ग के ग्राधे ग्रौर ऊंचाई h का g से गुणनफल का योग ग्रानत समतल के किसी भी बिन्दु के लिए एक जैसा होता है। या दूसरे शब्दों में $\frac{v^2}{2}+gh$ गति के दौरान ग्रपरिवर्तनीय रहता है।

हमारे द्वारा खोजे गये इस नियम की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यह

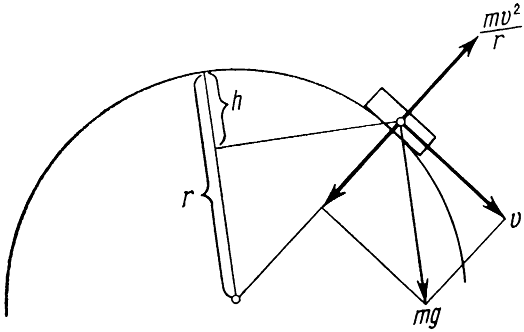
है कि वह केवल किसी भी ढालू समतल पर या किसी भी चढ़ाई-उतराई-चढ़ाई-पथ पर हो रही घर्षणहीन गति पर ही लागू होता है। मतलब यह हुआ कि किसी भी पथ को ऋजुरेखीय हिस्सों में बांटा जा सकता है। ये हिस्से जितने छोटे होंगे खंडित रेखा उतनी ही वक्र रेखा के निकट होगी। वक्र-रेखीय पथ के हर ऋजुरेखीय हिस्से को आनत समतल का एक हिस्सा मान कर उस पर ऊपरलिखित सूत्र लागू किया जा सकता है।

दूसरे शब्दों में प्रक्षेप-पथ के हर बिन्दु पर योग $\frac{v^2}{2}+gh$ एक जैसा होता है। इसलिए वेग के वर्ग में परिवर्तन पथ की लम्बाई और उसके आकार पर निर्भर नहीं करता है, बल्कि केवल गति के प्रारंभिक और अन्तिम बिन्दुओं की ऊंचाई से मालूम किया जाता है।

पाठक कह सकता है कि यह निष्कर्ष दैनिक जीवन के अनुभव से मेल नहीं खाता है: अगर पथ लम्बा और कम ढालू हो तो उस पर लुढ़कने-वाले पिंड का वेग बिल्कुल बढ़ता ही नहीं और अन्ततः वह रुक जाता है। जी हां, वास्तव में ऐसा ही होता है, लेकिन हमने तो घर्षण बल को तो ध्यान में नहीं लिया था। ऊपरलिखित सूत्र केवल पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र में हो रही गति, जिसपर केवल पृथ्वी का गुरुत्व बल ही प्रभाव डालता है, के लिए लागू होता है। अगर घर्षण बल कम हों तो इस सूत्र का प्रयोग काफ़ी अच्छे परिणाम देगा। बर्फ़ीले पहाड़ों पर से स्लेज बहुत कम घर्षण से फ़िसलती है। स्केटिंग के लिए बर्फ़ की बहुत लम्बी सड़कें बनाई जाती हैं जिन के शुरू में ढलान बहुत ज़्यादा होती है। इस ढलान पर वेग बढ़ता है और इसके बाद में आनेवाली चढ़ाइयों तथा उतराइयों पर स्लेज आसानी से चलता जाता है। अगर घर्षण बिलकुल न होता तो ऐसी पहाड़ी-यात्रा (जब स्लेज अपने आप रुक जाती है) उतनी ही ऊंचाई पर समाप्त होगी जितनी ऊंचाई से यह यात्रा शुरू हुई थी। चूंकि घर्षण हमेशा विद्यमान होता है इसलिए स्लेज-यात्रा का प्रारंभिक बिन्दु उस स्थान (बिन्दु) से ऊंचा होगा जहां यात्रा समाप्त होगी।

वह नियम जिसके अनुसार गुरुत्व बल के प्रभाव से हो रही गति का अंतिम वेग पथ के आकार पर निर्भर नहीं करता है विभिन्न प्रश्नों को हल करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

आपने सर्कस में दिल को थमा देने वाली अभिलम्ब "पाश" का करतब तो अवश्य देखा होगा। साइकल-सवार या गाड़ी में बैठा कलाबाज़ किसी



चित्र 34

ऊंचे चबूतरे पर रुक जाते हैं। वे तेज़ी से नीचे फ़िसलते हैं और फिर ऊपर उठते हैं। देखिए, नट कितना ऊपर पहुंच गया है और उसका सर नीचे की ओर है, वह फिर नीचे सरकता है और बहुत "ख़तरनाक पाश" बनाता है। आइए, अब यह देखें कि सर्कस में काम करनेवाले इंजीनियर को किन सवालों को हल करना पड़ता है? सबसे पहले तो चबूतरे की वह ऊंचाई मालूम करनी होती है जहां से कलाबाज नीचे सरकना शुरू करे ताकि पाश के उच्चतम बिन्दु पर से वह गिरे नहीं? ऐसा करने के लिए हम जानते हैं कि चबूतरे से नट को दबाये रखनेवाला अपकेन्द्री बल विपरीत दिशा की ओर दिष्ट गुरुत्व-बल के बराबर होना चाहिए। मतलब यह हुआ कि $mg \leqslant \frac{mv^2}{r}$ जहां r – पाश का अर्धव्यास है और v पाश के सबसे ऊंचे बिन्दु पर गति का वेग है। यह वेग प्राप्त करने के लिए गति उस बिन्दु से शुरू करनी चाहिए, जो कि पाश के सबसे ऊंचे बिन्दु से h ऊंचाई पर हो। नट का प्रारंभिक वेग शून्य होता है, इसलिए पाश के सबसे ऊंचे बिन्दु पर उसका वेग $v^2=2gh$ होता है। लेकिन दूसरी ओर से $v^2 \geqslant gr$। इसका अर्थ यह हुआ कि h ऊंचाई और पाश के अर्धव्यास में परस्पर सम्बंध है अर्थात् $h \geqslant \frac{r}{2}$। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चबूतरा पाश के सबसे ऊंचे बिन्दु से उसके (पाश के) अर्धव्यास के आधे से कम ऊंचा नहीं होना चाहिए। घर्षण बल के अस्तित्व का ध्यान रखते हुए चबूतरे को थोड़ा अधिक ऊंचा बनाना पड़ता है।

ग्राइए, ग्रब एक गोल गुम्बद लें जिसकी ग्रंदरवाली सतह बहुत चिकनी हो ताकि उसका घर्षण कम-से-कम हो। ऐसे गुम्बद के सबसे ऊंचे बिन्दु पर कोई पिंड रखते हैं ग्रौर उसे हलका-सा धक्का देते हैं ताकि पिंड गुम्बद के साथ-साथ फिसलने लगे। कभी-न-कभी यह पिंड गुम्बद से ग्रलग हो जायेगा ग्रौर गिरना शुरू करेगा। हम यह ग्रासानी से मालूम कर सकते हैं कि पिंड गुम्बद की सतह से कब हटेगा: गुम्बद से हटते समय ग्रपकेन्द्री बल पिंड के भार के उस संघटक के बराबर होगा जो ग्रर्धव्यास की दिशा में निदेशित होता है (इस स्थिति में पिंड गुम्बद पर दबाव डालना बंद कर देता है, इसी समय तो पिंड गुम्बद से ग्रलग होता है)। चित्र 34 में दो सदृश त्रिभुज दिखाए गए हैं, ग्रौर यह भी दिखाया गया है कि पिंड गुम्बद से कब ग्रलग होता है। बल-त्रिभुज की भुजा ग्रौर कर्ण के ग्रनुपात को हम दूसरे त्रिभुज की भुजाग्रों के संगत ग्रनुपात से समीकृत करेंगे।

$$\frac{\frac{mv^2}{r}}{mg}=\frac{r-h}{r}$$

यहा r गोल गुम्बद का ग्रर्धव्यास है। h पिंड के फ़िसलने की प्रारंभिक ग्रौर ग्रंतिम ऊंचाइयों के बीच का ग्रन्तर है। ग्राइए, ग्रब ग्रन्तिम वेग की पथ के ग्राकार पर ग्रनिर्भता के नियम का प्रयोग करें। चूंकि पिंड का प्रारंभिक वेग शून्य के बराबर माना गया था इसलिए $v^2=2gh$। इस मान को ऊपरलिखित ग्रनुपात में प्रतिस्थापित करने ग्रौर संखीय रूपांतरण करने पर पता चलेगा कि $h=\frac{r}{3}$। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि पिंड गुम्बद की सतह से तब ग्रलग होगा जब कि वह गुम्बद के सबसे ऊंचे बिन्दु से 1/3 ग्रर्धव्यास के बराबर नीचे ग्रा जायेगा।

यांत्रिक ऊर्जा का संरक्षण-नियम

इससे पहलेवाले ग्रनुच्छेदों में लिए गये उदाहरणों से हम इस बात में कायल हो गये हैं कि गति के समय ग्रपने संख्यात्मक मान को स्थिर रखनेवाले परिमाणों का जानना कितना लाभदायक होता है।

ग्रभी तो हमें एक ही पिंड के लिए ऐसे परिमाण का पता है। ग्रगर गुरुत्व क्षेत्र में एक नहीं, बल्कि कई पिंड एक साथ हिस्सा ले रहे हों

तो? यह सोचना ग़लत होगा कि व्यंजक $\frac{v^2}{2}+gh$ सब पिंडों के लिए एक जैसा लागू होगा, चूंकि हर पिंड गुरुत्व बल के प्रभाव के अतिरिक्त आस-पास के पिंडों के भी प्रभाव में है। हो सकता है कि इन सब व्यंजकों का योग, जो विचाराधीन पिंडों के समूह के लिए लिया गया है, बना रहे अर्थात् बदले नहीं?

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि ऐसा सोचना ग़लत है। अनेक पिंडों की गति के समय एक ऐसा परिमाण आवश्यक होता है जो बदलता नहीं है, लेकिन वह व्यंजकों के योग के बराबर नहीं होता है,

$$\left(\frac{v^2}{2}+gh\right)_{\text{पिंड}1}+\left(\frac{v^2}{2}+gh\right)_{\text{पिंड}2}+\ldots,$$

बल्कि सदृश व्यंजकों और पिंडों के द्रव्यमानों के गुणनफलों के योग के बराबर होता है। या दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि इन गुणनफलों का योग बदलता नहीं है:

$$m_1\left(\frac{v^2}{2}+gh\right)_1+m_2\left(\frac{v^2}{2}+gh\right)_2+\ldots$$

यांत्रिकी के इस महत्त्वपूर्ण नियम को सिद्ध करने के लिए हम निम्नलिखित उदाहरण का अध्ययन करेंगे।

किसी घिरनी पर से दो भार लटके हुए हैं जिनमें से बड़े भार का द्रव्यमान M और छोटे भार का द्रव्यमान m है। बड़ा भार छोटे भार को खींचता है और इन दो भारों का समूह वर्धमान वेग से चलता है।

इन दोनों पिंडों के भारों का अन्तर $(Mg-mg)$ गतिमान् बल होता है। चूंकि दोनों पिंडों के द्रव्यमान त्वरित गति में भाग ले रहे हैं तो इस अवस्था के लिए न्यूटन का नियम लिखा जायेगा:

$$(M-m)g=(M+m)\,a$$

आइए, अब गति के दो पलों का अध्ययन कर यह सिद्ध करें कि $\frac{v^2}{2}+gh$ व्यंजकों और पिंडों के संगत द्रव्यमानों के गुणनफलों का योग वास्तव में ही अपरिवर्तित रहता है। इसके वास्ते हमें सिद्ध करना होगा कि

$$m\left(\frac{v_2^2}{2}+gh_2\right)+M\left(\frac{V_2^2}{2}+gH_2\right)=m\left(\frac{v_1^2}{2}+gh_1\right)+M\left(\frac{V_1^2}{2}+gH_1\right)$$

बड़े अक्षरों से बड़े भार के भौतिक परिमाण व्यक्त किए गये हैं। सबस्क्रिप्ट 1, 2, दो अलग-अलग समय पर गति के परिमाण व्यक्त करते हैं।

चूंकि दोनों भार एक ही रस्सी से बंधे हैं इसलिए $v_1 = V_1$ और $v_2 = V_2$। इन सरलीकरणों का उपयोग कर और ऊंचाईवाले सदस्यों को दाईं ओर तथा वेगवाले सदस्यों को बाईं ओर ले जा कर हम पाते हैं:

$$\frac{m+M}{2}\left(v_2^2 - v_1^2\right) = mgh_1 + MgH_1 - mgh_2 - MgH_2 =$$
$$= mg\,(h_1 - h_2) + Mg\,(H_1 - H_2)$$

भारों की ऊंचाइयों के अन्तर, निस्सन्देह, बराबर हैं (लेकिन इन के चिन्ह विपरीत हैं; क्योंकि एक भार ऊपर उठता है और दूसरा नीचे आता है)। इस तरह:

$$\frac{m+M}{2}\left(v_2^2 - v_1^2\right) = g\,(M - m)\,S$$

यहां S – तय किये गए पथ के बराबर है।

पृष्ठ ५२ पर हमने यह सिद्ध किया था कि अगर पिंड त्वरित गति a से चले तो S पथ के प्रारंभिक और अंतिम वेगों के वर्गों का अन्तर $(v_1^2 - v_2^2)$

$$v_1^2 - v_2^2 = 2aS$$

के बराबर होगा। इस व्यंजक को आखिरी सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं:

$$(m + M)\,a = (M - m)g$$

यही तो है न्यूटन का नियम जिसे हमने इस उदाहरण के लिए लिखा था। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि दो पिंडों के लिए $\frac{v^2}{2} + gh$ व्यंजकों और संगत द्रव्यमानों* के गुणनफलों का योग गति के दौरान अपरिवर्तित रहेगा,

---

*स्पष्ट है कि व्यंजक $\frac{v^2}{2} + gh$ को $2m$ या $m/2$, या किसी भी गुणांक से गुना कर सकते हैं। लेकिन आसानी के लिए हमने इसे केवल m से ही गुना किया है।

अर्थात् नियत रहेगा, यानी

$$\left(\frac{mv^2}{2}+mgh\right)+\left(\frac{MV^2}{2}+MgH\right)=\text{const}$$

एक पिंड के लिए यह सूत्र निम्नलिखित रूप ले लेता है:

$$\frac{v^2}{2}+gh=\text{const}$$

वेग के वर्ग और द्रव्यमान के गुणनफल के आधे को गतिज ऊर्जा कहते हैं:

$$K=\frac{mv^2}{2}$$

पिंड के वज़न और ऊंचाई के गुणनफल को पिंड की पृथ्वी के आकर्षण की स्थितिज ऊर्जा U कहते हैं:

$$U=mgh$$

हमने यह सिद्ध कर दिया है कि दो पिंडों के समूह (यही अनेक पिंडों के समूह के लिए भी सिद्ध किया जा सकता है) की गति के दौरान उनकी गतिज ऊर्जा और स्थितिज ऊर्जा का योग अपरिवर्तित रहता है।

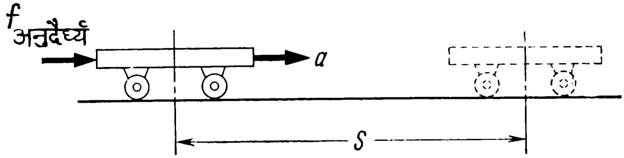
दूसरे शब्दों में पिंडों के समूह की गतिज ऊर्जा तभी बढ़ती है जबकि पिंडों के समूह की स्थितिज ऊर्जा कम हो जाती है (निस्सन्देह, इसका उलट भी ठीक है)।

इस नियम को यांत्रिक ऊर्जा का संरक्षण-नियम कहते हैं।

यांत्रिक ऊर्जा का संरक्षण-नियम प्रकृति का एक बहुत महत्त्वपूर्ण नियम है। अभी हमने इसका महत्त्व पूरी तरह नहीं बताया है। आगे चलकर जब हम अणुओं की गति की चर्चा करेंगे तो इस नियम की सम्पूर्णता और प्रकृति की सब घटनाओं के लिए व्यवहारिकता स्पष्ट हो जायेगी।

कार्य

यदि किसी पिंड को बिना किसी रुकावट के धकेला या अपनी दिशा में खिसकाया जाए तो उसकी गति त्वरित होगी। इस गति के दौरान गतिज ऊर्जा में हुई वृद्धि को A बल द्वारा किया गया कार्य कहते है:



चित्र 35

$$A = \frac{mv_2^2}{2} - \frac{mv_1^2}{2}$$

न्यूटन के नियमानुसार पिंड के त्वरण, फलस्वरूप गतिज ऊर्जा में वृद्धि को भी पिंड पर प्रभाव डाल रहे सब बलों के वेक्टर योग से ज्ञात किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर पिंड पर अनेक बल प्रभाव डाल रहे हों तो परिणामी बल द्वारा किया कार्य बराबर होगा $A = \frac{mv_2^2}{2} - \frac{mv_1^2}{2}$। आइए, अब कार्य को बल से व्यक्त करें।

सरलता के लिए हम केवल वह उदाहरण ही लेंगे जिसमें गति मात्र एक ही दिशा में सम्भव होती है (चित्र 35) – पटरी पर खड़ी गाड़ी को, जिसका द्रव्यमान m है, धकेलेंगे (या अपनी ओर खींचेंगे)।

एकसमान-त्वरित गति के साधारण सूत्र के अनुसार $v_2^2 - v_1^2 = 2aS$। इसविए S पथ पर सब बलों का कार्य बराबर होगा:

$$A = \frac{mv_2^2}{2} - \frac{mv_1^2}{2} = maS$$

गुणनफल ma गति की दिशा में पूर्ण बल के संघटक के बराबर है। इस तरह $A = f_{\text{अनुदैर्घ्य}} \times S$

बल द्वारा किया गया "कार्य" पथ और गति की दिशा में बल के संघटक के गुणनफल से मापा जाता है।

"कार्य" का यह सूत्र किसी भी प्रकार के बल और किसी भी गति-पथ के लिए सही है।

यहां यह भी बता दें कि "कार्य" तभी शून्य के बराबर होगा जब गतिमान पिंड पर बल प्रभाव डाल रहे हों।

उदाहरण के लिए, कोरिग्रॉलिस बल का कार्य शून्य के बराबर है। ग्राप तो यह जानते ही हैं कि यह बल गति की दिशा के ग्रभिलम्ब है। उसका ग्रनुदैर्ध्य संघटक नहीं होता है इस कारण कार्य शून्य के बराबर है।

पिंड के गति-पथ में किसी भी तरह की तबदीली होने पर ग्रगर पिंड की गति में कोई परिवर्तन न ग्राये तो कार्य नहीं होगा। इस स्थिति में गतिज ऊर्जा ग्रपरिवर्तित रहती है।

क्या कार्य ऋणात्मक हो सकता है? जी हां, ग्रगर बल गति की दिशा के साथ ग्रधिक कोण बनाता हो तो ऐसा बल गति में मदद नहीं, बल्कि रुकावट डालता है। बल का ग्रनुदैर्ध्य संघटक ऋणात्मक दिशा में होगा। ऐसी स्थिति में हम कह सकते हैं कि बल ऋणात्मक कार्य कर रहा है। घर्षण बल गति को सदा मन्द करता है यानी वह ऋणात्मक कार्य करता है।

गतिज ऊर्जा में ग्रायी वृद्धि से केवल परिणामी बल के कार्य के बारे में ही जाना जा सकता है।

जहां तक बाकी बलों के कार्य का सम्बन्ध है तो हम उन्हें $f_{\text{ग्रनुदैर्ध्य}} \times S$ के गुणनफल से मालूम करेंगे। मोटरगाड़ी सड़क पर एकसमान गति से चल रही है। गतिज ऊर्जा में वृद्धि नहीं हो रही है। इसका मतलब यह हुग्रा कि परिणामी बल का कार्य शून्य के बराबर है। लेकिन यह स्पष्ट है कि इंजन का कार्य शून्य नहीं है। इंजन द्वारा किया जानेवाला कार्य कर्षण बल ग्रौर मोटरगाड़ी द्वारा तय किए गए पथ के गुणनफल के बराबर है ग्रौर वह प्रतिरोध ग्रौर घर्षण-बल के ऋणात्मक कार्य द्वारा पूर्णतया सन्तुलित हो रहा है।

"कार्य" की संकल्पना का इस्तेमाल कर हम संक्षेप में ग्रौर स्पष्टतः गुरुत्व-बल की उन रोचक विशेषताग्रों के बारे में बता सकते हैं, जिनका हमने हाल ही में ज़िक्र किया था। ग्रगर गुरुत्व-बल के प्रभाव के कारण कोई पिंड एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है तो उसकी गतिज ऊर्जा बदल जाती है। गतिज ऊर्जा में ग्राया यह परिवर्तन कार्य A के बराबर होता है। लेकिन ऊर्जा-संरक्षण-नियम से हमें पता है कि गतिज ऊर्जा में वृद्धि स्थितिज ऊर्जा में कमी के कारण होती है।

ग्रतः गुरुत्व बल का कार्य स्थितिज ऊर्जा में ग्रायी कमी के बराबर होता है:

$$A = U_1 - U_2$$

स्पष्ट है कि स्थितिज ऊर्जा में आयी कमी (या वृद्धि) या गतिज ऊर्जा में हुई वृद्धि (या कमी) एक जैसी होगी और इस बात पर निर्भर नहीं करेगी कि पिंड ने कैसा पथ तय किया है। इसका अर्थ है कि गुरुत्व-बल का कार्य पथ के आकार पर निर्भर नहीं करता है। अगर पिंड के एक बिंदु से दूसरे बिन्दु पर जाने से गतिज ऊर्जा में वृद्धि होती है तो उसके दूसरे बिन्दु से पहले बिन्दु पर वापिस आने पर गतिज ऊर्जा में इतनी ही कमी होगी। और यह इस बात पर निर्भर नहीं करेगा कि पिंड के "जाने" और "आने" के रास्ते का आकार एक ही था या नहीं। यानी "आने" और "जाने" के कार्य भी बराबर होंगे। अगर कोई पिंड काफी लम्बा रास्ता तय करता है लेकिन उसका प्रारंभ-बिन्दु अंतिम बिन्दु से मिलता है तो कार्य शून्य के बराबर होगा।

एक मिनट के लिए ज़रा आप किसी भी आकार के मार्ग की कल्पना कीजिए जिस पर पिंड घर्षणहीन गति से फिसलता है। आइए, अब इस पिंड को इस मार्ग के सबसे ऊंचे बिन्दु से छोड़ दें। वह वेग प्राप्त करता हुआ तेजी से नीचे की ओर जाने लगता है। प्राप्त की गयी गतिज ऊर्जा के कारण वह ऊपर की ओर बढ़ेगा और उस बिन्दु पर जहां से वह चला था वापिस आ जाएगा। लेकिन वहां वापिस आने पर पिंड का वेग क्या होगा? निस्सन्देह, उसका वेग उतना ही होगा जिस वेग से वह चला था। स्थितिज ऊर्जा पहले जितनी हो जाती है। अगर ऐसा है तो गतिज ऊर्जा न तो कम होती है और न ही अधिक। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्य शून्य के बराबर हुआ।

वलयाकार पथ (भौतिक-विज्ञानी ऐसे पथ को संवृत पथ कहते हैं) पर सब बलों के लिए कार्य शून्य के बराबर नहीं होता है। यह सिद्ध करने की कोई ज़रूरत नहीं कि घर्षण-बल का कार्य उतना ही अधिक होगा जितना ज़्यादा लम्बा पथ होगा।

ऊर्जा और कार्य के मात्रक

कार्य चूंकि ऊर्जा में आये परिवर्तन के बराबर होता है, इसलिए कार्य और ऊर्जा को, चाहे वह गतिज ऊर्जा हो या स्थितिज, एक ही मात्रकों में नापते हैं। कार्य बल और पथ का गुणनफल होता है। एक डाइन के

बल द्वारा किसी बिन्दु को बल की दिशा में एक से० मी० खिसकाने के लिए किये गये कार्य को अर्ग कहते हैं:

1 अर्ग = 1 डाइन × सेंटीमीटर। यह छोटा-सा कार्य है। इतना कार्य तो मच्छर अंगूठे से तर्जनी तक पहुंचने के लिए गुरुत्व-बल के विपरीत करता है। कार्य अथवा ऊर्जा का इससे बहुत बड़ा मात्रक है जूल। इस मात्रक का भौतिक विज्ञान में प्रायः इस्तेमाल होता है। यह अर्ग से एक करोड़ गुना बड़ा है:

1जूल = 1 करोड़ अर्ग।

कार्य का एक और मात्रक भी इस्तेमाल किया जाता है (1 kgf × m)। यह एक किलोग्राम बल द्वारा किसी बिन्दु को बल की दिशा में एक मीटर खिसकाने के लिए किये गये कार्य के बराबर है। लगभग मेज़ से फ़र्श पर गिरा एक किलोग्राम का बाट भी इतना ही कार्य करता है।

हमें पता है कि 1 kg.f = 981000 डाइन, और 1 मीटर = 100 सेंटीमीटर। इसलिए 1 kgf × m = 98100000 अर्ग = 9.81 जूल। दूसरे शब्दों में:

1 जूल = 0.102 kgf × m

नई मात्रक प्रणाली (SI) में, जिसका इस पुस्तक के आरम्भ में हमने ज़िक्र किया था और आगे चलकर भी करेंगे, जूल को कार्य और ऊर्जा का मात्रक माना गया है। यहां जूल एक न्यूटन बल द्वारा किसी बिन्दु को बल की दिशा में एक मीटर खिसकाने के लिए किये गए कार्य के बराबर है (देखिए पृष्ठ ५०)। यह जानते हुए कि बल आसानी से मालूम किया जा सकता है, हमें समझने में मुश्किल नहीं होगी कि इस नई पद्धति की क्या श्रेष्ठताएं हैं।

ऊर्जा ह्रास

पाठक ने शायद इस बात पर ध्यान दिया होगा कि हमने यांत्रिक ऊर्जा के संरक्षण-नियम की चर्चा करते समय ऐसे वाक्यों "घर्षण के अस्तित्व के बिना, अगर घर्षण न होता तो..." का प्रयोग किया था। हमें यह भी पता है कि हर गति के समय घर्षण का अस्तित्व अवश्य होता है।

संरक्षण-नियम का क्या महत्त्व हो सकता है अगर वह इतनी महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक स्थिति को ध्यान में नहीं रखता है? इस प्रश्न का उत्तर हम यहां नहीं देंगे। आइए, अब हम यह देखें कि घर्षण की विद्यमानता से क्या होता है।

घर्षण-बल गति की दिशा के विपरीत लगे होते हैं, यानी वे ऋणात्मक कार्य करते हैं। इससे यांत्रिक ऊर्जा की अनिवार्य हानि होती है।

क्या यांत्रिक ऊर्जा की अनिवार्य हानि होने से गति समाप्त हो जाएगी? इस बात में हम आसानी से कायल हो सकते हैं कि घर्षण हर किसी गति को समाप्त नहीं कर सकता है।

अब ज़रा एक संवृत तन्त्र की कल्पना कीजिए जो पारस्परिक क्रिया कर रहे कुछ पिंडों से बना है। ऐसे संवृत तन्त्र के लिए, जैसा कि हमें पता है, आवेग-संरक्षण-नियम ठीक लागू होता है। संवृत तन्त्र अपने आवेग को नहीं बदल सकता है, इस कारण उसकी गति ऋजुरेखीय और एकसमान है। घर्षण ऐसे तन्त्र के अन्दर उसके हिस्सों की सापेक्ष गति को समाप्त कर सकता है, लेकिन पूर्ण तन्त्र के वेग या उसकी दिशा पर प्रभाव नहीं डाल सकता है।

प्रकृति का एक और नियम भी है (विस्तार में इसकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे) जिसे घूर्णी संवेग-संरक्षण नियम कहते हैं, जो घर्षण को पूर्ण संवृत तन्त्र की एकसमान गति को समाप्त नहीं करने देता है।

इस प्रकार घर्षण संवृत तन्त्र में पिंडों की हर गति को समाप्त कर सकता है, लेकिन मात्र एकसमान-ऋजुरेखीय तथा एकसमान घूर्णी गति को छोड़कर।

अगर पृथ्वी का घूर्णी वेग कुछ बदलता भी है तो इसका कारण पृथ्वी के पिंडों का परस्पर घर्षण नहीं है, बल्कि यह है कि वह एकाकी-तन्त्र नहीं है।

जहां तक पृथ्वी पर पिंडों की गति का सम्बन्ध है तो वे सबके सब घर्षण के प्रभाव में आते हैं और अपनी यांत्रिक ऊर्जा खोते हैं। इसलिए गति अवश्य समाप्त हो जाएगी, अगर उस पर कोई बाह्य बल प्रभाव न डाल रहा हो।

ऐसा है प्रकृति का नियम। अगर हम प्रकृति को धोखा देने में सफल हो जायें तो? तब ... तब गति को हमेशा बनाए रखा जा सकता है यानी वह शाश्वत होगी।

शाश्वत गति

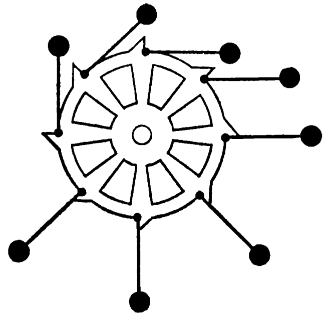
पुश्किन के "सामन्ती समयों के दृश्यों" का नायक बेर्तोल्द भी शाश्वत गति प्राप्त करने के सपने लेता है। "शाश्वत गति क्या है?", उससे संभाषी ने पूछा। "यह शाश्वत गति है", बेर्तोल्द ने उत्तर दिया। "अगर मैं एक ऐसी गति मालूम कर लूंगा तो मनुष्य की सृजनात्मक कार्य-क्षमता असीम हो जायेगी। सोना बनाना एक मोहक समस्या है। इसका हल बहुत रोचक और लाभप्रद सिद्ध हो सकता है, लेकिन शाश्वत गति को मालूम करना ..."।

"शाश्वत गति" या "शाश्वत इंजन" यह वह यंत्र है जो न केवल यांत्रिक ऊर्जा के कम होने के नियम के विपरीत ही काम करता है बल्कि यांत्रिक ऊर्जा के संरक्षण-नियम का उल्लंघन भी करता है। यह नियम, जैसा कि हमें मालूम ही है, बहुत ही आदर्श, अलभ्य शर्तों—घर्षणहीन माध्यम—के लिए ही लागू होता है। शाश्वत इंजन को अस्तित्व में आते ही "अपने आप" काम करना शुरू कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी पहिए को घुमाना या भार को ऊपर नीचे ले जाना शुरू कर देना चाहिए। यह कार्य अनन्त काल तक तथा लगातार होता रहना चाहिए, और इंजन में ईंधन की खपत नहीं होनी चाहिए, ऐसे इंजन के लिए न ही देखभाल की और न ही गिरते पानी की ऊर्जा की जरूरत होनी चाहिए। संक्षेप में ऐसे इंजन का काम करने के वास्ते बाहर से कुछ भी नहीं लेना चाहिए।

ऐसे शाश्वत इंजन को "मूर्त्त रूप" देने के विचार का पहला उल्लेख 13 वीं शताब्दी के एक दस्तावेज़ में मिलता है। एक और दिलचस्प बात तो यह है कि 6 शताब्दियों बाद यानी सन् 1910 में मास्को की एक वैज्ञानिक संस्था में लगभग ऐसी ही "परियोजना" पेश की गई थी।

शाश्वत इंजन की यह परियोजना चित्र 36 में दिखाई गई है। जब पहिया घूमता है तो भार नीचे की ओर गिरते और आविष्कारक के विचारानुसार गति को चालू रखते हैं, चूंकि नीचे की ओर गिर चुके भार घूर्णन अक्ष से अधिक दूरी पर होने के कारण ज़्यादा बल से दबाव डालते हैं। ऐसी साधारण "मशीन" बनाने के बाद आविष्कारक इस बात में कायल हो जाता है कि जड़त्व के कारण एक दो चक्कर के बाद ही

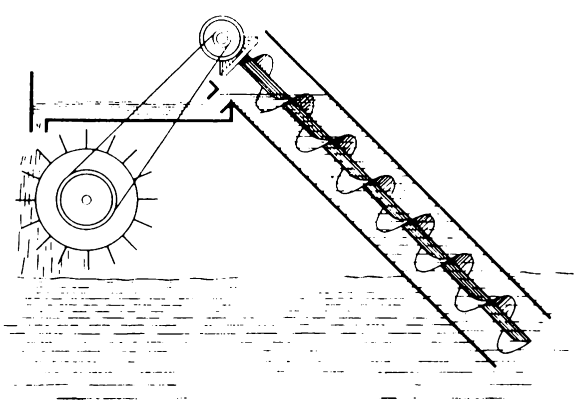
यह मशीन रुक जाती है। लेकिन वह इससे हतोत्साह नहीं होता। कोई गलती हो गई होगी: लीवर थोड़ा बड़े होने चाहिए और मशीन के बाहर निकले हुए भागों के आकार को बदलना चाहिए। यह व्यर्थ काम बिना किसी विशेष सफलता के आजकल भी हो रहा है। यही नहीं अनेक अव्यवसायी आविष्कारिकों ने तो इस काम के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।



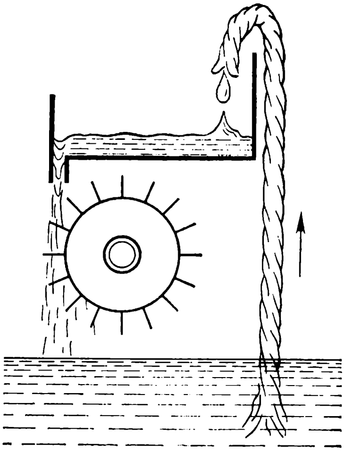
चित्र 36

प्रस्तावित शाश्वत इंजनों के रूपान्तर अधिक तो नहीं हैं: अपने आप चलनेवाले विभिन्न प्रकार के पहिए, जो सिद्धान्ततः ऊपरी रूपान्तर से भिन्न नहीं हैं, द्रवचालित इंजन – उदाहरण के तौर पर ऐसा एक इंजन चित्र 37 में दिखाया गया है जिसका आविष्कार सन् 1 634 में हुआ था; वे इंजन जिनमें साइफ़न या केशिका, (चित्र 38), पानी में भार की हानि (चित्र 39) या चुम्बक से लोहे के पिंडों के आकर्षण का प्रयोग होता है। हमेशा यह मालूम करना सम्भव नहीं होता है कि आविष्कारक की किस कल्पना पर शाश्वत गति आधारित होनी चाहिए।

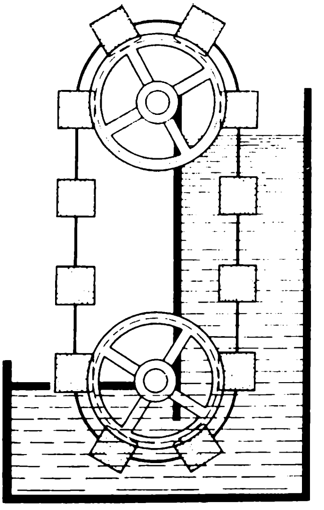
ऊर्जा-संरक्षण-नियम के निर्धारण से पहले ही सन् 1775 में फ़्रांस की



चित्र 37



चित्र 38



चित्र 39

अकादमी ने अपनी एक सरकारी घोषणा में बताया था कि शाश्वत गति असम्भव है और यह फैसला किया था कि वह आज से न तो किसी शाश्वत इंजन की परियोजना पर विचार करेगी और न ही ऐसे इंजनों की परख करेगी।

17 वीं और 18 वीं सदियों के बहुत-से इंजीनियरों ने शाश्वत गति की असम्भावना के बारे में स्वयंसिद्धि को अपने प्रमाणों का आधार मानते थे, हालांकि ऊर्जा और ऊर्जा-संरक्षण-नियम की संकल्पनाओं ने बहुत देर बाद विज्ञान में प्रवेश किया।

अब यह स्पष्ट हो चुका है कि वे सब आविष्कारक, जो किसी शाश्वत इंजन को बनाने की कोशिश करते हैं, न केवल प्रयोग का ही खण्डन करते हैं, बल्कि प्राथमिक तर्क को भी नहीं समझते हैं। आप जानते ही हैं कि शाश्वत गति की असम्भावना यान्त्रिकी के उन्ही नियमों का सीधा परिणाम है, जिनको शाश्वत इंजनों के आविष्कारक अपनी खोजों का आधार मानते हैं।

हालांकि शाश्वत इंजन की खोजें व्यर्थ रहीं, फिर भी इनसे कोई न कोई लाभप्रद बातें मालूम हुईं और ऊर्जा-संरक्षण-नियम इन खोजों का ही परिणाम है।

संघट्ट

दो पिंडों के किसी भी प्रकार के संघट्ट के दौरान आवेग संरक्षित रहता है। जहां तक ऊर्जा का सम्बन्ध है, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, तो वह किसी-न-किसी प्रकार के घर्षण की वजह से कम हो जाती है।

लेकिन, यदि टक्कर में भाग लेनेवाले पिंड किसी प्रत्यास्थ पदार्थ, उदाहरण के लिए हड्डी या इस्पात के बने हों तो ऊर्जा की हानि नाममात्र होगी।

ऐसी टक्करें जिनमें गतिज ऊर्जा के योग टक्कर से पहले और टक्कर के बाद बराबर हों उन्हें आदर्श प्रत्यास्थ टक्करें कहते हैं।

सब से प्रत्यास्थ पदार्थों से बने पिंडों की टक्कर के समय भी ऊर्जा की हानि बहुत कम होती है। हड्डी के बने बिलियर्ड-बालों के टकराव के दौरान 3-4% ऊर्जा की हानि होती है।

प्रत्यास्थ टक्कर के दौरान गतिज ऊर्जा का संरक्षण अनेक प्रश्नों को हल करने के योग्य बनाता है।

आइए, अब अलग-अलग द्रव्यमानों के गेंदों की सम्मुख टक्कर का अध्ययन करें। आवेग समीकरण निम्नलिखित रूप लेता है (हम यह मानकर चलते हैं कि गेंद No2 टक्कर से पहले विराम स्थिति में था):

$$m_1v_1 = m_1u_1 + m_2u_2$$

और ऊर्जा-समीकरण –

$$\frac{m_1v_1^2}{2} = \frac{m_1u_1^2}{2} + \frac{m_2u_2^2}{2}$$

जहां v_1 – पहले गेंद का टक्कर से पहले वेग, u_1 और u_2 – टक्कर के बाद गेंदों के वेग हैं।

गति चूंकि ऋजुरेखीय है, (ऋजुरेखा गेंदों के केन्द्रों में से गुज़रती है, इसका मतलब हुआ कि यह सम्मुख टक्कर है) इसलिए यह स्पष्ट है कि यहां वेक्टरों को अंकित करने की आवश्यकता नहीं है।

पहले समीकरण से पता चलता है कि

$$u_2 = \frac{m_1}{m_2}\left(v_1 - u_1\right)$$

u_2 के इस परिमाण को ऊर्जा-समीकरण में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं

$$\frac{m_1}{2}\left(v_1^2 - u_1^2\right) = \frac{m_2}{2}\left[\frac{m_1}{2}\left(v_1 - u_1\right)\right]^2$$

इस समीकरण का एक हल है $u_1 = v_1$ ग्रौर $u_2 = 0$। लेकिन इसका हमारे उदाहरण के लिए कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि $u_1 = v_1$ ग्रौर $u_2 = 0$ का मतलब है कि गेंद ग्रापस में टक्कराते ही नहीं। इसलिए इस समीकरण का कोई ग्रौर हल ढूंढ़ेंगे। $m_1(v_1 - u_1)$ से भाग देने पर हम पाते हैं:

$$\frac{1}{2}\left(v_1 + u_1\right) = \frac{1}{2} \cdot \frac{m_1}{m_2}\left(v_1 - u_1\right)$$

यानी

$$m_2 v_1 + m_2 u_1 = m_1 v_1 - m_1 u_1$$

या

$$(m_1 - m_2) v_1 = (m_1 + m_2) u_1$$

इस समीकरण से पहले गेंद का टक्कर के बाद वेग मालूम किया जाता है

$$u_1 = \frac{m_1 - m_2}{m_1 + m_2} \cdot v_1$$

ग्रगर चलते हुए गेंद का द्रव्यमान स्थिर गेंद से कम हो तो सम्मुख टक्कर होने पर वह पीछे की ग्रोर लौट ग्राता है (u_1 ऋणात्मक होता है)। यदि m_1 m_2 से बड़ा है, तो दोनों गेंद टक्कर की दिशा में गति जारी रखते हैं।

बिलियर्ड के खेल में जब दो गेंद की ऐन सम्मुख टक्कर होती है तो निम्नलिखित दृश्य देखने में ग्राता है; टक्कर मारनेवाला गेंद एकदम रुक जाता है ग्रौर जिस गेंद को वह टक्कर लगाता है वह जाली में गिर जाता है। यह बात ऊपरलिखित समीकरण से सिद्ध होती है। गेंदों का द्रव्यमान बराबर है तथा समीकरण से हम पाते हैं $u_1 = 0$, ग्रर्थात् $u_2 = v_1$। टक्कर मारनेवाला गेंद रुक जाता है ग्रौर स्थिर गेंद इस गेंद के वेग से चलने लगता है। गेंदों ने मानों ग्रपने वेग बदल लिए हों।

ग्राइए, ग्रब प्रत्यास्थ टक्कर के नियम के ग्राधार पर एक ग्रौर उदाहरण यानी दो एकसमान द्रव्यमानवाले पिंडों की तिरछी टक्कर (चित्र 40)

का अध्ययन करें। दूसरा पिंड टक्कर से पहले विराम स्थिति में था, इसलिए आवेग और ऊर्जा-नियमों को निम्नलिखित रूप में लिखेंगे :

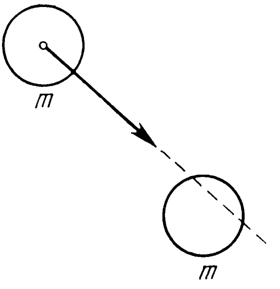
$$mv_1 = mu_1 + mu_2$$

$$\frac{mv_1^2}{2} = \frac{mu_1^2}{2} + \frac{mu_2^2}{2}$$

द्रव्यमान से विभाजित करने पर हम पाते हैं :

$$v_1 = u_1 + u_2$$

$$v_1^2 = u_1^2 + u_2^2$$



चित्र 40

वेक्टर v_1, u_1 और u_2 वेक्टरों का योग है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि वेग-वेक्टरों की लम्बाइयां एक त्रिभुज बनाती हैं।

यह त्रिभुज कैसा है? ज़रा पाइथैगोरस के प्रमेय को याद कीजिए। दूसरा समीकरण इस प्रमेय को व्यक्त करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वेग-त्रिभुज एक समकोण त्रिभुज होना चाहिए जिसका कर्ण v_1 और भुजाएं u_1 तथा u_2 हों। u_1 u_2 आपस में समकोण बनाती हैं। यह रोचक परिणाम बताता है कि किसी भी प्रकार की तिरछी प्रत्यास्थ टक्कर के बाद एकसमान द्रव्यमान के दो पिंड समकोण बनाते हुए चलते हैं।

५. दोलन

संतुलन

कई स्थितियों में संतुलन रखना बहुत मुश्किल होता है – कसी हुई रस्सी पर चलने की कोशिश तो कीजिए। लेकिन अगर कोई झूले खा रहा हो और अपने आप को संतुलित रखे तो कोई भी हैरान नहीं होता। देखा जाये तो वह भी तो अपने को संतुलित रखता है।

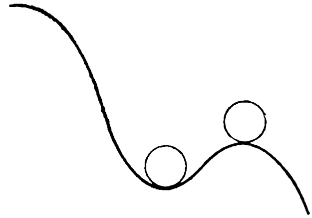
इन दोनों उदाहरणों में क्या अन्तर है? किन-किन स्थितियों में संतुलन "अपने आप" स्थापित हो जाता है?

ऐसा लगता है जैसे कि संतुलन की शर्त स्पष्ट ही है। पिंड अपने स्थान से न हिले, इसके लिए जरूरी है कि उस पर प्रभाव डाल रहे सब बल संतुलित हों या दूसरे शब्दों में इन सब बलों का योग शून्य के बराबर होना चाहिए। यह शर्त पिंड को संतुलित रखने के लिए वास्तव में ही बहुत आवश्यक है। लेकिन क्या यह शर्त पर्याप्त है?

चित्र 41 में एक ऐसी ढलान की रूपरेखा दिखाई गई है जिसे एक गत्ते को काटकर भी आसानी से बनाया जा सकता है। इस ढलान के अलग-अलग हिस्सों पर रखे गेंद का व्यवहार एक जैसा नहीं होगा तथा उसकी स्थिति पर निर्भर करेगा। ढलान के हर बिन्दु पर गेंद के ऊपर एक ऐसा बल प्रभाव डालेगा जिसके कारण गेंद नीचे की ओर लुढ़क जायेगा। यह है गुरुत्व-बल, अर्थात् उस बल का टीले की रूपरेखा की स्पर्शज्या की दिशा पर प्रक्षेप है, जो विचाराधीन बिन्दु में से खींची जाती है। इससे समझ में आता है कि ढलान जितनी कम होगी उतना ही गेंद पर प्रभाव डालनेवाला बल कम होगा।

हमें सबसे पहले वे बिन्दु ज्ञात करने हैं जिन पर गुरुत्व-बल टेक की प्रतिक्रिया को संतुलित करता है, अर्थात् गेंद पर प्रभाव डाल रहा परिणामी बल शून्य के बराबर है। यह शर्त या तो पहाड़ की चोटियों पर या नीचे वाले बिन्दुओं-खड्डों में लागू होती है। इन बिन्दुओं पर स्पर्शरेखाएं क्षैतिज हैं और गेंद पर प्रभाव डालनेवाले परिणामी बल शून्य होते हैं।

इसके बावजूद कि चोटियों पर परिणामी बल शून्य है, गेंद को वहां टिकाना मुश्किल होता हैं। अगर हमें ऐसा करने में सफलता प्राप्त हो भी जाती है तो हमें शीघ्र ही इस सफलता का कारण भी मालूम हो जायेगा – वह है घर्षण। तनिक-सा धक्का या हल्की-सी फूंक ही इस घर्षण बल को दूर करने के लिए पर्याप्त होगी और गेंद अपने स्थान से चल पड़ेगा तथा नीचे की तरफ़ लुढ़क जायेगा।



चित्र 41

चिकने टीले पर चिकने गेंद के लिए संतुलन की स्थिति केवल खाइयों में होगी। अगर गेंद को इस स्थिति में से हल्का-सा धक्का दे कर या फूंक मारकर हटा दिया जाया तो वह फिर अपनी पूर्वावस्था में आ जाएगा।

खाई में, गड्ढे में या गहराई में पिंड संतुलित स्थिति में होता है। इस स्थिति में से हट जाने पर पिंड उस बल के प्रभाव में आ जाता है जो उसे पहलेवाली स्थिति में ले आता है। टीले की चोटियों पर ऐसा नहीं होता है: इसका कारण यह है कि जब पिंड टीले के शीर्ष बिन्दु यानी अपने स्थान से हट जाता है तो उस पर उसी दिशा में वापस लाने वाला बल नहीं, बल्कि उसे दूर करने वाला बल प्रभाव डालता है। परिणामस्वरूप, स्थायी संतुलन के लिए परिणामी बल का शून्य के बराबर होना एक आवश्यक लेकिन पर्याप्त शर्त नहीं है।

टीले पर गेंद के संतुलन को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। हम यह जानते हैं कि टीले के उच्चतम् बिन्दु पर स्थितिज ऊर्जा अधिकतम और निम्नतम बिन्दु पर यानी खड्ड में – न्यूनतम होती है। ऊर्जा-संरक्षण-नियम के अनुसार पिंड अपनी उस स्थिति से, जहां स्थितिज ऊर्जा निम्नतम होती है, अपने आप नहीं हट सकता है। ऐसा परिवर्तन गतिज ऊर्जा को ऋणात्मक बना देगा, जो असम्भव है। टीले के शीर्ष बिन्दुओं पर बात दूसरी ही होती है। इन बिन्दुओं से हटने पर पिंड की स्थितिज ऊर्जा में कमी हो जाती है और इसका मतलब यह हुआ कि पिंड की गतिज ऊर्जा कम नहीं, बल्कि अधिक होगी।

संतुलन स्थिति में स्थितिज ऊर्जा का मान आस-पास के बिन्दुओं पर स्थितिज ऊर्जा के मान की अपेक्षा न्यूनतम होना चाहिए।

गड्ढा जितना गहरा होगा, उतनी ही अधिक स्थिरता होगी। ऊर्जा-संरक्षण-नियम का उपयोग कर हम यह मालूम कर सकते हैं कि पिंड किन स्थितियों में खड्ड में से बाहर निकल आयेगा। ऐसा करने के लिए हमें पिंड को इतनी गतिज ऊर्जा देनी होगी कि वह गड्ढे के ऊपर के कोने तक ऊपर उठ सके। गड्ढा जितना गहरा होगा, उतनी ही अधिक पिंड को गतिज ऊर्जा देनी होगी ताकि वह स्थायी संतुलन की स्थिति से बाहर आ सके।

साधारण दोलन

अगर खड्ड में पड़े हुए गेंद पर चोट मारी जाए, तो वह अपनी गतिज ऊर्जा को खोता हुआ ऊपर की ओर चढ़ना शुरू करेगा। गेंद गतिज ऊर्जा पूरी तरह खो देने पर पल भर के लिए रुक जायेगा और फिर नीचे आना शुरू करेगा। तब स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित होने लगेगी। गेंद का वेग बढ़ने लगेगा और वह जड़त्व से अपनी संतुलन स्थिति से आगे निकल कर फिर ऊपर की तरफ बढ़ना शुरू कर देगा, लेकिन विपरीत दिशा में। अगर घर्षण नाममात्र है, तो यह गति "ऊपर", "नीचे" बहुत अधिक देर तक चल सकती है। आदर्श स्थिति में अर्थात् सतह घर्षणहीन होने पर ऐसी गति शाश्वत होगी।

स्थायी संतुलन-स्थिति के आस-पास होनेवाली गति दोलन-गति होती है।

दोलन-गति का अध्ययन करने के लिए हम गड्ढे में ऊपर-नीचे जाते गेंद की गति का अध्ययन न करके, लोलक की गति का अध्ययन करेंगें। कारण यह है कि लोलक गति के दौरान घर्षण को बहुत कम किया जा सकता है।

जब लोलक किसी चरम स्थिति पर होता है तो उसका वेग और गतिज ऊर्जा शून्य के बराबर होते हैं। इस स्थिति में स्थितिज ऊर्जा अधिकतम होगी। लोलक नीचे की ओर आता है स्थितिज ऊर्जा कम होने लगती है और वह गतिज ऊर्जा में परिवर्ततित होती जाती है यानी वेग बढ़ता है। जब लोलक सबसे नीचे वाले बिन्दु पर पहुंचता है तो उसकी गतिज ऊर्जा

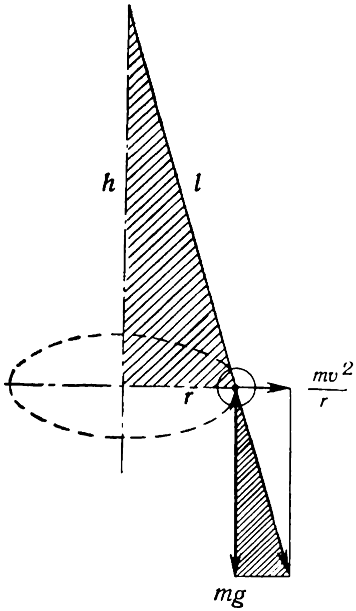
ग्रौर वेग ग्रधिकतम होंगे। उसके बाद लोलक फिर ऊपर उठना शुरू करता है। लोलक का वेग कम होने लगता है ग्रौर स्थितिज ऊर्जा फिर बढ़ने लगती है।

यदि घर्षण हानि को ध्यान में न लिया जाये तो भार बाईं ग्रोर उतना ही ऊपर जाएगा जितना कि दाईं ग्रोर ऊपर जाता है। स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है ग्रौर फिर उतनी ही "नई" स्थितिज ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह तो था लोलक के दोलन का ग्राधा भाग, दूसरी तरफ़ भी लोलक का दोलन ऐसा ही होगा लेकिन विपरीत दिशा में।

दोलन-गति पुनरावृत्त गति या जैसा कि प्रायः कहते हैं ग्रावर्तगति है। ग्रगर घर्षण बल को ध्यान में न रखा जाए तो लोलक ग्रपने प्रारम्भिक बिन्दु पर ग्राने पर हर बार ग्रपनी गति को दोहराता है। हर बार उसका पथ, वेग तथा त्वरण एक जैसा रहते हैं। दोलन का समय ग्रर्थात् जब वह दोबारा ग्रपने प्रारम्भिक बिन्दु पर ग्राता है, पहले दूसरे ग्रौर तीसरे ग्रादि दोलन के समय के बराबर होता है। यह समय दोलन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण लक्षण है, इसे ग्रावर्तकाल कहते हैं तथा T ग्रक्षर से व्यक्त करते हैं। T समय बाद गति दोहराई जाती है ग्रर्थात् T समय बाद हम दोलन करते हुए पिंड को एक दिशा ग्रौर एक ही बिन्दु पर देखेंगे। हर ग्राधे ग्रावर्तकाल बाद पिंड ग्रपनी गति की दिशा को बदल लेगा। चूंकि T वह समय है जिसमें एक दोलन पूरा होता है, तो लोलक एक सेकण्ड में $1/T$ दोलन पूरा करेगा जो n के बराबर है।

स्थायी संतुलन के ग्रास-पास की स्थिति में दोलन कर रहे पिंड का ग्रावर्तकाल किस बात पर निर्भर करता है? या लोलक के दोलन का ग्रावर्तकाल किस बात पर निर्भर करता है? सबसे पहले गैलीलिग्रो ने इस प्रश्न को पेश किया था ग्रौर इसका हल भी बताया था। ग्राइए, ग्रब हम लोलक के दोलन के ग्रावर्तकाल का सूत्र निकालें।

प्रारम्भिक प्रणाली से यांत्रिकी के नियमों का ग्रसमान एवं त्वरित गति के लिए प्रयोग करना कठिन है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए लोलक को ग्रभिलम्ब समतल में दोलन नहीं करने देंगे, बल्कि उसे एक ही ऊंचाई पर घूर्णन करने देंगे। लोलक को ऐसी गति देना कठिन नहीं है। ऐसा करने के लिए हमें शुरू में लोलक को केवल ऐसे धक्का देना होगा कि वह विस्थापन के ग्रर्धव्यास के ग्रभिलम्ब हो। इस धक्के का बल भी मालूम करना होगा।



चित्र 42

चित्र 42 में ऐसा ही एक "वृत्तीय" लोलक दिखाया गया है।

m द्रव्यमान का भार वृत्ताकार गति करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरुत्व-बल mg के अलावा अपकेन्द्री बल $m \times \frac{v^2}{r}$ भी उस पर प्रभाव डाल रहा है, जिसे हम $4\pi^2 n^2 rm$ से भी व्यक्त कर सकते हैं। यहां n लोलक द्वारा एक सेकण्ड में लगाये गये चक्करों की संख्या व्यक्त करता है। इस कारण अपकेन्द्री बल को निम्नलिखित सूत्र से भी लिख सकते है: $m \times \frac{4\pi^2 r}{T^2}$। इन दो बलों को संतुलित करनेवाला बल लोलक के तागे का तनाव है।

चित्र 42 में एक जैसे दो छायित समरूप त्रिभुज दिखाए गए हैं। एक तो बल-त्रिभुज और दूसरा दूरी-त्रिभुज है। इन त्रिभुजों में संगत भुजाओं का अनुपात बराबर है, अर्थात्

$$\frac{mgT^2}{m4\pi^2 r} = \frac{h}{r} \text{ अर्थात् } T = 2\pi\sqrt{\frac{h}{g}}$$

आइए, अब मालूम करें कि किन-किन बातों पर लोलक के दोलन का आवर्तकाल निर्भर करता है? यदि हम पृथ्वी की एक ही जगह पर प्रयोग करें, तो g अचर रहता है और दोलन का आवर्तकाल केवल लोलक के लटकाने वाले बिन्दु से लेकर भार के बिन्दु के बीच की ऊंचाई पर ही निर्भर करता है। भार का द्रव्यमान और गुरुत्व क्षेत्र दोलन के आवर्तकाल पर प्रभाव नहीं डालते हैं।

निम्नलिखित बात भी रुचिकर है। हम पिंड की स्थायी संतुलन स्थिति के आस-पास दोलन की गति का अध्ययन करते हैं। यदि विस्थापन कम है तो हम ऊंचाइयों के अंतर h को लोलक की लम्बाई l से भी व्यक्त कर सकते हैं। यह बात सरलता से परखी जा सकती है। अगर लोलक

की लम्बाई एक मीटर और विस्थापन का अर्धव्यास 1 सेंटीमीटर है, तो

$$h = \sqrt{10000 - 1} = 99.995 \text{ cm}$$

h और l के बीच एक प्रतिशत अन्तर 14 सेंटीमीटर के विस्थापन से ही आएगा। इसलिए स्वतन्त्र दोलन का आवर्तकाल, यदि संतुलन स्थिति से विस्थापन अधिक नहीं है, बराबर है

$$T = 2\pi\sqrt{\frac{l}{g}}$$

अर्थात् लोलक की लम्बाई और उस स्थान के गुरुत्व के त्वरण पर ही निर्भर करता है जहां प्रयोग किये गए हों, लेकिन संतुलन स्थिति से लोलक के विस्थापन पर निर्भर नहीं करता है।

सूत्र $T = 2\pi\sqrt{\frac{l}{g}}$ को वृत्तीय लोलक के लिए सिद्ध किया गया है, यह सूत्र एक साधारण "चपटे" लोलक के लिए कैसा होगा? पता चलता है कि यह सूत्र अपना रूप बदलता नहीं है। यहां हम पक्की तरह से सिद्ध नहीं करेंगे, लेकिन एक बात पर आप का ध्यान जरूर दिलाएंगे कि वज़न की छाया, जो वृत्तीय लोलक दीवार पर डालता है, लगभग वैसे ही दोलन करती है जैसे कि एक चपटा लोलक: छाया भी एक चक्कर बिल्कुल उतने ही समय में पूरा करती है, जितने समय में कि लोलक एक घूर्णन करता है।

समय को बहुत ही परिशुद्धता से मापने के लिए हम संतुलन स्थिति के आस-पास के छोटे दोलनों का प्रयोग करते हैं।

किंवदन्ती के अनुसार गैलीलीओ ने सिद्ध किया था कि लोलक के दोलन का आवर्तकाल लोलक के आयाम और द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता है। इस परिणाम पर वह गिरजाघर में पूजा के समय दो बड़े झूलते झाड़ फ़ानूसों को देख कर पहुंचे थे।

इस प्रकार लोलक के दोलन का आवर्तकाल उसकी लम्बाई के वर्गमूल के अनुपाती होता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक मीटर लम्बे लोलक के दोलन का आवर्तकाल, 25 सेंटीमीटर लम्बे लोलक के दोलन के आवर्तकाल का दो गुना होगा। इसी सूत्र से हम यह परिणाम भी निकाल सकते हैं कि एक ही लोलक पृथ्वी के अलग-अलग अक्षान्तरों

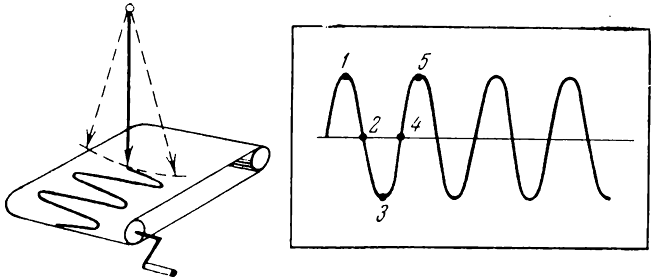
पर एक जैसा तीव्र दोलन नहीं करेगा। जैसे-जैसे हम भूमध्य-रेखा के पास आते हैं, गुरुत्व-बल का त्वरण कम होता जाता है और दोलन का आवर्तकाल बढ़ता जाता है।

दोलन के आवर्तकाल को बहुत ही परिशुद्धता से मापा जा सकता है। इसलिए लोलक के प्रयोगों की मदद से गुरुत्व-बल के त्वरण को भी बहुत ही परिशुद्धता से मापा जा सकता है।

दोलन की बनावट

आइए, लोलक के निचले हिस्से पर पेंसिल का सिक्का बांध दें और लोलक को ऐसे लटकाएं कि सिक्का काग़ज़ के टुकड़े को थोड़ा-थोड़ा छूए (देखिए चित्र 43)। अब लोलक को थोड़ा-सा विस्थापित करें। दोलन करता हुआ सिक्का काग़ज़ के धरातल पर एक सीधी रेखा खींचेगा। दोलन के बीच में, जब लोलक अपनी संतुलन स्थिति से निकलता है, यह लाईन थोड़ी मोटी होगी, क्योंकि इस स्थिति में ही सिक्का काग़ज़ पर बहुत अधिक दबाव डालता है। अगर हम काग़ज़ के टुकड़े को दोलन के समतल के अभिलम्ब रखें तो काग़ज़ पर, जैसा कि चित्र 43 में दिखाया गया है, एक वक्र रेखा की रचना होगी। यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि काग़ज़ पर खिंची लहरें घनी होंगी यदि काग़ज़ को धीरे-धीरे खींचा जाए, और विरली अगर काग़ज़ को तेज़ी से खींचा जाए। चित्र में दिखाई गई वक्र रेखा खींचने के लिए यह ज़रूरी है कि काग़ज़ के टुकड़े की गति एकसमान हो। ऐसा कर मानों हमने दोलन को "बना" लिया हो।

दोलन को बनाने की इसलिए आवश्यकता पड़ती है कि हम यह मालूम कर सकें कि लोलक का वज़न किस पल पर कहां था और किस दिशा में जा रहा था। एक मिनट के लिए ज़रा मान लीजिए कि काग़ज़ एक सेंटीमीटर/सेकण्ड के वेग से उस पल से चलना शुरू करता है जब लोलक चरम सीमा की स्थिति में, उदाहरण के तौर पर बीच के बिन्दु से दाईं ओर होता है। हमारे रेखाचित्र में इस प्रारंम्भिक स्थिति को उस बिन्दु से दिखाया गया है जिस पर 1 लिखा है। चौथाई आवर्तकाल बाद लोलक बीच के बिन्दु से गुज़रेगा। इस समय में काग़ज़ $1/4T$ सेंटीमीटर आगे बढ़ जायेगा। इस स्थिति को बिन्दु 2 से व्यक्त किया गया है। अब लोलक



चित्र 43

दाईं ओर चलता है, साथ-साथ काग़ज़ भी सरकता है। लोलक के अपनी चरम सीमा की स्थिति पर पहुंचने पर काग़ज़ $1/2T$ cm आगे बढ़ जाता है, इस स्थिति को बिन्दु 3 से व्यक्त किया गया है। इसके बाद लोलक फिर बीच के बिन्दु की ओर चलना शुरू करता है और $3/4T$ समय बाद अपनी संतुलन स्थिति पर पहुंच जाता है। इस स्थिति को बिन्दु 4 से व्यक्त किया गया है। बिन्दु 5 पर पहुंच कर एक दोलन पूरा हो जाता है और उसके बाद यह दोलन हर T सेकण्ड में या हर T सेंटीमीटर बाद ग्राफ़-पेपर पर दोहराया जाता है।

रेखाचित्र में अभिलम्ब रेखा संतुलन स्थिति से विस्थापन का मापक्रम और क्षैतिज रेखा समय का मापक्रम है।

ऐसे रेखाचित्र से हम दो परिमाण, जो दोलन को अच्छी तरह से व्यक्त करते हैं, सरलता से मालूम कर सकते हैं। आवर्तकाल एक जैसे दो बिन्दुओं के बीच की दूरी, उदाहरण के तौर पर दो शिखर बिन्दुओं के बीच की दूरी से मालूम किया जाता है। इसके अतिरिक्त संतुलन स्थिति से अधिकतम विस्थापन भी आसानी से मापा जा सकता है। इसी विस्थापन को दोलन का आयाम कहते हैं।

दोलन के रेखाचित्र से हम उपरोक्त प्रश्न का भी उत्तर दे सकते हैं: किस पल में दोलायमान बिन्दु की स्थिति क्या थी? उदाहरणत: 11 सेकण्ड बाद दोलन करता हुआ बिन्दु कहां होगा, अगर दोलन का आवर्तकाल 3 सेकण्ड है और गति बाईं ओर के अधिकतम ऊंचाई पर स्थित बिन्दु से शुरू हुई थी? चूंकि हर तीन सेकण्ड बाद दोलन उसी बिन्दु से शुरू होता है,

इसलिए नौ सेकण्ड बाद भी वह बाईं ओर अधिकतम ऊंचाई पर स्थित होगा।

यहां कई आवर्तकालों को दिखानेवाला रेखाचित्र खींचने की आवश्यकता नहीं है, केवल एक पूरे दोलन को दिखाते हुए चित्र से ही काम चल जायेगा। अगर आवर्तकाल तीन सेकण्ड है, तो दोलन करते हुए बिन्दु की 11 सेकण्ड बाद वही स्थिति होगी जो कि दो सेकण्ड बाद होगी। इस चित्र में दो सेंटीमीटर लम्बी लाइन खींच कर (हम यह पहले बता चुके हैं कि काग़ज़ का टुकड़ा एक सेंटीमीटर प्रति सेकण्ड के वेग से सरकाया जाता है या दूसरे शब्दों में यहां एक सेंटीमीटर = 1 सेकण्ड) हम देखेंगे कि 11 सेकण्ड बाद बिन्दु दाईं ओर के चरम बिन्दु और संतुलन बिन्दु के बीच में होगा। इस समय पर विस्थापन के परिमाण को चित्र से निकाल सकते हैं।

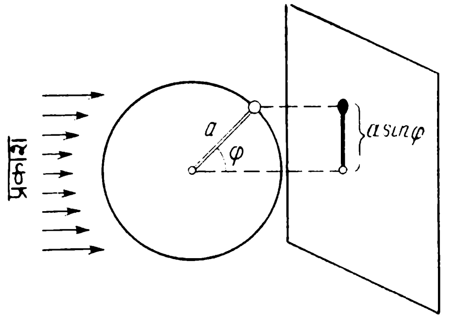
अपने संतुलन बिन्दु के आस-पास छोटा दोलन करने वाले बिन्दु के विस्थापन के परिमाण निकालने के लिए रेखाचित्र बनाना ज़रूरी नहीं है। हम यह जानते हैं कि इस स्थिति में विस्थापन और समय पर निर्भर करनेवाली वक्र रेखा एक साइन वक्र (साइन कर्व) होती है। अगर बिन्दु के विस्थापन को y से व्यक्त किया जाए, आयाम को a से और आवर्तकाल को T से तो दोलन के T समय बाद विस्थापन के मान को हम निम्नलिखित सूत्र से मालूम कर सकते हैं:

$$y = a \times \sin 2\pi \frac{t}{T}$$

इस सूत्र के अनुसार हो रहे दोलन को आवर्ती दोलन कहते हैं। साइन का कोणांक 2π और $\frac{t}{T}$ के गुणनफल के बराबर है। $2\pi \frac{t}{T}$ को काल (फ़ेज) कहते हैं।

त्रिकोणमितीय सारणियों के उपलब्ध होने और आयाम तथा आवर्तकाल मालूम होने पर हम बिन्दु के विस्थापन को सरलता से ज्ञात कर सकते हैं और काल के मान से यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि बिन्दु किस दिशा में चल रहा है।

घूर्णन करते हुए वज़न की दीवार पर छाया की गति का अध्ययन कर हम दोलन-गति के सूत्र को आसानी से मालूम कर सकते हैं।



चित्र 44

हम छाया के विस्थापन को माध्य स्थिति से व्यक्त करेंगे। चरम सीमा की स्थिति में विस्थापन y वृत्त के अर्धव्यास a के बराबर है। यह है छाया के दोलन का आयाम।

अगर इस माध्य स्थिति से वज़न φ कोण घूम गया है तो उसकी छाया भी माध्य बिन्दु से $a \sin \varphi$ तक विस्थापित हो जायेगी (देखिए चित्र 44)।

अगर भार की गति का आवर्तकाल T है (दोलन की छाया का आवर्तकाल भी यही होगा) तो इसका अर्थ यह हुआ कि T समय में वज़न 2π रेडियन घूम जायेगा। आगे हम लिख सकते हैं $\frac{\varphi}{t}=\frac{2\pi}{T}$ जहां t वह समय है जिसमें भार φ कोण बनाता है।

यहां से $\varphi=\frac{2\pi t}{T}$ और $y=a \sin \frac{2\pi t}{T}$। यही तो हम सिद्ध करना चाहते थे।

दोलन करते हुए बिन्दु का वेग भी साइन नियम के अनुसार बदलता है। वृत्ताकर घूर्णन करते हुए भार की छाया की गति का अध्ययन कर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं। इस भार का वेग स्थिर लम्बाई का वेक्टर v_0 है। वेग वेक्टर भी भार के साथ-साथ घूर्णन करता है। आइए, तनिक सोचें कि वेग वेक्टर एक तीर है जिसकी छाया कागज़ पर पड़ती हैं। वज़न की अधिकतम ऊंचाई की स्थिति में वेक्टर रोशनी की किरण के साथ-साथ होगा और उसकी कोई छाया नहीं पड़ेगी। और जब वज़न

इस स्थिति से वृत्त की दिशा में θ कोण बनाता है तो वेग वेक्टर भी इतने ही कोण पर मुड़ जाएगा और उसका प्रक्षेप $v_0 \sin\theta$ के बराबर होगा। उन्हीं आधारों पर जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है, $\frac{\theta}{t} = \frac{2\pi}{T}$ अर्थात् दोलन करते हुए पिंड का वेग किसी भी क्षण पर बराबर होता है:

$$v = v_0 \sin \frac{2\pi}{T} t$$

आइए, अब इस बात पर ध्यान दें कि विस्थापन मालूम करनेवाले सूत्र में हमने समय को माध्य स्थिति से और वेग के सूत्र में चरम स्थिति से मापना शुरू किया था। माध्य स्थिति में लोलक का विस्थापन और चरम बिन्दुओं पर दोलन का वेग शून्य के बराबर होता है।

दोलन के वेग के आयाम v_0 (इसे वेग के आयाम का मान भी कहते हैं) और विस्थापन के आयाम में एक साधारण सम्बन्ध है: वज़न दोलन के आर्वत काल T में $2\pi a$ परिधिवाले वृत को तय करता है, इसलिए

$$v_0 = \frac{2\pi a}{T} \text{ और } v = \frac{2\pi a}{T} \sin \frac{2\pi}{T} t$$

दोलन के समय बल और स्थितिज ऊर्जा

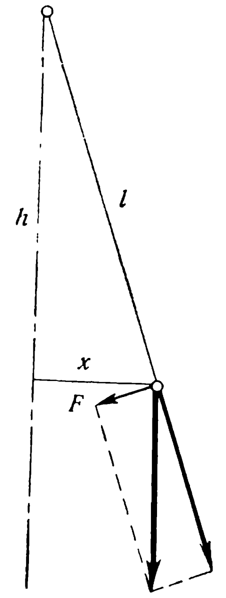
संतुलन स्थिति के आस-पास हो रहे हर तरह के दोलन के दौरान पिंड पर एक ऐसा बल प्रभाव डालता है, जो उसे संतुलन स्थिति में लौटाने की कोशिश करता है। जब बिन्दु अपनी संतुलन स्थिति से दूर होने लगता है, तो यह बल गति को धीमा कर देता है, और जब बिन्दु इस स्थिति यानी संतुलन स्थिति पर पहुंचता है तो यह बल गति को त्वरित करता है।

आइए, अब इस बल का लोलक के उदाहरण में अध्ययन करें। लोलक का भार गुरुत्व-बल और धागे के तनाव के प्रभाव में होता है। अब गुरुत्व-बल को दो संघटकों में विच्छेद करें—एक की दिशा तो धागे के साथ-साथ होगी और दूसरे की धागे के अभिलम्ब, पथ के स्पर्शज्या के साथ। लोलक को गति केवल गुरुत्व बल का टेंजैंट ही प्रदान करता है। यही तो इस उदाहरण में लौटाने वाला बल है। और जहां तक उस बल का सम्बन्ध हैं जिस की दिशा धागे के साथ-साथ है, तो वह कील की प्रतिक्रिया को

संतुलित करता है जिससे लोलक लटका हुआ है। इस बल को तभी ध्यान में लाना होगा जब यह प्रश्न उठेगा कि धागा क्या दोलन करनेवाले पिंड का गुरुत्व सह सकेगा या नहीं।

वज़न का विस्थापन हम x से व्यक्त करेंगे। विस्थापन चाप के साथ-साथ होता है, लेकिन हमने दोलन का संतुलन स्थिति के आस-पास ही अध्ययन करने का फैसला किया था। इसलिए हम चाप पर विस्थापन और अभिलम्ब रेखा से भार के विस्थापन में कोई भेद नहीं करते हैं। आइए, अब दो समरूप त्रिभुजों का अध्ययन करें (देखिए चित्र 45)। संगत भुजाओं का अनुपात कर्णों के अनुपात के बराबर होगा, अर्थात्

$$\frac{F}{x}=\frac{mg}{l} \text{ या } F=\frac{mg}{l}\times x$$



चित्र 45

दोलन के दौरान mg/l बदलता नहीं है। इस अचर परिमाण को हम k अक्षर से व्यक्त करेंगे। तब वापस लौटाने वाला बल $F = kx$ के बराबर होगा। इससे हम एक महत्त्वपूर्ण परिणाम निकालते है: लौटाने वाला बल संतुलन स्थिति से दोलायमान बिन्दु के विस्थापन के अनुक्रमानुपात होगा। लौटाने वाला बल दोलन करने वाले पिंड के चरम बिन्दुओं पर अधिकतम होगा। पिंड जब माध्य बिन्दु पर आता है तो बल शून्य हो जाता है और वह अपना चिन्ह बदल लेता है, या दूसरे शब्दों में अपनी दिशा बदल लेता है। पिंड जब दाईं ओर विस्थापित होता है, तो बल की दिशा बाईं ओर होती है और पिंड जब बाईं ओर विस्थापित होता है तो बल की दिशा दाईं ओर होती है।

लोलक दोलन करने वाले पिंड का सबसे सरल उदाहरण है। लेकिन हम यह चाहेंगे कि इस लोलक के वास्ते मालूम किए गए सूत्र और नियम दूसरी तरह के दोलनों के लिए भी लागू हों।

लोलक के दोलन का आवर्तकाल उसकी लम्बाई से व्यक्त किया गया था। ऐसा सूत्र केवल लोलक के लिए ही ठीक है। लेकिन हम निर्बाध

दोलन के आवर्तकाल को लौटाने वाले बल k से भी व्यक्त कर सकते हैं। चूंकि

$$k = \frac{mg}{l} \text{ तब } \frac{l}{g} = \frac{m}{k}$$

परिणामस्वरूप :

$$T = 2\pi\sqrt{\frac{m}{k}}$$

यह सूत्र हर तरह के दोलन के लिए ठीक है चूंकि हर कोई मुक्त दोलन लौटाने वाले बल के प्रभाव से ही सम्भव होता है।

अब हम लोलक की स्थितिज ऊर्जा को संतुलन स्थिति से विस्थापन x से व्यक्त करेंगे। सबसे नीचे वाले बिन्दु पर भार की स्थितिज ऊर्जा को हम शून्य के बराबर मान सकते हैं। और वज़न के ऊपर उठने का परिकलन इसी बिन्दु से शुरू करना चाहिए। लोलक के लटकने की जगह की ऊंचाई और विस्थापित भार की ऊंचाई के बीच के अन्तर को h से व्यक्त कर हम स्थितिज ऊर्जा को इस प्रकार लिखेंगे $U = mg\ (l - h)$ या वर्गों के अन्तर के सूत्र का इस्तेमाल करके :

$$U = mg \cdot \frac{l^2 - h^2}{l + h}$$

जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, $l^2 - h^2 = x^2$, l और h का अन्तर बहुत कम है, इसलिए हम लिख सकते हैं $l + h = 2l$ । तब $U = \frac{mg}{2l}x^2$ या

$$U = \frac{kx^2}{2}$$

दोलन करने वाले पिंड की स्थितिज ऊर्जा संतुलन स्थिति से विस्थापन के वर्ग के अनुपात में होती हैं।

आइए, अब इस सूत्र की सत्यता को परखें। स्थितिज ऊर्जा में हुई हानि लौटाने वाले बल के कार्य के बराबर होनी चाहिए। हम पिंड की दो स्थितियों – x_2 और x_1 – का अध्ययन करेंगे। स्थितिज ऊर्जा का अन्तर बराबर है :

$$U_2 - U_1 = \frac{kx_2^2}{2} - \frac{kx_1^2}{2} = \frac{k}{2}(x_2^2 - x_1^2)$$

लेकिन वर्गों के अन्तर को हम योग और अन्तर के गुणनफल से भी लिख सकते हैं। अर्थात् :

$$U_2 - U_1 = \frac{k}{2}(x_2 + x_1)\ (x_2 - x_1) = \frac{kx_2 + kx_1}{2}(x_2 - x_1)$$

लेकिन $x_2 - x_1$ पिंड द्वारा तय किया हुआ फ़ासला है, kx_1 और kx_2 गति के प्रारम्भ और अन्त में लौटाने वाले बल के मान हैं और $\frac{kx_1 + kx_2}{2}$ औसत बल के बराबर है।

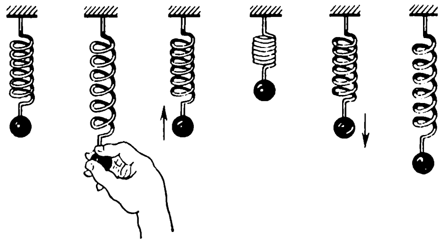
हमारे सूत्र से भी यही परिणाम निकलता है: स्थितिज ऊर्जा में हुई हानि किए गए कार्य के बराबर होती है।

कमानी का दोलन

गेंद को कमानी से लटका कर उसे आसानी से दोलायमान बनाया जा सकता है। ऐसा करने के वास्ते कमानी के एक सिरे को बांध देंगे और गेंद को थोड़ा-सा खींचेंगे (देखिए चित्र 46)। जब तक हम गेंद को खींचे रखते हैं तब तक कमानी तानित स्थिति में रहती है। अगर हाथ हटा लिया जाए तो स्प्रिंग सिकुड़ेगा और गेंद संतुलन स्थिति की ओर गति शुरू कर देगा। लोलक की तरह कमानी भी एकदम ही विराम स्थिति में नहीं आती है। जड़त्व के कारण गेंद संतुलन स्थिति से आगे निकल जाता है और कमानी सिकुड़ना शुरू करती हैं। गेंद की गति धीमी होने लगती है और किसी पल वह रुक जाता है, ताकि विपरीत दिशा में गति शुरू करे। पहले जैसे ठेठ लक्षणों वाला दोलन शुरू होता है, जिनसे हम लोलक का अध्ययन करते समय परिचित हुए थे।

अगर घर्षण न हो तो ऐसा दोलन अनन्त होगा। घर्षण के कारण दोलन अवमन्दन हो जाता है। जितना अधिक घर्षण होगा उतना ही ज़्यादा अवमन्दन होगा।

प्राय: लोलक और स्प्रिंग की भूमिकाएं एक जैसी हैं। लोलक या स्प्रिंग घड़ियों में आवर्तकाल को अचर बनाए रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। आधुनिक स्प्रिंगदार घड़ियों में परिशुद्ध चाल एक छोटे-से कालनियंत्रक पहिए की दोलायमान गति से सुनिश्चित की जाती है। एक स्प्रिंग इस



चित्र 46

पहिए को दोलायमान करता है, जो 24 घण्टों में लाखों बार खुलता है और लिपटता है।

तागे से लटके हुए गेंद को वापस लौटाने वाले बल का काम गुरुत्व बल का टैंजेंट संघटक करता है। स्प्रिंग पर से लटके हुए गेंद को अपनी प्रारम्भिक स्थिति में स्प्रिंग को संकुचित और खींचनेवाला प्रत्यास्थता बल लाता है। इसलिए प्रत्यास्थता बल विस्थापन के अनुक्रमानुपात होता है : $F = kx$

यहां गुणांक k पहलेवाले k से भिन्न है। इस सूत्र में k स्प्रिंग की दृढ़ता व्यक्त करता है। दृढ़ स्प्रिंग वह स्प्रिंग है जिसे संकुचित करना और खींचना मुश्किल हो। k स्प्रिंग के इसी लक्षण को व्यक्त करता है। सूत्र से यह स्पष्ट है कि k उस बल के बराबर है जो स्प्रिंग को एकांक लम्बाई तक फैलाने या संकुचित करने के लिए लगाया जाता है।

अगर हमें स्प्रिंग की दृढ़ता और उस पर से लटकाए गए भार का द्रव्यमान मालूम हों तो हम सूत्र $T = 2\pi\sqrt{\frac{m}{k}}$ की मदद से मुक्त दोलन का आवर्तकाल ज्ञात कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, 10 ग्राम वज़न स्प्रिंग से लटक रहा है जिसकी दृढ़ता 10^5 डाइन/सेंटीमीटर है (यह काफ़ी दृढ़ स्प्रिंग है – 100 ग्राम का बाट ऐसी स्प्रिंग को सिर्फ़ 1 सेंटीमीटर ही खींचेगा)। यह भार $T = 6.28 \times 10^{-2}$ सेकण्ड के आवर्तकाल से दोलन करेगा यानी एक सेकण्ड में 16 दोलन करेगा।

स्प्रिंग जितना मृदु होगा दोलन उतना ही मंद होगा। भार के द्रव्यमान में वृद्धि ऐसा ही प्रभाव डालती है।

आइए, अब स्प्रिंग से लटके गेंद के लिए ऊर्जा-संरक्षण-नियम का प्रयोग करें।

हमें पता है कि लोलक के लिए स्थितिज और गतिज ऊर्जाओं का योग $K+U$ अपरिवर्तित रहता है।

$K+U$ संरक्षित रहता है। लोलक के लिए K और U हमें मालूम है। ऊर्जा-संरक्षण-नियम के अनुसार

$\frac{mv^2}{2}+\frac{kx^2}{2}$ संरक्षित रहता है। यही बात कमानी से लटके वज़न के लिए भी ठीक है।

वह परिणाम जिस पर हम पहुँचने वाले हैं अत्यन्त रोचक है।

स्थितिज ऊर्जा, जिसके बारे में हम पहले बता चुके हैं, के अतिरिक्त एक और तरह की स्थितिज ऊर्जा का भी अस्तित्व होता है। पहली स्थितिज ऊर्जा गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा कहलाती है। अगर स्प्रिंग क्षैतिज स्थिति में होता, तो दोलन के समय गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा अपरिवर्तित रहती। इस नई स्थितिज ऊर्जा को प्रत्यास्थता-स्थितिज ऊर्जा कहते हैं। हमारे उदाहरण में वह $kx^2/2$ के बराबर है अर्थात् स्प्रिंग की दृढ़ता पर निर्भर करती है, और स्प्रिंग के दैर्ध्यवृद्धि के वर्ग के अनुक्रमानुपात है।

इसलिए दोलन की संपूर्ण ऊर्जा, जो कि अपरिवर्तित रहती है, को निम्नलिखित रूप में लिख सकते हैं $E=\frac{ka^2}{2}$ या $E=\frac{mv_0^2}{2}$।

अंतिम सूत्रों में प्रकट होनेवाले परिमाण a और v_0 दोलन के समय विस्थापन और वेग के अधिकतम मान हैं। यही विस्थापन और वेग के आयाम हैं। इन सूत्रों की बनावट पूरी तरह समझ में आ जाती है। चरम स्थिति में, जब $x=a$, गतिज ऊर्जा शून्य के बराबर होती है और पूर्ण ऊर्जा स्थितिज ऊर्जा के बराबर होती है। बीच की स्थिति में बिन्दु का संतुलन स्थिति से विस्थापन और, परिणामस्वरूप, स्थितिज ऊर्जा शून्य के बराबर होते हैं। इस पल वेग अधिकतम होता है, $v+v_0$ और पूर्ण ऊर्जा गतिज ऊर्जा के बराबर होती है।

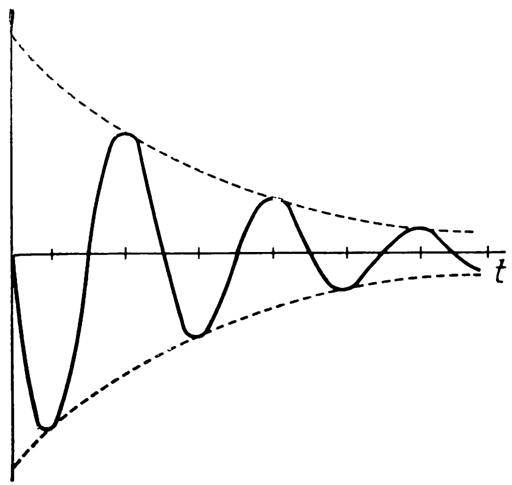
दोलन का अध्ययन भौतिक विज्ञान का एक विशाल क्षेत्र है। लोलक और स्प्रिंगों से प्राय: हमारा वास्ता पड़ता है। लेकिन यहीं पिंडों की सूची समाप्त नहीं हो जाती जिनके दोलन का अध्ययन करना पड़ता है। नीवें, जिन पर मशीनों को स्थापित किया जाता हैं, भी दोलन करती हैं, पुल भी दोलन कर सकते हैं, इमारतों के हिस्से, शहतीर, उच्च वोल्टता लाइन के तार भी दोलन करते हैं। ध्वनि हवा का दोलन या कम्पन है।

हमने केवल यांत्रिक दोलनों के कुछ-एक ही उदाहरण दिए हैं। लेकिन दोलन की संकल्पना का केवल पिंडों या कणों का संतुलन स्थिति से यांत्रिक विस्थापन के लिए ही उपयोग नहीं किया जाता है। अनेक वैद्युत परिघटनाओं में भी दोलन देखने में आता है। वहां दोलन लगभग उन्हीं नियमों के अनुसार होता है जिनका हम अध्ययन कर चुके हैं। भौतिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों में दोलन का अध्ययन किया जाने लगा है।

ज़्यादा जटिल दोलन

अभी तक जिस दोलन का अध्ययन किया गया था वह संतुलन स्थिति के आस-पास होता था और दोलन लौटाने वाले बल के प्रभाव से होता था। यह बल बिन्दु के संतुलन स्थिति से विस्थापन के अनुक्रमानुपात होता है। ऐसा दोलन साइन नियम के अनुसार होता है। ऐसे दोलनों को आवर्ती दोलन भी कहते हैं। सरल आवर्ती दोलन का आवर्तकाल आयाम पर निर्भर नहीं करता है।

अधिक विस्थापन वाले दोलन बहुत जटिल होते हैं। ऐसे दोलन साइन नियम के अनुसार नहीं होते हैं और कागज़ पर खींचा उनका रेखाचित्र



चित्र 47

तो बहुत जटिल होता है। यह रेखाचित्र अलग-अलग दोलयमान तन्त्रों के लिए अलग-अलग होते हैं। आवर्तकाल दोलन का एक विशिष्ट गुण न रहकर आयाम पर निर्भर करना शुरू कर देता है।

घर्षण हर तरह के दोलनों में काफ़ी परिवर्तन लाता है। घर्षण विद्यमान होने पर दोलन धीरे-धीरे मन्द हो जाता है। जितना ज्यादा घर्षण होगा, उतना ही अधिक अवमंदन होगा। पानी में डूबे हुए लोलक को ज़रा दोलन करने का प्रयत्न तो कीजिए। हमें सन्देह है कि आप यह कर पायेंगे। लोलक ज्यादा-से-ज्यादा एक या दो दोलन के बाद रुक जायेगा। यदि लोलक को एक बहुत ही श्यान माध्यम में डुबाया जाए तो वह दोलन करेगा भी नहीं। उसे एक ओर करके छोड़ने पर वह मात्र अपनी संतुलन स्थिति में आ जाएगा। चित्र 47 में एक अवमंदक दोलन का रेखाचित्र दिखाया हुआ है। उदग्र पर संतुलन स्थिति से विस्थापन को और क्षैतिज पर समय को व्यक्त किया गया है। अवमंदक दोलन का आयाम (अधिकतम विस्तार) हर दोलन बाद कम होता जाता है।

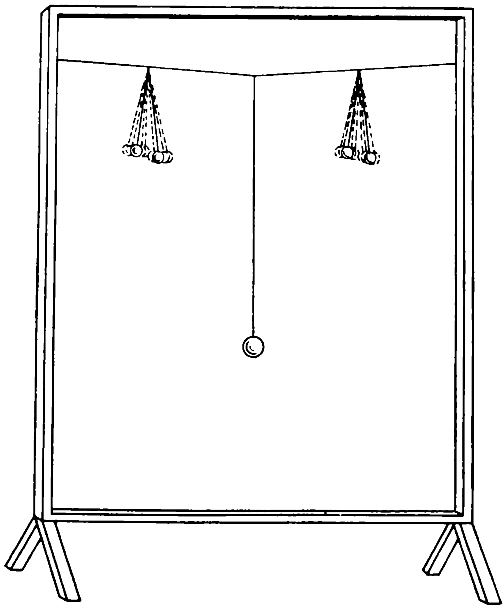
अनुनाद

बच्चे को झूले पर बैठा दिया है। वह पांवों से पृथ्वी को छू नहीं पा रहा है। उसे झूला देने के लिए झूले को काफ़ी ऊपर ले जाकर छोड़ दिया जा सकता है। लेकिन ऐसा करने में काफ़ी दम लगता है। अगर देखा जाए तो झूले को बहुत ऊपर ले जाने की आवश्यकता भी नहीं है: झूले को दोलायमान करने के वास्ते उसे केवल हल्का-सा धक्का देना ही काफ़ी है, कुछ समय बाद वह ज़ोर से झूलने लगेगा।

किसी पिंड को झुलाने के लिए उसके दोलन के चरण में उस पर प्रभाव डालना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि पिंड के स्वाभाविक दोलन के आवर्तकाल के बराबर आवर्तकाल से पिंड को धकेलना चाहिए। ऐसा होने पर पिंड अनुनाद (रेज़नन्स) में होता है।

अनुनाद की परिघटना का, जो दैनिक जीवन और तकनीक में अक्सर पायी जाती है, गहराई से अध्ययन किया जाना चाहिए।

निम्नलिखित यंत्र बनाने पर आप अनुनाद की एक बहुत रोचक और अपनी ही किस्म की परिघटना के साक्षी हो सकते हैं। इसके वास्ते एक



चित्र 48

तागा बांधिए और उस पर से तीन लोलक लटकाएं (देखिए चित्र 48)। इनमें से दो की लम्बाई कम होनी चाहिए और तीसरे की अधिक। अब छोटे लोलकों में से एक को विस्थापित करके छोड़ दें। आप देखेंगे कि दूसरा लोलक, जिसकी लम्बाई हिलाए गए लोलक के बराबर है, कुछेक सेकण्ड बाद धीरे-धीरे दोलन करना शुरू कर देता है। इसके कुछ समय बाद दूसरा लोलक इस प्रकार दोलन करेगा कि यह बताना मुश्किल हो जाएगा कि इनमें से कौन पहले गति में आया था।

इसका कारण क्या है? आप जानते हैं कि एक ही लम्बाई के लोलकों के स्वाभाविक दोलन का आवर्तकाल एक जैसा होता है। पहला लोलक दूसरे को हिला रहा है। एक लोलक से दूसरे को दोलन मिलता है उस तागे द्वारा जिससे कि वे बंधे हैं। लेकिन धागे पर एक और लोलक भी तो लटका हुआ है, जिसकी लम्बाई इन दोनों लोलकों से भिन्न है। उसके साथ क्या होगा? उसके ग्माथ कुछ भी नहीं होगा। इस लोलक का

आवर्तकाल दूसरा है, इसलिए छोटा लोलक इसे दोलन नहीं दे पायेगा। तीसरा लोलक एक लोलक से दूसरे लोलक को ऊर्जा "अन्तरण" की रोचक परिघटना के दौरान मात्र विद्यमान होता है लेकिन इस क्रिया में कोई भाग नहीं लेता है।

यांत्रिक अनुनाद से तो प्रायः सब का वास्ता पड़ता है। शायद, आपने इस पर ध्यान न दिया हो। कई बार तो अनुनाद नाक में दम कर देता है। उदाहरण के तौर पर, आपकी खिड़की के पास से ट्राम निकल गयी और भोजनालय में रखे बर्तन बजने लगे। इसका क्या कारण है? पृथ्वी ने अपनी कम्पन इमारत को दी और इमारत से यह कम्पन भोजनालय के फ़र्श को मिला तथा बर्तन कम्पायमान हो गए। इतनी दूर और कितने पदार्थों के द्वारा यह कम्पन फैला। इसका कारण है अनुनाद। बाह्य कम्पन पिंडों के स्वाभाविक कम्पन के बराबर था और वे अनुकम्पन करने लगे। हर तरह की खनखनाहट, जिसे हम कमरे में, फ़ैक्टरी में, या कार में सुनते हैं, का कारण अनुनाद ही है।

अन्य परिधटनाओं की तरह अनुनाद लाभदायक भी और हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

मशीन अपनी नींव पर खड़ी है। उसके गतिमान् हिस्से किसी विशेष आवर्तकाल से चलते हैं। तनिक यह सोचिए कि यह आवर्तकाल नींव के आवर्तकाल के बराबर है तो क्या होगा? नींव जल्द ही झूलने लगेगी और दुर्घटना भी हो सकती है।

एक तथ्य बहुत प्रसिद्ध है। पीटस्बर्ग के किसी एक पुल पर से फ़ौजियों की एक टुकड़ी मार्च करती हुई जा रही थी। पुल टूट गया। इस मामले की जांच की गई। लगता है कि यह जांच करने की कोई बुनियाद ही नहीं थी: इस पुल पर अक्सर लोग जमा होते थे, भारी भरकम गाड़ियां धीमे-धीमे इस पुल पर से जाती थीं जिनका भार फ़ौजी टुकड़ी से कहीं अधिक होता था।

लेकिन गुरुत्व के प्रभाव के कारण पुल थोड़ा-सा अवश्य नीचे की ओर झुकता है। अगर पुल झूलने लगे तो यह झुकाव बहुत ज़्यादा हो जायेगा। दोलन का अनुनादी आयाम इतने ही अचर भार के प्रभाव से पैदा हुए विस्थापन से कई हज़ार गुना अधिक हो सकता है।

जांच कमेटी ने भी यही निष्कर्ष निकाला था—पुल के दोलन का

स्वाभाविक आवर्तकाल उस पर से मार्च कर रही फ़ौजी टुकड़ी के कदमों के आवर्तकाल के बराबर था।

इसलिए जब फ़ौजी टुकड़ी पुल पार करती है तो उसे कदम मिलाकर न चलने का हुक्म दिया जाता है। अगर पुल पर से गुजरनेवाले लोगों की चाल एकसमान नहीं होगी तो पुल अनुनाद की स्थिति में नहीं आयेगा और झूलेगा नहीं। तिस पर भी इंजीनियरों को यह दुर्घटना अच्छी तरह याद है। अब पुलों को डिज़ाइन करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि मुक्त दोलनों का आवर्तकाल टुकड़ी के क़दम के आवर्तकाल से अलग हो।

मशीन की नींव को डालते समय भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि नींव का स्वाभाविक आवर्तकाल मशीन के गतिमान पुर्ज़ों के आवर्तकालों से बहुत भिन्न हो।

६. दृढ़ पिंडों की गति

बल का आघूर्ण

हाथ से एक भारी गतिपालक चक्र को घुमाने की कोशिश तो कीजिए। उसे आरे से खींचिए। आपको उसे घुमाने के लिए काफ़ी दम लगाना पड़ेगा अगर आप उसके अक्ष के बहुत पास से घुमाने का प्रयत्न करेंगे। हाथ को नेमि की ओर हटाकर गतिपालक चक्र को घुमाएं तो ज़्यादा ज़ोर नहीं लगाना पड़ेगा।

इसका क्या कारण है? दोनों दशाओं में बल तो एक जैसा लगाया था, लेकिन दूसरी दशा में आपने बल लगाने का बिन्दु बदल दिया था।

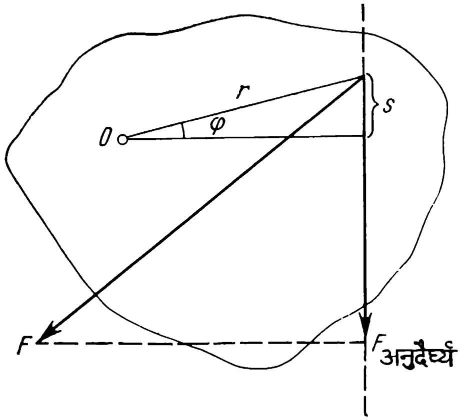
इससे पहले जो कुछ कहा गया था उसमें बल लगाने के बिन्दु के बारे में प्रश्न नहीं उठा था, क्योंकि जिन समस्याओं का अध्ययन किया गया था उनमें पिंड का परिमाण और आकार कोई महत्त्व नहीं रखते थे। वस्तुतः हमने पिंड को ही बिन्दु मान लिया था।

पहिये को घुमाने के उदाहरण से हम देखते हैं कि जब किसी पिंड को घुमाने या मोड़ने का प्रश्न उठता है तो यह जानना कि बल किस बिन्दु पर लगाया जाए खास तौर पर ज़रूरी है।

यह जानने के लिये कि बल लगाने के बिन्दु का महत्त्व क्या है, हम प्रथमतः उस कार्य को मालूम करेंगे जो हमें पिंड को किसी कोण पर मोड़ने के लिए करना पड़ता है। इसके वास्ते हम यह मानते हैं कि दृढ़ पिंड के सब कण अत्यन्त दृढ़ता से आपस में जुड़े हुए हैं (हम यहां पिंड के अनेक गुणों, जैसे कि लचकीलापन, संपीडयता आदि, पर ध्यान नहीं देंगे)। इसलिए पिंड के किसी भी कण पर लगा बल उसके सब कणों को गतिज ऊर्जा प्रदान करता है।

इस कार्य का परिकलन करने में बल-प्रयोग बिन्दु की भूमिका स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

चित्र 49 में अक्ष पर बंधा हुआ पिंड दिखाया गया है। पिंड के किसी



चित्र 49

छोटे-से कोण φ पर मुड़ने पर बल-प्रयोग बिन्दु एक चाप बनाता हुआ अपनी जगह से हट जाता है यानी वह s रास्ता तय करता है।

बल को गति की दिशा में प्रक्षेप करके यानी उस वृत की स्पर्शज्या पर जिस पर बल-प्रयोग बिन्दु गति कर रहा हो, प्रक्षेप करके हम कार्य A को परिचित सूत्र से व्यक्त करते हैं:

$$A = F_{\text{अनुदैर्घ्य}} \times s$$

लेकिन चाप s को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

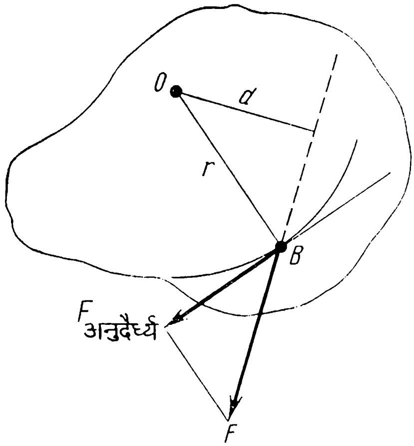
$$s = r\varphi$$

जहां r बल-प्रयोग बिन्दु और घूर्णन अक्ष के बीच की दूरी है। अतः

$$A = F_{\text{अनुदैर्घ्य}} \times r\varphi$$

यदि पिंड को एक ही कोण पर भिन्न-भिन्न तरीक़ों से मोड़ें तो ऐसा करने के लिए हम जो कार्य करेंगे वे भी बल-प्रयोग बिन्दु की स्थिति के अनुसार भिन्न होंगे।

यदि कोण मालूम है तो कार्य $F_{\text{अनुदैर्घ्य}}$ और r का गुणनफल होता है। इस गुणनफल



चित्र 50

$$M = F_{\text{अनुदैर्ध्य}} \times r$$

को ही बल का आघूर्ण कहते हैं।

इस सूत्र को दूसरा रूप भी दिया जा सकता है। O घूर्णन अक्ष को और B बल-प्रयोग बिन्दु को व्यक्त करता है (देखिये चित्र 50)। d—o से बल की दिशा में गिराये गए लम्ब की लम्बाई व्यक्त करता है। इस तरह चित्र में बने दो त्रिभुज सदृश हैं। इसलिए

$$\frac{F}{F_{\text{अनुदैर्ध्य}}} = \frac{r}{d} \quad \text{या} \quad F_{\text{अनुदैर्ध्य}} \times r = F \times d$$

d को बल की भुजा भी कहते हैं।

नये सूत्र $M = Fd$ को ऐसे पढ़ते हैं: बल का आघूर्ण–बल तथा उसकी भुजा का गुणनफल है।

अगर बल-प्रयोग बिन्दु को बल की दिशा में आगे बढ़ाया जाए तो बल की भुजा d तथा बल का आघूर्ण अपरिवर्तित रहेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि बल-प्रयोग बिन्दु को बल-रेखा पर कहीं भी लिया जा सकता है।

नई संकल्पना के आधार पर कार्य को संक्षिप्त में इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$A = M\varphi$$

अर्थात् कार्य बल के आघूर्ण तथा घूर्णन-कोण के गुणनफल के बराबर है।

मान लीजिए कि पिंड पर दो बल लगे हैं जिनके बल-आघूर्ण क्रमशः M_1 और M_2 हैं। पिंड के φ कोण पर मुड़ने पर कार्य होगा $M_1\varphi+$ $+M_2\varphi=(M_1+M_2)\varphi$। इस सूत्र से हम यह देखते हैं कि दो बल, जिनके बल-आघूर्ण क्रमशः M_1 और M_2 हैं, पिंड को ऐसे घुमाते हैं मानो उस पर एक ही बल, जिसका बल-आघूर्ण M है, लगा है, जो M_1+M_2 के बराबर है। बल-आघूर्ण एक-दूसरे की सहायता भी कर सकते हैं और एक-दूसरे के लिए रुकावट भी पैदा कर सकते हैं। यदि M_1 और M_2 किसी पिंड को एक ही ओर मोड़ने की चेष्ठा करते हैं तो हम कहेंगे कि उनके परिमाणों का एक ही बीजीय चिन्ह है। इसके विपरीत, पिंड को विभिन्न दिशाओं में मोड़नेवाले बल-आघूर्ण के बीजीय चिन्ह भिन्न होते हैं।

जैसा हमें ज्ञात है, पिंड पर लगे सब बलों का कार्य गतिज ऊर्जा में परिवर्तन लाता है।

पिंड के घूर्णन की गति मंद या तेज़ हो गयी है तो हम कहते हैं कि उसकी गतिज ऊर्जा बदल गयी है। ऐसा तभी सम्भव होता है यदि बल-आघूर्ण का योग शून्य नहीं है।

लेकिन यदि बल-आघूर्णों का योग शून्य है तो? इसका उत्तर स्पष्ट है – गतिज ऊर्जा में परिवर्तन नहीं हो रहा है, परिणामस्वरूप पिंड या तो जड़त्व के कारण एकसमान घूर्णन कर रहा है, या वह विराम स्थिति में है।

इसलिए पिंड को, जो घूर्णन कर सकता है, साम्यावस्था में रखने के लिए ज़रूरी है कि उस पर लगे बल-आघूर्ण संतुलित हो। अगर दो बल लगे हैं तो संतुलन के वास्ते आवश्यक है:

$$M_1+M_2=0$$

अभी तक हमने एसे ही प्रश्न हल किये थे जिनमें पिंड को एक बिन्दु माना जा सकता था, संतुलन की शर्तें सरल थीं: पिंड को विराम स्थिति में रहने या एकसमान गति से चलने के लिए, न्यूटन के नियमानुसार, ज़रूरी है कि परिणामी बल शून्य हो; ऊपर की ओर लगे बल नीचे की ओर लगे बलों को संतुलित करें; बाईं ओर लगा बल दाईं ओर लगे बल को संतुलित करे।

यह नियम हमारे उदाहरण के लिए भी लागू होता है। यदि गतिपालक

चक्र विराम स्थिति में है तब तो उस पर लगे बल अक्ष (जिस पर पहिया चढ़ाया हुआ है) की प्रतिक्रिया द्वारा संतुलित किये जाते हैं।

लेकिन ये अनिवार्य शर्तें अपर्याप्त हैं। बलों के संतुलन के अतिरिक्त यहां बल-आघूर्णों को भी संतुलित करना ज़रूरी होता है। बल-आघूर्णों का संतुलन दृढ़ पिंडों की विराम स्थिति या एकसमान घूर्णन के लिए दूसरी अनिवार्य शर्त है।

अगर पिंड पर अनेक बल-आघूर्ण लगे हैं तो उन्हें बिना किसी मुश्किल के दो ग्रुपों में बांटा जा सकता है: पहला – वे बल जो पिंड को दाईं ओर घुमाते हैं, दूसरा – वे जो पिंड को बाईं ओर घुमाते हैं। ये बल-आघूर्ण ही तो संतुलित किए जाने चाहिए।

लीवर

क्या कोई व्यक्ति 100 टन भार उठा सकता है, या हाथ से लोहे को चपटा कर सकता है या कोई बच्चा किसी पहलवान का मुकाबला कर सकता है? हां, ऐसा सब सम्भव है।

आइए, किसी पहलवान को गतिपालक चक्र को, अक्ष के ऐन पास से आरे को बाईं ओर पकड़ कर घुमाने के लिए कहें। इस स्थिति में बल-आघूर्ण बहुत कम होगा: बल बड़ा है, परन्तु बल की भुजा छोटी है। यदि बच्चा गतिपालक चक्र को विपरीत दिशा में, लेकिन परिधि के पास से आरे को पकड़ कर घुमाएगा तो बल-आघूर्ण अधिक होगा: बल कम होगा किन्तु बल की भुजा बड़ी होगी। संतुलन की शर्त होगी

$$M_1 = M_2 \text{ या } F_1 d_1 = F_2 d_2$$

बल-आघूर्ण के नियम का प्रयोग करके किसी भी आदमी को बेमिसाल बल प्रदान किया जा सकता है।

इसके ज्वलंत उदाहरण हैं लीवर।

आप एक भारी भरकम पत्थर को सब्बल से उठाना चाहते हैं। कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आप एसा कर सकते हैं, हालांकि पत्थर का भार कई टन है। टेक पर रखा सब्बल यहां एक दृढ़ पिंड है। टेक का बिन्दु ही घूर्णन केन्द्र है। पिंड के ऊपर दो बल-आघूर्ण लगे हैं: एक तो

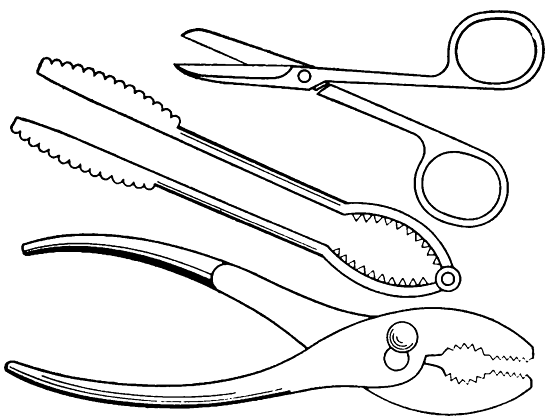
पिंड को उठाने में रुकावट डालता है—जो पिंड के भार की ओर है और दूसरा उसे धकेलने वाला—जो हाथ की ओर है। यदि हम पादांक 1) को पेशीय बल से और पादांक 2) को पत्थर के गुरुत्व से व्यक्त करें तो उठाने की सम्भावना को संक्षेप में लिखा जा सकता है: M_1 को M_2 से बड़ा होना चाहिए।

पत्थर को उठाया जा सकता है जब

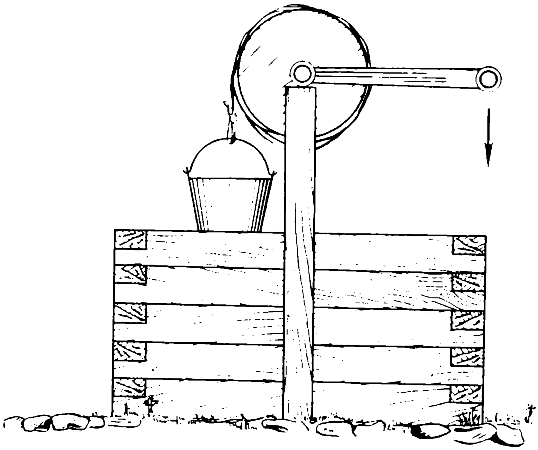
$$M_1 = M_2 \text{ अर्थात } F_1 d_1 = F_2 d_2$$

अगर छोटी भुजा—आलम्ब से पत्थर तक—बड़ी भुजा—आलम्ब से हाथ तक—से 15 गुना कम है तो एक टन भार वाले पत्थर को मनुष्य ऊपर उठायी हुई स्थिति में रख सकेगा अगर वह अपना सारा भार सब्बल के लम्ब किनारे पर लगाए।

आलम्ब पर रखा सब्बल—लीवर का सबसे प्रचलित तथा अत्यन्त सरल उदाहरण है। सब्बल की सहायता से बल में साधारणतः 10-12 गुना तक वृद्धि होती है। सब्बल की लम्बाई लगभग डेढ़ मीटर होती है और टेक को प्रायः सब्बल के सिरे से 10 सेंटीमीटर से कम दूरी पर रखना मुश्किल होता है। इसलिए एक भुजा दूसरी से लगभग 15-20 गुना बड़ी होती है अर्थात् बल में 15-20 गुना ही वृद्धि होती है।



चित्र 51



चित्र 52

ड्राइवर स्क्रू जैक की सहायता से कई टन वज़नी ट्रक को सरलता से उठा लेता है। स्क्रू जक भी सब्बल की तरह का ही ग्रालम्ब पर रखा हुग्रा लीवर है। बल-प्रयोग बिन्दु (हाथ, ट्रक का भार) स्कू जैक की टेक के दोनों ग्रोर हैं। यहां लगाए गए बल से 40-50 गुना ग्रधिक बल उठाया जा सकता है, इसलिए बहुत बड़े भार को भी ग्रासानी से उठाया जा सकता हैं।

कैंची, सरौता, प्लास, चिमटी, तार काटने की प्लास, तथा ग्रौर बहुत से यंत्र–ये सब लीवर हैं। चित्र 51 में दिखाये गये ग्रौज़ारों का घूर्णन केन्द्र (फल्क्रम) ग्रौर दोनों (रुकावट डालनेवाले तथा क्रिया करने वाले) बलों के प्रयोग बिन्दुग्रों को ग्रासानी से मालूम किया जा सकता है।

कैंची से टिन की चादर को काटते समय कैंची को ग्रधिक से ग्रधिक खोला जाता है। ऐसा क्यों किया जाता है? ऐसा करने से धातु की चादर को घूर्णन केन्द्र के पास लाना सम्भव हो जाता है। इससे रुकावट डालने वाले बल-ग्राघूर्ण की भुजा छोटी हो जाती है ग्रौर बल में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। कैंची चलाते समय वयस्क 40-50 किलोग्राम बल लगाता है। एक भुजा दूसरी भुजा से बीस गुनी ग्रधिक भी हो सकती है। पता चलता

है कि हम धातु को एक टन के बल से काट सकते हैं। इतना बड़ा बल हमें इतने सरल यंत्रों से मिलता है।

चर्खी भी लीवर का एक रूपान्तर है। चर्खी की सहायता से (देखिए चित्र 52) गांव में कुएं से पानी निकालते हैं।

रास्ते में हानि

यंत्र की सहायता से आदमी मुश्किल काम भी कर सकता है, लेकिन इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि यंत्र हमें कम कार्य करके अधिक कार्य लेने के योग्य बनाते हैं। ऊर्जा-संरक्षण-नियम यह बताता है कि कार्य में वृद्धि यानी "कुछ भी नहीं से" कार्य करना एक बिल्कुल नामुमकिन बात है।

प्राप्त कार्य किये गये कार्य से अधिक नहीं हो सकता। इसके विपरीत, घर्षण की वजह से ऊर्जा में हुई हानि के कारण यंत्रों की सहायता से प्राप्त कार्य किए गये कार्य से हमेशा कम होता है। आदर्श स्थिति में ही ये दोनों कार्य बराबर हो सकते हैं।

वास्तव में, हम इस स्पष्ट सत्य को समझाने में बेकार ही समय बरबाद कर रहे हैं: हमें पता है कि बल-आघूर्ण-नियम लगे हुए बल और घर्षण बल द्वारा किए गए कार्यों के बराबर होने की शर्त से निकाला गया था।

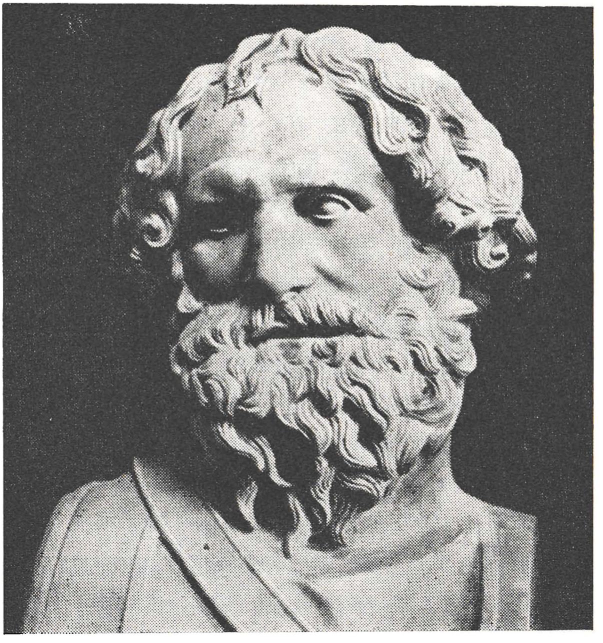
अगर बल-प्रयोग बिन्दु s_1 और s_2 दूरी तय कर चुके हैं तो कार्यों के बराबर होने की शर्त निम्नलिखित रूप में लिखी जाती है:

$$F_1^{\text{अनुदैर्ध्य}} \times s = F_2^{\text{अनुदैर्ध्य}} \times s_2$$

किसी बल F_2 को s_2 दूरी तक लीवरनुमा यंत्र की सहायता से हम F_1 बल से, जो F_2 से काफ़ी कम होगा, आगे ले जा सकते हैं। लेकिन ऐसा करने के वास्ते हाथ द्वारा तय किया फ़ासला s_1 s_2 से उतने गुना अधिक होना चाहिए जितना गुना पेशीय बल F_1 F_2 से कम है।

प्राय: यह नियम संक्षिप्त रूप में लिखा जाता है: बल में वृद्धि दूरी में हुई हानि के बराबर होती है।

यह लीवर-नियम प्राचीन काल के महान् वैज्ञानिक आर्किमीडीज़ ने खोजा था। ऐसे प्रयोगों के शौकीन इस वैज्ञानिक ने ज़ार गिरोन को लिखा था:



आर्किमीडीज़ (लगभग 287-212 ईसा पूर्व) – एक महान गणितज्ञ, भौतिक-विज्ञानी तथा इंजीनियर। उन्होंने गोले और उसके भागों, सिलिन्डर तथा दीर्धवृत्त, हाइपरबोला और पैराबोला के घूमने पर बने पिंडों के आयतन और क्षेत्रफल मालूम किए। सबसे पहले वृत्त की लम्बाई और उसके व्यास में अनुपात π को काफ़ी परिशुद्धता से मालूम किया और बताया कि वह $3\frac{1}{7}$ और $3\frac{10}{17}$ के बीच होता है। यांत्रिकी में उन्हें लीवर नियम और पिंडों के तैरने की परिस्थितियों ("आर्किमीडीज़ का नियम"), समान्तर बल-संयोजन नियम की खोज करने का श्रेय प्राप्त है। पानी को ऊपर उठाने के वास्ते एक मशीन यानी "आर्किमीडी पेच" का निर्माण किया, जिसका भार के परिवहन के वास्ते आज भी उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारी वजनों और उन तोपों को, जिन्होंने बहुत अच्छा काम किया था जब रोमनों द्वारा उनका मातृशहर सिराक घेरे में ले लिया गया था, उठाने के वास्ते लीवर तंत्रों और घिरनी आलंबों का भी निर्माण किया।

"यदि एक और पृथ्वी होती तो मैं उस पर जा कर अपनी पृथ्वी तक को धकेल देता"। एक बहुत लम्बे लीवर की सहायता से, जिसका आलम्ब पृथ्वी के पास होता, आर्किमीडीज़ ने यह कर दिखाया होता।

हम आर्किमीडीज़ के साथ इस बात पर दुखित नहीं होंगे कि ऐसा आलम्ब, जो कि आर्किमडीज़ को मिल नहीं रहा था, नहीं है जहां से पृथ्वी को धकेला जा सके।

आइए, कल्पना की ज़रा कुछ उड़ानें भरें: एक बहुत मज़बूत लीवर लेते हैं, उसे आलम्ब पर रखें और उसके छोट किनारे पर से "एक छोटा-सा गेंद लटकाएं" जिसका भार... 6×10^{24} kg. f है। इतना ही हमारी पृथ्वी का भार है, जिसकी हम "एक ठोस गेंद के रूप में कल्पना कर रहे हैं"। उसके बाद लीवर के लम्बे किनारे पर पेशीय बल लगाएंगे।

यदि यह सोच कर चला जाए कि आर्किमीडीज़ का पेशीय बल 60 kg. f था, तो "पृथ्वी के गेंद" को 1 सेंटीमीटर धकेलने के वास्ते उसके हाथ को $6 \times 10^{24}/60 = 10^{23}$ गुना अर्थात् 10^{18} किलोमीटर लम्बा रास्ता तय करना पड़ता जो कि पृथ्वी के व्यास का 3 अरब गुना है।

इस हास्यमय उदाहरण से स्पष्ट है कि लीवर के प्रयोग से "रास्ते में कितनी हानि होती" है।

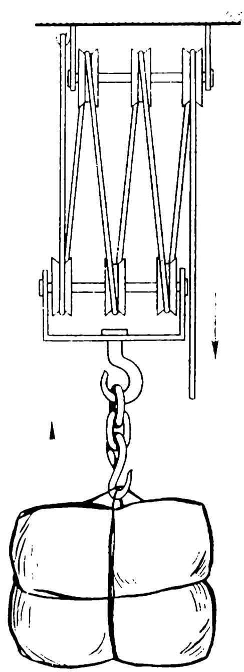
उपरोक्त उदाहरणों में से किसी एक को न केवल बल में वृद्धि बल्कि रास्ते में हानि को प्रदर्शित करने के लिए लिया जा सकता है। स्क्रू जैक को घुमा रहे ड्राइवर का हाथ जो रास्ता तय करेगा वह ट्रक को ऊपर ले जायी गयी दूरी (ऊंचाई) से उतना गुना अधिक होगा जितना गुना ट्रक का भार पेशीय बल से अधिक होगा। टिन की चादर को काटने के लिए कैंची चलाते समय हम जो कार्य करते हैं वह कटाई की गहराई से उतने गुना अधिक होगा जितने गुना पेशीय बल चादर के प्रतिरोध के कम होगा। सब्बल से उठाया गया पत्थर उतनी ही ऊंचाई पर उठता है जो हाथ के नीचे हुए मान से उतने गुना कम होती है जितने गुना पेशीय बल पत्थर के भार से कम होता है। यह स्क्रू की क्रिया का नियम स्पष्ट करता है। कल्पना कीजिए कि आपके पास एक मिलीमीटर पिच वाला एक बोल्ट है और उसे आप 30 सेंटीमीटर लम्बी चाबी से कस रहे हैं। चाबी को एक बार घुमाने पर बोल्ट केवल एक मिलीमीटर उठेगा लेकिन हमारा हाथ दो मीटर रास्ता तय कर लेगा। बल में हमें 2000 गुना

फ़ायदा होता है या तो हम आसानी से बोल्ट को कहीं कस सकते हैं, या हाथ के ज़रा से प्रयत्न से ही हम भारी से भारी वज़न को भी धकेल सकते हैं।

अन्य सरल मशीनें

रास्ते में हानि होती है तो बल में वृद्धि होती है, यह नियम सिर्फ़ लीवर यंत्रों पर ही नहीं, बल्कि मनुष्य द्वारा काम में लाये जानेवाले दूसरी तरह के उपकरणों और मशीनों के लिए भी लागू होता है।

भार उठाने के लिए घिरनी आलंब का प्रायः प्रयोग किया जाता है जिसमें अनेक चल घिरनियां, जो एक या अनेक स्थिर घिरनियों से जुड़ी होती हैं, भाग लेती हैं। चित्र 53 में 6 रस्सियों से लटका हुआ भार दिखाया गया है। यह स्पष्ट है कि भार बंट जाता है और रस्सी का तनाव भार से छः गुना कम है। एक टन भार उठाने के वास्ते सिर्फ़ 1000/6 = 167kg.f बल लगाने की ही जरूरत होगी। यहां से यह भी आसानी से समझ में आ जाता है कि भार को एक मीटर ऊपर उठाने के वास्ते 6 मीटर रस्सी की आवश्यकता पड़ेगी। भार को 1 मीटर ऊपर ले जाने के लिए हमें 1000 kg. fm कार्य करना पड़गा। यह कार्य हम "किसी भी रूप में" कर सकते हैं। 1000/6 kg. f बल 6 मीटर रास्ते पर लगा होना चाहिए 10 kg. f बल – 100 मीटर रास्ते पर लगेगा, एक kg. f बल – एक किलोमीटर रास्ते पर लगेगा।



चित्र 53

पृष्ट ३०-३२ पर हमने आनत समतल के बारे में उल्लेख किया था। वह भी एक तरह का यंत्र है जिसका रास्ते में हानि के साथ-साथ बल में वृद्धि करने के वास्ते उपयोग किया जाता है।

बल को बढ़ाने का अपनी ही क़िस्म का तरीक़ा है टक्कर। हथौड़ी, कुल्हाड़ी चलाने,

थापी या मात्र मुक्का मारने से बहुत बड़ा बल पैदा किया जा सकता है। ज़ोरदार टक्कर का रहस्य मुश्किल नहीं है। यदि हम किसी मज़बूत दीवार में कील ठोंकना चाहें, तो हमें उस पर बहुत ज़ोर से हथौड़ी मारनी चाहिए। हाथ को ऊपर उठाने यानी हथौड़ी को अधिक दूरी से लाकर कील पर मारने से गतिज ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती है। यह ऊर्जा छोटे से पथ पर दे दी जाती है। अगर हथौड़ी 1/2 मीटर की दूरी से लाकर मारी जाती है और कील 1/2 cm दीवार में चली जाती है, तो इसका मतलब यह हुआ कि बल 100 गुना बढ़ता है। लेकिन यदि दीवार काफ़ी मज़बूत है और हथौड़ी को पहले जितना घुमाने से कील केवल 1/2 mm दीवार के अन्दर जाती है तो यह टकराव का बल 10 गुना बढ़ेगा। मज़बूत दीवार में कील इतनी अधिक अन्दर नहीं जाती है और वही कार्य छोटी-सी दूरी पर ख़र्च हो जाएगा। ऐसा लगता है कि हथौड़ी भी एक स्वचालित मशीन की तरह काम करती है: वहां ज़ोर से चोट करती है, जहां दीवार अधिक मज़बूत है।

अगर हम एक किलोग्राम बल से हथौड़ी चलाएंगे तो वह 100 किलोग्राम बल से कील पर चोट करेगा। लकड़ी को कुल्हाड़ से काटते समय हम उस पर कई टन भार की चोट करते हैं। लोहार के भारी हथौड़े अधिक ऊंचाई, लगभग एक मीटर ऊंचाई से गिरते हैं। लोहे की सिल्ली को 1–2 मिली-मीटर पतली पट्टी में परिवर्तित करने के लिए एक टन भारी हथौड़ा कई हज़ार टन बल से सिल्ली पर चोट करता है।

दृढ़ पिंड पर लगे समानान्तर बलों का जोड़

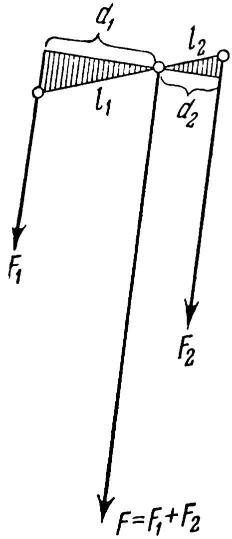
जब हमने पिछले पृष्ठों पर यांत्रिकी के प्रश्नों को हल किया था तो हमने यह माना था कि पिंड एक बिन्दु है। बलों का योग करना सरल था। समानान्तर चतुर्भुज बनाने से इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता था। बल समानान्तर होने पर तो उनके परिमाणों को संख्याओं की तरह जमा करते हैं।

यहां मामला कहीं जटिल है, चूंकि अब जब पिंड पर कोई बल लगा होता है तो उसके परिमाण और दिशा के अतिरिक्त यह भी जानना

आवश्यक होता है कि किस विन्दु पर यह बल लगा है, या जैसा कि ऊपर बताया गया है कि बल की क्रिया रेखा कहां से गुज़रती है।

बलों को जोड़ने का अर्थ है पिंड पर लगे सभी बलों की जगह एक बल लिखना। लेकिन ऐसा हमेशा सम्भव नहीं होता है।

समान्तर बलों को एक परिणामी बल में बदलना हमेशा सम्भव होता है (यह केवल एक स्थिति में सम्भव नहीं होता जिसके बारे में इस पैराग्राफ के अन्त में बताया जाएगा)। आइए, अब समान्तर बलों को जोड़ें। यह तो ज्ञात ही है कि 3 kg. f तथा 5 kg. f बलों का योग 8 किलोग्राम बल होगा अगर दोनों बल एक ही दिशा में लगे हैं। समस्या केवल परिणामी बल के प्रयोग बिन्दु (क्रिया रेखा) की खोज में निहित है।



चित्र 54

चित्र 54 में पिंड पर लगे दो बलों को दिखाया गया है। परिणामी बल F F_1 तथा F_2 बलों को प्रतिस्थापित करता है। इसका अर्थ केवल यह नहीं है कि $F=F_1+F_2$; F बल की क्रिया F_1 और F_2 बलों की क्रियाओं के समान तभी होगी अगर F बल का आघूर्ण F_1 तथा F_2 बलों के आघूर्णों के योग के बराबर होगा।

अब हम परिणामी बल F की क्रिया रेखा को मालूम करते हैं। अवश्य, वह F_1 और F_2 बलों के समान्तर है लेकिन इन बलों से कितनी दूरी पर से गुज़रती है?

बल F चित्र में एक ऐसे बिन्दु पर लगा है जो F_1 और F_2 बल-प्रयोग बिन्दुओं को मिलाती हुई रेखा पर स्थित है। बल-आघूर्ण F इस बिन्दु की अपेक्षा, निस्सन्देह, शून्य के बराबर है। इसलिए F_1 और F_2 बलों के आघूर्णों का योग भी इस बिन्दु की अपेक्षा शून्य होना चाहिए अर्थात् F_1 और F_2 बलों के आघूर्ण एकसमान होंगे लेकिन उनके चिह्न भिन्न होंगे।

d_1 और d_2 से F_1 और F_2 बलों की भुजाओं को व्यक्त करके इस शर्त को ऐसे भी लिख सकते है:

$$F_1 d_1 = F_2 d_2 \quad \text{अर्थात्} \quad \frac{F_1}{F_2} = \frac{d_2}{d_1}$$

चित्र में दिखाए छायित त्रिभुजों की सदृशता से परिणाम निकलता है कि $\frac{d_2}{d_1} = \frac{l_2}{l_1}$ अर्थात् परिणामी बल-प्रयोग बिन्दु जमा किए **जानेवाले** बलों को मिलाने वाली रेखा को l_1 और l_2 में विभाजित करता **है,** जो बलों के व्युत्क्रमानुपात होते हैं।

F_1 और F_2 बलों के प्रयोग बिन्दुओं के बीच की दूरी को l से व्यक्त करें। स्वभावतः $l = l_1 + l_2$।

अब हम दो समीकरणों वाले निकाय को, जिसमें दो राशियां अज्ञात हैं, हल करते हैं:

$$F_1 l_1 - F_2 l_2 = 0$$

$$l_1 + l_2 = l$$

और पाते हैं:

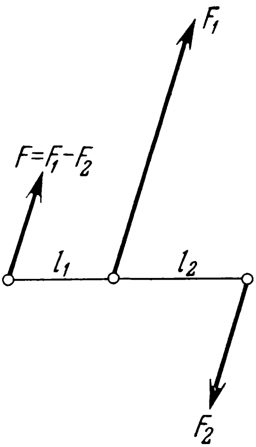
$$l_1 = \frac{F_2 l}{F_1 + F_2}, \quad l_2 = \frac{F_1 l}{F_1 + F_2}$$

इन सूत्रों की सहायता से हम परिणामी बल के प्रयोग बिन्दु को न केवल उस स्थिति में जब बलों की दिशा एक जैसी होती है बल्कि तभी भी जब बलों की दिशा एक दूसरे के विपरीत होती है (या जैसा कि कहते हैं प्रतिसमान्तर बलों के लिए भी) ज्ञात कर सकते हैं। यदि बलों की दिशा भिन्न है तो उनके चिन्ह भी अलग-अलग होंगे और परिणामी बल F बलों के अन्तर $F_1 - F_2$ के बराबर होगा न कि उनके योग के बराबर। दोनों में से कम बल F_2 को ऋणात्मक मान कर हम सूत्रों से मालूम करते हैं कि l_1 ऋणात्मक हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि F_1 का प्रयोग बिन्दु परिणामी बल के बाईं ओर नहीं (जैसा कि पहले था) लेकिन दाईं ओर (देखिए चित्र 55) है। ऐसा होने पर पहले की तरह ही

$$\frac{F_1}{F_2} = \frac{l_2}{l_1}$$

प्रतिसमान्तर बल एकसमान होने पर एक रोचक परिणाम निकलता है।

इस स्थिति में $F_1 + F_2 = 0$। सूत्रों से विदित होता है कि l_1 और l_2 इस स्थिति में अनन्त लम्बे हो जाते हैं। इस का भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से क्या अभिप्राय है? चूंकि परिणामी बल को अनन्त तक ले जाना असम्भव है, इस का मतलब यह हुआ कि एकसमान प्रतिसमान्तर बलों को एक बल में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। ऐसे बलों के संयोजन को बल-युग्म कहते हैं।



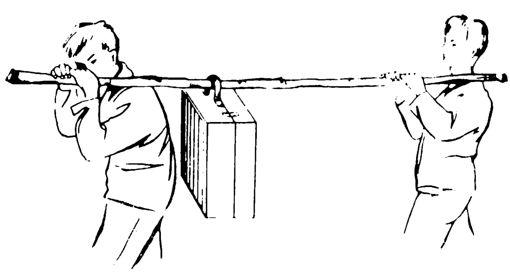
चित्र 55

बल-युग्म के प्रभाव को एक बल के प्रभाव में नहीं बदला जा सकता है। किसी भी प्रकार के दो समान्तर या प्रतिसमान्तर बलों को संतुलित किया जा सकता है, लेकिन बल-युग्म को नहीं।

निस्सन्देह, यह कहना ग़लत होगा कि बल-युग्म बनाने वाले बल एक दूसरे को नष्ट करते हैं। बल-युग्म एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य करता है – पिंड को घुमाता है; बल-युग्म की विशेषता इस बात में निहित है कि वह स्थानांतरीय गति नहीं होने देता है।

कुछ स्थितियों में समान्तर बलों को जोड़ने के बजाय किसी एक बल को दो समान्तर बलों में वियोजित करने की ज़रूरत पड़ सकती है।

चित्र 56 में दो मनुष्य दिखाए हैं जो छड़ी पर एक भारी सन्दूक को लटकाकर ले जा रहे हैं। सन्दूक का भार दोनों पर पड़ रहा है। अगर



चित्र 56

भार छड़ी के बीच में स्थित है तो दोनों एक जितना भार महसूस करेंगे। अगर भार-प्रयोग बिन्दु से उसे उठा ले जानेवालों के हाथों तक की दूरी d_1 और d_2 है तो F बल निम्न सूत्र से दो बलों F_1 और F_2 में वियोजित हो जायेगा

$$\frac{F_1}{F_2}=\frac{d_2}{d_1}$$

तगड़े आदमी को छड़ी को भार के पास से पकड़ना चाहिए।

गुरुत्व केन्द्र

पिंड के हर कण का भार होता है। इसलिए दृढ़ पिंड असंख्य गुरुत्व बलों के प्रभाव में होता है। तिस पर सब बल समान्तर भी होते हैं। अगर ऐसा है तो हम उन्हें ऊपरलिखित सूत्रों के अनुसार जोड़ तथा एक ही बल में परिवर्तित कर सकते हैं। परिणामी बल जिस बिन्दु पर लगा है, उसे ही हम गुरुत्व केन्द्र कहते हैं। इसी बिन्दु पर मानो पिंड का सारा भार केन्द्रित हो।

आइए, अब पिंड को उसके किसी एक बिन्दु से लटकाएं। ऐसा करने पर वह कैसे ठहरेगा? चूंकि हम पिंड को काल्पनिक रूप से गुरुत्व केन्द्र पर स्थित किसी एक केन्द्रित भार से बदल सकते हैं तो स्पष्ट है कि साम्यावस्था में यह भार टेक बिन्दु में से गुज़रने वाली ऊर्ध्वाधर रेखा पर स्थित होगा। दूसरे शब्दों में साम्यावस्था में गुरुत्व केन्द्र टेक बिन्दु में से गुज़रने वाली ऊर्ध्वाधर रेखा पर स्थित होगा और सबसे नीचेवाली स्थिति में होगा।

गुरुत्व केन्द्र को अक्ष में से गुज़रती हुई ऊर्ध्वाधर रेखा पर और टेक बिंदु के ऊपर भी स्थित किया जा सकता है। ऐसा करना बहुत मुश्किल से सम्भव होता है और वह भी केवल घर्षण के अस्तित्व के कारण। ऐसी साम्यावस्था स्थिर नहीं होती है।

हम स्थायी संतुलन की शर्त के बारे में पहले चर्चा कर चुके हैं – स्थितिज ऊर्जा न्यूनतम होनी चाहिए। ऐसा उस स्थिति में होता है जब कि गुरुत्व केन्द्र आधार बिन्दु से नीचे हो। किसी भी प्रकार का विस्थापन गुरुत्व

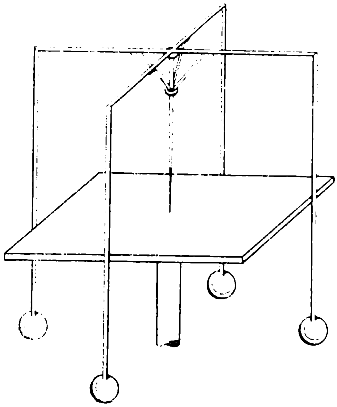
... को ऊंचा कर देता है, और इसका मतलब यह हुआ कि स्थितिज ... बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब गुरुत्व केन्द्र आधार बिन्दु से ऊपर ... है तो हल्की-सी फूंक भी पिंड को इस स्थिति से हटा सकती है, स्थितिज ऊर्जा कम हो जाती है। ऐसी स्थिति अस्थिर होती है।

आइए, अब गत्ते से कोई आकृति बनाएं। उसका गुरुत्व केन्द्र मालूम ... के लिए उसे धागे से दो बार अलग-अलग बिन्दु पर से लटकाएं; ... एक बिन्दु से, फिर दूसरे बिन्दु से। फिर गत्ते की इस आकृति को ... केन्द्र में से गुज़रनेवाले अक्ष से लटकाएंगे। अब इसे पहले एक, फिर ..., तीसरी स्थिति में घुमाते हैं। हम देखते हैं कि पिंड हमारी इन ... की ओर पूरी उदासीनता दिखाता है। हर बार संतुलन की कोई ... कोई विशेष स्थिति होती है। इसका ऐसा ही नाम रखते हैं—उदासीन स्थिति।

इसका कारण स्पष्ट है—आकृति की किसी भी स्थिति में उसको ...स्थापित करनेवाला बिन्दु एक ही जगह पर रहता है।

कुछेक स्थितियों में गुरुत्व केन्द्र को बगैर किसी परिकलन या प्रयोग के ... मालूम किया जा सकता है। स्पष्ट है, उदाहरण के लिए, कि गोले, ..., वर्ग, और आयात का गुरुत्व केन्द्र उनके केन्द्रों पर स्थित होगा क्योंकि ... सममित हैं। यदि काल्पनिक रूप से किसी सममित पिंड को छोटे-छोटे भागों में बांटा जाए, तो हर भाग के सदृश केन्द्र के दूसरी ओर सममिततः ... दूसरा भाग होगा। ऐसे भागों के प्रत्येक जोड़े का केन्द्र गुरुत्व केन्द्र होगा।

त्रिभुज का गुरुत्व केन्द्र उसकी माध्यिकाओं (मीडियनों) के प्रतिच्छेद बिन्दु पर स्थित होता है। आइए, अब इस त्रिभुज को उसकी किसी एक भुजा के समान्तर छोटी-छोटी पट्टियों में विभाजित करें। मीडियन हर पट्टी ... दो भागों में विभाजित करती है। लेकिन पट्टी का गुरुत्व केन्द्र, निस्सन्देह, पट्टी के मध्य में होता है यानी मीडियन पर। सब पट्टियों के गुरुत्व केन्द्र उनके मीडियनों पर ही स्थित होते हैं। उनके भार के बलों ... योग करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि त्रिभुज का गुरुत्व केन्द्र मीडियन पर ही कहीं स्थित है। यही तर्क किसी भी मीडियन के लिए ... उचित है। इसलिए गुरुत्व केन्द्र इन माध्यिकाओं के प्रतिच्छेद बिन्दु पर स्थित होना चाहिए।



चित्र 57

लेकिन हो सकता है कि आपको विश्वास न हो कि तीनों माध्यिकाएं एक ही बिन्दु पर प्रतिच्छेद करती हैं। यह रेखा गणित में सिद्ध किया जाता है: लेकिन हमारा तर्क भी इसी रोचक प्रमेय को सिद्ध करना है। यह तो आप जानते ही हैं कि एक ही पिंड के कई गुरुत्व केन्द्र तो नहीं हो सकते हैं; क्योंकि गुरुत्व केन्द्र एक ही होता है और वह भी माध्यिका पर ही स्थित होता है, चाहे हम किसी भी कोण से उसे क्यों न खींचें। इसका अर्थ यह हुआ कि तीनों माध्यिकाएं एक ही बिन्दु पर प्रतिच्छेद करती हैं। प्रश्न के भौतिक सूत्रीकरण ने रेखागणित के प्रमेय को सिद्ध करने में हमारी सहायता की।

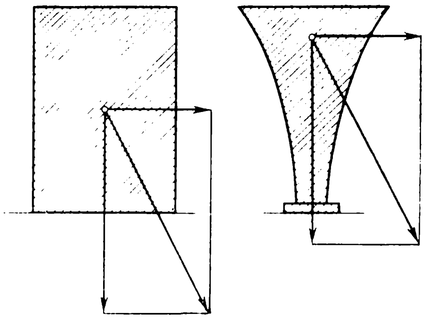
समांग शंकु का गुरुत्व केन्द्र मालूम करना अधिक मुश्किल होता है। सममिति के तर्कों से केवल एक बात अवश्य स्पष्ट है कि गुरुत्व केन्द्र अक्ष रेखा पर स्थित होता है। परिकलनों से पता चलता है कि वह आधार से एक-चौथाई ऊंचाई पर स्थित होता है। यह आवश्यक नहीं कि गुरुत्व केन्द्र पिंड के अन्दर ही स्थित हो। उदाहरण के तौर पर, छल्ले का गुरुत्व केन्द्र उसके केन्द्र पर यानी छल्ले के बाहर स्थित होता है।

क्या शीशे की चौकी पर पिन को ऊर्ध्वाधर स्थिति में रखा जा सकता है?

चित्र 57 में दिखाया गया है कि ऐसा कैसे किया जा सकता है। इसके वास्ते तार से बने दो क्रॉस-बारों को, जिन से चार छोटे-छोटे भार लटके हैं, पिन के सिरे पर मज़बूती से बांधना होगा। चूंकि भार आलम्ब से नीचे लटके हुए हैं और पिन का भार कम है, तो गुरुत्व केन्द्र भी आलम्ब से नीचे स्थित होगा। यह स्थिर अवस्था है।

अब तक तो हमने केवल आलम्ब (फल्क्रम) पर टिके पिंडों का उल्लेख किया है। अगर पिंड पूरी चौकी पर टिका हो तो क्या होगा?

स्पष्ट है कि इस स्थिति में यदि गुरुत्व केन्द्र आलम्ब से ऊपर भी होगा



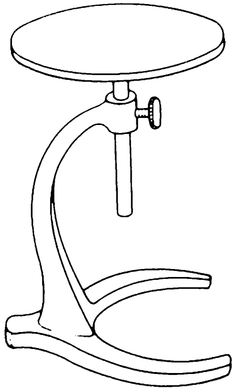
चित्र 58

तो ग्रावश्यक नहीं कि संतुलन ग्रस्थायी हो। ग्रगर ऐसा हो तो मेज़ पर गिलास कैसे टिके रह सकते थे? स्थिरता के लिए जरूरी है कि पिंड की दिकमान् सतह उस समतल पर दबाव डाले जिस पर वह टिकी हुई है। इस कारण सतह पर टिके पिंड स्थायी रूप से खड़े रहेंगे ग्रगर उनके गुरुत्व बल की क्रिया रेखा, जो गुरुत्व केन्द्र से खींची गयी है, ग्रालम्ब की चौकी में से गुज़रती है। इसके विपरीत, ग्रगर बल की क्रिया रेखा ग्रालम्ब की चौकी के बाहर से गुज़रती है तो पिंड गिर जाता है।

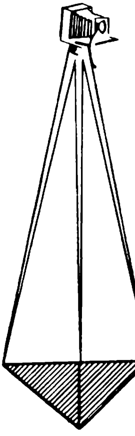
स्थिरता की मात्रा भिन्न हो सकती है ग्रौर यह इस बात पर निर्भर करता है कि गुरुत्व केन्द्र ग्रालम्ब से कितना ऊपर स्थित है। चाय का गिलास तो केवल फूहड़ ग्रादमी ही गिरा सकता है लेकिन छोटे ग्राधारवाला गुलदान तनिक-सा छूने से ही गिर जाता है। इसका क्या कारण है?

चित्र 58 को देखने पर पता चलता है कि एक ही टिल्टिंग बल को गुरुत्व बल के साथ जमा करने पर परिणामी बल मिलता है। यह बल पिंड को टेक पर दबाता है, ग्रगर गुरुत्व केन्द्र नीचे स्थित है। ग्रगर वह ऊपर की ग्रोर है तो परिणामी बल टेक की सतह में से नहीं गुज़रता है, बल्कि उसके बगल से होकर जाता है।

हम बता चुके हैं कि पिंड की स्थिरता के लिए उस पर लगाये गये बल को टेक की सतह में से गुज़रना चाहिए। लेकिन टेक की सतह, जो संतुलन के लिए ग्रावश्यक होती है, टेक की वास्तविक सतह से मेल नहीं खाती है। चित्र 59 में एक पिंड दिखाया हुग्रा है जिसकी टेक की सतह



चित्र 59



चित्र 60

अर्द्धचन्द्राकार है। यह बात सरलता से समझ में आ जायेगी कि पिंड की स्थिरता में कोई अन्तर नहीं आयेगा अगर अर्द्धचन्द्र को ठोस अर्धवृत्त बना दिया जाए। इसलिए संतुलन की शर्त को निर्धारित करनेवाली टेक की सतह वास्तविक सतह से बड़ी भी हो सकती है।

चित्र 60 में दिखायी गयी तिपाई की टेक सतह मालूम करने के लिए उसके सिरों को सरल रेखाओं से मिलाना चाहिए।

रस्से पर चलना इतना कठिन क्यों है? इसका कारण यह है कि टेक की सतह बहुत कम होती है। रस्से पर चलना आसान नहीं है, इसी लिए रस्से पर चलने वाले निपुण नटों का तालियों से स्वागत किया जाता है। लेकिन कई बार दर्शकगण धोखा खा जाते हैं और नट के उन करतबों को मुश्किल समझते हैं जो कि नट रस्से पर चलने के वास्ते दिखाता है। उदाहरण के लिए, नट एक काफ़ी झुके हुए डंडे, जिस पर पानी-भरी दो बाल्टियां लटकी होती हैं, को लेकर रस्से पर चलता है। बाल्टियां रस्से की ऊंचाई पर होती हैं। वह बैंड बाजे के शोर गुल के बिना काफ़ी गम्भीर मुद्रा बनाकर रस्से के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाता है। कितना मुश्किल करतब है, दर्शकगण सोचता है। लेकिन वास्तव में तो नट ने यह भार उठाकर अपना काम आसान कर लिया; गुरुत्व केन्द्र नीचे कर दिया।

जड़त्वीय केन्द्र

यह प्रश्न करना भी स्वाभाविक है कि पिंडों के समूह का गुरुत्व केन्द्र कहां स्थित होता है। यदि किसी बेड़े पर बहुत से लोग हैं तो उनके गुरुत्व केन्द्र की स्थिति (बेड़े के साथ) पर बेड़े की स्थिरता निर्भर करेगी।

यहां भी पहलेवाले तर्क सही हैं। गुरुत्व केन्द्र वह बिन्दु है जहां विचाराधीन ग्रुप के सब पिंडों का गुरुत्व भार केंद्रित होता है।

दो पिंडों का गुरुत्व केन्द्र निकालना तो हम जानते हैं। यदि दो पिंड, जिनका भार F_1 और F_2 है, एक दूसरे से x दूरी पर स्थित हैं तो गुरुत्व केन्द्र पहले पिंड से x_1 दूरी और दूसरे पिंड से x_2 दूरी पर स्थित होगा। यहां

$$x_1 + x_2 = x \quad \text{और} \quad \frac{F_1}{F_2} = \frac{x_2}{x_1}$$

चूंकि भार को mg के गुणनफल से व्यक्त किया जा सकता है, तो दो पिंडों का गुरुत्व केन्द्र निम्नलिखित शर्त को पूरा करता है:

$$m_1 x_1 = m_2 x_2$$

यानी उस बिन्दु पर स्थित होता है जो दोनों द्रव्यमानों के बीच की दूरी को द्रव्यमानों के व्यत्क्रमानुपात में बांटता है।

आइए, अब हम चबूतरे पर स्थापित तोप में से दागे गये गोले को देखें। गोले और तोप के आवेग बराबर, लेकिन विपरीत दिशा में होते हैं। अत:

$$m_1 v_1 = m_2 v_2 \quad \text{अथवा} \quad \frac{v_2}{v_1} = \frac{m_1}{m_2},$$

वेगों के बीच यह अनुपात समस्त पारस्परिक क्रिया के समय बना रहता है। गति के समय, जो प्रतिक्षेप के कारण उत्पन्न होती है, तोप और गोला अपनी पहली स्थिति की अपेक्षा x_1 और x_2 दूरियों पर विस्थापित हो जाते हैं। x_1 और x_2 में वृद्धि होती है यानी पिंडों द्वारा तय की जानेवाली दूरियां बढ़ती हैं, लेकिन अगर वेगों का अनुपात एक ही रहता है तो दूरियां x_1 और x_2 भी हमेशा एक ही अनुपात में रहेंगी।

$$\frac{x_2}{x_1} = \frac{m_1}{m_2} \quad \text{या} \quad x_1 m_1 = x_2 m_2$$

x_1 ग्रौर x_2 वे दूरियां हैं, जो तोप ग्रौर गोला ग्रपनी पहलेवाली स्थिति के बाद तय करते हैं। इस सूत्र की गुरुत्व केन्द्र की स्थिति ज्ञात करवाने-वाले सूत्र के साथ तुलना करने पर हम देखते हैं कि वे सर्वसम हैं। यहां से एक परिणाम निकलता है कि गोले को दागने के बाद तोप ग्रौर गोले का गुरुत्व केन्द्र ग्रपने पहले वाले बिन्दु पर रहता है।

दूसरे शब्दों में, हमने एक रुचिकर निष्कर्ष निकाला है—तोप ग्रौर गोले का गुरुत्व केन्द्र गोला दागने के बाद भी विराम स्थिति में रहता है।

यह परिणाम सर्वप्रयोजन है: यदि दो पिंडों का गुरुत्व केन्द्र शुरू में विराम स्थिति में था तो उनकी पारस्परिक क्रिया—वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो—गुरुत्व केन्द्र की स्थिति को नहीं बदल सकती। यही कारण है कि हम ग्रपने ग्राप को ग्रपने बालों से पकड़ कर ऊपर नहीं खींच सकते हैं या फ्रांस के लेखक सिरानो दे बेर्जेराक के तरीक़े के ग्रनुसार चांद तक नहीं पहुंच सकते हैं। उन्होंने कहा था (निस्सन्देह, हंसी मज़ाक में) कि ऐसा करने के लिए हाथ में एक लोहे के टुकड़े को लेकर एक चुंबक को ऊपर फेंकना होगा जो लोहे के टुकड़े को ग्राकर्षित कर सके।

विराम स्थिति में गुरुत्व केन्द्र दूसरे जड़त्वीय तंत्र के दृष्टिकोण से एकसमान गति करता है। यानी गुरुत्व केन्द्र या तो विराम स्थिति में है या एकसमान ग्रौर सरलरेखीय गति से चलता है।

दो पिंडों के गुरुत्व केन्द्र के बारे में कही गयी बात कई पिंडों के समूह के लिए भी सही है। ग्रवश्य, केवल एकल पिंडों के समूह के लिए, हम यह हमेशा बताते हैं, जब ग्रावेग-संरक्षण नियम प्रयोग में लाया जाता है।

इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि पारस्परिक क्रिया कर रहे पिंडों के किसी भी समूह में एक ऐसा बिन्दु होता है जो या तो विराम स्थिति में होता है, या एकसमान गति से चलता है। इस बिन्दु को ही उनका गुरुत्व केन्द्र कहते हैं।

इस बिन्दु के गुण पर बल देने के लिए इसे एक ग्रौर नाम भी देते हैं—जड़त्वीय केन्द्र। जब हम सौर परिवार के गुरुत्व के बारे में (ग्रर्थात् गुरुत्व केन्द्र के बारे में) कहते हैं, तो बात केवल प्रतिबन्धित तात्पर्य से ही की जाती है।

बन्द समूह बनानेवाले पिंड चाहे कैसे भी चलें, जड़त्वीय केन्द्र (गुरुत्व केन्द्र) या तो विराम स्थिति में होगा, या परिकलन की किसी दूसरी पद्धति में वह जड़त्व के कारण चल रहा होगा।

संवेग-आघूर्ण

अब हम यांत्रिकी की एक और संकल्पना से आपका परिचय करायेंगे, जो गति के एक और महत्वपूर्ण नियम को सूत्रबद्ध करने में हमारी सहायता करती है।

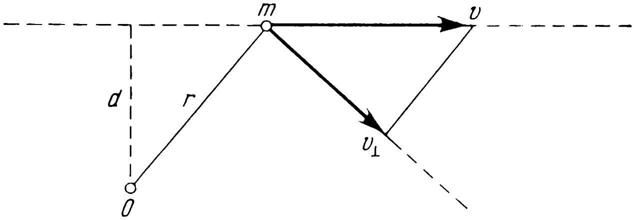
इस संकल्पना को वर्तल आघूर्ण या आवेग-आघूर्ण या संवेग-आघूर्ण कहते हैं। इस नाम से ही पता चलता है कि यहां किसी ऐसी संकल्पना के बारे में बात हो रही है जो किसी हद तक बल-आघूर्ण से मिलती-जुलती है।

संवेग-आघूर्ण के लिए, बल-आघूर्ण की तरह, यह बताना आवश्यक है कि किस बिन्दु की अपेक्षा आघूर्ण मालूम किया जाता है। किसी बिन्दु की अपेक्षा संवेग-आघूर्ण मालूम करने के लिए आवेग वेक्टर खींचना और फिर बिन्दु से उसकी दिशा पर लम्ब गिराना होता है (देखिए चित्र 61)। आवेग mv तथा भुजा d का गुणनफल ही तो संवेग-आघूर्ण है जिसे हम N से व्यक्त करेंगे:

$$N = mvd$$

अगर पिंड निर्बाध चलता है तो उसका वेग बदलेगा नहीं, भुजा भी किसी भी बिन्दु की अपेक्षा अपरिवर्तित रहेगी चूंकि गति सरलरेखीय है। मतलब यह हुआ कि ऐसी गति के दौरान संवेग-आघूर्ण भी बदलता नहीं है।

बल-आघूर्ण की तरह संवेग-आघूर्ण के लिए भी एक और सूत्र लिखा जा सकता है। हम पिंड की स्थिति के अर्धव्यास को उस बिन्दु से मिलायेंगे, जिसकी अपेक्षा हमें आघूर्ण मालूम करना है। (देखिए चित्र 61)। हम वेग का प्रक्षेप उस दिशा में गिरायेंगें, जो अर्धव्यास के अभिलम्ब है।



चित्र 61

चित्र में दिखाए गए सदृश त्रिभुजों में से हम पाते हैं: $\frac{v}{v_{\perp}}=\frac{r}{d}$। अर्थात् $vd=v_{\perp}r$ या संवेग-आघूर्ण का सूत्र निम्नलिखित तरीक़े से भी लिखा जा सकता है:

$$N=mv_{\perp}r$$

मुक्त गति में, जैसा कि हमने अभी-अभी बताया है, संवेग-आघूर्ण अपरिवर्तित रहता है। लेकिन यदि पिंड पर कोई और बल लगा हो तो? परिकलन से पता चलता है कि संवेग-आघूर्ण में एक सेकण्ड में हुआ परिवर्तन बल-आघूर्ण के बराबर होता है।

यह नियम बिना किसी कठिनाई के पिंडों के समूह के लिए भी लागू किया जा सकता है। अगर पिंड-निकाय में शामिल सब पिंडों के संवेग-आघूर्णों के परिवर्तनों को जोड़ा जाय तो उनका योग पिंडों पर लगे समस्त बल-आघूर्णों के योग के बराबर होगा। अर्थात् पिंडों के समूह के लिए निम्नलिखित बात सही है: संवेग-आघूर्ण में एक सेकण्ड में हुआ परिवर्तन समस्त बल-आघूर्णों के योग के बराबर होता है।

संवेग-आघूर्ण का संरक्षण नियम

यदि एक रस्सी से दो पत्थर बांध कर उनमें से एक को ज़ोर से फेंका जाए तो दूसरा पत्थर भी पहले के पीछे-पीछे तनी हुई रस्सी पर जायेगा। एक पत्थर दूसरे पत्थर से आगे निकलने की कोशिश करेगा, आगे चलने की गति के साथ-साथ घूर्णन भी होगा। आइए, गुरुत्वाकर्षण-बल क्षेत्र को ज़रा भुला दें – मानों यह पत्थर अंतर्नक्षत्रीय आकाश में फेंका गया हो।

पत्थर पर लगे बल एक दूसरे के बराबर हैं और रस्सी के साथ विपरीत दिशाओं में लगे हैं। (यह तो क्रिया और प्रतिक्रिया बल हैं)। तब तो दोनों बलों की भुजाएं भी किसी भी बिन्दु की अपेक्षा एक जैसी होंगी। एक जैसी भुजाएं और एकसमान लेकिन विपरीत दिशाओं में लगे बल, बराबर लेकिन विपरीत चिन्हों वाले बल-आघूर्ण देते हैं।

बल-आघूर्णों का योग शून्य होगा। लेकिन इससे यह परिणाम निकलता है कि संवेग-आघूर्ण में परिवर्तन भी शून्य होता है अर्थात् इस तंत्र का संवेग-आघूर्ण अपरिवर्तित रहता है।

पत्थरों को बांधनेवाली रस्सी की हमें केवल स्पष्टतः के लिए ही आवश्यकता पड़ी थी। संवेग-आघूर्ण का संरक्षण नियम किसी भी दो पारस्परिक क्रिया कर रहे पिंडों के लिए सही है, चाहे इस क्रिया की प्रकृति कोई भी क्यों न हो।

यह नियम केवल दो पिंडों के लिए ही सत्य नहीं है। अगर हम पिंडों के बन्द तंत्र का अध्ययन करते हैं तो बल, जो पिंडों के बीच आपस में लगे हैं, उन्हें हमेशा बराबर की संख्या के बलों में विभाजित कर सकते हैं, जिनमें से आधे क्रिया करने वाले बल और शेष प्रतिक्रिया करने वाले बल होंगे, जिनके आघूर्ण दो-दो के जोड़े बनाकर शून्य हो जायेंगे।

समग्र संवेग-आघूर्ण के लिए संरक्षण नियम सार्वत्रिक हैं और पिंडों के किसी भी बन्द तंत्र के लिए सही हैं।

अगर पिंड अपने अक्ष पर घूर्णन करता है तो उसका संवेग-आघूर्ण बराबर होगा :

$$N = mvr$$

यहां m – द्रव्यमान, v – वेग, r – अक्ष से दूरी है।

वेग को प्रति सेकण्ड लगाये गये चक्करों में व्यक्त कर हम पाते है :

$$v = 2\pi nr \quad \text{और} \quad N = 2\pi mnr^2$$

यानी संवेग-आघूर्ण अक्ष से फ़ासले के वर्ग के अनुक्रमनुपात है।

एक घूर्णी कुर्सी पर बैठकर दोनों हाथों में भारी बाट ले लीजिए। हाथों को पूरा फैला कर किसी से अनुरोध कीजिए कि आपको धीरे-धीरे घुमाए। अब आप जल्दी से अपने हाथ सीने की ओर ले आइयेगा – आप एकदम तेज़ी से घूमने लगेंगे। हाथ को फिर दोनों ओर फैला दें – गति धीमी हो जायेगी, फिर हाथों को सीने की ओर ले जाइए – गति त्वरित हो जायेगी। जब तक घर्षण के कारण कुर्सी अपने आप रुक न जाय, तब तक आप अपने घूर्णन के वेग को कई बार बदल सकते हैं।

ऐसा क्यों होता है?

चक्करों की संख्या अपरिवर्तित होने पर संवेग-आघूर्ण को, जब कि बाटों को सीने के ओर ले जाया जाता है, कम हो जाना चाहिए। इस कमी की "पूर्ति करने" के लिए घूर्णन वेग बढ़ जाता है।

खेल-तमाशे करनेवाले लोग संवेग-आघूर्ण के नियम का सफलतापूर्वक इस्तेमाल करते हैं। हवा में नट कलाबाज़ी कैसे लगाता है? शुरू में तो वह स्प्रिंगदार तख्ते या अपने साथी के हाथों से धक्का लेता है। जब धक्का लगता है तो उसका शरीर आगे की ओर झुका होता है, और उसका वज़न तथा धक्के का बल एक साथ पल भर के लिए बल-आघूर्ण प्रदान करते हैं। धक्के का बल आगे की ओर गति देता है, और बल-आघूर्ण घूर्णन प्रदान करता है। लेकिन यह घूर्णन धीमा होता है, इस कारण दर्शकों का मन मोहित नहीं होगा। नट अपने घुटनों को सिकोड़ लेता है, अर्थात् "अपने शरीर को" घूर्णन अक्ष के समीप "ले आता है"। इस प्रकार नट अपने घूर्णन वेग में काफ़ी वृद्धि कर लेता है और जल्दी से उल्टा हो जाता है। "हवाई कलाबाज़ी" का भी यही तरीक़ा है।

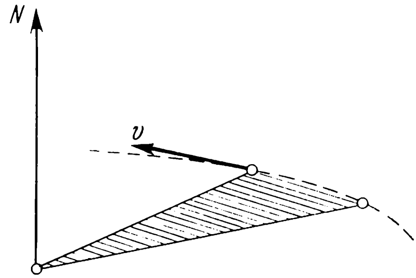
बैले नर्त्तकियां भी अपने नाच में एक के बाद एक तेज़ चक्कर खाने के लिए इस सिद्धान्त का उपयोग करती हैं। प्रायः बैले नर्त्तकी का साथी उसे शुरू में संवेग-आघूर्ण देता है। इस पल नर्त्तकी का शरीर थोड़ा-सा झुका होता है; मन्द घूर्णन शुरू होता है, और फिर बहुत कमाल के तेज़-तेज़ चक्कर शुरू होते हैं—नर्त्तकी सीधी हो जाती है। अब उसके शरीर के सब बिन्दु घूर्णन अक्ष के पास होते हैं और संवेग-घूर्णन के संरक्षण नियम के अनुसार वेग में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

संवेग-आघूर्ण एक वेक्टर दिष्ट के रूप में

अभी तक तो संवेग-आघूर्ण के परिमाण के बारे में ही कहा गया था। लेकिन संवेग-आघूर्ण वेक्टर के गुण भी रखता है।

आइए, किसी "केन्द्र" की अपेक्षा किसी बिन्दु के घूर्णन का अध्ययन करें। चित्र 62 में बिन्दु की दो पास-पास की स्थितियां दिखाई हुई हैं। वह गति, जिसमें हमारी दिलचस्पी है, संवेग-आघूर्ण के परिमाण और उस समतल में, जिसमें यह गति होती है, चित्रित की जाती है। चित्र में गति के समतल को छायित किया हुआ है। यह "केन्द्र" से लेकर गतिमान् बिन्दु तक खींचे गये अर्धव्यास द्वारा तय किया गया क्षेत्रफल है।

गति के समतल की दिशा और संवेग-आघूर्ण के परिमाण की जानकारी



चित्र 62

को संयुक्त किया जा सकता हैं। इसके लिए ग्राघूर्ण वेक्टर की ग्रावश्यकता पड़ती है जो गति के समतल के लम्ब के साथ-साथ दिष्ट ग्रौर ग्राघूर्ण के निरपेक्ष मान के परिमाण के बराबर होता है। लेकिन बात यहां पर समाप्त नहीं हो जाती है—समतल में गति की दिशा को भी ध्यान में रखना जरूरी है: पिंड तो केन्द्र के पास दक्षिणावर्त तथा वामावर्त दोनों ही दिशाग्रों में घूम सकता है।

संवेग-ग्राघूर्ण के वेक्टर को ऐसे खींचते हैं ताकि उसकी विपरीत दिशा में देखने पर बिन्दु का घूर्णन वामावर्त दिखाई पड़े। यही दूसरे शब्दों में भी कहा जा सकता है: संवेग-ग्राघूर्ण वेक्टर की दिशा उसके घूमने की दिशा से ऐसे सम्बन्धित है, जैसे कि कार्क स्क्रू को घुमाने की दिशा उसके हत्थे की गति की दिशा से सम्बन्धित है।

इसलिए, यदि हमें संवेग-ग्राघूर्ण का वेक्टर मालूम है तो हम ग्राघूर्ण के परिमाण, गति के समतल की ग्राकाश में स्थिति ग्रौर "केन्द्र" की ग्रपेक्षा घूर्णन की दिशा के बारे में बता सकते हैं।

यदि गति एक ही समतल में होती है, लेकिन भुजा ग्रौर वेग दोनों ही बदलते हैं तो संवेग-ग्राघूर्ण का वेक्टर ग्राकाश में ग्रपनी दिशा नहीं बदलता है, लेकिन उसकी लम्बाई बदलती है। स्वेच्छ गति में ग्रावेग वेक्टर परिमाण तथा दिशा दोनों में ही बदलता है।

ऐसा लग सकता है कि गति के समतल की दिशा तथा संवेग-ग्राघूर्ण के परिमाण को एक ही संकल्पना में संयुक्त केवल कम शब्द लिखने के लक्ष्य से ही किया गया है। लेकिन, वास्तव में जब हम एक ही समतल

में गति न करनेवाले पिंडों के तंत्र का अध्ययन करते हैं तो आघूर्ण-संरक्षण नियम तब भी प्राप्त होगा जब संवेग-आघूर्णों को हम वेक्टरों की तरह जोड़ेंगे।

यह तथ्य बताता है कि संवेग-आघूर्ण की वेक्टर प्रकृति का गहरा अर्थ है।

संवेग-आघूर्ण को हमेशा किसी चुने हुए "केन्द्र" की अपेक्षा ही मालूम किया जाता है। स्वाभावतः उसका परिमाण इस केन्द्र के चयन पर निर्भर करता है। लेकिन यह दिखाया जा सकता हैं कि अगर पिंडों का तन्त्र, जिसका हम अध्ययन कर रहे हैं, विराम स्थिति में है (अर्थात् उसका पूरा आवेग शून्य है) तो संवेग-आघूर्ण वेक्टर "केन्द्र" के चयन पर निर्भर नहीं करता है। इस संवेग-आघूर्ण को पिंडों के तन्त्र का आंतरिक संवेग-आघूर्ण कहा जा सकता है।

संवेग-आघूर्ण के वेक्टर के संरक्षण का नियम यांत्रिकी में संरक्षण का तीसरा और अन्तिम नियम है। लेकिन जब हम तीन नियमों के बारे में बताते हैं तो हम बहुत सटीक नहीं होते हैं। आवेग और संवेग-आघूर्ण वेक्टर हैं, और वेक्टर परिमाण के संरक्षण का नियम बताता है कि वेक्टर की न तो दिशा और न ही संख्यात्मक मान बदलता है, या दूसरे शब्दों में आकाश में तीन परस्पर अभिलम्ब दिशाओं में वेक्टर के तीनों संघटक बदलते नहीं हैं। ऊर्जा – संख्यात्मक परिमाण है, आवेग – वेक्टर परिमाण है, संवेग-आघूर्ण भी वेक्टर है। इसलिए यह कहना सही होगा कि यांत्रिकी में सात संरक्षण-नियम हैं।

लट्टू

एक पतली-सी छड़ी के सिरे पर प्लेट को रखने और उसे संतुलन स्थिति में रखने का प्रयत्न करें। आप ऐसा नहीं कर पाएंगे। लेकिन चीन के जादूगर यह कारनामा बड़ी सफलता से दिखाते हैं। ऐसा करने के लिए वे अनेक छड़ियों का एक साथ प्रयोग करते हैं। जादूगर इन पतली-पतली छड़ियों को सीधा रखने का प्रयत्न नहीं करता है। क्षैतिज पर आनत छड़ियों के कोनों पर छूती और हवा में लगभग लटकी हुई प्लेटें गिरती नहीं हैं। यह देखकर हैरानी होती है।

अगर आप जादूगरों का काम पास से देखें तो आपका ध्यान एक

महत्त्वपूर्ण बात पर अवश्य जाएगा: वह यह है कि जादूगर प्लेटों को ऐसे घुमाता है कि वे अपने समतल में बहुत तीव्र गति से घूमें।

जादूगर चाहे यह करतब छड़ियों से चाहे रिंगों से या हैटों से करे, हर स्थिति में वह उन्हें घूर्णन प्रदान करता है। केवल ऐसा करने पर ही सब वस्तुएं उसके पास उसी हालत में आती हैं, जो उनकी शुरू में थी।

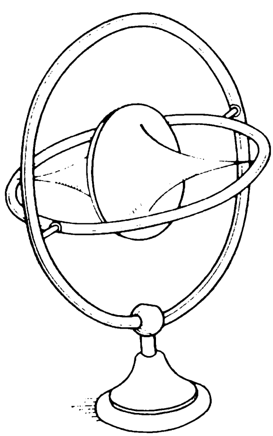
घूर्णन की ऐसी स्थिरता का क्या रहस्य है? यह रहस्य घूर्णन के संरक्षण-नियम से संबंधित है। हम जानते हैं कि घूर्णन-अक्ष की दिशा को बदलने से संवेग-आघूर्ण के वेक्टर की दिशा भी बदल जाती है। दिशा को बदलने के लिए बल की जितनी ज़रूरत होती है, उतनी ही ज़रूरत बल-आघूर्ण की होती है जो घूर्णन की दिशा को बदलता है। वह जितना अधिक होगा, उतनी ही तेज़ी से पिंड घूमेगा।

ऊपर दिये गये उदाहरणों की तरह के अनेक उदाहरणों में यह देखा जा सकता है कि तेज़ी से घूमते पिंड घूर्णन-अक्ष की दिशा को अपरिवर्तित रखने का यत्न करते हैं। घूम रहा लट्टू गिरता नहीं है चाहे उसका अक्ष झुका भी हो।

घूमते हुए लट्टू को हाथ से गिराने की कोशिश कीजिएगा। आप देखेंगे कि ऐसा करना सरल नहीं है।

घूर्णन करते पिंड की स्थिरता का इस्तेमाल तोपखाने में भी किया जाता है। अपने शायद सुना होगा कि तोप की नली में चूड़ियां बनी होती हैं। दागा गया गोला आगे बढ़ने के साथ-साथ अपने अक्ष के इर्दगिर्द घूर्णन भी करता है और इसी कारण हवा में "कलाबाज़ी" नहीं खाता है। जिस तोप की नाल में ऐसी चूड़ियां बनी होती हैं उसका निशाना भी अच्छा होता है और गोले का परास भी बिना चूड़ियों की तोप से ज़्यादा होता है।

विमान चालक और नौसंचालक के लिए यह जानना हमेशा ज़रूरी होता है कि वायुयान या समुद्री जहाज़ की स्थिति के अनुसार पृथ्वी का मौलिक लम्ब कहां है। यह जानने के लिए साहुल का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है क्योंकि त्वरित गति के कारण साहुल विस्थापित हो जाता है। इसलिए एक विशष प्रकार के तेज़ी से घूमते हुए लट्टू का प्रयोग किया जाता है जिसे जाइरोक्षितिज कहते हैं। अगर जाइरोक्षितिज के घूर्णन-अक्ष को भूलम्ब पर रखा जाए तो वह इसी स्थिति में ही रहेगा चाहे वायुयान आकाश



चित्र 63

में अपनी स्थिति कैसे भी क्यों न बदले।

लट्टू किस पर टिका होता है? अगर वह किसी चौकी पर स्थित है, जो वायुयान के साथ-साथ मुड़ती है, तो घूर्णन-अक्ष अपनी दिशा संरक्षित कैसे रख सकता है?

चौकी का काम चित्र 63 में दिखाया गया तथाकथित गिम्बल करता है। इस उपकरण में टेकों का घर्षण न्यूनतम होने पर साहुल ऐसा बर्ताव करता है मानों वह हवा में लटका हो।

घूमते हुए लट्टुओं की मदद से टारपीडो या वायुयान अपने आप दिए गए रास्ते पर चल सकते हैं। ऐसा उन उपकरणों की सहायता से किया जाता है जो लट्टू के अक्ष की अपेक्षा टारपीडो के अक्ष में हुए विस्थापन को "बताते" हैं।

जाइरो-दिकसूचक जैसे महत्त्वपूर्ण यंत्र की बनावट घूर्णन करते हुए लट्टू के सिद्धात पर आधारित है। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि कोरिऑलिस बल और घर्षण बल के प्रभाव के कारण लट्टू का अक्ष अन्ततः पृथ्वी के अक्ष के समान्तर हो जाएगा अर्थात् उत्तर दिशा को सूचित करेगा।

जाइरो-दिकसूचकों का समुद्री जहाज़ों में बहुत उपयोग किया जाता है। उनका मुख्य हिस्सा है—मोटर और भारी गतिपालक चक्र, जो एक मिनट में 25000 चक्कर लगाता है।

कई कठिनाइयों के बावजूद, जो विभिन्न रुकावटों को दूर करने के कारण सामने आती हैं, जैसे जहाज़ का डोलना, जाइरो-दिकसूचक चुम्बकीय कुतुबनुमा से बेहतर हैं। चुम्बकीय कुतुबनुमा की त्रुटि यह है कि उसके पाठ्यांकों में जहाज़ पर स्थित लोहे की चीज़ों और बिजली के उपकरणों की वजह से अन्तर आ जाता है।

लचीला धुरा

आधुनिक वाष्प टरबाइनों के धुरे—इन बड़ी-बड़ी मशीनों के बहुत महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ऐसे धुरों को, जिनकी लम्बाई लगभग 10 मीटर और मोटाई 0.5 मीटर तक होती है, बनाना एक मुश्किल इंजीनियरी समस्या

है। शक्तिशाली टरबाइन का धुरा लगभग 200 टन भार को सह सकता है और एक मिनट में 3000 घूर्णन के वेग से घूमता है।

शुरू में यह लग सकता है कि ऐसा धुरा अत्यन्त कठोर और दृढ़ होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं है। एक मिनट में दसियों हज़ारों चक्कर लगानेवाला दृढ़ता से बंधा हुआ और मुड़ न सकनेवाला धुरा अवश्य टूट जाता, उसकी दृढ़ता चाहे कितनी भी क्यों न होती।

यह समझना कठिन नहीं है कि दृढ़ धुरे अच्छे क्यों नहीं होते हैं। मशीन निर्माता कितनी भी परिशुद्धता से काम क्यों न करे टरबाइन-मंडलक (डिस्क) को असममिति के बिना बनाया नहीं जा सकता है। जब ऐसा पहिया घूमता है तो विशाल अपकेन्द्री बल उत्पन्न होते हैं। यहां हम आपको यह बता दें कि उनका मान घूर्णन के वेग के वर्ग के अनुक्रमानुपात होता है। यदि उन्हें परिशुद्धता से संतुलन न किया जाए तो धुरा बॉल-बेयरिंगों से टकराने लगता है (यह तो पता ही है कि असंतुलित अपकेन्द्री बल मशीन के साथ-साथ "घूर्णन" करता हैं) और उन्हें तोड़ देता है और टरबाइन को हानि पहुंचाता है।

इस कारण टरबाइन के घूर्णन-वेग को ज़्यादा बढ़ाने में अनेक कठिनाइयां सामने आयीं। 19 वीं शताब्दी के अन्त में और 20 वीं शताब्दी के शुरू में इस समस्या का समाधान किया गया। तब टारबाइनों के वास्ते लचीले धुरों का निर्माण होने लगा था।

इस कमाल के आविष्कार को समझने के लिए हमें सबसे पहले अपकेन्द्री बलों के समग्र प्रभाव का परिकलन करना होगा। इन बलों का योग कैसे किया जाए? हम देखते हैं कि समस्त अपकेन्द्री बलों का परिणामी बल धुरे के गुरुत्व केन्द्र पर लगा है और उसका परिमाण वही है, जो तब होता यदि टरबाइन के डिस्क का सारा द्रव्यमान गुरुत्व केन्द्र पर ही स्थित होता।

टरबाइन के डिस्क के गुरुत्व केन्द्र की अक्ष से दूरी को हम a से व्यक्त करते हैं। यह दूरी शून्य के बराबर नहीं होती है चूंकि पहिये में थोड़ी-बहुत असममिति तो अवश्य होती है। घूर्णन के दौरान धुरे पर अपकेन्दी बल प्रभाव डालेंगे और धुरा मुड़ जाएगा। हम धुरे के विस्थापन को l से व्यक्त करेंगे। आइए, अब इसका परिमाण निकालें। अपकेन्द्री बल मालूम करने का सूत्र तो हमें ज्ञात है (देखिए पृष्ठ ६८) – यह बल गुरुत्व केन्द्र

तथा अक्ष के बीच के फ़ासले के अनुक्रमानुपात है। यह दूरी $a+l$ के बराबर है, इसलिए अपकेन्द्री बल बराबर है $4\pi^2n^2M\ (a+l)$, जहां n – धुरे द्वारा एक निमट में लगाये गये चक्करों की संख्या और M – परिक्रामी हिस्सों का द्रव्यमान है। अपकेन्द्री बल प्रत्यास्थी बल द्वारा संतुलित किया जाता है, जो धुरे के विस्थापन के अनुक्रमानुपात होता है, और kl के बराबर होगा। यहां k धुरे की दृढ़ता का गुणांक है।

$$kl = 4\pi^2n^2M\,(a+l)$$

यहां से

$$l = a\frac{1}{\frac{k}{4\pi^2n^2M} - 1}$$

इस सूत्र से पता चलता है कि लचीले धुरे के लिए बड़ी r.p.m. कोई ख़तरे की बात नहीं है। n के परिमाण कितने भी अधिक क्यों न हों, धुरे का झोल l अनन्त नहीं हो सकता है। आखिरी सूत्र में प्रकट होनेवाला परिमाण $\frac{k}{4\pi^2n^2M}$ शून्य हो जाता है और धुरे का झोल l विपरीत चिन्ह के साथ असममिति के परिमाण के बराबर हो जाता है।

यह परिकलन हमें यह बताता है कि असममित डिस्क बहुत अधिक r.p.m. से घूमने पर धुरे को तोड़ने के बजाय उसे ऐसे मोड़ देता है ताकि असममिति का प्रभाव शून्य हो जाय। झोल खाता हुआ धुरा घूर्णन करते हुए हिस्सों को केन्द्रित करता है तथा गुरुत्व केन्द्र को घूर्णन अक्ष पर ले आता है, और इस प्रकार अपकेन्द्री बलों का प्रभाव शून्य कर देता है।

स्थिरता के लिए लचीला धुरा एक प्रतिकूल परिस्थिति ही नहीं, बल्कि एक आवश्यक शर्त भी है। कारण यह है कि स्थिरता के लिए a परिमाण तक धुरे को झोल खाना चाहिए और इसी स्थिति में आने पर वह टूटेगा नहीं।

एकाग्र पाठक दिए गए तर्कों में दोष पाएगा। अगर बड़ी r.p.m. के साथ घूमनेवाले धुरे को हम द्वारा ढूंढ़ी गयी संतुलिन स्थिति से विस्थापित करें और केवल अपकेन्द्री और प्रत्यास्थी बलों को ही ध्यान में रखें तो सरलता से पता चल जाएगा कि यह संतुलन अस्थिर है। लेकिन हां, एक बात यह भी है कि कोरिऑलिस बल इस स्थिति को बदल देते हैं और संतुलन को काफी स्थिर कर देते हैं।

टरबाइन धीरे-धीरे घूर्णन शुरू करती है। शुरू में जब n कम है, भिन्न

$\frac{k}{4\pi^2 n^2 M}$ का मान काफ़ी बड़ा होगा। जब तक यह भिन्न चक्करों की संख्या बढ़ाने से एक के बराबर नहीं हो जाती, तब तक धुरे के झोल का चिन्ह वही होगा जो डिस्क के गुरुत्व केन्द्र के विस्थापन के शुरू में था। गति के शुरू में झोल खाता धुरा पहिए को केन्द्रित नहीं करता, बल्कि अपने झोल से गुरुत्व केन्द्र के कुल विस्थापन को बढ़ा देता है। अर्थात् अपकेन्द्री बल को भी बढ़ा देता है। जैसे-जैसे चक्करों की संख्या बढ़ती है (लेकिन यह शर्त लागू होने पर कि $\frac{k}{4\pi^2 n^2 M} > 1$), विस्थापन बढ़ता है और आखिर में क्रांतिक क्षण आ जाता है। जब $\frac{k}{4\pi^2 n^2 M} = 1$ तो विस्थापन l के सूत्र के भिन्न का हर शून्य हो जाता है या दूसरे शब्दों में झोल अनन्त हो जाता है। इस घूर्णन वेग पर धुरा टूट जाता है। टरबाइन को चालू करते समय इस पल को अत्यंत शीघ्रता से पार करना चाहिए और जहां तक हो सके इन क्रांतिक चक्करों की संख्या को पार कर लेना चाहिए और टरबाइन की r.p.m. बहुत बढ़ा देनी चाहिए, तब स्वयं केन्द्रित होने की क्रिया शुरू हो जाती है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

लेकिन क्रांतिक क्षण क्या है? हम इस शर्त को ऐसे भी लिख सकते हैं:

$$4\pi^2 \frac{M}{k} = \frac{1}{n^2}$$

या चक्करों की संख्या को आवर्तकाल $\left(n = \frac{1}{T}\right)$ से विस्थापित करने और वर्गमूल निकालने पर हम लिख सकते हैं:

$$T = 2\pi\sqrt{\frac{M}{k}}$$

इस समीकरण के दाईं ओर क्या है? सूत्र तो बहुत परिचित सा लगता है। आइए, पृष्ठ १२६ खोलें, हम देखते हैं कि दाईं ओर डिस्क का धुरे पर स्वाभाविक आवर्तकाल है। अर्थात $2\pi\sqrt{\frac{M}{k}}$ यह वह आवर्तकाल है जिससे टरबाइन का डिस्क, जिसका द्रव्यमान M है, धुरे पर दोलन करेगा। धुरे की दृढ़ता k है, यदि डिस्क को एक तरफ़ अलग कर दिया जाए ताकि वह स्वयं दोलन कर सके।

अतः क्रांतिक क्षण वह होता है जब टरबाइन डिस्क का घूर्णन काल तथा टरबाइन-धुरा निकाय के दोलन का स्वाभाविक आवर्तकाल एक जैसे होते हैं। चक्करों की क्रांतिक संख्या का कारण है अनुनाद।

७. गुरुत्वाकर्षण

पृथ्वी किस पर खड़ी है?

प्राचीनकाल में इस प्रश्न के उत्तर में हर कोई कहता था कि तीन ह्वेल मछलियों पर खड़ी है। लेकिन यह कोई नहीं बताता था कि ये ह्वेल मछलियां किस पर खड़ी हैं। लेकिन हमारे भोले-भोले पूर्वज इससे व्याकुल नहीं होते थे।

ग्रहों की गति के कारणों का उत्तर मिलने से बहुत पहले पृथ्वी की गति के चित्रण, पृथ्वी के आकार, सूर्य के गिर्द ग्रहों की गति के बहुत से नियमों की ठीक संकल्पनाएं पेश की जा चुकी थीं।

लेकिन हां, फिर भी पृथ्वी और ग्रह किस पर टिके हैं? और ग्रह सूर्य के गिर्द किसी विशेष पथ पर ही क्यों चलते हैं और सूर्य से वे दूर क्यों नहीं हटते हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर बहुत समय तक नहीं मिले थे। गिरजाघर ने संसार की कोपेर्निक पद्धति के विरुद्ध संघर्ष किया और इसे पृथ्वी की गति के तथ्य से इंकार करने के लिए इस्तेमाल किया।

इंगलैंड के महान वैज्ञानिक इसाक न्यूटन (1643–1727) को इस सत्यता की खोज करने का श्रेय प्राप्त है।

एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक चुटकुले के अनुसार, न्यूटन जब बाग में सेब के पेड़ के नीचे बैठे थे, तो बड़ी एकाग्रचित होकर यह देख रहे थे कि एक के बाद दूसरा सेब जब टूटता है तो पृथ्वी पर ही गिरता है। इससे न्यूटन एक निष्कर्ष पर पहुंचे कि ब्रह्मांड के सब पिंडों के बीच गुरुत्वाकर्षण बलों का अस्तित्व है।

न्यूटन की खोज के परिणामस्वरूप यह भी स्पष्ट हो गया कि एक दूसरे से भिन्न अनेक घटनाएं–स्वतन्त्र पिंडों का पृथ्वी पर गिरना, चांद और सूर्य की गतियां, ज्वार भाटा आदि–प्रकृति के एक ही नियम के रूपान्तर हैं। यह नियम है ब्रह्मांड का गुरुत्वाकर्षण।

इस नियम के अनुसार ब्रह्मांड के सभी पिंडों के बीच, चाहे वे कण हों, चाहे पहाड़, चाहे पत्थर हों, पारस्परिक आकर्षण बल लगा होता है।

शुरू में यह नियम सही प्रतीत नहीं होता है: हमने यह कभी नहीं देखा कि हमारी आस-पास की चीज़े एक दूसरे को आकर्षित करती हैं। लेकिन पृथ्वी हर किसी पिंड को अपनी ओर आकर्षित करती है, उसमें किसी को संन्देह नहीं है। हो सकता है कि यह पृथ्वी का कोई विशेष गुण हो। नहीं, ऐसा नहीं है। किन्हीं भी दो चीज़ों का आकर्षण कम होता है, इसलिए हमें पता नहीं चलता। लेकिन विशेष प्रयोगों से यह आकर्षण मालूम किया जा सकता हैं। इसके बारे में आगे चलकर बताएंगें।

ब्रह्मांड के गुरुत्वाकर्षण का अस्तित्व ही सौर परिवार के ग्रहों की गति और दूसरे नक्षत्रों की गति की स्थिरता को स्पष्ट करता है।

पृथ्वी के आकर्षण बलों के कारण ही चांद अपने कक्ष में रहता है। सूर्य के आकर्षण बलों के कारण पृथ्वी अपने पथ पर चलती है।

नक्षत्रों की वृत्ताकार गति भी रस्सी से बंधे पत्थर की वृत्ताकार गति के समान है।

ब्रह्मांड के गुरुत्वाकर्षण बल अदृश्य "रस्सियां" हैं, जो नक्षत्र-पिंडों को विशेष पथ पर चलने को मजबूर करती हैं।

यही कहना कि गुरुत्वाकर्षण बल विद्यमान हैं काफ़ी नहीं है। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नियम को खोजा, और यह दिखाया कि ये बल किन बातों पर निर्भर करते हैं।

गुरुत्वाकर्षण नियम

पहला प्रश्न जो न्यूटन ने स्वयं से किया था, वह था कि चांद के त्वरण और सेब के त्वरण में क्या अन्तर है? दूसरे शब्दों में त्वरण g, जो पृथ्वी अपनी सतह पर उत्पन्न करती है अर्थात् अपने केन्द्र से r दूरी पर उत्पन्न करती है, और पृथ्वी द्वारा R दूरी पर यानी चांद और पृथ्वी के बीच की दूरी पर उत्पन्न त्वरण में क्या अन्तर है।

यह त्वरण v^2/R मालूम करने के लिए, हमें चांद का वेग और उसकी पृथ्वी से दूरी मालूम होनी चाहिए। न्यूटन को ये दोनों आंकड़े पता थे। चांद का त्वरण लगभग $0.27\ cm/sec^2$ है। यह $g = 980\ cm/sec^2$ से लगभग 3600 गुना कम है।

इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी द्वारा उत्पन्न किया गया त्वरण पृथ्वी के केन्द्र से दूर होने पर कम हो जाता है। लेकिन कितनी तीव्रता से कम होता है? दोनों ग्रहों के बीच की दूरी पृथ्वी के अर्धव्यास से 60 गुना अधिक है। लेकिन 3600 का वर्गमूल 60 है। दूरी को 60 गुना बढ़ा देने पर त्वरण $(60)^2$ गुना कम हो जाता है।

न्यूटन ने यह परिणाम निकाला था कि त्वरण, इसका अर्थ यह हुआ कि गुरुत्वीय बल, दूरी के वर्ग के व्यत्क्रमानुपात में बदलता है। हमें यह भी पता है कि गुरुत्व क्षेत्र में पिंड पर लगा बल उसके द्रव्यमान के आनुपातिक होता है। इसलिये पहला पिंड दूसरे पिंड को उस बल से आकर्षित करता है जो दूसरे पिंड के द्रव्यमान के आनुपातिक होता है; दूसरा पिंड पहले पिंड को उस बल से आकर्षित करता है, जो पहले पिंड के द्रव्यमान के आनुपातिक होता है।

यहां बराबर के बलों – क्रिया और प्रतिक्रिया – के बारे में चर्चा हो रही है। अर्थात् परस्पर गुरुत्व बल पहले पिंड के द्रव्यमान तथा दूसरे पिंड के द्रव्यमान दोनों के आनुपातिक है, दूसरे शब्दों में दोनों द्रव्यमानों के गुणनफल के आनुपातिक है। अर्थात्

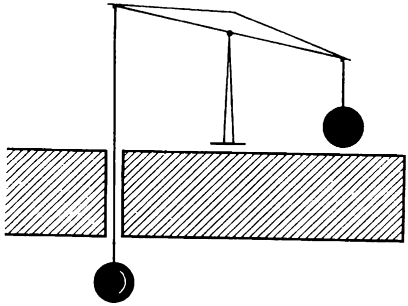
$$F = \gamma \frac{Mm}{r^2}$$

यही है गुरुत्वाकर्षण नियम। न्यूटन ने यह माना था कि ऐसा नियम किन्हीं भी दो पिंडों के लिए सही होगा।

अब इस परिकल्पना को सिद्ध किया जा चुका है। अर्थात् दो पिंडों का आकर्षण बल उनके द्रव्यमानों के गुणनफलों के आनुपातिक होता है और उनके बीच की दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात होता है।

लेकिन सूत्र में लिखा γ क्या है? यह आनुपातिकता गुणक है। क्या इसे एक के बराबर लिया जा सकता है, जैसा कि हमने कई बार पहले किया है। नहीं, कदापि नहीं। हमने द्रव्यमान को हमेशा ग्रामों में मापा है, रास्ते को सेंटीमीटरों में और बल को डायनों में। γ का मान एक सेंटीमीटर दूरी पर स्थित एक-एक ग्रामवाले दो पिंडों के बीच आकर्षण बल के बराबर है। लेकिन हम बल को किसी खास मान और एक डायन के बराबर नहीं मान सकते: गुणक γ को मापना पड़ेगा।

स्पष्ट है कि γ मालूम करने के लिए दो एक-एक ग्रामवाले बाटों के बीच आकर्षण बल को मापने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है। हमारी



चित्र 64

दिलचस्पी तो इस बात में है कि पिंड विशाल हों तब उनके बीच आकर्षण बल भी अधिक होगा।

दोनों पिंडों का द्रव्यमान ज्ञात होने, उनके बीच का फ़ासला मालूम करने और आकर्षण बल को माप लेने पर तो γ आसानी से मालूम किया जा सकता है।

ऐसे प्रयोग बहुत बार किये गए। उनसे पता चला कि γ का मान हमेशा एक ही होता है और वह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि आकर्षित हो रहे पिंड किस चीज़ के बने हैं, और इसके साथ माध्यम के, जहां वे स्थित हैं, गुणों पर भी निर्भर भी नहीं करता है। γ को गुरुत्वीय स्थिरांक कहते हैं।

$$\gamma = 6.67 \times 10^{-8} \ \text{cm}^3/\text{g} \times \text{sec}^2$$

γ मापने के लिए किए गए एक प्रयोग की योजना चित्र 64 में दिखायी गयी है। तुला के दोनों सिरों पर एकसमान द्रव्यमान के दो गेंद लटके हैं। इनमें से एक तो सीसे की प्लेट के ऊपर और दूसरा प्लेट के नीचे है। सीसा (प्रयोग के लिए 100 टन लिया गया है) अपने आकर्षण के कारण दाएं गेंद के वज़न को बढ़ाता है, और बाएं गेंद के भार को कम करता है। दायां गेंद बाएं गेंद से भारी हो जाता है। तुला की डण्डी के झुकाव से हम γ का मान निकालते हैं।

γ इतना कम इसलिए होता है कि दो चीज़ों के बीच गुरुत्वाकर्षण बल बहुत कम होता है।

उदाहरण के लिए, एक मीटर की दूरी पर स्थित 1 000 किलोग्राम के दो बाट एक दूसरे को बहुत ही कम बल से आकर्षित करते हैं। यह बल केवल 6.7 डाइन अर्थात् 0.007 ग्राम के बराबर होता है।

लेकिन दो नक्षत्रीय पिंडों के बीच आकर्षण बल कितना बड़ा होता है। उदाहरण के वास्ते, चांद और पृथ्वी के बीच :

$$F = 6.7 \times 10^{-8} \frac{6 \times 10^{27} \times 0.74 \times 10^{26}}{(38 \times 10^{9})^2} = 2 \times 10^{25} \text{ डाइन} \approx$$
$$\approx 2 \times 10^{19} \text{ kg.f}$$

सूर्य और पृथ्वी के बीच:

$$F = 6.7 \times 10^{-8} \frac{2 \times 10^{33} \times 6 \times 10^{27}}{(15 \times 10^{12})^2} = 3.6 \times 10^{27} \text{ डाइन} \approx$$
$$\approx 3.6 \times 10^{21} \text{ kg.f}$$

पृथ्वी को तोलना

गुरुत्वाकर्षण नियम का प्रयोग करने से पहले हम आपका एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं।

हमने ऊपर एक दूसरे से एक मीटर की दूरी पर स्थित दो बाटों के बीच आकर्षण बल मालूम किया है। अगर ये बाट एक सेंटीमीटर की दूरी पर स्थित होते तो? सूत्र में क्या लिखना चाहिए – पिंडों की सतहों से दूरी या गुरुत्व केन्द्रों के बीच दूरी या कुछ और ही?

गुरुत्वाकर्षण नियम $F = \gamma \frac{m_1 m_2}{r^2}$ तभी ठीक तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है जब ऐसे संदेह उत्पन्न नहीं होते हैं। दोनों पिंडों के बीच की दूरी उनके आकारों से कहीं अधिक होनी चाहिए; दूसरे शब्दों में पिंडों को बिन्दु मान कर चलना चाहिए। दो पास-पास स्थित पिंडों के लिए इस नियम का किस प्रकार प्रयोग किया जाए? सिद्धान्ततः यह बहुत आसान बात है: पिंडों को काल्पनिक तौर पर छोटे-छोटे भागों में बांट लेना चाहिए और हर जोड़े के लिए F बल मालूम कर सब बलों का वेक्टर तरीक़े से योग करना चाहिए।

सिद्धान्ततः यह आसान है, लेकिन वास्तव में ऐसा करना काफ़ी मुश्किल है।

लेकिन प्रकृति हमारी सहायता करती है। परिकलन से यह सिद्ध होता है कि अगर पिंड के कण एक ऐसे बल से पारस्परिक क्रिया करते हैं, जो $\frac{1}{r^2}$ के आनुपातिक हैं, तो गोलाकार पिंड गोलों के केन्द्र पर स्थित बिन्दुओं की तरह आकर्षित होने का गुण रखते हैं। दो पास-पास स्थित गोलों के लिए सूत्र $F=\gamma\frac{m_1m_2}{r^2}$ उतना ही ठीक है, जितना कि दूर स्थित गेंदों के लिए, अगर r – दोनों गोलों के केन्द्रों के बीच की दूरी है। इस नियम का हमने पहले भी प्रयोग किया था, जब हमने पृथ्वी की सतह पर त्वरण मालूम किया था।

अब हम गुरुत्वाकर्षण सूत्र का पिंड और पृथ्वी के बीच आकर्षण मालूम करने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। यहां r को पृथ्वी तथा पिंडों के केन्द्रों के बीच की दूरी मानना होगा।

अगर M – पृथ्वी का द्रव्यमान और R – पृथ्वी का अर्धव्यास है तो m – द्रव्यमान वाले पिंड का पृथ्वी की सतह पर आकर्षण बल बराबर होगा

$$F=\gamma\frac{M}{R^2}\times m$$

लेकिन यह तो पिंड का वज़न है जिसको हम हमेशा mg से व्यक्त करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरुत्वीय त्वरण

$$g=\gamma\frac{M}{R^2}$$

अब हम कह सकते हैं कि पृथ्वी को कैसे तौला गया। g, γ, R हमें मालूम हैं, और पृथ्वी का द्रव्यमान इस सूत्र से मालूम किया जा सकता है। इसी तरीक़े से हम सूर्य को भी तौल सकते हैं।

क्या ऐसे परिकलन को तौलना कहा जा सकता है? जी हां, कह सकते हैं: भौतिक विज्ञान में सीधे माप की अपेक्षा परोक्ष माप कम महत्त्व नहीं रखते हैं।

आइए, अब एक रोचक प्रश्न को हल करें।

अन्तर्राष्ट्रीय टेलीवीज़न तंत्र स्थापित करने में "लटका हुआ" उपग्रह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, यानी ऐसा उपग्रह जो हमेशा पृथ्वी की सतह के ऊपर भूमध्यरेखा के एक ही बिन्दु पर स्थित रहता है। क्या ऐसा उपग्रह काफ़ी घर्षण बल महसूस करेगा? यह इस बात पर

निर्भर करेगा कि वह पृथ्वी से कितनी दूरी पर परिक्रमा कर रहा है।

"लटके हुए" उपग्रह को T आवर्तकाल से घूर्णन करना चाहिए ($T = 24$ घण्टे)। यदि r पृथ्वी के केन्द्र से उपग्रह तक की दूरी है तो उसका वेग $v = \frac{2\pi r}{T}$ और त्वरण $\frac{v^2}{r} = \frac{4\pi^2}{T^2} r$ हैं। दूसरी तरफ़ यह त्वरण, जो पृथ्वी के आकर्षण के कारण पैदा हुआ है, बराबर है $\gamma \frac{M}{r^2} = g \frac{R^2}{r^2}$। त्वरण के परिमाणों को समीकृत करने पर हम पाते हैं:

$$g \frac{R^2}{r^2} = \frac{4\pi^2 r}{T^2} \text{ अथवा } r^3 = \frac{gR^2T^2}{4\pi^2}$$

यहां g के लगभग मान यानी $g = 10\,\text{m/sec}^2$, $\text{R} = 6 \times 10^6$ m और $\text{T} = 9 \times 10^4$ sec रखने पर हम पाते हैं:

$$\text{r}^3 = 7 \times 10^{22} \text{ यानी } r \approx 4 \times 10^7 \text{ m} = 40\,000 \text{ km}$$

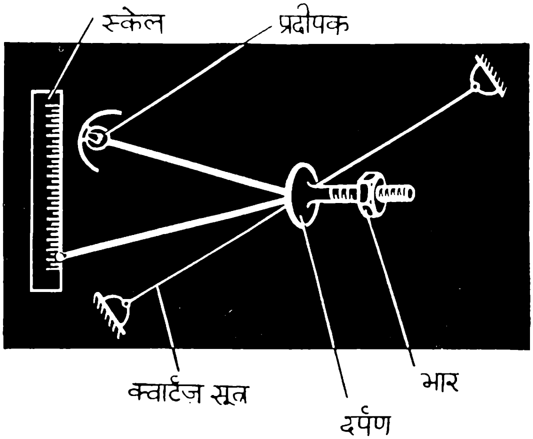
पृथ्वी से इतनी ऊंचाई पर घर्षण नहीं होगा। अगर हम ऐसा "लटका हुआ" उपग्रह बनाने में सफल हो जाते हैं, तो वह अपनी "अचल चाल" को धीमी नहीं करेगा।

g की माप पूर्वेक्षण के लिए

यहां हम सैनिक जासूसी की बात नहीं करेंगे। सैनिक जासूसी में g की माप कोई भी महत्त्व नहीं रखती है। यहां भूवैज्ञानिक पूर्वेक्षण की चर्चा की जायेगी। ऐसा पूर्वेक्षण भूगर्भ में खनिज पदार्थों के भंडार ढूंढ़ने के लिए पृथ्वी को खोदे और खानें बनाए बिना किया जाता है।

गुरुत्वीय त्वरण को परिशुद्धता से मालूम करने के लिए कई तरीक़े हैं। कमानी तुला से किसी मानक भार को तौल कर g मालूम किया जा सकता है। भूवैज्ञानिक तुला अत्यधिक सुग्राही होनी चाहिए – तुला के पलड़े में एक ग्राम के दस लाखवें हिस्से के बराबर भार रखने पर भी कमानी को अपनी स्थिति बदल लेनी चाहिए। ऐसे अच्छे परिणाम मरोड़ क्वार्ट्ज़ तुला ही दे सकती है। इसकी बनावट का सिद्धान्त जटिल नहीं है। क्षैतिज रूप में तनित क्वार्ट्ज़ धागे पर एक लीवर को वेल्ड किया गया है जिसके भार के कारण तागा तनिक-सा मरोड़ में आ जाता है (देखिए चित्र 65)।

इन्हीं लक्ष्यों की सिद्धि के लिए लोलक का भी इस्तेमाल किया जाता



चित्र 65

है। कुछ वर्ष पहले g को मापने के लिए लोलक ही एकमात्र साधन था। लेकिन पिछले 10–20 सालों में अधिक सरल और परिशुद्ध तुला ने लोलक का स्थान लेना शुरू किया है। हर हालत में लोलक के दोलन का आवर्तकाल मापते समय $T=2\pi\sqrt{\frac{l}{g}}$ सूत्र का उपयोग कर g को बहुत परिशुद्धता से मापा जा सकता है।

यदि एक ही उपकरण से g के मान को अलग-अलग जगहों पर मापा जाए, तो गुरुत्व बल में सापेक्ष परिवर्तन को दस लाखवें हिस्से तक की परिशुद्धता से मापा जा सकता है।

पृथ्वी की सतह पर किसी भी जगह पर g के मान को मापते समय परीक्षणकर्ता मालूम करता है कि यहां मान असामान्य है, मानक मान से थोड़ा कम या अधिक है।

लेकिन g के परिमाण का मानक क्या है?

परीक्षणकर्ताओं को पता है कि गुरुत्वीय त्वरण के मान में पृथ्वी की सतह पर दो तरह के परिवर्तन होते हैं, जो पहले देखे जा चुके हैं और जिनका अन्वेषकों को अच्छा-खासा ज्ञान है।

पहला, ध्रुव से भूमध्य-रेखा की तरफ़ जाने पर g धीरे-धीरे कम होता जाता है। इसके बारे में भी हमने पहले बताया है। यहां केवल इस बात

का उल्लेख किया जाएगा कि इस परिवर्तन के भी दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि पृथ्वी एकदम गोलाकार नहीं है, और ध्रुव पर स्थित पिंड पृथ्वी के केन्द्र के पास होगा। और दूसरा कारण यह है कि जैसे-जैसे हम भूमध्य-रेखा की ओर बढ़ते जाएंगे गुरुत्व-बल अपकेन्द्री बल द्वारा कम होता जाएगा।

दूसरा, g ऊंचाई के साथ-साथ कम होता जाता है। पृथ्वी के केन्द्र से हम जितना दूर होते जायेंगे, g उतना ही कम होता जाएगा। सूत्र के अनुसार $g=\gamma\frac{M}{(R+h)^2}$ जहां R – पृथ्वी का अर्धव्यास, h – समुद्री सतह से ऊंचाई है।

इसलिए एक ही अक्षान्तर पर और एक ही ऊंचाई पर (समुद्री सतह से) गुरुत्वीय त्वरण एकसमान होगा।

परिशुद्ध माप बताते हैं कि मान प्रायः मानक से भिन्न होते हैं – गुरुत्व आकर्षण की असंगति। असंगतियों का कारण माप की जगह के आस-पास द्रव्यमान के वितरण में असमता है।

जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया था कि बड़े पिंड के गुरुत्वाकर्षण बल को उन सब बलों का योग माना जा सकता है जो बड़े पिंड के अलग-अलग कणों की ओर से प्रभाव डालते हैं। पृथ्वी द्वारा लोलक को खींचना पृथ्वी के सब कणों के प्रभाव का परिणाम है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि समीप के कण कुल बल में ज्यादा योग देते हैं, इसका कारण यह है कि आकर्षण फ़ासले के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात होता है।

अगर उस जगह के आस-पास, जहां g मापा जा रहा है, भारी भरकम वस्तुएं विद्यमान है तो g मानक से अधिक होगा और विपरीत स्थिति में मानक से कम होगा।

उदाहरण के तौर पर अगर g को पहाड़ पर या वायुयान में, जो पहाड़ की ऊंचाई पर समुद्री तल के ऊपर उड़ रहा है, मापा जाए तो पहली स्थिति में g का मान बड़ा होगा। जैसे इटली में ऐतना पहाड़ पर g मानक मान से $0.292\,cm/sec^2$ अधिक है। अलग-अलग महासागरीय द्वीपों पर भी g मानक मान से ज़्यादा होगा। स्पष्ट है कि दोनों स्थितियों में g में वृद्धि का कारण उन स्थानों पर, जहां g को मापा गया है, अतिरिक्त द्रव्यमान का केन्द्रित होना है।

केवल g का परिमाण ही नहीं, बल्कि गुरुत्व-बल की दिशा भी मानक दिशा से भिन्न हो सकती है। अगर किसी भार को तागे से लटकाया जाए तो तनाव स्थिति में धागा उस स्थान का भूलम्ब बनाएगा। ये भूलम्ब आम अवस्था से विस्थापित हो सकता है। साहुल की "साधारण" दिशा भूगर्भशास्त्री विशेष नक़्शों से मालूम करते हैं, जिनमें g के मान के आंकड़ों के अनुसार पृथ्वी का "आदर्श" नक़्शा बना होता है।



चित्र 66

तनिक कल्पना कीजिए कि आप किसी तलहटी में साहुल से प्रयोग कर रहे हैं। साहुल का भार पृथ्वी द्वारा केन्द्र की ओर तथा पहाड़ द्वारा एक ओर को आकर्षित होगा। इन परिस्थितियों में साहुल को आम ऊर्ध्व की दिशा से विस्थापित हो जाना चाहिए। (देखिए चित्र 66)। पृथ्वी का द्रव्यमान पहाड़ के द्रव्यमान से कहीं अधिक होने की वजह से ऐसे विस्थापन कोण के कुछ ही सेकण्ड से अधिक नहीं होते हैं।

"सामान्य" अभिलम्ब को नक्षत्रों की सहायता से मालूम किया जाता है, क्यों कि हर भौगोलिक बिन्दु के लिये पता है कि "आदर्श" आकार की पृथ्वी का अभिलम्ब दिन या साल के निश्चित क्षण कहां "स्थित" होगा।

साहुल का विस्थापन कई बार अजीब परिणाम देता है। उदाहरण के तौर पर फ्लोरेन्स में अपेनाइन पहाड़ों का प्रभाव साहुल को आकर्षित न कर उसे प्रतिकर्षित करता है। इसका कारण सिर्फ़ एक ही हो सकता है: पहाड़ अन्दर से खोखले हैं।

महाद्वीपों या महासागरों के पैमाने पर गुरुत्वीय त्वरण मापने पर अद्भुत परिणाम निकलते हैं। महाद्वीप महासागरों से बहुत भारी होते हैं इसलिए ऐसा लगेगा कि g का मान महाद्वीपों पर अधिक होगा और महासागरों

पर कम। वास्तव में, यदि महासागरों या महाद्वीपों पर एक ही अक्षान्तर पर g के मान मापे जाएं तो वे लगभग बराबर ही होंगे।

इसका कारण भी एक ही है: महाद्वीप अधिक हल्की और महासागर अधिक भारी चट्टानों पर टिके हैं। वास्तव में जहां सीधी खोज करना सम्भव था वहां भूगर्भ-शास्त्रियों ने यह सिद्ध किया है कि महासागर भारी बेसालट आधार पर और महाद्वीप हल्की ग्रेनाइट चट्टानों पर टिके हैं।

फिर यह प्रश्न तत्काल उठता है: भारी और हल्की चट्टानें महाद्वीपों और महासागरों के भारों के अन्तर की इतनी परिशुद्धता से पूर्ति क्यों करती हैं। यह पूर्ति अकारण ही नहीं है, इसके कारण पृथ्वी की तहों की रचना से मालूम होने चाहिए।

भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी के ऊपरी हिस्से मानो आधार-शैलसंघ पर तैरते हों (जो समुद्री मिट्टी की तरह आसानी से मुड़-तुड़ सकता है)। 100 किलोमीटर की गहराई पर दाब लगभग हर जगह एक जैसा होना चाहिए बिल्कुल वैसे ही जैसे कि पानी-भरे बर्तन के तले पर एक जैसा दाब होता है, जिसमें अलग-अलग भार के लकड़ी के टुकड़े तैर रहे होते हैं। इसलिए एक वर्गमीटर क्षेत्रफलवाले किसी पदार्थ के खम्भे का भार सतह से 100 किलोमीटर की गहराई तक एक जैसा होना चाहिए चाहे वह महाद्वीप के या महासागर के नीचे हो।

दाबों के संतुलन (जिसे समस्थिति कहते हैं) के कारण ही महाद्वीपों का महासागरों के ऊपर एक ही अक्षान्तर पर गुरुत्वीय त्वरण g में अधिक अन्तर नहीं होता है।

गुरुत्व-बल की जगह-जगह पर असंगति का हम वैसे ही प्रयोग करते हैं जैसे कि गाऊफ़ की कहानियों में मूका ने अपनी जादूई छड़ी का प्रयोग किया था, जो पृथ्वी से टकराने पर वहीं ध्वनि पैदा करती थी जहां सोना या चांदी पाया जाता था।

भारी धातु वहीं मिलेगी जहां g का मान सबसे अधिक होगा। इसके विपरीत हल्के लवणों के भंडार वहां पाये जाते हैं, जहां g का मान कम होता है। g को $1\ cm/sec^2$ के लाखवें हिस्सों तक की परिशुद्धता से मापा जा सकता है।

उन साधनों को, जिनसे धातु का लोलक या अन्यन्त परिशुद्ध तुला से पता लगाया जाता है, गुरुत्वीय साधन कहते हैं। इनका व्यावहारिक

महत्व बड़ा है, जैसे तेल की खोज के लिए। कारण यह है कि पूर्वेक्षण के गुरुत्वीय साधनों द्वारा आसानी से मालूम किया जा सकता है कि पृथ्वी के नीचे लवण के गुम्बद कहां हैं, और प्रायः ऐसा होता है कि जहां लवण है वहां तेल भी होता है। तेल गहराई में होता है, और लवण पृथ्वी की सतह के पास होता है। कजाख़स्तान और दूसरी जगहों पर तेल की खोज गुरुत्वीय पूर्वेक्षण से ही की गई थी।

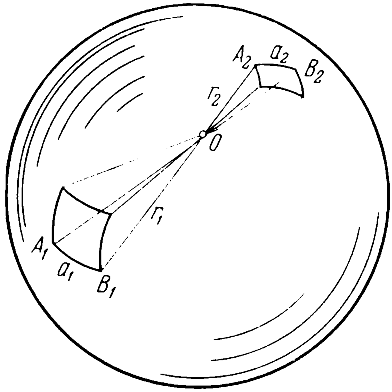
पृथ्वी के नीचे गुरुत्व

हमें एक और रोचक प्रश्न का उत्तर देना अभी बाक़ी है। पृथ्वी की गहराई में जाने से गुरुत्व बल कैसे बदलेगा?

वस्तु का भार एक तरह से अदृश्य तागों के तनाव का परिणाम है, जो पदार्थ के हर टुकड़े से वस्तु तक जाते हैं। भार—यह परिणामी बल है, जो पृथ्वी की तरफ़ से पदार्थ पर लगे प्रारम्भिक बलों के योग का परिणाम है। हालांकि ये सब बल अलग-अलग कोणों पर लगे होते हैं, फिर भी ये पिंड को "नीचे की ओर"—पृथ्वी के केन्द्र की ओर खींचते हैं।

पदार्थ का गुरुत्व क्या होगा यदि वह पृथ्वी के नीचे स्थित प्रयोगशाला में है? उसके ऊपर पृथ्वी के अन्दर और बाहर की परतों के आकर्षण बल लगे होते हैं।

आइए, अब हम पृथ्वी के अन्दर स्थित बिन्दु पर पृथ्वी की बाहरी परतों की ओर से लगे गुरुत्व बलों का अध्ययन करें। इसके वास्ते इस परत को पतली-पतली परतों में बांट और उनमें से एक परत में से a_1 भुजा के बराबर एक वर्ग काट लेते हैं। इस वर्ग के परिमाप से बिन्दु O में से, जहां पर गुरुत्व मालूम करना चाहते हैं, निकलती हुई लाइनें खींचने पर हम पाते हैं कि परत के दूसरे हिस्से में भी a_2 भुजा के बराबर एक वर्ग बन जाता है (देखिए चित्र 67)। बिन्दु O पर दोनों वर्गों की ओर से आकर्षण बल लगे हैं और उनकी दिशा एक दूसरे के विपरीत है और गुरुत्व नियम के अनुसार m_1/r_1^2 और m_2/r_2^2 के अनुपातिक हैं। लेकिन वर्गों के द्रव्यमान m_1 और m_2 वर्गों के क्षेत्रफल के अनुपातिक हैं। इसलिए गुरुत्व बल a_1^2/r_1^2 और a_2^2/r_2^2 के अनुपातिक हैं।



चित्र 67

लेकिन ये अनुपात बराबर हैं। चित्र 67 से स्पष्ट है कि a_1/r_1 और a_2/r_2 OA_1B_1 तथा OA_2B_2 त्रिभुजों की संगत भुजाओं का अनुपात हैं। ये त्रिभुज एक जैसे होंगे यदि वर्गों की भुजाओं A_1B_1 तथा A_2B_2 बहुत छोटी ली जाएं। यह हमेशा सम्भव होता है।

वास्तव में, अगर वर्ग छोटे हैं तो A_1B_1 तथा A_2B_2 दिष्टों की दिशाओं और इन बिन्दुओं की स्पर्शज्याओं की दिशाओं में कम अन्तर होगा। अत: यह माना जा सकता है कि कोण B_1A_1O तथा कोण, जो A_2B_2O का पूरक कोण है, बराबर होंगे जो एक ही चाप पर स्थित स्पर्शज्या और जीवा द्वारा बने हैं।

अत: $\angle B_1A_1O = \angle OA_2B_2$। इसके अतिरिक्त उनके शीर्षक कोण भी बराबर हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि त्रिभुज समरूप हैं।

इस रेखागणितीय प्रमाण से पता चलता है कि $\frac{a_1}{r_1} = \frac{a_2}{r_2}$। अर्थात आकर्षण बल, जो बिन्दु O पर दोनों वर्गों की तरफ़ से लगे हैं, एक दूसरे को संतुलित करते हैं।

पतली परत को एक जैसे दो "विपरीत" वर्गों में विभाजित करके हम एक विचित्र तथ्य पर पहुंचे हैं कि दो आधारोंवाला पतला समांग गोलीय खंड उसमें स्थित बिन्दु पर प्रभाव नहीं डालता है। यह सब उन पतली परतों के लिए सही है जिनमें हमने गोलीय पट्टी को बांटा है, जो भूमि के अन्दर उस बिन्दु पर स्थित है जिसका हम अध्ययन करना चाहते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी की परत का, जो पिंड के ऊपर है, एक तरह से अस्तित्व नहीं है। उसके अलग-अलग हिस्सों का पिंड पर प्रभाव

संतुलित हो जाता है और बाहरी परतों की ओर से कुल आकर्षण बल शून्य के बराबर होता है।

इन सब तर्कों में हमने पृथ्वी के घनत्व को हरेक परत में const. माना था।

इन तर्कों के परिणाम से गुरुत्व बल के लिए सरलता से सूत्र निकाला जा सकता है, जो पृथ्वी की किसी भी गहराई H के लिए सही होगा। H गहराई पर स्थित बिन्दु केवल पृथ्वी की अन्दर की परतों के आकर्षण के प्रभाव को ही महसूस करेगा। गुरुत्वीय त्वरण का सूत्र $g = \gamma \frac{M}{R^2}$ इस स्थिति के लिए भी ठीक है, लेकिन M और R – सारी पृथ्वी का द्रव्यमान और अर्धव्यास न होकर सिर्फ़ इस बिन्दु की अपेक्षा उसके "अन्दर" के हिस्से के द्रव्यमान और अर्धव्यास हैं।

यदि पृथ्वी का घनत्व सब परतों के लिए एकसमान होता तो g का सूत्र निम्नलिखित रूप ले लेता :

$$g = \gamma \frac{\rho \frac{4}{3} \pi (R_e - H)^3}{(R_e - H)^2} = \frac{4}{3} \pi \gamma \rho (R_e - H)$$

यहां ρ – पृथ्वी का घनत्व और R_e – पृथ्वी का अर्धव्यास हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि g $(R_e - H)$ के अनुक्रमानुपात होता : गहराई H जितनी अधिक होती, g उतना ही कम होता।

वास्तव में g पृथ्वी की सतह के पास – और समुद्री सतह से 5 किलो-मीटर की गहराई तक – इस नियम के अनुसार नहीं बदलता है। प्रयोग के परिणामों से मालूम होता है कि इन परतों पर g गहराई के साथ-साथ बढ़ता जाता है। प्रयोग और सूत्र के परिणामों में अन्तर भिन्न-भिन्न गहराइयों पर घनत्व को ध्यान में न रखने के कारण आता है।

पृथ्वी का औसत घनत्व भूमण्डल के द्रव्यमान को उसके आयतन से भाग देने पर आसानी से मालूम किया जाता है और 5.52 के बराबर होता है। चट्टानों का घनत्व इससे बहुत कम यानी 2.75 होता है। पृथ्वी की परतों का घनत्व गहराई के साथ बढ़ता है। ऊपर निकाले गये सूत्र द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों से हम देखते हैं कि पृथ्वी की सतह की परतों पर घनत्व में कमी कम होती है, लेकिन g बढ़ता है।

गुरुत्वीय ऊर्जा

एक सरल उदाहरण के आधार पर हम गुरुत्वीय ऊर्जा से परिचय कर चुके हैं। पृथ्वी से h उंचाई पर उठे हुए पिडं की स्थितिज ऊर्जा mgh होती है।

लेकिन इस सूत्र का तभी प्रयोग किया जा सकता है जब h पृथ्वी के अर्धव्यास से कम हो।

गुरुत्वीय ऊर्जा एक महत्वपूर्ण परिणाम है और उसे मालूम करने के वास्ते एक ऐसा सूत्र मालूम करना चाहिए जो पृथ्वी की सतह से किसी भी ऊंचाई पर उठे पिंड या किन्हीं भी दो द्रव्यमानों के लिए, जो सार्वत्रिक नियम के अनुसार एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, लागू हो सके:

$$F = \gamma \frac{m_1 m_2}{r^2}$$

आइए, अब कल्पना करें कि परस्पर आकर्षण के प्रभाव से पिंड एक-दूसरे के थोड़ा समीप आ गये हैं। पहले उन्के बीच दूरी r_1 थी और अब r_2 हो गयी है। ऐसा होने पर कार्य होता है $A = F(r_1 - r_2)$। बल के मान को किसी भी बीच के बिन्दु के लिए लेना चाहिए। तब

$$A = \gamma \frac{m_1 m_2}{r^2_{\text{मध्य}}} (r_1 - r_2)$$

यदि r_1 और r_2 में अन्तर कम है तो $r^2_{\text{मध्य}}$ को $r_1 r_2$ के गुणनफल से बदल सकते हैं। तब

$$A = \gamma \frac{m_1 m_2}{r_2} - \gamma \frac{m_1 m_2}{r_1}$$

यह कार्य गुरुत्वीय ऊर्जा के कारण हुआ:

$$A = U_1 - U_2$$

यहां U_1 – आकर्षण से पहले और U_2 – आकर्षण के बाद की गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा के मान हैं।

दोनों सूत्रों की तुलना करने पर हम स्थितिज ऊर्जा के लिए निम्नलिखित सूत्र पाते हैं:

$$U = -\gamma \frac{m_1 m_2}{r}$$

यह सूत्र गुरुत्व-बल के सूत्र के सदृश है। अन्तर केवल यह है कि हर में r प्रथम कोटि में है।

इसी सूत्र के अनुसार, r बहुत बड़ा होने पर स्थितिज ऊर्जा शून्य के बराबर होगी अर्थात $U = 0$। यह बात सही भी है चूंकि इतनी दूरी पर आकर्षण का अनुभव नहीं होगा। पिंडों को समीप लाने पर स्थितिज ऊर्जा कम हो जानी चाहिए क्योंकि उसी की वजह से ही तो कार्य होता है।

शून्य से और कम राशि क्या हो सकती है? ऋणात्मक दिशा में क्या। इसीलिए ही इस सूत्र में ऋणात्मक चिन्ह है। -5 शून्य से कम है और -10 -5 से कम है।

अगर बात पृथ्वी के धरातल के समीप होनेवाली गति के बारे में हो रही है तो गुरुत्व-बल के सूत्र को mg गुणनफल से बदल सकते हैं। तब काफ़ी परिशुद्धता से लिख सकते हैं $U_1 - U_2 = mgh$

लेकिन पृथ्वी की सतह पर पिंड की स्थितिज ऊर्जा $-\gamma \frac{Mm}{R}$ के बराबर है, जहां R – पृथ्वी का अर्धव्यास है। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी की सतह से h ऊंचाई पर

$$U = -\gamma \frac{Mm}{R} + mgh$$

जब हमने सबसे पहले स्थितिज ऊर्जा का सूत्र $U = mgh$ निकाला था तो यह माना था कि ऊंचाई और ऊर्जा को पृथ्वी की सतह से ही मापा जाएगा। सूत्र $U = mgh$ लेने पर हम अचर पद $-\gamma \frac{Mm}{R}$ को छोड़ देते हैं यह सोच कर कि वह शून्य के बराबर है। ऐसा हम इसलिए करते हैं कि हमें केवल ऊर्जाओं के बीच का अन्तर ही मालूम करना होता है। प्रायः कार्य ही मापा जाता है, जो ऊर्जाओं के बीच का अन्तर होता है। इसलिए सूत्र में प्रकट होनेवाला पद $-\gamma \frac{Mm}{R}$ कोई मायने नहीं रखता है।

गुरुत्वीय ऊर्जा उन श्रृंखलाओं की दृढ़ता को इंगित करती है, जिनसे पिंड पृथ्वी के साथ "जुड़ा" होता है। इन श्रृंखलाओं को कैसे तोड़ा जाये, और यह कैसे सम्भव होगा कि पृथ्वी से फेंका पदार्थ पृथ्वी पर वापस लौट कर न आए? स्पष्ट है कि ऐसा करने के लिए पिंड को बहुत बड़ा प्रारम्भिक वेग देना होगा। लेकिन यह वेग कम से कम कितना होना चाहिए?

पृथ्वी पर से फेंका गया पिंड (गोला, राकेट) पृथ्वी से जैसे-जैसे दूर होता जायेगा उसकी स्थितिज ऊर्जा बढ़ती जायेगी (U का निरपेक्ष मान कम होता जाता है); गतिज ऊर्जा कम होती जायेगी। अगर गतिज ऊर्जा समय से पहले, जब तक कि पृथ्वी की गुरुत्व शृंखलाएं टूटती नहीं हैं, शून्य हो जाएगी तो फेंका हुआ पिंड पृथ्वी पर वापस लौट आयेगा।

इसलिए यह आवश्यक है कि पिंड की गतिज ऊर्जा तब तक बनी रहे जब तक उसकी स्थितिज ऊर्जा व्यावहारिक रूप से शून्य नहीं हो जाती है। गोला फेंकने से पहले स्थितिज ऊर्जा $-\gamma\frac{Mm}{R}$ थी, जहां M और R पृथ्वी के द्रव्यमान तथा अर्धव्यास हैं। इसलिए गोले को ऐसा वेग प्रदान करना पड़ेगा, जो पृथ्वी की सतह से अलग हो चुके गोले की पूरी ऊर्जा को धनात्मक बना दे। अगर पिंड की पूरी ऊर्जा ऋणात्मक है (स्थितिज ऊर्जा का निरपेक्ष मान गतिज ऊर्जा से ज़्यादा है), तो वह गुरुत्व क्षेत्र की सीमा से बाहर नहीं जा सकेगा।

इसलिए हम एक सरल परिणाम पर पहुंचते हैं। m द्रव्यमानवाले पिंड को पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्र से निकलने के लिए, जैसा कि ऊपर कहा गया है, गुरुत्व स्थितिज ऊर्जा

$$\gamma\frac{Mm}{R}$$

से ज़्यादा होनी चाहिए।

ऐसा करने के वास्ते गोले का वेग तथाकथित दूसरा कास्मिक वेग v_2 के बराबर होना चाहिए, यह वेग गतिज और स्थितिज ऊर्जा के समीकरण से आसानी से मालूम किया जा सकता है।

$$\frac{mv_2^2}{2}=\gamma\frac{mM}{R} \text{ यानी } v_2^2=2\gamma\frac{M}{R} \text{ या, चूंकि } g=\gamma\frac{M}{R^2}$$

$$v_2^2=2gR$$

इस सूत्र से मालूम किया गया v_2 का मान 11 किलोमीटर/सेकण्ड के बराबर है। यहां वायुमण्डल के प्रतिरोध को ध्यान में नहीं लिया गया है। यह वेग पृथ्वी की सतह के पास घूर्णन करते कृत्रिम उपग्रह के पहले कास्मिक वेग $v_1=\sqrt{gR}$ से $\sqrt{2}=1.41$ गुना अधिक है यानी $v_2=\sqrt{2}\cdot v_1$

चांद का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान से 81 गुना कम है, उसका

अर्धव्यास पृथ्वी के अर्धव्यास का एक-चौथाई है। इसलिए चांद पर गुरुत्वीय ऊर्जा पृथ्वी की अपेक्षा 20 गुना कम है और चांद के गुरुत्व से निकलने के लिए 2.5 किलोमीटर/सेकण्ड का वेग ही काफ़ी होगा।

गतिज ऊर्जा $mv_2^2/2$ ग्रह के गुरुत्व की कड़ियों से निकलने के लिए खर्च होती है। यदि हम चाहें कि गुरुत्व-बल को पार करने के बाद राकेट v वेग से चले तो इसके लिए उसे अतिरिक्त ऊर्जा $mv^2/2$ प्रदान करनी पड़ेगी। इस स्थिति में राकेट को यात्रा पर भेजने के लिए उसे $\frac{mv_0^2}{2} = \frac{mv_2^2}{2} + \frac{mv^2}{2}$ ऊर्जा प्रदान करना जरूरी होगा। इसलिए तीनों वेगों को एक सरल सम्बन्ध से व्यक्त कर सकते हैं:

$$v_0^2 = v_2^2 + v^2$$

पृथ्वी और सूर्य के गुरुत्वीय आकर्षण बल को पार करने के लिए दूर नक्षत्रों की ओर भेजे जानेवाले राकेट का कम से कम वेग कितना होना चाहिए। इस वेग को हमने v_3 से व्यक्त किया था। इसलिए इसे तीसरा कास्मिक वेग कहते हैं।

आइए, हम सब से पहले उस वेग को मालूम करें जो सूर्य के गुरुत्वीय आकर्षण बल को पार करने के लिए ज़रूरी है।

जैसा कि हमने सिद्ध किया है कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से निकलने के लिए राकेट का वेग कृत्रिम उपग्रह को कक्ष में लाने के वेग से $\sqrt{2}$ गुना अधिक होना चाहिए। यही बात समान रूप से सूर्य के लिए भी उचित है। अर्थात सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से निकलने के लिए जिस वेग की आवश्यकता है वह सूर्य (यानी पृथ्वी) के उपग्रह के वेग से $\sqrt{2}$ गुना अधिक होना चाहिए। पृथ्वी सूर्य के गिर्द 30km/sec के वेग से चक्कर लगाती है, इसलिए सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से निकलने का वेग 42km/sec के बराबर होगा। यह बहुत अधिक है, लेकिन राकेट को दूर नक्षत्रों की ओर भेजने के लिए पृथ्वी की गति का प्रयोग करना चाहिए और राकेट को उस दिशा में छोड़ना चाहिए जिस दिशा में पृथ्वी घूमती है। तब हमें केवल राकेट के वेग में $42 - 30 = 12$km/sec की वृद्धि ही करनी पड़ेगी।

अब हम तीसरा कास्मिक वेग मालूम कर सकते हैं। यह वह वेग है

जिसे राकेट को प्रदान करना चाहिए ताकि वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से निकल कर 12 km/sec के वेग से चले। तत्काल निकाले गये सूत्र का प्रयोग करने से पता चलता है कि

$$v_3^2 = (11)^2 + (12)^2$$

जहां से $v_3 = 16$ km/sec

11 km/sec के लगभग वेग से जानेवाला पिंड पृथ्वी पर वापस नहीं आयेगा, लेकिन ऐसा राकेट दूर भी नहीं जायेगा। पृथ्वी ने तो उसे छोड़ दिया है, लेकिन सूर्य उसे मुक्त नहीं करेगा। वह सूर्य का उपग्रह बन जायेगा।

अतः पता चलता है कि अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा के लिए आवश्यक वेग सौर परिवार का पृथ्वी के कक्ष में भ्रमण करने के लिए वेग से मात्र डेढ़ गुना अधिक होता है। लेकिन जैसा ऊपर कहा गया है, राकेट के प्रारंभिक वेग को बढ़ाने पर अनेक तकनीकी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं (देखिए पृष्ठ ६३)।

ग्रह किस प्रकार चलते हैं

ग्रह किस प्रकार चलते हैं, इस प्रश्न का बहुत संक्षेप उत्तर यह है: वे गुरुत्व नियम का पालन करते हैं। कारण यह है कि गुरुत्व बल ही एकमात्र बल हैं जो ग्रहों पर लगे हैं।

ग्रहों का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से बहुत कम है इसीलिए ग्रहों को एक दूसरे की ओर खींचनेवाले बल अधिक महत्त्व नहीं रखते हैं। इसलिए हर ग्रह लगभग इस प्रकार चलता है मानो उस पर केवल सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल ही लगा हो और दूसरे ग्रहों का अस्तित्व ही न हो।

ग्रह की सूर्य के गिर्द गति के नियम सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण नियम से निकलते हैं।

लेकिन ऐतिहासिक तौर पर ऐसा नहीं हुआ। न्यूटन से पहले जर्मनी के महान खगोलशास्त्री योगान केप्लर ने गुरुत्वाकर्षण नियम का उपयोग किए बिना ही अपने बीस वर्षीय खगोलीय प्रेक्षणों के आधार पर ग्रहों की गति के नियम ज्ञात किए थे।

पथ, या, जैसा कि खगोलशास्त्री कहते हैं, कक्ष, जिन पर ग्रह सूर्य के गिर्द चक्र लगाते हैं, लगभग वृत्ताकार होते हैं।

ग्रह का आवर्तकाल कक्ष के अर्धव्यास से कैसे संबंधित है?

सूर्य की ओर से ग्रह पर लगा गुरुत्वाकर्षण बल बराबर होता है:

$$F=\gamma\frac{m\ M}{r^2}$$

जहां M–सूर्य का द्रव्यमान है, m–ग्रह का द्रव्यमान और r–दोनों ग्रहों के बीच की दूरी है।

लेकिन यांत्रिकी के आधारभूत नियमानुसार F/m त्वरण है और वह भी अभिकेन्द्री त्वरण है:

$$\frac{F}{m}=\frac{v^2}{r^2}$$

ग्रह के वेग को परिधि की लम्बाई $2\pi r$ को आवर्तकाल से विभाजित कर व्यक्त किया जा सकता है। त्वरण के सूत्र में $v=\frac{2\pi r}{T}$ और बल के मान F को प्रतिस्थापित कर हम पाते हैं:

$$\frac{4\pi^2 r}{T^2}=\frac{\gamma M}{r} \quad \text{यानी} \quad T^2=\frac{4\pi^2}{\gamma M}r^3$$

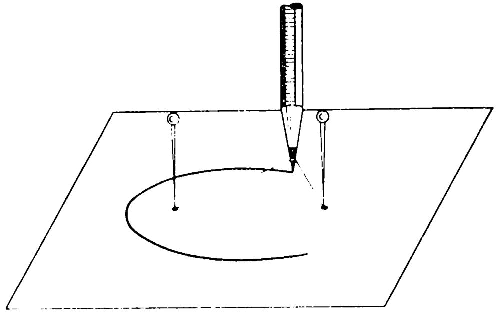
r^3 से पहले प्रकट होनेवाला अनुपातिकता गुणक केवल सूर्य के द्रव्यमान पर निर्भर करता है और हर किसी ग्रह के लिए एक जैसा है। अतः, दो ग्रहों के लिए निम्नलिखित सम्बन्ध उचित है।

$$\frac{T_1^2}{T_2^2}=\frac{r_1^3}{r_2^3}$$

ग्रहों के आवर्तकाल के वर्गों का अनुपात उनके कक्षों के अर्धव्यासों के घनों के बराबर होता है। यह रोचक नियम केप्लर ने प्रयोग के आधार पर निकाला था। सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण नियम ने केप्लर के प्रेक्षणों की व्याख्या प्रदान की।

किसी एक नक्षत्र की दूसरे नक्षत्र के गिर्द वर्तुल गति–यह केवल एक ही सम्भावना है।

किसी एक पिंड के पथ, जो गुरुत्वाकर्षण बलों की बदौलत दूसरे पिंड के गिर्द घूमता है, अलग-अलग हो सकते हैं। लेकिन जैसा कि परिकलन बताते हैं और जैसा कि केप्लर ने बिना किसी परिकलन के मालूम किया



चित्र 68

था, वे सब वक्र रेखाओं की एक ही श्रेणी में आते हैं, जिन्हें दीर्घवृत्त (इलिप्स) कहते हैं।

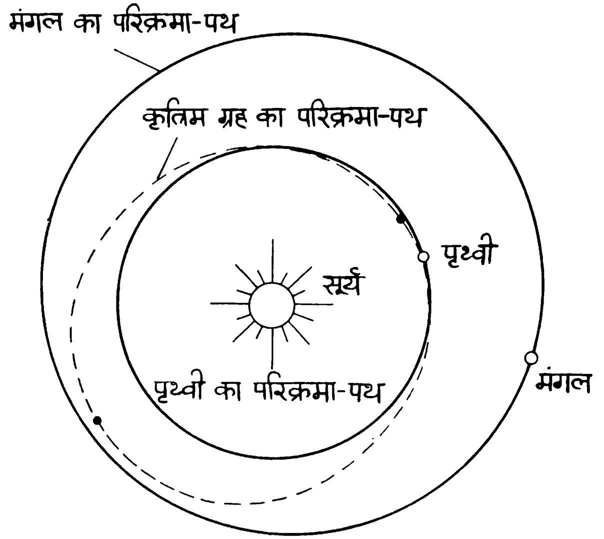
अगर ड्राइंग पेपर में लगी दो पिनों में धागा डालकर उसे पेंसिल की नोंक से तनाव में लाया जाए और पेंसिल को ऐसे चलाया जाए कि धागा तनाव में ही रहे, तो एक बन्द वक्र रेखा अर्थात दीर्घवृत्त खिंच जाएगा (देखिए चित्र 68)। जिन बिन्दुओं पर पिनों को गाड़ा गया है, उन्हें दीर्घावृत्त के फ़ोकस कहते हैं।

दीर्घवृत्तों का आकार विभिन्न तरह का हो सकता है। यदि धागा दोनों पिनों के बीच की दूरी से बहुत लम्बा होगा तो दीर्घवृत्त वृत्त में परिवर्तित हो जाएगा। इसके विपरति यदि धागे की लम्बाई दोनों पिनों की लम्बाई से तनिक अधिक है तो दीर्घाक्ष इलिप्स यानी डंडे के आकार का दीर्घवृत्त बनेगा।

ग्रह दीर्घवृत्त बनाते हैं जिनका एक फ़ोकस सूर्य होता है।

ग्रह कैसे दीर्घवृत्त बनाते हैं? मालूम होता है कि वे लगभग वृत्त जैसे होते हैं।

सूर्य के सबसे समीप के ग्रह—बुध—का पथ वृत्त मे काफ़ी भिन्न है। लेकिन यहां भी दीर्घवृत्त का दीर्घ अक्ष लघु अक्ष से केवल 2% ही लम्बा होता है। कृत्रिम ग्रहों के कक्ष भी विभिन्न होते हैं। चित्र 69 में दिखाए गए मंगल ग्रह के कक्ष और वृत्त के बीच अन्तर मालूम करना आसान नहीं है।

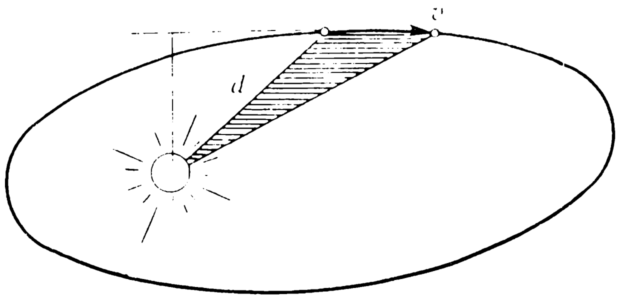


चित्र 69

चूंकि सूर्य दीर्घवृत्त के एक फ़ोकस न कि उसके केन्द्र पर स्थित है, इसलिए सूर्य से ग्रह की दूरी बहुत बदल जाती है। आइए, दीर्घवृत्त के दोनों फ़ोकसों के बीच से गुज़रती हुई एक रेखा खींचे। यह रेखा दीर्घवृत्त को दो बिन्दुओं पर काटेगी। सूर्य के सबसे पास वाले बिन्दु को रविनीच (perihelion) कहते हैं, और सबसे दूर स्थित बिन्दु को सूर्योच्च (aphelion) कहते हैं। जब बुध रविनीच पर स्थित होता है तो वह सूर्योच्च की अपेक्षा सूर्य से डेढ़ गुना निकट होता है।

मुख्य ग्रह सूर्य के गिर्द लगभग वृत जैसे दीर्घवृत्ताकार कक्षों में चक्कर लगाते हैं। धूमकेतु (comet) भी लगभग ऐसे ही कक्षों में चक्कर काटते हैं। उनके कक्षों की ग्रह के कक्षों के चपटेपन से कोई तुलना नहीं की जा सकती है। दीर्घवृत्ताकार कक्षों में चक्कर काट रहे खगोलीय पिंडों के बारे में कह सकते हैं कि वे सौर परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन सौर परिवार में कभी-कभी अनावश्यक पिंड भी आ टपकते हैं।

ऐसे पुच्छल तारे (comets) भी देखने में आये हैं, जो सूर्य के गिर्द ऐसे वक्ररेखीय कक्ष बनाते थे कि उनके कक्ष के आकार से यह परिणाम



चित्र 70

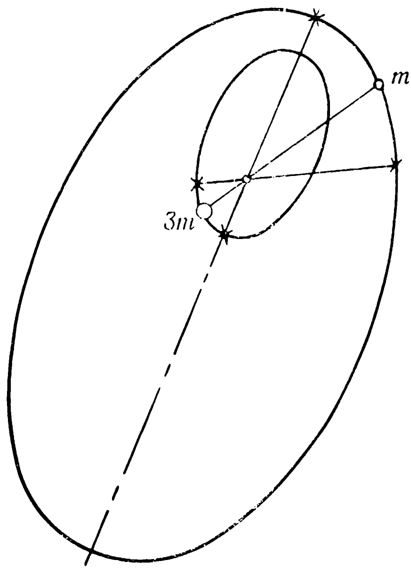
निकाला जा सकता था: पुच्छल तारे वापस नहीं आएंगे, वे सौर परिवार के सदस्य नहीं है। पुच्छल तारों द्वारा बनायी गयी "खुली" वक्र रेखाओं को अतिपरवलय (हाइपरबोला) कहते हैं।

ऐसे पुच्छल तारे सूर्य के पास से गुजरने पर अधिक तीव्रता से चलते हैं। यह बात समझ में भी आती है। पुच्छल तारे की पूर्ण ऊर्जा निश्चित है और सूर्य के पास से निकलते समय तारे की स्थितिज ऊर्जा न्यूनतम होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि गतिज ऊर्जा इस स्थिति में अधिकतम होगी। यही बात सब ग्रहों और पृथ्वी के लिए भी ठीक है। लेकिन यह प्रभाव अधिक नहीं होता चूंकि रविनीच तथा सूर्योच्च बिन्दुओं पर स्थितिज ऊर्जाओं में अन्तर कम होता है।

आवेग-संरक्षण नियम से ग्रहों की गति का रोचक नियम निकलता है।

चित्र 70 में ग्रह की दो स्थितियां दिखाई गई हैं। सूर्य से अर्थात दीर्घवृत्त के फ़ोकस से दो अर्धव्यास ग्रह की स्थितियों तक खींचे गए हैं और इस तरह से बने त्रिज्यखंड (सेक्टर) को छायित किया है। अब एकांक समय में अर्धव्यास द्वारा तय किए गए क्षेत्रफल को मालूम करना है। यदि कोण छोटा है, तो एक अर्धव्यास द्वारा एक सेकण्ड में बनाए गए सेक्टर को एक त्रिभुज मान सकते हैं। त्रिभुज का आधार वेग v (एक सेकण्ड में तय किया गया रास्ता) और त्रिभुज की ऊंचाई वेग की भुजा d के बराबर होगी। इसलिए त्रिभुज का क्षेत्रफल है $vd/2$।

आवेग-संरक्षण नियम से पता चलता है कि गति के समय mvd अचर रहता है। यदि mvd अचर है तो त्रिभुज का क्षेत्रफल $vd/2$ भी नहीं



चित्र 71

बदलेगा। किसी भी पल के लिए हम सेक्टर खींच सकते हैं—उनका क्षेत्रफल एकसमान होगा। ग्रह का वेग बदलता है, लेकिन त्रिज्यखंडीय वेग अपरिवर्तित ही रहता है।

लेकिन सब तारे ग्रहों के घेरे में नहीं आते हैं। आकाश में बहुत से युग्मतारे हैं। दो विशाल खगोलीय पिंड एक दूसरे के समीप घूमते हैं।

सूर्य का द्रव्यमान बहुत अधिक होने के कारण सूर्य सौर परिवार के केन्द्र में है। युग्मतारों में दोनों खगोलीय पिंडों के द्रव्यमान लगभग बराबर होते हैं। इसलिए यहां यह नहीं माना जा सकता है कि इन में से एक विराम स्थिति में है। तब इस स्थिति में गति कैसे होती है? हमें पता है कि हर संवृत तंत्र (closed system) में एक विराम (या एकसमान गति से चलता हुआ) बिन्दु होता है। इसे जड़त्वीय केन्द्र कहते हैं। इस बिन्दु के गिर्द ही दोनों तारे घूमते हैं। ऐसा करने पर वे एक जैसे दीर्घवृत्त बनाते हैं, यह पृष्ठ १५५

पर दी गई शर्त $\frac{m_1}{m_2} = \frac{r_2}{r_1}$ से भी पता चलता है। एक तारे का दीर्घवृत्त दूसरे के दीर्घवृत्त से उतना ही बड़ा होता है जितना कि एक तारे का द्रव्यमान दूसरे के द्रव्यमान से अधिक होता है (चित्र 71)। एकसमान द्रव्यमान होने पर दोनों तारे जड़त्वीय केन्द्र के पास एक जैसे पथ बनाएंगे।

सौर परिवार के ग्रह आदर्श परिस्थितियों में है: उन पर घर्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

लेकिन मनुष्य द्वारा बनाए गए कृत्रिम खगोलीय पिंड – उपग्रह – ऐसी आदर्श स्थिति में नहीं होते हैं: घर्षण बल शुरू में चाहे कम होते हैं लेकिन उनका प्रभाव काफ़ी होता है और उपग्रहों की गति में बहुत बाधा डालते हैं।

ग्रह की पूर्ण ऊर्जा अपरिवर्तित रहती है। उपग्रह की पूर्ण ऊर्जा हर परिक्रमा के बाद थोड़ी कम हो जाती है। शुरू में लगता है कि घर्षण से उपग्रह की गति धीमी हो जायेगी। वास्तव में होता है इसके विपरीत।

आइए, अब लिखें कि उपग्रह का वेग $\sqrt{gR}$ या $\sqrt{\gamma \frac{M}{R}}$ के बराबर है जहां R – पृथ्वी के केन्द्र से दूरी और M – पृथ्वी का द्रव्यमान है।

उपग्रह की पूर्ण ऊर्जा

$$E = -\gamma \frac{Mm}{R} + \frac{mv^2}{2}$$

उपग्रह के वेग का मान सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर हम गतिज ऊर्जा के वास्ते व्यंजक पाते हैं $\gamma \frac{mM}{2R}$। हम देखते हैं कि गतिज ऊर्जा का निरपेक्ष मान स्थितिज ऊर्जा से दुगना कम है लेकिन पूर्ण ऊर्जा

$$E = -\frac{\gamma}{2} \times \frac{mM}{R}$$

अगर घर्षण है तो पूर्ण ऊर्जा में हानि होगी यानी उसका निरपेक्ष मान बढ़ेगा चूंकि वह ऋणात्मक है। दूरी R कम होने लगती है: उपग्रह की ऊंचाई कम होने लगती है। ऐसी स्थिति में ऊर्जा-घटकों का क्या होगा? स्थितिज ऊर्जा कम हो जाती है (निरपेक्ष मान बढ़ता है) और गतिज ऊर्जा में वृद्धि हो जाती है।

तिस पर भी कुल ऊर्जा ऋणात्मक रहती है क्योंकि स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में वृद्धि की अपेक्षा दुगुनी जल्दी घटती है।

घर्षण की वजह से उपग्रह के वेग में कमी नहीं, बल्कि वृद्धि होती है।

अब समझ में आ गया कि विशाल राकेट-वाहक छोटे उपग्रह से आगे कैसे निकल जाता है। बड़े राकेट का घर्षण अधिक होता है।

अगर चांद न होता

हम यहां इस बात पर विचार नहीं करेंगे कि कवियों और प्रेमियों के दिलों पर चांद के न होने पर क्या गुज़रती। इस शीर्षक को बहुत नीरस समझना चाहिए: चांद की अनुपस्थिति का पार्थिव यांत्रिकी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

पहले जब हमने इस बात की चर्चा की थी कि मेज़ पर पड़ी पुस्तक पर कौन-कौन से बल प्रभाव डालते हैं, तो हमने विश्वास के साथ कहा था: गुरुत्वाकर्षण बल तथा प्रतिक्रिया का बल। लेकिन सच तो यह है कि मेज़ पर पड़ी पुस्तक को चांद, सूर्य, और तारे तक भी आकर्षित करते हैं।

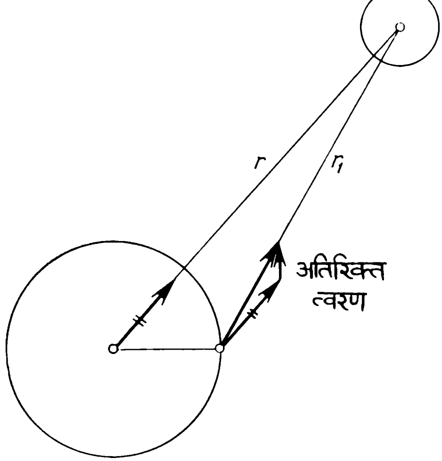
चांद पृथ्वी के सबसे निकट का ग्रह है। सूर्य और तारों को भूल कर हम यह अध्ययन करेंगे कि पृथ्वी पर चांद के प्रभाव से पिंड का भार कितना बदलता है।

चांद और पृथ्वी आपेक्षिक गति में हैं। चांद की अपेक्षा पृथ्वी के सारे बिन्दु $\gamma \frac{m}{r^2}$ त्वरण से चक्कर काटते हैं। यहां m चांद का द्रव्यमान और r चांद और पृथ्वी के केन्द्रों के बीच की दूरी है।

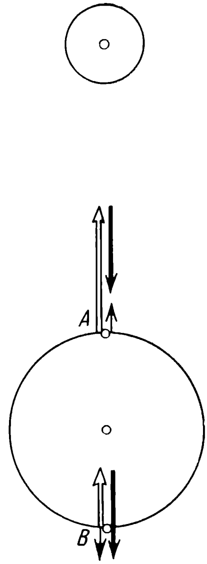
आइए, अब पृथ्वी के धरातल पर पड़े पिंड का अध्ययन करें। हमें यह मालूम करना है कि चांद के प्रभाव से उसके भार में कितना अन्तर आएगा। पृथ्वी पर भार पृथ्वी के त्वरण के अनुसार मालूम करते हैं। दूसरे शब्दों में हमें मालूम करना है कि चांद के प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह पर पड़े पिंड का त्वरण पृथ्वी की अपेक्षा कितना बदलेगा।

पृथ्वी का चांद की अपेक्षा त्वरण बराबर है $\gamma \frac{m}{r^2}$; पृथ्वी की सतह पर पड़े पिंड का त्वरण चांद की अपेक्षा $\gamma \frac{m}{r_1^2}$ के बराबर होता है, जहां r_1 – चांद और पिंड के बीच की दूरी है (देखिए चित्र 72)।

लेकिन हमें पृथ्वी की अपेक्षा अतिरिक्त त्वरण को मालूम करना है: वह दोनों त्वरणों के रेखागणितीय अन्तर के बराबर होगा।



चित्र 73



चित्र 72

$\gamma \frac{m}{r^2}$ —पृथ्वी के लिए एक निश्चित परिमाण है, लेकिन $\gamma \frac{m}{r_1^2}$ पृथ्वी की सतह के अलग-अलग बिन्दुओं पर भिन्न है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रेखागणितीय अन्तर पृथ्वी के अलग-अलग बिन्दुओं पर भिन्न होगा।

पार्थिव गुरुत्वाकर्षण चांद से सबसे निकट बिन्दु, सबसे दूर के बिन्दु तथा मध्य बिन्दु के लिए क्या होगा?

पृथ्वी के केन्द्र की अपेक्षा चांद द्वारा पिंड में पैदा किये त्वरण यानी पार्थिव गुरुत्वाकर्षण g में संशुद्धि मालूम करने के वास्ते $\gamma \frac{m}{r_1^2}$ में से पृथ्वी के निश्चित स्थानों पर (चित्र 73 में खोखले तीर) अचर मान $\gamma \frac{m}{r^2}$ घटाना होगा। यहां हमें यह याद रखना चाहिए कि त्वरण $\gamma \frac{m}{r^2}$ —पृथ्वी से चांद की ओर—पृथ्वी—चांद केन्द्र-रेखा के समान्तर दिष्ट है। वेक्टर

को घटाने का अर्थ है कि विपरीत दिशा के वेक्टर को जोड़ा जाए। चित्र में मोटे तीरों से $-\gamma \frac{m}{r^2}$ वेक्टर दिखाए गए हैं।

चित्र में दिखाए गए वेक्टरों का योग कर हम आवश्यक परिणाम पाते हैं: पृथ्वी पर स्वतंत्र रूप से गिर रहे पिंड के त्वरण में चांद के प्रभाव से परिवर्तन आता है।

चांद से बहुत निकट जगह पर अतिरिक्त परिणामी त्वरण बराबर होगा:

$$\gamma \frac{m}{(r-R)^2} - \gamma \frac{m}{r^2}$$

और चांद की ओर दिष्ट होगा। पार्थिव गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है, पिंड A बिन्दु पर चांद न होने की अपेक्षा हल्का हो जाता है।

यह ध्यान में रखते हुए कि बड़ा R छोटे r से बहुत कम है, ऊपरलिखित सूत्र को सरल बनाया जा सकता है। सार्व हर बनाने पर हम पाते हैं:

$$\frac{\gamma m R\,(2r-R)}{r^2\,(r-R)^2}$$

कोष्ठकों में लिखे सापेक्षतः छोटे मान R को, जो काफ़ी बड़े मानों r या $2r$ में से घटाया जाता है, छोड़ देने पर हम पाते हैं:

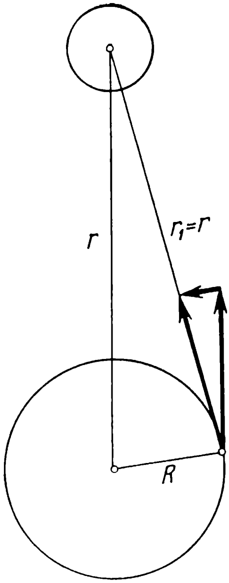
$$\frac{2\gamma m R}{r^3}$$

आइए, अब बिल्कुल उलटी बात का अध्ययन करें। बिन्दु B पर चांद की तरफ़ से त्वरण सामान्य भू-त्वरण से अधिक नहीं, बल्कि कम होता है। लेकिन अब हम चांद से दूर स्थित पृथ्वी के धरातल पर स्थित हैं। यहां भी चांद के आकर्षण में कमी उतनी ही होगी जितनी कि बिन्दु A पर आकर्षण में वृद्धि – गुरुत्व-बल के त्वरण में कमी – होगी। कितना अप्रत्याशित परिणाम है न – यहां चांद के प्रभाव से पिंड हल्का हो जाता है। अन्तर

$$\gamma \frac{m}{(r+R)^2} - \gamma \frac{m}{r^2} \approx -\frac{2\gamma m R}{r^3}$$

का निरपेक्ष मान उतना ही रहता है जितना कि बिन्दु A पर था।

मध्य रेखा पर ऐसा नहीं होता है। यहां त्वरण कुछ कोण बनाते हैं



चित्र 74

ग्रौर पृथ्वी के चांद द्वारा दिए गए सामान्य त्वरण $\gamma \frac{m}{r^2}$ को चांद द्वारा पृथ्वी पर स्थित पिंड को प्रदान किए गए त्वरण $\gamma \frac{m}{r_1^2}$ को रेखागणित तरीके से घटाना होगा (चित्र 74)। यदि पृथ्वी पर पिंड को ऐसे रखें कि r_1 ग्रौर r बराबर हों, तो हम मध्य रेखा से नाममात्र दूर हटेंगे। त्वरणों का वेक्टर ग्रन्तर समद्विबाहु त्रिभुज का ग्राधार होगा। चित्र 74 में दिखाए गए त्रिभुजों की समरूपता से स्पष्ट है कि त्वरण $\gamma \frac{m}{r^2}$ से जितने गुना कम है R उतने गुना r से कम होगा। इसका मतलब यह हुग्रा कि भू-धरातल की मध्य रेखा पर g में ग्रज्ञात वृद्धि बराबर होगी

$$\frac{\gamma m R^2}{r^3}$$

संख्यात्मक मान में यह चरम बिन्दुग्रों पर गुरुत्वाकर्षण बल में कमी से दुगुना कम होता है। जहां तक इस ग्रतिरिक्त त्वरण की दिशा का सम्बन्ध है, तो वह जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, इस स्थिति में भी वास्तव में पृथ्वी के धरातल पर किसी दिए गए बिन्दु पर खींचे गए ऊर्ध्वाधर की दिशा जैसी होती है। इस ग्रतिरिक्त त्वरण की दिशा नीचे की ग्रोर होती है ग्रर्थात भार में वृद्धि होती है।

चांद का पार्थिव यांत्रिकी पर प्रभाव से पृथ्वी की सतह पर स्थित पिंडों का भार बदल जाता है। चांद के बहुत निकट ग्रौर दूर के बिन्दुग्रों पर भार कम हो जाता है ग्रौर बीच की रेखा पर भार बढ़ जाता है। यहां यह भी बता दें कि दूसरी स्थिति में वज़न में पहली स्थिति से दो गुना कम ह्रास होता है।

निस्सन्देह ऊपरलिखित तर्क किसी भी ग्रह, सूर्य ग्रौर तारों के लिए सही हैं।

यह समझना मुश्किल नहीं है कि न तो ग्रह, और न ही तारे चांद के त्वरण में कोई अंशदान प्रदान नहीं करते हैं।

किसी भी खगोलीय पिंड के प्रभाव की चांद के प्रभाव से तुलना करना बहुत आसान है: ऐसा करने के वास्ते इस पिंड के अतिरिक्त त्वरणों को "अतिरिक्त चांद्र-त्वरण" से विभाजित करना चाहिए:

$$\frac{\gamma mR}{r^3} : \frac{\gamma m_{\text{चांद}} R}{r^3_{\text{चांद}}}$$

अर्थात

$$\frac{m}{m_{\text{चांद}}} \times \frac{r^3_{\text{चांद}}}{r^3}$$

यह त्वरण केवल सूर्य के लिए एक से थोड़ा-सा कम है। सूर्य चांद के मुकाबले में हम से बहुत ज्यादा दूर स्थित है, लेकिन चांद का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से कई करोड़ गुना कम है।

इस संबंध में संख्यात्मक मान रखने पर हम पाते हैं कि सूर्य के प्रभाव से पार्थिव गुरुत्वाकर्षण चांद के प्रभाव की अपेक्षा 2.17 गुना कम बदलता है।

आइए, अब यह मालूम करें कि अगर चांद भू-कक्ष से निकल जाए तो पार्थिव पिंडों के भार में कितना परिवर्तन आएगा। सूत्र $2\gamma mR/r^3$ में संख्यात्मक मान रखने पर हम देखेंगे कि चांद का त्वरण लगभग 0.0001cm/sec^2 अर्थात g का एक करोड़वां हिस्सा है।

लगता है कि यह त्वरण कुछ भी नहीं है। क्या इतने तनिक-से प्रभाव के लिए इतना एकाग्रचित होकर यांत्रिकी के इतने कठिन प्रश्न का हल करना ठीक था? परिणाम निकालने की जल्दी मत कीजिए। यही "तनिक-सा प्रभाव" ही ज्वार-भाटे का कारण है। यही प्रभाव प्रतिदिन 10^{16}kg.f $\times$ m गतिज ऊर्जा पैदा करता है और सागरों तथा महासागरों में लहरें लाता है। यह ऊर्जा पृथ्वी की सब नदियों की ऊर्जा के बराबर है।

हां, यह बात सही है कि प्रतिशत परिवर्तन, जिसका हमने परिकलन किया है बहुत थोड़ा है। पिंड के भार में "इतना कम-सा" परिवर्तन आने पर वह पृथ्वी के केन्द्र से दूर हो जाएगा। पृथ्वी का अर्धव्यास

6000000 मीटर है और तनिक-सा भी विस्थापन दसियों सेंटीमीटरों के बराबर होगा।

अब ज़रा एक मिनट के लिए यह सोचिए कि चांद ने पृथ्वी के गिर्द घूमना बन्द कर दिया है और कहीं किसी महासागर के ऊपर चमक रहा है। परिकलन स्पष्ट करते हैं कि इस स्थान पर पानी का स्तर 54 सेंटीमीटर ऊपर उठ जाएगा। प्रतिध्रुवों पर भी जल का स्तर इतना ही बढ़ जाएगा। इन चरम बिन्दुओं के मध्य में पानी का स्तर 27 सेंटीमीटर कम हो जाएगा।

पृथ्वी के अपने अक्ष के गिर्द घूर्णन के कारण महासागर में जल का स्तर उठने या नीचा होने के "स्थान" हर समय बदलते रहते हैं। यही ज्वार-भाटा है। लगभग 6 घंटे के दौरान पानी का स्तर ऊंचा होता है और पानी तट की ओर जाता है—यह ज्वार है। उसके बाद पानी उतरना शुरू करता है (भाटा), यह क्रिया भी 6 घंटे तक चलती है। हर चांद्र दिन में दो भाटे और दो ज्वार आते हैं। ज्वार का दृश्य पानी के कणों के घर्षण, समुद्री तल के आकार और तटों की रूपरेखा के कारण बड़ा जटिल हो जाता है।

उदाहरण के तौर पर कास्पियन सागर में ज्वार भाटे केवल इसी कारण संभव नहीं हैं कि सागर की पूरी सतह हर समय एक जैसी परिस्थितियों में ही रहती है।

महासागरों से लम्बे और तंग जल मार्गों द्वारा जुड़े हुए आन्तरिक सागरों में—उदाहरण के लिए काले और बाल्टिक सागरों में—ज्वार भाटे नहीं आते हैं।

तंग खाड़ियों में ज्वार बहुत बड़े आते हैं, जहां महासागर की ओर से आनेवाली ज्वारीय तरंगें बहुत ऊंची हो जाती हैं। उदाहरण के लिए आखोट्स्क सागर की गिझिगिन खाड़ी में ज्वार की ऊंचाई कई मीटर तक होती है।

यदि महासागर के तट बहुत चपटे हों (जैसे फ्रांस में है), तो ज्वार के समय पानी के चढ़ाव के कारण बहुत लम्बे-चौड़े इलाके में जल और स्थल की सीमा बदल सकती है।

ज्वार-भाटे का पृथ्वी के घूर्णन पर प्रभाव पड़ता है। कारण यह है कि ज्वारीय तरंगें घर्षण से संबंधित हैं। इस घर्षण को दूर करने के लिए—

उसे ज्वारीय घर्षण कहते हैं—कार्य करना पड़ता है। इसलिए घूर्णन की ऊर्जा श्रौर साथ-साथ पृथ्वी का ग्रपने ग्रक्ष के गिर्द घूर्णन का वेग भी कम हो जाता है।

फलतः दिन की लम्बाई बढ़ जाती है जिसके बारे में पृष्ट ११ पर चर्चा की गयी थी।

ज्वारीय घर्षण यह बात समझने में सहायता देता है कि पृथ्वी पर चांद की हमेशा एक ही तरफ़ क्यों दिखाई देती है।

किसी समय चांद, संभवतः द्रव ग्रवस्था में था। इस द्रव गोले के पृथ्वी के समीप घूर्णन के समय बहुत ज़्यादा ज्वारीय घर्षण पैदा हुग्रा था जिसके कारण चांद की गति धीरे-धीरे मन्थर होती गयी। ग्रौर ग्रन्त में चांद ने पृथ्वी के गिर्द घूर्णन बंद कर दिया ग्रौर ज्वार ग्राने बन्द हो गए, चांद ने ग्रपनी ग्राधी सतह को हमारी दृष्टि से छिपा लिया।

८. दाब

द्रवचालित दाबक

द्रवचालित दाबक एक पुरातन यंत्र है, लेकिन इसका महत्व अभी भी कम नहीं हुआ है।

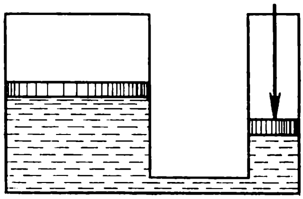
चित्र 75 में द्रवचालित दाबक दिखाया गया है। पानी से भरे बन्द बर्तन में दो पिस्टन – एक छोटा और दूसरा बड़ा – ऊपर नीचे सरक सकते हैं। हाथ से एक पिस्टन को दबाने पर यह दाब दूसरे पिस्टन को मिलता है और वह ऊपर उठता है। पहला पिस्टन बर्तन में भरे पानी से जितने पानी को दबाता है उतना ही पानी दूसरे पिस्टन के प्रारंभिक स्तर से ऊपर उठता है।

यदि पिस्टनों के क्षेत्रफल S_1 और S_2 हैं, और विस्थापन l_1 तथा l_2 हैं तो आयतनों की समता से मिलता है: $S_1 l_1 = S_2 l_2$ या

$$\frac{l_1}{l_2} = \frac{S_2}{S_1}$$

अब हमें पिस्टनों के संतुलन की शर्त ज्ञात करनी है।

यह शर्त हम सरलता से ज्ञात कर लेंगे यदि यह सोच कर चलें कि संतुलन बलों का कार्य शून्य होना चाहिए। अगर ऐसा है तो पिस्टनों के विस्थापित होने पर उन पर लगे बलों का कार्य बराबर होना चाहिए (विपरीत चिन्ह के साथ)। अर्थात,



चित्र 75

$$F_1 l_1 = F_2 l_2 \quad \text{या} \quad \frac{F_2}{F_1} = \frac{l_1}{l_2}$$

पहले समीकरण से तुलना करने पर हम देखते हैं कि

$$\frac{F_2}{F_1} = \frac{S_2}{S_1}$$

इस साधारण समीकरण का अर्थ है कि हम बल को बहुत गुना बढ़ा सकते हैं। दाब संचारित करनेवाले पिस्टन का क्षेत्रफल सैकड़ों या हज़ारों गुना कम हो सकता है। छोटे पिस्टन का क्षेत्रफल जितने गुना कम होगा उतने गुना ही बड़े पिस्टन पर लगा बल पेशीय बल से अधिक होगा।

द्रवचालित दाबक की सहायता से हम धातुओं को हैमर और फोर्जन कर सकते हैं, अंगूरों का रस निकाल और भार उठा सकते हैं।

निस्सन्देह, बल में वृद्धि के साथ-साथ पथ में हानि होगी। पिंड को एक सेंटीमीटर दाबने के लिए हाथ को उतने गुना ही रास्ता तय करना होगा जितने गुना F_2 और F_1 में अन्तर होगा।

बल और क्षेत्रफल के अनुपात को भौतिक विज्ञान में दाब कहते हैं। यह कहने के बजाय कि 1 kg.f बल 1 cm^2 क्षेत्रफल पर लगा है, हम संक्षेप में कहेंगे कि दाब (उसे अक्षर p से व्यक्त करते हैं) $p = 1 kg.f/cm^2$ $\frac{F_2}{F_1} = \frac{S_2}{S_1}$ की जगह लिख सकते हैं

$$\frac{F_2}{S_2} = \frac{F_1}{S_1}, \quad \text{यानी} \quad p_1 = p_2$$

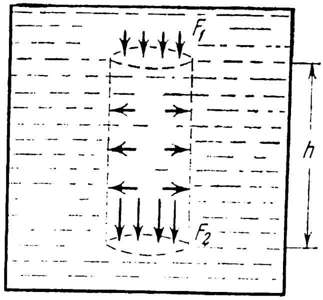
अर्थात दोनों पिस्टनों पर दाब बराबर है।

हमारी दलील इस पर निर्भर नहीं करती है कि पिस्टन कहां स्थित हैं, उनकी सतहें क्षैतिज, अभिलम्ब या आनत हैं। यहां बात केवल पिस्टनों की ही नहीं है। द्रव की सतह के किन्हीं दो भागों की कल्पना कर इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि इस सतह पर दाब हर जगह एकसमान है।

पता चलता है कि द्रव के अन्दर दाब हर बिन्दु पर, हर दिशा में एकसमान है। या दूसरे शब्दों में, निश्चित आकार के क्षेत्र पर एकसमान बल लगा है, चाहे वह कहीं भी और कैसे भी स्थित क्यों न हो। इस तथ्य को पास्कल का नियम भी कहते हैं।

द्रवस्थैतिक दाब

पास्कल का नियम द्रवों तथा गैसों दोनों के लिए ही सही है। लेकिन यह नियम एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य – भार के अस्तित्व – को ध्यान में नहीं रखता।



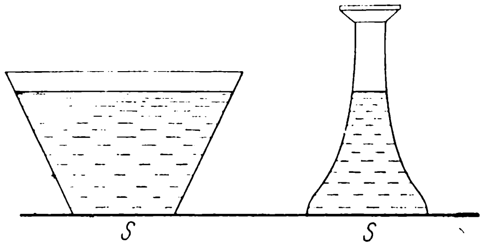
चित्र 76

स्थलीय स्थितियों में भार को भुलाया नहीं जा सकता है। पानी का भी भार होता है। इसलिए यह बात समझ में आ जाती है कि जल में विभिन्न गहराइयों पर स्थित दो चबूतरे अलग-अलग दाब महसूस करेंगे। यह अन्तर किस के बराबर होगा? आइए, अब पानी में क्षैतिज तलोंवाले एक सीधे बेलन की कल्पना करें। इस बेलन (सिलिन्डर) में समाया पानी आस पास के पानी पर दाब डालता है। इस दाब का पूरा बल बेलन में अंतविष्ट द्रव के भार mg के बराबर होगा (देखिए चित्र 76)। यह पूर्ण बल दो बलों के योग के बराबर होता है, जो बेलन के आधार और उसकी दीवारों पर लगे होते हैं। लेकिन बेलन की दीवारों पर विपरीत दिशाओं में लगे बलों का परिमाण बराबर और दिशा विपरीत होती है। इसलिए, दीवारों पर लगे सब बलों का योग शून्य के बराबर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भार mg बलों के अन्तर $F_2 - F_1$ के बराबर होगा। यदि बेलन की ऊंचाई h, आधार का क्षेत्रफल S और द्रव का घनत्व ρ है, तो mg की जगह हम ρghS लिख सकते हैं। यही परिमाण बलों के अन्तर के बराबर है। दाबों के बीच अन्तर मालूम करने के लिए भार को क्षेत्रफल S से विभाजित करना चाहिए। दाबों के बीच अन्तर ρgh के बराबर होता है।

पास्कल के नियम के अनुसार एक ही गहराई पर लेकिन अलग-अलग स्थितियों में रखे चबूतरों पर लगे दाब बराबर होंगे। अर्थात द्रव के दो बिन्दुओं पर, जो एक दूसरे से h ऊंचाई पर स्थित हैं, दाबों का अन्तर द्रव के स्तम्भ, जिसकी अनुप्रस्थ काट एक के बराबर और ऊंचाई h है, के भार के बराबर होगा।

$$p_2 - p_1 = \rho gh$$

पानी के दाब को उसके भार के कारण द्रवस्थैतिक दाब कहते हैं।



चित्र 77

पृथ्वी की परिस्थितियों में द्रव के मुक्त पृष्ठों (free surfaces) पर प्रायः हवा ही दाब डालती है। हवा के दाब को वायुमण्डलीय दाब कहते हैं। गहराई पर दाब वायुमण्डलीय दाब श्रौर द्रवस्थैतिक दाब के योग के बराबर होता है।

पानी के दाब के बल को मालूम करने के लिए केवल उस वस्तु का श्राकार श्रौर उसके ऊपर स्थित पानी के स्तम्भ की ऊंचाई मालूम होनी चाहिए। शेष प्राचल पास्कल के नियम में कोई भूमिका श्रदा नहीं करते हैं।

यह बात श्रजीब लग सकती है। क्या यह सच है कि श्रलग-श्रलग श्राकार-वाले बर्तनों के एक जैसे तलों पर (देखिए चित्र 77) एकसमान बल लगा होता है। बायीं श्रोर वाले बर्तन में श्रधिक पानी है। इसके बावजूद तलों पर लगे बल दोनों बर्तनों में ρghS के बराबर हैं। यह दाएं बर्तन में भरे पानी के भार से श्रधिक है लेकिन बायीं श्रोर के बर्तन में भरे पानी के भार से कम है। बाएं बर्तन में पार्श्व दीवारें "श्रतिरिक्त" पानी का भार सहती हैं श्रौर दाएं बर्तन में, इसके विपरीत, प्रतिक्रिया के बल पानी के भार को बढ़ाते हैं। यही रोचक परिस्थिति ही प्रायः द्रवस्थैतिक विरोधाभास कहलाती है।

यदि दो श्रलग-श्रलग श्राकार के बर्तनों को, जिनमें भरे पानी का स्तर एक है, एक नली से जोड़ा जाए तो पानी एक बर्तन से दूसरे बर्तन में नहीं श्राएगा। ऐसा केवल तभी हो सकता है श्रगर दोनों बर्तनों में दाब श्रलग-श्रलग होंगे। लेकिन ऐसा नली से जुड़े हुए बर्तनों में भी नहीं होता है चाहे उनका श्राकार कैसा भी क्यों न हो, द्रव एक ही स्तर पर रहेगा।

इसके विपरीत, श्रगर नली से जुड़े बर्तनों में पानी का स्तर श्रलग-श्रलग

है तो पानी तब तक बहेगा जब तक कि दोनों बर्तनों में पानी का स्तर बराबर न हो जाए।

पानी का दाब हवा के दाब से कहीं अधिक होता है।10 m की गहराई पर पानी 1cm^2 क्षेत्रफल पर वायुमण्डलीय दाब के अतिरिक्त 1 kg.f बल से दाब डालता है। 1 km गहराई पर 100 kg.f बल से 1 cm^2 क्षेत्रफल पर दाब डालता है।

महासागर अनेक जगहों पर 10 km से भी अधिक गहरे हैं, इस गहराई पर पानी के दाब का बल बहुत अधिक होता है। 5 km गहराई तक डुबोए गए लकड़ी के टुकड़े बहुत बड़े दाब के कारण इतने अधिक संघनित हो जाते हैं कि ऐसे "स्नान" के बाद यदि उन्हें किसी पानी के टब में डाला जाए तो ईंट की तरह उसके तले पर चले जाते हैं।

समुद्री जीवन के अध्ययन में इतने बड़े दाब ही रुकावट बनते हैं। पानी में गहराई पर जाने के लिए लोहे के गोलों तथाकथित बैथीस्फ़ियरों (समुद्र-निमज्जी गोलों) का उपयोग किया जाता है। ऐसे बैथीस्फ़ियर (bathysphere) 1 cm^2 क्षेत्रफल पर 1 टन से अधिक तक का दाब सह सकते हैं।

पंडुब्बियां तो केवल 100-200 m की गहराई तक ही जा सकती हैं।

वायुमण्डलीय दाब

हम हवा-महासागर – वायुमण्डल – के तले पर रहते हैं। पृथ्वी पर स्थित हर पिंड, हर पदार्थ, प्रत्येक कण हवा के दाब के प्रभाव में होता है।

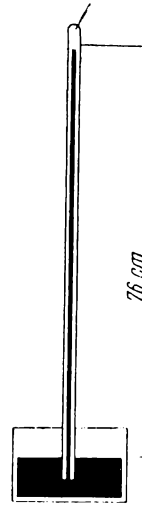
वायुमण्डलीय दाब इतना कम नहीं होता है। यह दाब 1 cm^2 पर लगभग 1 kg·f के बराबर होता है।

वायुमण्डलीय दाब का कारण स्पष्ट है। पानी की तरह हवा का भी भार होता है। इसका अर्थ है कि वह दाब डालती है, जो (जैसा कि पानी के लिए) पिंड के ऊपर स्थित हवा के स्तम्भ के भार के बराबर होता है। हम पहाड़ पर जितना ऊपर जाएंगे उतना ही हमारे ऊपर वायु का दाब कम होता जाएगा, इसका मतलब यह हुआ कि वायुमण्डलीय दाब भी उतना कम हो जाएगा।

वैज्ञानिक या दैनिक जीवन के लक्ष्यों के लिए हमें दाब को मापने की

ग्रावश्यकता पड़ती है। दाब मापने के लिए विशेष उपकरण हैं जिन्हें बैरोमीटर कहते हैं।

बैरोमीटर की बनावट मुश्किल नहीं है। एक ग्रोर से बन्द नली में पारा भरते हैं। नली के खुले सिरे को ग्रंगुली से बन्द कर उसे पारे से भरे बर्तन में उलट देते हैं। ऐसा करने पर पारे का स्तर थोड़ा कम हो जाता है, लेकिन सारा पारा निकलता नहीं है। नली में भरे पारे के ऊपर निस्सन्देह शून्य है। नली में पारा बाहर की हवा के दाब के कारण ही ठहर जाता है (देखिए चित्र 78)।



चित्र 78

उस बर्तन का ग्राकार, जिसमें पारा भरा है, चाहे कैसा भी क्यों न हो, पारे की नली का व्यास चाहे कितना भी न हो, पारा सदा एक ही स्तर – 76 cm – पर रुकेगा।

यदि हम नली 76 cm से कम लम्बी लें तो वह पूरी तरह भरी रहेगी ग्रौर उसके ऊपर के हिस्से में शून्य नहीं होगा। 76 cm ऊंचा पारे का स्तम्भ पारे से भरे बर्तन पर उतना ही दाब डालता है जितना कि वायुमण्डल।

76 cm ऊंचे पारे के स्तम्भ का भार 1 cm^2 क्षेत्रफल पर लगभग 1 kg.f, ठीक-ठीक 1.033 kg.f होता है। यह पारे के ग्रायतन 1×76 cm^3 ग्रौर उसके घनत्व – 13.6 – के गुणनफल के बराबर होता है। 1 cm^2 पर एक किलोग्राम का दाब – यही तो है मानक वायुमण्डलीय दाब।

ग्रंक 76 cm बताता है कि पारे के इस स्तम्भ द्वारा सारे वायुमण्डल की हवा, जो उतने ही क्षेत्र पर स्थित हैं, संतुलित होती है।

पृथ्वी की सतह का $4\pi R^2$ सूत्र से परिकलन कर हम जान जाएंगे कि समग्र वायुमण्डल का भार एक विशाल ग्रांकड़े 5×10^{18} kg.f के बराबर होता है।

बैरोमीटर की नली किसी भी ग्राकार की हो सकती हैं, सबसे महत्वपूर्ण बात तो एक है: नली का एक सिरा ऐसे बन्द किया जाना चाहिए कि पारे की सतह के ऊपर हवा न रहे। पारे के दूसरे स्तर पर वायुमण्डल का दाब डल रहा होता है।

पारद बैरोमीटर से वायुमण्डलीय दाब बहुत ही परिशुद्धता से मापा जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि बैरोमीटर में भरने के वास्ते पारे को ही लेना जरूरी नहीं, कोई दूसरा द्रव भी लिया जा सकता है। पारा चूंकि सबसे भारी द्रव है, इसलिए सामान्य दाब की स्थिति में पारे के स्तम्भ की ऊंचाई न्यूनतम होगी।

दाब को मापने के लिए अलग-अलग मात्रकों का इस्तेमाल किया जाता हैं। प्रायः पारे की ऊंचाई को मिलीमीटरों में व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, कहा जाता है कि आज दाब सामान्य से अधिक है और 768 mm Hg (अर्थात् पारे के स्तम्भ की ऊंचाई) के बराबर है।

पारे का घनत्व मालूम होने पर दाब $kg.f/cm^2$ में आसानी से मालूम किया जा सकता है। पारे के स्तम्भ का हर मिलीमीटर $1.36\ g \cdot f/cm^2$ के बराबर होता है।

760 mm Hg दाब को कभी-कभी मानक वायुमण्डल कहते हैं। $1\ kg \cdot f/cm^2$ के दाब को तकनीकी वायुमण्डल कहते हैं।

भौतिक विज्ञानी प्रायः दाब के मात्रक – बार – का इस्तेमाल करते हैं। 1 बार $= 10^6\ dyne/cm^2$। चूंकि $1\ g \cdot f = 981$ dyne, इसलिए एक बार लगभग एक वायुमण्डल दाब के बराबर होता है। तथ्यतः, सामान्य वायुमण्डल दाब 1013 मिलीबार के बराबर होता है।

पारद बैरोमीटर कोई खास सुविधाजनक उपकरण नहीं है। पारे के वाष्प विषैले होते हैं इस कारण पारे की सतह को खुली छोड़ना अवांछनीय है। इसके अतिरिक्त पारद बैरोमीटर सुवाह्य नहीं है।

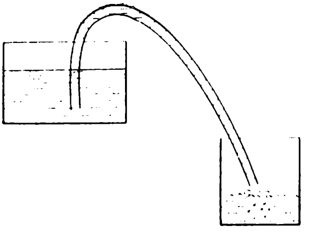
धात्विक बैरोमीटर – एनरॉयड यानी निर्द्रव बैरोमीटर – इन त्रुटियों से मुक्त हैं।

ऐसा बैरोमीटर तो हर किसी ने देखा होगा। यह एक छोटा-सा धातु का गोल बक्स होता है जिस पर अंशांकन और सूई लगी होती है। स्केल पर दाब के अंशांकन होते हैं, जो प्रायः पारद स्तम्भ को सेंटीमीटरों में व्यक्त करते हैं।

धातु के इस बक्स में से हवा निकाली होती हैं। बक्स का ढक्कन एक मज़बूत स्प्रिंग पर टिका होता है अन्यथा वह हवा के दाब से पिचक गया होता। दाब में परिवर्तन आने से या तो ढक्कन अन्दर की ओर हो जाता

है या फूल जाता है। ढक्कन पर सूई लगी हुई है। इस सूई को इस प्रकार जोड़ा गया है कि जब ढक्कन दबता है तो सूई दायीं ग्रोर जाती है।

ऐसे बैरोमीटर को पारद बैरोमीटर के पाठ्यांक की मदद से ग्रंशांकन करते है।



चित्र 79

दाब मालूम करने से पहले बैरोमीटर को ग्रंगुली से बजाना मत भूलिए। सूई काफी घर्षण ग्रनुभव करती है ग्रौर ग्राम तौर पर "कल के मौसम" के पाठ्यांक पर ही रुकी रहती है।

एक साधारण युक्ति–साइफ़न–की रचना भी वायुमण्डलीय दाब पर ग्राधारित है।

ग्रगर कोई ड्राइवर ग्रपने साथी ड्राइवर की मदद करना चाहे जिसकी कार में पैट्रोल समाप्त हो गया है, तो वह ग्रपनी कार की पैट्रोल टंकी से दूसरी कार की टंकी में पैट्रोल कैसे डालेगा। क्या कार में से पैट्रोल निकालने के लिए उसे वैसे ही टेढ़ा करना पड़ेगा जैसे कि चायदानी को करते हैं?

पैट्रोल निकालने के वास्ते रबड़ की ट्यूब का इस्तेमाल करते हैं। उसके एक कोने को पैट्रोल की टंकी में डालते हैं ग्रौर फिर मुंह से नली की हवा खींच लेते है। फिर जल्दी से खुले सिरे को ग्रंगुली से दबा कर पैट्रोल के स्तर से नीचे ले ग्राते हैं। ग्रब ग्रंगुली हटायी जा सकती है–नली से पैट्रोल बहना शुरू हो जाएगा (देखिए चित्र 79)।

मुड़ी हुई रबड़ की ट्यूब ही साइफ़न है। इस स्थिति में ग्रौर ग्रानत ट्यूब में भी पैट्रोल के बहने का कारण एक ही है। दोनों स्थितियों में पैट्रोल नीचे की ग्रोर बहता है।

साइफ़न को काम में लाने के लिए वायुमण्डलीय दाब की ग्रावश्यकता पड़ती है। वह द्रव पर "दबाव" डालता है ग्रौर नली में बह रहे द्रव की धारा को टूटने नहीं देता। ग्रगर वायुमण्डलीय दाब न होता तो द्रव की धारा मोड़ पर टूट जाती ग्रौर द्रव्य दोनों बर्तनों में नीचे ग्रा जाता।

साइफ़न तभी काम करना शुरू करता है जब कि दायीं ग्रोर के बर्तन

का स्तर (जिसमें से द्रव भरना है) बायीं ग्रोर के बर्तन के स्तर से (जिसमें से द्रव निकालना है) नीचा हो, ग्रन्यथा द्रव वापस चला जाएगा।

वायुमण्डलीय दाब कैसे मालूम हुग्रा

प्राचीन काल में भी लोगों को चूषण पम्प के बारे में मालूम था। उसकी मदद से पानी को काफ़ी ऊंचाई तक पहुंचाया जाता था। पानी ऐसे पम्प के पिस्टन के इशारे पर ऊपर चढ़ता था।

प्राचीन दार्शनिकों ने इसके कारणों पर गहराई में सोच-विचार किया ग्रौर एक गंभीर निष्कर्ष पर पहुंचे: पानी पिस्टन के पीछे-पीछे इसलिए जाता है चूंकि प्रकृति में शून्य नहीं है, इसलिए ही पिस्टन ग्रौर पानी के बीच कोई भी खाली जगह नहीं रहती है।

लोग कहते हैं कि एक मिस्त्री ने फ़्लोरेन्स के टोस्काना के सामन्त के लिए एक चूषण पम्प बनाया, जिसके पिस्टन को 10 मीटर की ऊंचाई पर पानी को पहुंचाना था। ग्रनेक प्रयत्न करने पर भी पानी को इतनी ऊंचाई तक नहीं पहुंचाया जा सका। 10 मीटर की ऊंचाई पर पानी पिस्टन के पीछे-पीछे ऊपर उठता था ग्रौर उसके बाद पिस्टन पानी से ग्रलग हो जाता था, ग्रौर वही शून्य (निर्वात) पैदा हो जाता था जिससे प्रकृति डरती है।

जब गैलीलिग्रो से इस ग्रसफल प्रयोग का कारण मालूम करने के वास्ते ग्रनुरोध किया गया तो उसने बताया कि प्रकृति वास्तव में ही शून्य को पसन्द नहीं करती है, लेकिन किसी विशेष सीमा तक। गैलीलिग्रो के शिष्य टॉरिसेली ने, स्पष्टतया, इस ग्रसफलता का कारण जानने के वास्ते 1643 में पारा भरी नली से एक मशहूर प्रयोग किया। इस प्रयोग के बारे में हमने थोड़ी देर पहले ही वर्णन किया है। पारद बैरोमीटर को बनाने का तरीक़ा ही तो है टॉरिसेली का प्रयोग।

76 cm से ग्रधिक लम्बी ट्यूब लेकर उसने पारे के ऊपर शून्य (निर्वात) पैदा किया (इस शून्य को ग्रक्सर टॉरिसेली निर्वात कहते हैं) ग्रौर इस प्रकार वायुमण्डलीय दाब के ग्रस्तित्व को सिद्ध किया।

इसी प्रयोग से टॉरिसेली ने टोस्काना के सामन्त के मिस्त्री की नासमझी को हल किया। वास्तव में, यह बात स्पष्ट है कि पानी का इतना लम्बा

स्तम्भ चूषण पम्प के पिस्टन के पीछे-पीछे चुपचाप ऊपर चढ़ता रहेगा। यह गति तब तक जारी रहेगी जब तक पानी के 1 cm^2 क्षेत्रफलवाले स्तम्भ का भार 1 kg के बराबर नहीं होगा। पानी के ऐसे स्तम्भ की ऊंचाई 10 मीटर होगी। यही कारण है कि शून्य से प्रकृति डरती है..., लेकिन 10 मीटर से कम ऊंचाई तक ही।

टॉरिसेली के प्रयोग के 11 साल बाद सन् 1654 में मग्देबूर्ग के सरदार ग्रॉटो फ़ोन गेरिके ने वायुमण्डलीय दाब की क्रिया को प्रत्यक्ष रूप से दिखाया। इस प्रयोग के भौतिक सार की वजह से नहीं, बल्कि प्रयोग की नाटकीयता से प्रयोगकर्त्ता को ख्याति प्राप्त हुई।

तांबे के दो ग्रर्द्ध गोलों को एक गोल छल्ले से जोड़ा गया था। एक ग्रर्द्ध गोले में लगे हुए नल के द्वारा पूरे गोले में से हवा निकाली गयी थी। ऐसा करने के बाद इन ग्रर्द्ध गोलों को ग्रलग करना ग्रसम्भव हो गया। गेरिके के प्रयोग का विस्तारपूर्वक वर्णन ग्रभी भी संरक्षित है। ग्राप ग्रर्द्ध गोलों पर प्रभाव डाल रहे वायुमण्डलीय बाद का परिकलन कर सकते हैं: गोले का व्यास 37 cm होने पर यह बल लगभग 1 टन के बराबर होगा। ग्रर्द्ध गोलों को ग्रलग करने के लिए गेरिके ने ग्राठ-ग्राठ घोड़े जुतवाए। घोड़ों की लगामें ग्रर्द्ध गोलों से बंधी हुई थीं। घोड़े इन गोलों को ग्रलग करने में ग्रसफल रहे।

ग्राठ घोड़ों का बल (बिल्कुल ग्राठ का, सोलह का नहीं क्योंकि दूसरे ग्राठ घोड़ों की ग्रच्छे प्रभाव के लिए ग्रावश्यकता पड़ती है, उनको ग्रगर चाहते तो दीवार में लगे एक हुक से भी बदल सकते थे, ग्रौर ग्रर्द्ध गोलों पर लगा बल भी ग्रचर रहता है) भी उन ग्रर्द्ध गोलों को ग्रलग करने के लिए कम था।

ग्रगर दो स्पर्शी पिंडों के बीच शून्य है तो यह पिंड वायुमण्डलीय दाब के प्रभाव से ग्रलग नहीं होंगे।

वायुमण्डलीय दाब तथा मौसम

मौसम के बदलने के कारण दाब में ग्राए परिवर्तनों का स्वरूप बहुत विषम होता है। किसी समय लोग सोचते थे कि केवल दाब ही मौसम को निर्धारित करता है। यही कारण है कि ग्राज तक बैरोमीटर के डायल

पर लिखा होता है : "साफ़", "सूखा", "वर्षा", "तूफ़ान"। ऐसे बैरोमीटर भी देखते में आते हैं जिन पर "भूकम्प" लिखा होता है।

दाब में आया परिवर्तन वास्तव में ही मौसमी हेर-फेर में बहुत भूमिका अदा करता है, लेकिन यह भूमिका निर्णायक नहीं है। समुद्री तल पर औसत या मानक दाब 1013 मिलीबार के बराबर होता है। दाब में परिवर्तन अपेक्षया ज़्यादा नहीं होते हैं। दाब विरले ही 935-940 मिलीबार से कम होता है या 1055-1060 तक बढ़ता है।

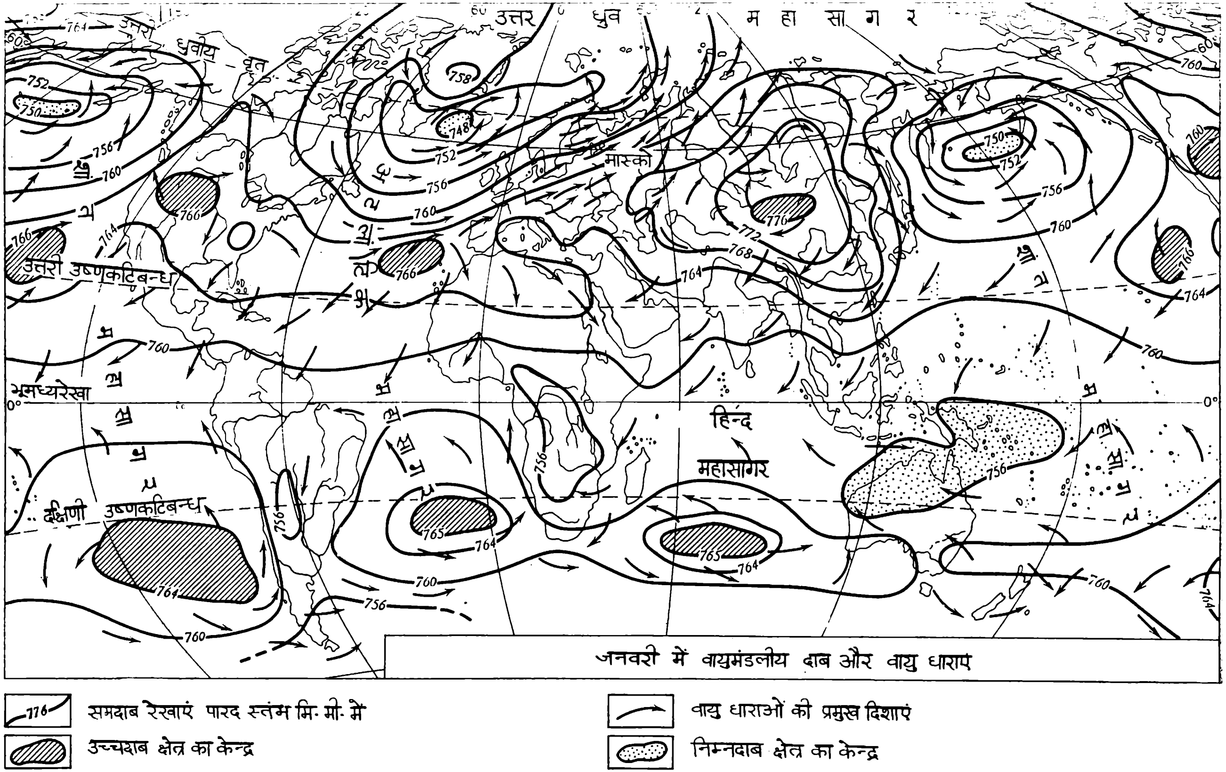
सबसे कम दाब – 885 मिलीबार – 18 अगस्त 1927 को चीन सागर में रिकार्ड किया गया था। सबसे ऊंचा दाब 1080 मिलीबार 23 जनवरी 1900 को साइबेरिया में बर्नाऊल स्टेशन पर रिकार्ड किया गया था (ये आंकड़े समुद्री स्तर की अपेक्षा लिए गए हैं)।

चित्र 80 में मौसम में आए परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिए विज्ञानियों द्वारा प्रयोग में लाया जानेवाला एक नक़्शा दिखाया गया है। नक़्शे पर खींची रेखाओं को समदाब रेखाएं कहते हैं। ऐसी हरेक रेखा पर दाब एकसमान होता है (हर रेखा पर दाब का मान व्यक्त किया हुआ है)। सबसे कम और सबसे ऊंचे दाबवाले क्षेत्रों – दाब के "शिखरों" और "गड्ढों" – पर ध्यान तो दीजिए।

वायुमण्डलीय दाब के वितरण से हवा का बल और उसकी दिशाएं संबंधित हैं।

पृथ्वी की सतह पर स्थित अलग-अलग जगहों पर दाब एकसमान नहीं है। हवा का दाब जहां अधिक होता है वह वहां से कम दाबवाले इलाकों में बहती है। तब तो हवा को समदाब रेखाओं की अभिलम्ब दिशा में बहना चाहिए था, यानी उस ओर जहां दाब ज्यादा कम होता है। लेकिन हवा के नक़्शे तो कुछ और ही दिखाते हैं। कॉरिओलिस बल हवा के दाब पर प्रभाव डालता है और उसमें बहुत ज्यादा परिवर्तन करता है।

जैसा कि हमें पता है, उत्तरी गोलार्द्ध में हरेक गतिमान् पिंड पर उसकी गति की दिशा के दायीं ओर दिष्ट कॉरिओलिस बल प्रभाव डालता है। यही बात हवा के कणों के लिए भी सही है। अधिक दाबवाले इलाक़ों से कम दाबवाले इलाक़ों में जानेवाले कणों को भी समदाब रेखाओं के अभिलम्ब चलना चाहिए था, लेकिन कॉरिओलिस बल उन्हें दायीं ओर झुका देता है, हवा की दिशा समदाब रेखा की दिशा के साथ लगभग 45° का कोण बनाती है।


उत्तर ध्रुव महासागर
उत्तरी ध्रुवीय वृत्त
मास्को
उत्तरी उष्णकटिबन्ध
भूमध्यरेखा
हिन्द महासागर
दक्षिणी उष्णकटिबन्ध
जनवरी में वायुमंडलीय दाब और वायु धाराएं
समदाब रेखाएं पारद स्तंभ मि॰ मी॰ में
उच्चदाब क्षेत्र का केन्द्र
वायु धाराओं की प्रमुख दिशाएं
निम्नदाब क्षेत्र का केन्द्र

चित्र 80

इतने छोटे से बल का प्रभाव बहुत अधिक होता है। इसका कारण यह है कि कॉरिग्रोलिस बल के प्रभाव को कम करनेवाली रुकावटें – हवा की स्तरों का घर्षण – भी अति कम होती हैं।

कॉरिग्रोलिस बल का दाब के "शिखरों" पर और "गड्ढों" में हवाओं की दिशाओं पर प्रभाव और भी अधिक रोचक है। कॉरिग्रोलिस बल के प्रभाव के कारण, हवा जब दाब के "शिखर" से हटती है तो वह सब ओर अर्द्धव्यासों के साथ-साथ नहीं बल्कि वक्र रेखाओं – सर्पिलों – के समानान्तर बहती है। यही हवा की सर्पिल धाराएं एक ही ओर मुड़ती हैं और उच्च दाब वाले क्षेत्र में वृत्ताकार भ्रमिल (circular vortex) बनाती हैं, जो वायु राशि (air mass) को दक्षिणावर्त चलाती है। पृष्ठ ८४ पर दिखाए गए चित्र 28 से स्पष्ट है कि लगातार विक्षेपित करने वाले बल के प्रभाव से अरीय गति सर्पिल गति में परिवर्तित हो जाती है।

ऐसा ही कम दाब वाले क्षेत्रों में होता है। यदि कॉरिग्रोलिस बल न होता तो हवा सब ओर अर्द्धव्यासों के साथ-साथ चलती। लेकिन रास्ते में वायु राशि दायीं ओर विक्षेपित हो जाती है। इस स्थिति में, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, वृत्ताकार भ्रमिल बनता है, जो हवा को वामावर्त चलाता है।

कम दाब वाले क्षेत्रों में बहनेवाली हवाओं को चक्रवात (बवण्डर) कहते हैं, और उच्च दाब वाले क्षेत्रों में चलनेवाली हवाओं को प्रतिचक्रवात कहते हैं।

इस का मतलब यह नहीं कि हर चक्रवात तूफ़ान या आंधी का कारण होता है। उस शहर में जहां हम रहते हैं चक्रवातों या प्रतिचक्रवातों का आना एक आम घटना है। ये प्रायः मौसम में होनेवाले परिवर्तनों के कारण आते हैं। अनेक स्थितियों में चक्रवात खराब मौसम, और प्रतिचक्रवात अच्छे मौसम का सूचक होता है।

इतनी जानकारी होने पर भी हम मौसम का पूर्वानुमान लगानेवालों का काम नहीं करेंगे।

आर्किमीडीज़ का नियम

आइए, अब एक बाट को कमानीतुला पर से लटकाएं। स्प्रिंग लम्बा हो जायेगा और बाट का भार व्यक्त करेगा। बाट को कमानीतुला से

हटाए बिना ही, हम उसे पानी में डुबो देते हैं। क्या तुला के पाठ्यांक में कोई अन्तर आएगा? जी हां, बाट का वज़न मानो कम हो गया है। अगर प्रयोग में लोहे के एक किलोग्राम के बाट को लिया जाए तो उसके भार में लगभग 140 ग्राम की "कमी" आएगी।

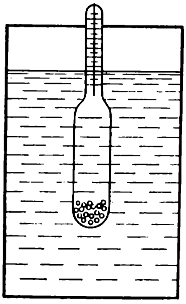
इसका क्या कारण है? यह बात तो स्पष्ट है कि न तो बाट के द्रव्यमान में और न ही पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में परिवर्तन आया है। बाट के भार में कमी आने का कारण केवल एक ही हो सकता है: पानी में डुबोए गए बाट पर, ऊपर की ओर 140 g का बल लगा होता है। यह बल, जिसकी खोज प्राचीन काल के महान वैज्ञानिक आर्किमीडीज़ ने की थी, कहां से आता है? दृढ़ पिंड का पानी में अध्ययन करने से पहले, हम "पानी में पानी" का अध्ययन करेंगे। आइए, अब काल्पनिक तौर पर पानी का कोई आयतन लें। इस आयतन का भार तो होता है, लेकिन वह नीचे नहीं गिरता है। क्यों? उतर स्पष्ट है कि आस-पास के पानी का द्रवस्थैतिक दाब उसे ऐसा करने से रोकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस दाब का परिणामी इस विचाराधीन आयतन में पानी के वज़न के बराबर होता है, और उसकी दिशा लंबवत ऊपर की ओर होती है।

अगर उसी आयतन की जगह कोई दृढ़ पिंड ले लें तो स्पष्ट है कि द्रवस्थैतिक दाब पहले जितना ही रहेगा।

इसलिए, द्रव में निमज्जित पिंड पर द्रवस्थैतिक दाब के कारण उस पर लंबवत् ऊपर की ओर लगा हुआ एक बल प्रभाव डालता है, जिसका संख्यात्मक मान पिंड द्वारा हटाए गए पानी के भार के बराबर होता है। यही है आर्किमीडीज़ का नियम।

कहते हैं कि एक बार आर्किमीडीज़ टबबाथ लेते समय यह सोच रहा था कि कैसे मालूम किया जाए कि सोने के ताज में चांदी की मिलावट है या नहीं। टब-बाथ लेते समय स्नान करनेवाला उसे ऊपर उठाने वाले बल की अनुभूति तो स्पष्ट रूप से करता है। आर्किमीडीज़ ने अचानक ही इस नियम को खोज लिया, नियम बहुत ही सरल तरीक़े से उसकी समझ में आ गया। "Eureka!" ("मैंने पा लिया!") कहते हुए वह टब में से निकलकर मूल्यावान् ताज लेने के लिए कमरे में भाग कर गए ताकि जल्दी से पानी में ताज के भार में कमी मालूम कर सकें।

पानी में पिंड के भार में आयी कमी, जिसे ग्रामों में व्यक्त करते हैं,



चित्र 81

पिंड द्वारा हटाए गए पानी के भार के बराबर होगी। पानी का भार मालूम करके हम उसका आयतन मालूम कर सकते हैं, जो ताज के आयतन के बराबर होगा। ताज का भार मालूम होने पर उस पदार्थ का घनत्व आसानी से मालूम किया जा सकता है जिससे कि ताज बना हो, और सोने और चांदी के घनत्व मालूम होने पर मालूम किया जा सकता है कि ताज में कितनी मिलावट है।

अवश्य, आर्किमीडीज़ का नियम किसी भी द्रव के लिए सही है। अगर ρ घनत्ववाले द्रव में V आयतनवाला पिंड निमज्जित है तो हटाये गये द्रव का भार – यह तो है हटानेवाला बल – बराबर होगा $\rho g V$।

आर्किमीडीज़ के सिद्धान्त पर द्रव पदार्थों के गुणों को मापनेवाले सरल उपकरणों का कार्य आधारित है। स्पिरिट या दूध में पानी मिलाने पर उनका घनत्व बदल जाता है, लेकिन घनत्व से उनकी शुद्धता मालूम की जा सकती है। घनत्व आसानी से और जल्दी ही चित्र 81 में दिखाए गए घनत्वमापी (हाइड्रोमीटर) से मापा जाता है। द्रव में डाला गया घनत्वमापी उसके घनत्व के अनुसार अधिक या कम निमज्जित होगा।

घनत्वमापी संतुलन स्थिति में तभी आएगा जब आर्किमीडीय बल घनत्व-मापी के भार के बराबर होगा।

घनत्वमापी पर निशान लगे होते हैं और द्रव का घनत्व उस निशान से पढ़ा जाता है, जो द्रव की सतह पर आता है। स्पिरिट का घनत्व मापने के वास्ते इस्तेमाल लिए जानेवाले हाइड्रोमीटरों को स्पिरिटमापी कहते हैं, और दूध का घनत्व जानने के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले हाइड्रोमीटरों को दुग्धमापी कहते हैं।

मनुष्य के शरीर का औसत घनत्व एक से थोड़ा अधिक होता है। तैरना न जानने वाला व्यक्ति मीठे पाने में डूब जाएगा। नमकीन (खारे) पानी का घनत्व एक से ज़्यादा होता है। अधिकतर समुद्रों का पानी अधिक नमकीन नहीं है और पानी का घनत्व हालांकि एक से अधिक है, लेकिन आदमी के शरीर के औसत घनत्व से कम होता है। कास्पियन सागर की

कारा-बोगाज़-गोल खाड़ी में पानी का घनत्व 1.18 है। यह आदमी के शरीर के औसत घनत्व से अधिक है। इस कारण इस खाड़ी में कोई डूब नहीं सकता है। पानी पर लेट कर किताब पढ़ी जा सकती है।

बर्फ़ पानी पर तैरती है। कारक "पर" का यहां सही उपयोग नहीं किया गया है। बर्फ़ का घनत्व पानी के घनत्व की अपेक्षा 10% कम है। इस कारण आर्किमीडीज़ नियम से यह परिणाम निकलता है कि यदि बर्फ़ का टुकड़ा अपने आयतन के लगभग 0.9 भाग तक ही पानी में डूबेगा। यही कारण है कि समुद्री जहाज़ों और प्लावी हिमशैलों की टक्कर के परिणाम बहुत भयानक हो सकते हैं।

अगर भौतिक तुला के पलड़े हवा में संतुलन स्थिति में हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे शून्य में भी संतुलित होंगे। आर्किमीडीज़ का नियम हवा तथा पानी दोनों के लिए ही एकसमान सही है। लेकिन हवा में स्थित पिंड पर उसके आयतन जितनी हवा के भार के बराबर ऊपर उठानेवाला बल लगा होता है। हवा में पिंड का "भार" शून्य की अपेक्षा कम होता है। आयतन जितना अधिक होगा, उतनी ही भार में अधिक कमी होगी। एक टन लकड़ी के भार में एक टन सीसे की अपेक्षा अधिक कमी आती है। एक हास्यकर प्रश्न—एक टन सीसा एक टन लकड़ी से अधिक भारी होता है अगर उन्हें हवा में तौला जाए—का भी यही उत्तर होता है।

हवा में छोड़े पिंडों के भार में कमी अधिक नहीं होती। लेकिन कमरे के आधार के टुकड़े को तौलने में दसियों किलोग्राम भार "कम" हो गया होता । परिशुद्ध तुलाई के लिए हवा में भार में आयी कमी को ध्यान में रखना जरूरी होता है।

हवा में आर्किमीडीय बल गुब्बारे, तिर विमान (aerostat) तथा अलग-अलग क़िस्म के वायुपोत बनाने के योग्य बनाता है। इसके वास्ते केवल हवा से हल्की गैस की आवश्यकता होती है।

अगर 1 m^3 आयतनवाले गुब्बारे को हाइड्रोजन से भरें, जिसके 1 m^3 आयतन का भार 0.09 किलोग्राम होता है, तो उत्प्लावक्ता (buoyancy) —आर्किमीडीय बल और गैस के भार का अन्तर—बराबर होगी :

$$1.29 \text{ kg.f} - 0.09 \text{ kg.f} = 1.20 \text{ kg.f};$$

यहां 1.29 kg/m^3 हवा का घनत्व है।

अत ऐसे गुब्बारे पर से लगभग एक किलोग्राम भार लटकाया जा सकता है, और इससे गुब्बारे की उड़ान में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

यह बात स्पष्ट है कि अपेक्षाकृत छोटे, कुछ सौ घन मीटर आयतनवाले हाइड्रोजन-गुब्बारे हवा में काफ़ी भार उठा सकते हैं।

तिर विमानों की भारी त्रुटि यह है कि हाइड्रोजन ज्वलनशील है। हवा के साथ मिलकर हाइड्रोजन एक विस्फोटी मिश्रण बनाता है। तिर विमानों की उड़ानों के दौरान कई गम्भीर दुर्घटनाएं हुई हैं।

यही कारण है कि हीलियम का पता चलने के बाद उसका गुब्बारों को भरने के लिए उपयोग किया जाने लगा। हीलियम हाइड्रोजन से दुगुनी भारी है और हीलियम से भरे गुब्बारे की उत्प्लावक्ता भी कम होती है। क्या इससे कोई अधिक अन्तर पड़ेगा? हीलियम से भरे 1 m^3 आयतनवाले गुब्बारे की उत्प्लावक्ता बराबर होगी 1.29 kg.f — 0.18 kg.f = 1.11 kg.f। उत्प्लावक्ता केवल 8% ही कम हुई है, लेकिन हीलियम के गुण-दोष स्पष्ट हैं।

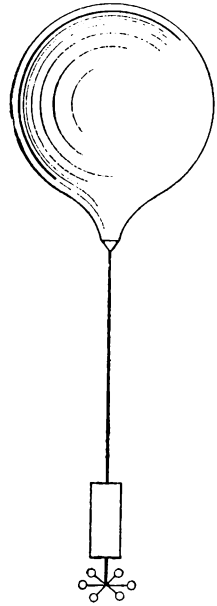
तिर विमान ही ऐसा पहला उपकरण था जिस की सहायता से लोग हवा में उठे थे। तिर विमानों का वायुरुद्ध गंडोलों सहित वायुमण्डल के ऊपरी स्तरों का अध्ययन करने के लिए आजकल भी उपयोग किया जाता है। ऐसे तिर विमानों को स्ट्रैटोस्फियर गुब्बारे (stratosphere balloon) कहते हैं। ऐसे गुब्बारे 20 किलोमीटर की ऊंचाई तक जा सकते हैं।

आजकल ऐसे हवाई गुब्बारों का काफ़ी उपयोग किया जाता है, जिनमें रखे यंत्र उन द्वारा लिए गए मापों के परिणामों को रेडियो द्वारा भूमि पर प्रेषित करते हैं (देखिए चित्र 82)। ऐसे रेडियो सॉन्डेज़ों (radio-sondage) में लघु रेडियो बैटरियों सहित रेडियो प्रेषित्र (radio transmitter) रखे होते हैं, जो विभिन्न ऊंचाइयों पर आर्द्रता (humidity), वायुमण्डल के तापमान और दाब के बारे में संकेतों द्वारा सूचना भेजते हैं।

अनियंत्रित तिर विमान को दूर की यात्रा पर भेजा जा सकता है, और बहुत परिशुद्धता से बताया जा सकता है कि वह कहां उतरेगा। इसके लिए ज़रूरी है कि तिर विमान कम-से-कम 20–30 किलोमीटर ऊंचा उठे। इतनी ऊंचाई पर हवा की धाराएं काफ़ी स्थिर होती है और तिर विमान के पथ का बहुत परिशुद्धता से पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। जरूरत

होने पर तिर विमान की उत्प्लावक्ता बदली जा सकती है गैस निकाल कर या स्थिरक भार(ballast) को फेंक कर।

पहले हवाई उड़ान के लिए ऐसे तिर विमान प्रयोग में लाए जाते थे जिन पर प्रपेलर लगा हुआ था। ऐसे तिर विमानों को, जिन्हें dirigible यानी नियंत्रित वायुपोत कहते हैं, सुप्रवाही आकार दिया जाता था। वायुपोत वायुयानों से मुक़ाबला न कर सके। इसका कारण है बड़ा आकार (इनका आकार तीस साल पहले बनाए जानेवाले हवाई जहाज़ों से भी काफ़ी बड़ा होता है), नियंत्रण में असुविधा, कम रफ़्तार और "नीची उड़ान"।तिस पर भी माल परिवहन के लिए नियंत्रित वायुपोत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।



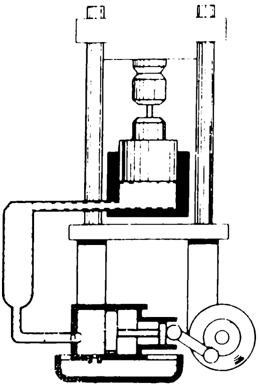
चित्र 82

कई करोड़ गुना दाब

छोटे से क्षेत्रफल पर अधिक दाब पड़ने के अनेक उदाहरण दनिक जीवन में देखने में आते हैं। आइए, उदाहरण के तौर पर यह मालूम करें कि सूई की नोक पर कितना दाब पड़ता है। मान लें कि सूई या कील की नोक का रेखीय माप 0.1 mm है। इसका मतलब यह हुआ कि नोक का क्षेत्रफल 0.0001 cm^2 होगा। अगर एक ऐसी नोकवाली कील पर 10 kg.f का बल लगाया जाए, तो कील की नोक 100000 वायुमण्डलीय दाब डालेगी। यह कारण कि नोकदार वस्तुएं आसानी से सघन पिंडों में घुस जाती हैं।

इस उदाहरण से पता चलता है कि छोटे क्षेत्रफलों पर उच्च दाब पैदा होना एक स्वाभाविक बात है। बड़ी सतहों पर उच्च दाब पैदा करने की बात इससे भिन्न है।

प्रयोगशाला की परिस्थितियों में उच्च दाब बड़ी क्षमतावाले द्रवचालित दाबकों की मदद से उत्पन्न किया जाता है (देखिए चित्र 83)। दाबक की शक्ति छोटे क्षेत्रफलवाले पिस्टन को प्राप्त होती हैं, वह बर्तन में जाता है जिसके अन्दर बड़ा दाब पैदा करना होता है।



चित्र 83

इस प्रकार बिना किसी कठिनाई के कई हज़ार वायुमण्डलीय दाब पैदा किया जा सकता है। अत्युच्च दाब प्राप्त करने के वास्ते प्रयोग को जटिल बनाना पड़ेगा, चूंकि बर्तन जिस धातु से बना है वह इतने बड़े दाबों को सह नहीं सकेगी।

यहां प्रकृति ने भी हमारी सहायता की। पता चलता है कि 20000 वायुमण्डलीय दाब पर धातु बहुत ठोस हो जाती है। इसलिए अत्युच्च दाब पैदा करनेवाले यंत्र को द्रव में डुबोते हैं, जिसपर 30000 वायुमण्डलीय दाब लगा होता है। इस प्रकार अन्दरवाले बर्तन में (पिस्टन द्वारा) कई लाख वायुमण्डलीय दाब पैदा किया जा सकता है। सबसे बड़ा दाब – 400000 वायुमण्डलीय दाब – अमरीका के भौतिकी विज्ञानी ब्रिजमैन ने प्राप्त किया था।

वैज्ञानिक अत्युच्च दाब प्राप्त करने में रुची यों ही नहीं रखते हैं। इतने उच्च दाबों पर कई ऐसी प्रक्रियाएं हो सकती है जिन्हें दूसरे तरीक़ों से प्रेरित करना सम्भव नहीं है। उच्च दाब लगाने पर सन् 1955 में कृत्रिम हीरे बनाए गए थे। ऐसा करने के वास्ते 10^7 वायुमण्डलीय दाब तथा 2300° तापमान की आवश्यकता पड़ी थी। 300000 वायुमण्डलीय दाब तक का अत्युच्च दाब छोटे-से क्षेत्रफल पर ठोस या द्रव विस्फोटी पदार्थों – नाइट्रोग्लिसरीन, ट्रोटाइल आदि के विस्फोट से पैदा होता है। परमाणु बम के विस्फोट के समय 10^{13} वायुमण्डलीय दाब पैदा होता है।

विस्फोट के समय दाब बहुत ही कम समय तक बना रहता है। पृथ्वी सहित खगोलीय पिंडों की गहराइयों में उच्च दाब निरंतर बना रहता है। पृथ्वी के केन्द्र पर दाब लगभग 30 लाख वायुमण्डलीय दाब के बराबर है।

पृष्ठीय बल

क्या पानी में से सूखा निकला जा सकता है? जी हां, इसके वास्ते केवल शरीर पर किसी ऐसे पदार्थ को लगाना होगा जिसे पानी गीला न कर सके।

अंगुली पर पैरेफ़िन लगा कर उसे पानी में डालिए। जब आप अंगुली बाहर निकालेंगे तो देखेंगे कि अंगुली पर पानी नहीं है, अगर है तो बस एक आध बूंद ही। अंगुली को तनिक झटका देने पर पानी की यह बूंद भी नहीं रहेगी।

इस स्थिति में कहते हैं कि पानी पैरेफ़िन को गीला नहीं करता है। पारा भी सब दृढ़ पिंडों के साथ ऐसा ही बर्ताव करता है। पारा त्वचा को, शीशे को, लकड़ी... को गीला नहीं करता है।

पानी बहुत चलचित्त है। कुछ पिंडों से अधिक चिपकता है और अन्य पिंडों के साथ चिपकने की चेष्ठा तक भी नहीं करता है। पानी चिकने धरातलों को गीला नहीं करता है लेकिन साफ़ शीशे को अच्छी तरह गीला कर देता है। पानी लकड़ी, कागज़ और ऊन को भी गीला करता है।

यदि पानी की बूंद को किसी शीशे पर डालें, तो वह फैल जाएगी और पतला-सा गड्ढा बन जाएगा। अगर एक ऐसी ही पानी की बूंद को पैरेफ़िन पर डाला जाए तो वह उस पर लगभग गोलीय आकार की बूंद बन कर रहेगी, जो गुरुत्व बल के कारण थोड़ी-सी चपटी होगी।

मिट्टी का तेल लगभग सभी पिंडों से "चिपकता" है। शीशे या धातु पर से मिट्टी का तेल बहता ही नहीं, बल्कि अच्छी तरह से बन्द न किए गए बर्तन से उड़ भी जाता है। किसी वस्तु पर गिरे मिट्टी के तेल की बदबू बहुत समय तक रहती है: मिट्टी का तेल बहुत बड़े क्षेत्र पर फैल जाता है, दरारों में चला जाता है, कपड़ों में भी प्रवेश कर जाता है। इसलिए उस की बदबू से मुश्किल से ही पीछा छुड़ाया जा सकता है।

पिंडों का गीला न हो सकना रोचक घटनाओं को जन्म देता है। एक सूई लेकर उस पर चिकनाई लगाएं और उसे लम्बान में सावधानी से पानी पर रखें। सूई डूबेगी नहीं। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि सूई पानी पर दबाव डाल रही है और इस प्रकार बने कोटर में लेटी रहती है। लेकिन सूई को थोड़ा-सा भी दबाने पर वह तल पर पहुंच जाएगी। इसके लिए जरूरी है कि उसका बहुत सारा भाग पानी में हो।

इस रोचक गुण का इस्तेमाल पानी पर तैरने वाले कीड़े करते हैं। वे अपने पंजों को गीला किए बिना पानी पर तीव्रता से भागते हैं।

धातुश्रों के प्लवन संवर्धन के लिए क्लेदन (wetting) का इस्तेमाल किया जाता है। शब्द "प्लवन" का अर्थ है "सतह पर उठ आना"। इस परिघटना का सार निम्नलिखित में निहित है। महीन पीसे हुए अयस्क को पानी से भरे बर्तन में डालते हैं, फिर उसमें एक विशेष क़िस्म का थोड़ा-सा तेल डालते हैं, जो खनिजों के कणों को गीला करने लेकिन अयस्क में पाये जाने वाले अनावश्यक कणों को गीला न करने का गुण रखता हो। इस मिश्रण को हिलाने पर खनिज पदार्थ के कणों पर तेल की झिल्ली बन जाती है।

इसके बाद अयस्क, पानी और तेल की बनी काली खीर में से हवा गुज़ारी जाती है। ऐसा करने पर हवा के छोटे-छोटे बुलबुले बनते हैं यानी झाग बन जाती है। झाग ऊपर तैरने लगती है। प्लवन क्रिया इस बात पर आधारित है कि जिन कणों पर तेल की झिल्ली बनी होती है, वे हवा के बुलबुलों से चिपक जाते हैं। बड़ा बुलबुला छोटे से कण को हवा के गुब्बारे की तरह ऊपर उठा देता है।

खनिज झाग के रूप में धरातल पर आ जाता है। अनावश्यक पदार्थ तले पर ही रह जाते हैं। झाग को हटा कर उसे अगली प्रक्रिया तथाकथित "सांद्र" प्राप्त करने के लिए भेज दिया जाता है। सांद्र में अनावश्यक पदार्थों की मात्रा बहुत ही कम होती है।

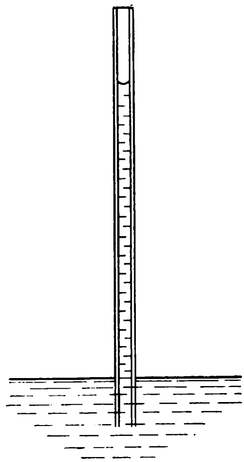
पृष्ठों के आसंजक बल (adhesive forces) आपस में जुड़े हुए बर्तनों में द्रव के स्तर को बराबर करने में रुकावट डाल सकते हैं। इसकी सत्यता आसानी से परखी जा सकती है।

अगर एक बहुत ही पतली नली (जिसका व्यास मिलीमीटर के कुछ ही अंशों के बराबर है) को पानी में डाला जाए, तो पानी मिले हुए बर्तनों के नियम के विपरीत उसमें तीव्रता से ऊपर उठेगा, और उसमें पानी का स्तर बड़े बर्तन के पानी के स्तर से बहुत ऊंचा होगा (चित्र 84)।

क्या हो गया है? कौनसे बल द्रव के स्तम्भ के भार को रोक रहे हैं? शीशे के साथ पानी के आसंजक बलों के कारण पानी ऊपर उठा है।

पृष्ठ आसंजक बल तभी पैदा होते हैं जब कि द्रव बहुत ही पतली नलियों में ऊपर उठता है। नली जितनी पतली होगी पानी उतना ही ऊपर उठेगा और उतना ही स्पष्ट इस बल का प्रणाम मिलेगा। इन पृष्ठीय परिघटनाओं का नाम नलियों के नाम से सम्बन्ध रखता है। ऐसी नली में

छेद मिलीमीटर के कुछ ही अंशों के बराबर होता है: ऐसी नली को केशिका नली कहते हैं। ("केशिका" का मतलब है बाल जैसी बारीक)। पतली नली में द्रव के चढ़ने की परिघटना को केशिकत्व (capillarity) कहते हैं।



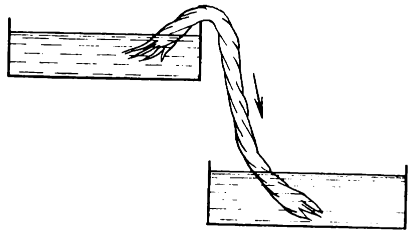
चित्र 84

केशिका नलियों में द्रव कितना ऊंचा उठ सकता है? देखते हैं कि 1 mm व्यासवाली नली में पानी 1.5 mm ऊंचा उठता है। अगर व्यास 0.01 मिलीमीटर है तो पानी उतने ही गुना ऊपर चढ़ेगा, जितने गुना नली का व्यास कम हो गया है अर्थात पानी 15 cm तक ऊपर उठेगा।

निस्सन्देह, केशिका नली में द्रव का ऊपर उठना क्लेदन (wetting) होने पर ही सम्भव होगा। यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कि पारा शीशे की नलियों में ऊपर नहीं चढ़ेगा। पारा तो शीशे की नलियों में नीचे हो जाता है। पारा शीशे को छूना बिल्कुल ही "पसन्द" नहीं करता और अपनी पूरी सतह को उस हद तक कम करने की कोशिश करता है, जहां तक गुरुत्व बल अनुमति देता है।

ऐसे अनेक पिंड हैं, जो बहुत ही पतली नलियों के तन्त्र से बने हैं। इन पिंडों में केशिका परिघटनाएं हमेशा देखने में आती हैं।

पौधों और पेड़ों में भी लम्बी-लम्बी केशिका नलियां तथा छिद्र होते हैं। इन नलियों का व्यास मिलीमीटर के सौवें हिस्से से भी कम होता है। इस कारण केशिका बल मिट्टी की नमी को बहुत ऊंचाई तक और जल को पौधों के सब भागों तक पहुंचा सकते हैं।



चित्र 85

स्याही सोख पत्र एक बहुत ही सुविधाजनक वस्तु है।

अगर कागज़ पर स्याही गिर गयी है और आप पृष्ठ को पलटना चाहते हैं, तो क्या धब्बे के सूखने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? जी नहीं, स्याही सोख पत्र के एक कोने को स्याही के धब्बे में डाल दें। स्याही शीघ्र ही गुरुत्व बल के विपरीत ऊपर की ओर जाने लगेगी।

यहां स्याही केशिका प्रभाव से ऊपर की ओर जाती है। स्याही सोख पत्र को खुर्दबीन में देखने पर उसकी बनावट देखी जा सकती है। ऐसा कागज असघन रेशों से बना होता है, जो एक दूसरे के साथ लम्बी और पतली नलियां बनाते हैं। यही नलियां ही तो केशिका नलियों का काम करती हैं।

लैम्प की बत्ती में भी ऐसी लम्बी नलियां होने के कारण मिट्टी का तेल ऊपर चढ़ता है। पलीते की सहायता से साइफ़न बना सकते हैं। ऐसा करने के वास्ते पलीते के एक सिरे को पूरे न भरे हुए पानी के गिलास में ऐसे डालते हैं कि उसका दूसरा सिरा पहले से नीचा हो (देखिए चित्र 85)।

कपड़े की रंगाई में भी कपड़े में तागे की बनी नलियों द्वारा रंग चूसने की क्षमता का प्रयोग किया जाता है।

६. संसार रचना के तत्त्व

तत्त्व

हमारा संसार किन तत्त्वों से बना है? इस प्रश्न के उत्तरों ने सबसे पहले प्राचीन यूनान में 2500 साल पहले जन्म लिया था।

शुरू में ये उत्तर इतने अधिक आश्चर्यजनक लगते हैं कि हमें पाठकों को यूनान के प्राचीन दार्शनिकों के तर्कों से परिचित करवाने के लिए बहुत अधिक कागज़ की आवश्यकता पड़ती। दार्शनिक फ़ालेस कहते थे कि सब वस्तुएं पानी से बनी हैं, अनाक्सिमेन कहते थे कि संसार हवा से बना है, तथा हीराक्लीत का मत था कि सब वस्तुएं अग्नि से बनी हैं।

ऐसे उत्तरों की विवेक शून्यता ने बाद के "अक्लमन्दी को प्यार करने वालों को" ("फ़िलॉसोफ़र" का अनुवाद यही है) आधार-भूतों या, जैसा कि उन्हें प्राचीनकाल में कहते थे, तत्त्वों की संख्या बढ़ाने पर विवश किया। एम्पेदोक्ल कहते थे कि तत्व चार हैं: पृथ्वी, पानी, हवा तथा अग्नि। इस वाद में अरस्तू ने अन्तिम (बहुत समय के लिए) संशोधन किए हैं।

अरस्तू के अनुसार सब पिंड एक ही पदार्थ से बने हैं। लेकिन यह पदार्थ अलग-अलग गुण ग्रहण कर सकता है। ऐसे अभौतिक तत्त्व-गुण चार हैं—ठण्ड, गर्मी, नमी, सूखा। दो-दो में जोड़ने और इस तत्व को ये गुण प्रदान करने से अरस्तू के तत्त्व-गुण एम्पेदोक्ल के तत्व बनते हैं। जैसे सूखा और ठण्ड पृथ्वी को बनाते हैं। सूखा और गर्म अग्नि को बनाते हैं। नमी और ठण्ड—पानी को और, अन्ततः, नमी तथा गरमी—हवा को जन्म देती है।

कई सवालों के उत्तर देने में कठिनाई होने के कारण प्राचीनकाल के दार्शनिक चार तत्व-गुणों के अलावा एक और बात यानी "भगवान के सार-तत्व" का वर्णन करते थे। उनके अनुसार भगवान ने विभिन्न तत्व-गुणों को एक साथ मिलाया है। भगवान को बीच में लाकर, निस्सन्देह, किसी भी ग़लतफ़हमी को स्पष्ट किया जा सकता है।

लेकिन बहुत समय तक—लगभग 18 वीं सदी तक—बहुत ही कम लोगों ने अरस्तू की इस शिक्षा के विरुद्ध कुछ कहने का साहस किया। कारण यह था कि उसकी शिक्षा गिरजाघरों में भी मान्य थी और उसके विरुद्ध अन्य आवाज़ उठाने का अर्थ धर्म के विरुद्ध आवाज़ उठाना माना जाता था।

तिस पर भी सन्देह उत्पन्न हुए, जिनका कारण रसायन विज्ञान का अज्ञान था।

प्राचीन पांडुलिपियों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि मनुष्य को पता था कि जो पिंड मनुष्य को घेरे हुए हैं, वे दूसरे पिंडों में परिवर्तित हो सकते हैं। दहन, धातुओं का जलना, धातुओं का पिघलना—इन सब के बारे में मनुष्य को अच्छा ज्ञान था।

ऐसा प्रतीत होता था कि यह सब अरस्तू की शिक्षा के विरुद्ध नहीं था। किसी भी परिवर्तन में तत्वों की "मात्रा" बदलती थी। अगर समस्त संसार केवल चार ही तत्वों से बना है तो पिंडों के परिवर्तन की सम्भावनाएं बहुत अधिक होनी चाहिए। केवल रहस्य ही मालूम करना रह जाता है कि किसी भी पदार्थ से दूसरे पदार्थ किस प्रकार पाए जा सकते हैं।

सोने को बनाने का लालच या किसी विशेष, असाधारण "जादूई पत्थर" को ढूंढ़ना जो उसके पानेवाले को अमीर बना दे, उसे ताकतवर बना दे तथा हमेशा उसकी जवानी बनाये रखे—ये प्रश्न मनुष्य के सामने थे। सोना बनाने का, जादूई पत्थर ढूंढ़ने का और किसी भी पदार्थ को किसी अन्य पदार्थ में बदल सकने की चेष्ठाओं को प्राचीन अरब लोग रसायनविज्ञान का अज्ञान कहते थे।

सैंकड़ों वर्ष लोग इस प्रश्न को हल करने में जुटे रहे। रसायनविज्ञान का ज्ञान न रखनेवाले न तो सोना बनाने की विधि मालूम कर सके और न ही जादूई पत्थर को ढूंढ़ सके, लेकिन उनकी ऐसी सब चेष्ठाओं से पदार्थों को परिवर्तित करने के बारे में बहुत सारी बहुमूल्य सूचनाएं मिली। ये तथ्य ही ऐसी अविज्ञानिक प्रयत्नों के अन्त का कारण बने। सत्रहवीं सदी में बहुतों को पता चल गया था कि मौलिक पदार्थ अर्थात तत्व चार से अधिक हैं। पारा, सीसा, गन्धक, सोना, सुर्मा ऐसे पदार्थ थे जिनका विच्छेद नहीं किया जा सकता था। और यह कहना तब असम्भव था कि ये पदार्थ तत्वों से बने हैं। इसीलिए उनका नाम संसार के तत्वों की सूची में शामिल कर लिया गया।

सन् 1668 में इंगलैंड में राबर्ट बॉयल की एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक था "शक़ी रसायनज्ञ या रसायनविज्ञान के अज्ञानियों के तत्वों के बारे में शक़ तथा विरोधाभास"। यहां तत्व की परिभाषा ही बिलकुल अलग थी। यह रसायनविज्ञान के अज्ञानियों की पकड़ में न आने वाला, रहस्यमय अभौतिक तत्व नहीं था। अब तत्व को पदार्थ का अभिन्न अंग माना जाने लगा।

यह तत्व की संकल्पना की आधुनिक परिभाषा का आधार है।

बॉयल के तत्वों की सूची बड़ी नहीं थी। बॉयल ने अपनी सही सूची में अग्नि को भी शामिल किया। लेकिन तत्त्व-गुणों के बारे में कल्पना उसके बाद भी बनी रही। फ़्रांस के महान वैज्ञानिक लबुआजिए (1743-1794), जिसे रसायन विज्ञान का संस्थापक कहते हैं, की सूची में असली तत्वों के अतिरिक्त भार रहित तत्व: केलोरी तथा प्रकाश भी शामिल हैं।

18 वीं सदी के पूर्वार्ध में 15 तत्त्व मालूम थे, 18 वीं सदी के अन्त में उनकी संख्या 35 हो गई। वास्तविकता तो यह थी कि उनमें से 23 ही असली तत्त्व थे, बाक़ी या तो अस्तित्व रहित तत्त्व या कास्टिक सोडा, पोटाशियम जैसे पदार्थ थे, या तत्व-सम्मिश्रण थे।

19 वीं सदी के मध्य में रसायन विज्ञान में 50 से अधिक अविच्छेद्य पदार्थ मालूम थे।

रूस के महान रसायनज्ञ मेन्देलियेव का आवर्त नियम अज्ञात तत्वों को सूझबूझ से मालूम करने के लिए एक महत्वपूर्ण क़दम था। अभी इस नियम का उल्लेख करना असामयिक होगा। हम यहां केवल यह कहेंगे कि मेन्देलियेव ने अपने नियम से यह बताया कि तत्वों को, जिनकी खोज अभी नहीं हुई थी, किस प्रकार मालूम किया जा सकता है।

बीसवीं सदी के शुरू में प्रकृति में उपलब्ध लगभग सभी तत्व मालूम हो गये थे।

परमाणु

लगभग 2000 साल पहले प्राचीन रोम में एक मौलिक कविता लिखी गई। उसका रचयिता रोमन कवि लूक्रेत्सी कार था। इस कविता का शीर्षक था "पदार्थों की प्रकृति के बारे में"।

अपनी कविताओं के माध्यम से लूक्रेत्सी ने प्राचीन काल के यूनानी दार्श-निक डिमाक्रीत के संसार के बारे में दृष्टिकोण व्यक्त किए थे।

ये दृष्टिकोण क्या थे? ये शिक्षा अदृश्य और बहुत ही सूक्ष्म कणों के बारे में थी, जिनसे हमारा समस्त संसार बना हुआ है। अलग-अलग घटनाओं का प्रेक्षण करते समय डिमोक्रीत ने उनको समझाने का प्रयत्न किया।

उदाहरण के लिए, जब पानी को गर्म करते हैं तो वह अदृश्य वाष्प में परिवर्तित हो जाता है और उड़ जाता है। इस क्रिया को कैसे समझा जा सकता है? एक बात तो स्पष्ट है कि पानी का यह गुण उसकी आन्तरिक रचना पर निर्भर है।

या इस बात को कैसे समझा जाय कि पुष्पों की सुगन्ध दूर से ही अनुभव हो जाती है।

ऐसे प्रश्नों पर सोच विचार करने से डिमोक्रीत इस परिणाम पर पहुंचा कि पिंड हमें दृढ़ लगते हैं, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि वे सूक्ष्म कणों से बने हैं। अलग-अलग पिण्डों के लिए ये कण आकार में भिन्न होते हैं, लेकिन वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें देखना असम्भव है। अतः हमें प्रत्येक पिण्ड दृढ़ लगता है।

डिमोक्रीत ने इन सूक्ष्म कणों को, जिनका विभाजन नहीं किया जा सकता है, जिनसे पानी या कोई भी पदार्थ बना है, "एटम" नाम दिया। यूनानी मैं "एटम" का अर्थ है "अविभाजित"।

प्राचीन यूनानियों की अद्भुत कल्पना, जिसने 24 सदियों पहले जन्म लिया था, बाद में बहुत दिनों तक भूली रह गयी। एक हज़ार साल से अधिक समय तक वैज्ञानिक संसार में अरस्तू की भ्रमपूर्ण शिक्षा का पूर्णतः प्रभुत्व रहा।

अरस्तू के यह कहने से कि सब तत्व परस्पर रूप से एक दूसरे में परिव-र्तित हो सकते हैं, उसने परमाणु के अस्तित्व को पूर्णतः अस्वीकार किया। अरस्तू के विचारानुसार किसी भी पिण्ड को अनन्त तक विभाजित किया जा सकता है।

सन् 1647 में फ़्रांस के पियेर गस्सेन्दी ने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उसने अरस्तू की शिक्षा को निर्भयता से अस्वीकार किया और कहा कि संसार में सब पदार्थ ऐसे कणों से बने हैं जिनका विभाजन करना असम्भव

है। इन कणों को परमाणु कहते हैं। परमाणु एक दूसरे से ग्राकार, परिमाण ग्रौर भार में भिन्न होते हैं।

गस्सेन्दी प्राचीन काल की परमाणु शिक्षा से सहमत था ग्रौर उसने इस शिक्षा को ग्रौर विकसित किया। उसने स्पष्ट किया कि प्रकृति में लाखों तरह के विभिन्न पिण्ड किस प्रकार बन सकते हैं ग्रौर बनते हैं। गस्सेन्दी ने पुष्टि की कि इसके लिए विभिन्न परमाणुग्रों की बड़ी संख्या की ग्रावश्यकता नहीं है। परमाणु एक प्रकार से भवन निर्माण की सामग्री हैं। तीन तरह की भवन निर्माण सामग्रियों से ग्रर्थात ईंटों, शहतीरों ग्रौर तख़्तों से ग्रनेक प्रकार के घर बनाए जा सकते हैं, ऐसे ही दसियों विभिन्न परमाणुग्रों से प्रकृति हज़ारों प्रकार के पिण्ड बना सकती है। हरेक पिण्ड में परमाणु विभिन्न परमाणुग्रों के छोटे-छोटे समूहों से बने होते हैं। ये समूह "ग्रणु" या "छोटे-छोटे द्रव्यमान" कहलाते हैं।

विभिन्न पिण्डों के ग्रणु एक दूसरे से संख्या ग्रौर उनमें स्थित परमाणुग्रों के रूप ("क़िस्म") में भिन्न होते हैं। यह समझना मुश्किल नहीं है कि दसियों विभिन्न परमाणुग्रों से उनके ग्रनेक प्रकार के संयोजन करके ग्रणु बनाए जा सकते हैं। यही कारण है कि ग्रनेक प्रकार के पिण्ड हमें घेरे हैं।

फिर भी गस्सेन्दी के दृष्टिकोण में बहुत कुछ त्रुटिपूर्ण था। जैसे उनके ग्रनुसार गर्मी, सर्दी, स्वाद ग्रौर सुगन्ध के लिए विशेष प्रकार के परमाणु होते हैं। उस समय के दूसरे वैज्ञानिकों की तरह वह भी ग्ररस्तू के प्रभाव से पूर्णतयः स्वतन्त्र नहीं थे, तथा ग्रभौतिक तत्वों को स्वीकार करते थे।

रूस के महान शिक्षाशास्त्री तथा विज्ञान के संस्थापक मि० वा० लोमोनोसोव की रचनाग्रों में निम्नलिखित विचार ग्रंतविष्ट हैं, जिनको बहुत दिनों बाद प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया।

लोमोनोसोव लिखते हैं कि ग्रणु समांगी तथा ग्रसमांगी भी हो सकता है। पहली स्थिति में समांगी परमाणु ग्रणु में एकत्र होते हैं। दूसरी स्थिति में ग्रणु एक दूसरे से भिन्न परमाणुग्रों से बनता है। ग्रगर पिण्ड समांगी ग्रणुग्रों से बना है तो उसे साधारण पिण्ड कहते हैं। ग्रौर यदि वह विभिन्न प्रकार के परमाणुग्रों से बना है तो उसे मिश्र पिण्ड कहते हैं।

ग्रब हम यह ग्रच्छी तरह से समझ गये हैं कि प्रकृति के ग्रलग-ग्रलग पिंडों की रचना ऐसी ही होती है। वस्तुतः यदि हम ग्रॉक्सीजन गैस को देखें तो पता चलेगा कि वह दो एकसमान ग्रॉक्सीजन परमाणुग्रों से बनी

है। यह अणु एक साधारण पदार्थ का है। यदि अणु को बनाने वाले परमाणु अलग-अलग हैं तो वह "मिश्र" अणु होगा, अर्थात् एक संमिश्र रसायनिक यौगिक होगा। उसके अणु उन रसायनिक तत्वों से बने होंगे, जो यौगिक का अंग हैं।

यही बात दूसरी तरह भी कही जा सकती है—हर साधारण पदार्थ एक ही रसायनिक तत्व के परमाणुओं से बना होता है, और संमिश्र पदार्थ दो से अधिक तत्वों के परमाणुओं से बना होता है।

परमाणुओं के अस्तित्व के बारे में अपने तर्क पेश करके अनेक विचारक परमाणुओं के बारे में अपने विचार प्रकट करते थे। इंगलैंड के वैज्ञानिक डाल्टन ने सही रूप से विज्ञान में परमाणुओं को प्रस्तुत किया और उन्हें खोज का विषय बनाया। डाल्टन ने सिद्ध किया कि रसायन विज्ञान के बहुत से नियमों को केवल परमाणुओं के आधार पर ही समझा जा सकता है।

डाल्टन के बाद परमाणुओं ने विज्ञान में हमेशा के लिए प्रवेश पा लिया। लेकिन बहुत समय तक अनेक वैज्ञानिकों ने "परमाणुओं के अस्तित्व में विश्वास" नहीं किया। उनमें से एक ने तो पिछली शताब्दी के अन्त में कहा था कि दसियों वर्ष बाद "परमाणु केवल पुस्तकालयों की धूल में ही पाए जा सकेंगे"।

आज ऐसे तर्क केवल असंगत ही लगते हैं। अब हमें परमाणुओं के जीवन के बारे में बहुत अधिक सूक्ष्म विवरण मालूम हैं। परमाणुओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह करना कृष्ण सागर के अस्तित्व में सन्देह करने के बराबर है।

परमाणुओं के सापेक्ष भार रसायन शास्त्रियों ने मालूम किये हैं। शुरू में परमाणु के भार का मात्रक हाइड्रोजन के परमाणु का भार लिया गया था। नाइट्रोजन का परमाणु वजन लगभग 14, ऑक्सीजन का लगभग 16, क्लोरीन का लगभग 35.5 है। बाद में परमाणु भार के सापेक्ष मात्रकों का, जिनमें प्रकृति में पायी जानेवाली ऑक्सीजन का परमाणु भार 16.0000 के बराबर लिया गया था, चयन किया गया था। इस स्केल में हाइड्रोजन का परमाणु भार 1.008 के बराबर होता है। आजकल इन मात्रकों का निर्धारण कार्बन के परमाणु भार 12 से किया जाता है।

अनेक रोचक प्रयोगों के परिणामस्वरूप भौतिक विज्ञान शास्त्री परमाणु का निरपेक्ष भार मालूम करने में सफल हो गये। चूंकि सापेक्ष भार मालूम

हैं, तो किसी एक क़िस्म के परमाणुओं, उदाहरण के तौर पर हाइड्रोजन के परमाणुओं का भार ग्रामों में मालूम करना ही काफ़ी होगा।

स्पष्ट है कि भौतिकविदों ने अभी ऐसी तुला नहीं बनाई है जिसपर परमाणु का भार तौल कर मालूम किया जा सके। परमाणुओं का भार मालूम करने के लिए भौतिकविदों ने दूसरे मापों का इस्तेमाल किया, जो सीधे तौलने की अपेक्षा किसी भी प्रकार घटिया नहीं हैं।

परमाणु भार का मात्रक बराबर है:

$$m = 1.66 \cdot 10^{-24} \text{ g}$$

यह संख्या इतनी छोटी है कि इसे समझने के लिए कल्पना कीजिए कि पृथ्वी के हर निवासी से (संसार की जनसंख्या 2 अरब से ज़्यादा है) आपको 1 अरब अणु लेने पड़ेंगे। इस प्रकार आप कितना पदार्थ इकट्ठा कर लेंगे। ग्राम के दसियों लाखों अंश के बराबर।

एक और भी तुलना है। पृथ्वी का भार सेब से उतने ही गुना अधिक है, जितने गुना सेब का भार हाइड्रोजन के परमाणु से अधिक है।

m के प्रतिलोम मात्रक को आवोगाद्रो की संख्या कहते हैं:

$$N = \frac{1}{m} = 6.023 \cdot 10^{23}$$

इस बहुत बड़ी संख्या का निम्नलिखित अर्थ है: किसी पदार्थ को इस मात्रा में लेते हैं कि ग्रामों की संख्या परमाणु या अणु के सापेक्ष भार M के बराबर हो। इस मात्रा को एक ग्राम-परमाणु या एक ग्राम-अणु कहते हैं (प्रायः संक्षेप में "ग्राम-अणु" को "मोल" कहते हैं)। अणु का ग्रामों में भार Mm के बराबर होगा। इसलिए किसी भी पदार्थ के ग्राम-अणु में अणुओं की संख्या

$$\frac{M}{Mm} = N$$

अर्थात् आवोगाद्रो की संख्या के बराबर होती है।

ऊष्मा क्या है?

ठण्डे और गर्म पिंड में क्या अन्तर होता है? 19 वीं शताब्दी के शुरू तक इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते थे: गर्म पिंड में ठण्डे पिंड की

अपेक्षा अधिक ऊष्मजन होते हैं। तुलना वैसे ही की जाती थी जैसे कि शोर्बा अधिक नमकीन है या उसमें अधिक नमक है। लेकिन ऊष्मजन क्या है? इसका उत्तर ऐसे देते थे – "ऊष्मजन – यह है ऊष्मा पदार्थ, यह प्रारम्भिक अग्नि है। रहस्यपूर्ण तथा समझ में न आने वाली बात है। वास्तव में यह उत्तर वैसा ही है जैसे पूछा जाए कि रस्सी क्या है: "रस्सी – यह एक साधारण अन्तर्ग्रंथन है"।

ऊष्मजन के सिद्धान्त के अलावा ऊष्मा की प्रकृति का एक और दृष्टिकोण बहुत समय तक अस्तित्व में रहा। 16 वीं से 18 वीं सदियों के बहुत से प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस दृष्टिकोण की पुष्टि करते थे।

फ़्रेन्सिस बेकन ने अपनी पुस्तक "नयी ओर्गानोन" में लिखा कि "ऊष्मा गति के अलावा और कुछ भी नहीं है... ऊष्मा पिंड के कणों की बदलती गति के कारण उत्पन्न होती है"।

रोबर्ट हुक ने अपनी पुस्तक "माइक्रोग्राफ़ी" में इस बात की पुष्टि की थी कि "ऊष्मा पिंड के हिस्सों की लगातार गति के कारण पैदा होती है। ऐसा कोई भी पिंड नहीं है जिसके कण विराम स्थिति में हों"।

लोमोनोसोव ने बहुत ही स्पष्ट रूप से ऐसे विचार (1745) अपनी कृति "ऊष्मा और ठण्ड के कारणों पर विचार" में व्यक्त किये थे। अपनी पुस्तक में उन्होंने ऊष्मजन के अस्तित्व को अस्वीकार किया और कहा कि "ऊष्मा पदार्थ के कणों की आन्तरिक गति के कारण पैदा होती है"।

रुमफ़ोर्ड ने 18 वीं सदी के अन्त में बहुत ही लाक्षणिक बात कही: "पदार्थ उतना ही गर्म होगा जितनी जल्दी-जल्दी पिंड के कण, जिनसे वह बना है, गति में आएंगे, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि घंटा उतनी ही ज़ोर से बजेगा जितनी तेज़ी से वह दोलन करेगा"।

इन अद्भुत अटकलों में, जो समय से बहुत पहले कहे गए थे, ऊष्मा की प्रकृति के आधुनिक दृष्टिकोण के आधार निहित हैं।

शान्त, साफ़ और शोर रहित दिन होते हैं। पेड़ों पर पत्ते तक हिलते नहीं हैं। पानी की चमकती सतह को नन्हीं-सी तरंग भी विचलित नहीं करती है और ऐसा लगता है कि सब वस्तुएं अचल हो गई हैं, मानो सारा संसार विराम स्थिति में आ गया हो। ऐसी स्थिति में अणु और परमाणुओं के संसार में क्या होता है?

आधुनिक भौतिक विज्ञान इस बारे में बहुत कुछ बता सकता है। कभी

भी और किन्ही भी परिस्थितियों में कणों की दृश्य गति रुकती नहीं है, जिनसे संसार बना है।

हम ये सब गतियां देख क्यों नहीं सकते हैं? पिंड विराम स्थिति में है और उसके कण गति में हैं। यह कैसे हो सकता है?

क्या आपने कभी कीट-विशेष का झुंड देखा है? जब हवा नहीं होती है तो लगता है कि झुंड हवा में लटका है। लेकिन झुंड के अन्दर कीड़े काफ़ी हल-चल कर रहे होते हैं। सैकड़ों कीट दायीं ओर जाते हैं, तो उसी समय उतने ही बायीं ओर जाते हैं। लेकिन झुंड अपनी जगह पर ही टिका रहता है और अपना आकार तक भी नहीं बदलता है।

अणुओं और परमाणुओं की अदृश्य गतियां भी ऐसी ही अव्यवस्थित होती हैं। अगर कुछ अणु आयतन से निकलते हैं तो उनकी जगह दूसरे अणु ले लेते हैं। नए अणु निकले अणुओं से बिल्कुल भी भिन्न नहीं होते हैं, इसीलिए पिंड अपने पहले वाले स्थान में ही रहता है। कणों की यादृच्छिक गति दीखने वाले संसार के गुणों को नहीं बदलती है।

पाठक यह प्रश्न कर सकता है कि क्या जो बात हम यहां कर रहे हैं वह खोखली नहीं है? ये सुन्दर तर्क ऊष्मजन के सिद्धान्त से क्या अधिक बात बताते हैं? क्या किसी ने पदार्थ को कणों की शाश्वत ऊष्मीय गति देखी है?

कणों की ऊष्मीय गति को देख सकते हैं, और वह भी बहुत ही साधारण सूक्ष्मदर्शी की मदद से। सबसे पहले इंगलैंड के वनस्पतिविद् ब्राऊन ने सौ साल पहले इस गति को देखा था।

सूक्ष्मदर्शी से पौधों की आन्तरिक बनावट को देखते समय उन्होंने देखा कि वनस्पति के रस में तैर रही पदार्थ की कणिकाएं अव्यवस्थित रूप से हर दिशा में चल रही थी। वनस्पतिविद् को यह जानने की उत्सुकता हुई कि किन बलों के कारण ये कण चल रहे हैं? हो सकता है कि ये कण न होकर कोई सजीव वस्तुएं हों? वैज्ञानिक ने पानी में घोली गयी चिकनी मिट्टी के छोटे-छोटे कणों का सूक्ष्मदर्शी की मदद से अध्ययन करने का निर्णय किया। लेकिन ये, निस्सन्देह निर्जीव, चिकनी मिट्टी के कण भी विराम स्थिति में नहीं थे और निरन्तर रूप से अव्यवस्थित दशा में पानी में चल रहे थे। कण जितने छोटे थे, उतनी ही तेज़ उनकी गति थी। वैज्ञानिक ने बहुत देर तक इस गंदले पानी का अध्ययन किया, लेकिन इन

कणों की गति बंद नहीं हुई। ऐसा लगता था कोई अदृश्य बल इन्हें धकेल रहे हैं।

कणों की ब्राऊनी गति को ही ऊष्मीय गति कहते हैं। ऊष्मीय गति बड़े और छोटे कणों, अणुओं के पुंजों, अलग-अलग अणुओं या परमाणुओं के लिए स्वाभाविक है।

ऊर्जा हमेशा संरक्षित रहती है

संसार गतिमान परमाणुओं से बना है। परमाणु का द्रव्यमान भी होता है, चलते हुए परमाणु की गतिज ऊर्जा भी होती है। निस्सन्देह, परमाणु का द्रव्यमान नगण्य है। इस कारण उसकी ऊर्जा भी कम होगी, लेकिन परमाणु तो अरबों खरबों होते हैं।

यहां हम पाठक को याद दिलाएंगे कि हालांकि हमने ऊर्जा-संरक्षण नियम का उल्लेख किया था, लेकिन वह संरक्षण का सार्वत्रिक नियम नहीं था। प्रयोग में लिए गए आवेग तथा आघूर्ण संरक्षित रहे थे लेकिन ऊर्जा केवल आदर्श स्थिति में ही संरक्षिण रही थी—घर्षण की अनुपस्थिति में। वास्तविकता तो यह है कि ऊर्जा हमेशा कम होती रहती है।

लेकिन हमने परमाणुओं की ऊर्जा के बारे में पहले कुछ भी नहीं बताया था। अब प्रश्न उठता है: वहां, जहां पहली दृष्टि में हमें ऊर्जा कम होती नज़र आती थी, क्या ऐसा तो नहीं होता कि यह ऊर्जा, आंख के लिए अलक्षित तरीक़े से, पिंड के परमाणुओं को प्रदान की जा रही थी।

परमाणु भी यांत्रिकी के नियमों का पालन करते हैं। यह बात सही है (इसके बारे में जानकारी आपको दूसरी पुस्तक से प्राप्त होगी) कि परमाणुओं की यांत्रिकी अपनी ही क़िस्म की है, लेकिन इससे बात बदलती नहीं। यांत्रिक ऊर्जा-संरक्षण नियम की तुलना में परमाणु भी बड़े पिंडों से किसी भी तरह भिन्न नहीं हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि ऊर्जा का पूर्ण संरक्षण केवल तब होगा, जब पिंड की यांत्रिक ऊर्जा के साथ-साथ उसकी तथा आस-पास के माध्यम की आन्तरिक ऊर्जा को भी ध्यान में रखा जाए। ऐसा करने पर ही केवल यह नियम सार्वत्रिक होगा।

पिंड की पूर्ण ऊर्जा में क्या-क्या शामिल होता है? वास्तव में, इसके

पहले संघटक – सब परमाणुओं की गतिज ऊर्जा के योग – के बारे में हम चर्चा कर चुके हैं। लेकिन यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि परमाणु परस्पर क्रिया भी कर रहे हैं। इसलिये इस परस्पर क्रिया की स्थितिज ऊर्जा को भी जमा किया जाता है। अतः पूर्ण ऊर्जा पिंड के कणों की गतिज ऊर्जा तथा उनकी परस्पर क्रिया की स्थितिज ऊर्जा के योग के बराबर होती है।

यह समझना मुश्किल नहीं है कि पिंड की यांत्रिक ऊर्जा पूर्ण ऊर्जा के एक अंश के बराबर है। जब पिंड विराम-स्थिति में होता है, तो उसके अणु अपनी गति बन्द नहीं करते हैं और न ही उनकी परस्पर क्रिया समाप्त होती है। कणों की ऊष्मीय गति की ऊर्जा, जो विराम स्थिति में पिंड में रहती है, और कणों की परस्पर क्रिया की ऊर्जा दोनों मिलकर पिंड की आन्तरिक ऊर्जा को बनाते हैं। इसलिए पिंड की पूर्ण ऊर्जा गतिज तथा आन्तरिक ऊर्जाओं के योग के बराबर होती है।

समूचे पिंड की यांत्रिक ऊर्जा में गुरुत्वीय ऊर्जा यानी पिंड के कणों और पृथ्वी की परस्पर क्रिया की स्थितिज ऊर्जा भी शामिल है।

आन्तरिक ऊर्जा को ध्यान में रखने पर हम देखते हैं कि अब ऊर्जा में हानि नहीं होती है। जब हम प्रकृति को आवर्धक लेन्स (magnifying glass) में से देखते हैं, जो हर चीज़ को लाखों-करोड़ों गुना आवर्धित करता है, तो दृश्य हमें बहुत ही सुसंगत लगता है। यांत्रिक ऊर्जा में कोई हानि नहीं होती, वह केवल पिंड की या माध्यम की आन्तरिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। कार्य नहीं होता है? नहीं। ऊर्जा अणुओं की सापेक्ष गति को तीव्र करने या उनकी परस्पर स्थिति को बदलने में ख़र्च होती है।

अणु यान्त्रिक ऊर्जा के संरक्षण नियम का पालन करते हैं। अणु संसार में घर्षण बल नहीं हैं; अणु संसार में स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में तथा गतिज ऊर्जा स्थितिज ऊर्जा में बदलती है। केवल बड़ी वस्तुओं के संसार में, जहां अणुओं को नहीं देखा जा सकता है, "ऊर्जा में हानि होगी"।

अगर किसी परिघटना में यांत्रिक ऊर्जा में पूर्णतया या आंशिक रूप से हानि होती है तो उतनी ही इस परिघटना में भाग लेनेवाले पिंडों की तथा माध्यम की आन्तरिक ऊर्जा बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में यांत्रिक ऊर्जा बग़ैर किसी हानि के अणुओं और परमाणुओं की ऊर्जा में बदल जाती है।

ऊर्जा-संरक्षण नियम – यह भौतिक विज्ञान का सबसे बड़ा लेखा-पाल है।

किसी भी घटना में हानि या वृद्धि एकदम बराबर होनी चाहिए। अगर किसी प्रयोग में यह नहीं हो पाता है तो इसका मतलब है कि कोई महत्वपूर्ण वस्तु हमारी निगाह से बच निकली है। ऐसी स्थिति में ऊर्जा-संरक्षण नियम हमें संकेत दे देता है कि प्रयोग दोबारा करना चाहिए, मापने की परिशुद्धता बढ़ानी चाहिए और हानि का कारण मालूम करना चाहिए! ऐसा करने के दौरान भौतिकविदों ने बहुत बार नई महत्वपूर्ण खोजें कीं और हर बार इस चमत्कारी नियम की सत्यता सिद्ध की।

कैलौरी

अब तक हमें ऊर्जा की दो इकाइयों – अर्ग तथा किलोग्राम मीटर – के बारे में पता है। लगता था कि ये काफ़ी हैं। लेकिन ऊष्मीय परिघटनाओं के दौरान परम्परानुकूल एक और इकाई यानी तीसरी इकाई – कैलोरी – का इस्तेमाल किया जाता है।

आगे चलकर हम देखेंगे कि कैलौरी से ही ऊर्जा को व्यक्त करने की इकाइयों की सूची पूरी नहीं हो जाती है।

सम्भव है कि हर अलग-अलग स्थिति में ऊर्जा की "अपनी" ही इकाई सुविधाजनक तथा अर्थपूर्ण होती है। लेकिन हर किसी जटिल उदाहरण में, जहां एक ऊर्जा दूसरी ऊर्जा में परिवर्तित होती है, इकाइयों की अकाल्पनिक उलझन पेश आती है।

परिकलनों को सरल बनाने के लिए इकाइयों की नई पद्धति (SI) में जूल को कार्य, ऊर्जा तथा ऊष्मा का मात्रक माना गया है (देखिए पृष्ठ १०६)। परम्परा के बल और उस अरसे को, जिसमें नयी पद्धति मात्रकों की एकमात्र और प्रचलित पद्धति बनेगी, ध्यान में रखते हुए ऊष्मा के "पुराने" मात्रक – कैलोरी – के बारे में गहरा ज्ञान प्राप्त करना लाभदायक रहेगा।

छोटी कैलोरी (cal) – यह ऊर्जा की वह मात्रा है जिसकी 1 ग्राम पानी को 1° तक गर्म करने के लिए आवश्यकता पड़ती है।

शब्द "छोटी" का इसलिए यहां उल्लेख किया गया है कि कभी-कभी "बड़ी" कैलोरी का भी प्रयोग किया जाता है, जो "छोटी" कैलोरी से एक हज़ार गुना बड़ी है। बड़ी कैलोरी को अक्सर kcal से व्यक्त करते हैं।

कैलोरी तथा कार्य के यांत्रिक मात्रकों अर्ग या किलोग्राम मीटर के बीच संबंध पानी को यांत्रिक साधन से गर्म करके मालूम किया जाता है। ऐसे प्रयोग कई बार किए जा चुके हैं। उदाहरण के तौर पर, पानी को तेज़ी से मिलाने या हिलाने से उसका तापमान बढ़ाया जा सकता है। पानी को गर्म करने के लिए ख़र्च किए गए यांत्रिक कार्य को आसानी से नापा जा सकता है। इन नापों से पता चला कि

$$1\ \text{cal} = 0.427\ \text{kg.f m} = 4.18\ \text{जूल}$$

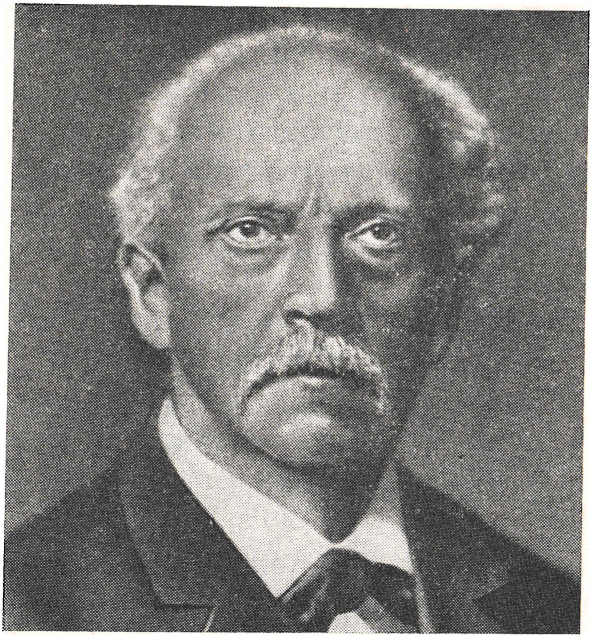
चूंकि समय और ऊर्जा के मात्रक एक ही हैं, इसलिए कार्य भी कैलोरियों में मापा जा सकता है। एक किलोग्राम के बाट को एक मीटर ऊंचा उठाने में 2.35 कैलोरी ख़र्च होती हैं। बात अजीब-सी लगती है, बाट को ऊपर उठाने की क्रिया की पानी के गर्म करने की क्रिया से तुलना करना असुविधाजनक है। इसलिए यांत्रिकी में कैलोरी का प्रयोग नहीं किया जाता है।

इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा

ऊर्जा-संरक्षण नियम को तभी सूत्रबद्ध किया जा सका, जब ऊष्मा की यांत्रिक प्रकृति के बारे में संकल्पनाएं बिल्कुल स्पष्ट हो गयीं और जब ऊष्मा और कार्य में समानता बताना तकनीक में एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया था।

ऊष्मा तथा कार्य में परिमाणात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के वास्ते सबसे पहले प्रसिद्ध भौतिकविद् रूमफ़ोर्ड (1753-1814) ने प्रयोग किया था। उस समय वह उस कारख़ाने में काम करते थे जहां तोपें बनाई जाती थीं। नालमुख बनाने के वास्ते जब छेद करते हैं तो ऊष्मा निकलती है। उसे कैसे नापा जाए? और ऊष्मा का मात्रक क्या हो? रूमफ़ोर्ड के मस्तिष्क में आया कि छेद करते समय जो कार्य होता है, उसके और पानी की किसी मात्रा को किसी अंश तक गर्म करने के बीच के सम्बन्ध को मालूम किया जाए। यह खोज करते समय ही सबसे पहले यह विचार आया कि ऊष्मा तथा कार्य के मात्रक एक जैसे ही होने चाहिए।

ऊर्जा-संरक्षण नियम की आगामी खोज के दौरान एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य प्रमाणित हुआ: कार्य में हानि प्रगट हुई ऊष्मा की मात्रा के अनुक्र-



हर्मन हेल्महोल्त्स (1821-1894) – एक महान जर्मन वैज्ञानिक। भौतिकी, गणित और शरीरविज्ञान के क्षेत्रों में काफ़ी सफलता से काम किया। उन्होंने सबसे पहले (1847 में) ऊर्जा-संरक्षण नियम की गणितीय व्याख्या दी। ऊष्मागतिकी में महत्त्वपूर्ण खोजें कीं तथा सर्वप्रथम इसका रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के वास्ते उपयोग किया। द्रवों की भ्रमिल गति का अध्ययन कर उन्होंने द्रवगतिकी और वायुगतिकी के मूलतत्त्व निर्धारित किए। ध्वानिकी और विद्युत-चुम्बकत्व के क्षेत्रों में सराहनीय योगदान दिया। संगीत के भौतिक वाद को विकसित किया। अपने भौतिक अध्ययनों में उन्होंने नवीन और शक्तिशाली गणितीय विधियों का उपयोग किया।

मानुपात होती है। इसी के अनुसार ऊष्मा और कार्य के एक जैसे मात्रक मालूम किए गए।

फ़्रांस के भौतिकविद् साडी कारनो ने सबसे पहले ऊष्मा के यांत्रिक तुल्यांक की परिभाषा बताई। 1832 में 36 वर्ष की उम्र में इस महान वैज्ञानिक की मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे एक पांडुलिपि छोड़ गया, जो 50 वर्ष बाद प्रकाशित हुई। कारनो की खोज अज्ञात रही और उसने विज्ञान के विकास को प्रभावित नहीं किया। अपने इस कार्य में कारनो ने परिकलन किया कि 1 m^3 पानी को एक मीटर ऊंचाई पर उठाने पर उतनी ही ऊर्जा व्यय होती है, जितनी 1 kg पानी को 2.7° (ठीक अंक 2.3° है) तक गर्म करने में ख़र्च होती है।

सन् 1842 में हैलब्रोन्न के डाक्टर जूलियस रोबर्ट मायर ने अपनी पहली खोज प्रकाशित की। यद्यपि मायर ने भौतिक परिकल्पनाओं को, जिन से हम परिचित हैं, दूसरे तरीक़े से बताया, फिर भी अगर ध्यान से उसकी खोज का अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उसमें ऊर्जा-संरक्षण नियम के मुख्य लक्षण लिखे हैं। मायर ने आन्तरिक ऊर्जा (ऊष्मीय ऊर्जा), गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा तथा पिंड की गतिज ऊर्जा के बीच अन्तर भी बताया है। उन्होंने परिकल्पी परिणामों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया कि विभिन्न ऊर्जा परिवर्तनों में ऊर्जा संरक्षित रहती हैं। इस बात को प्रयोग द्वारा सिद्ध करने के लिए ऊर्जाओं को मापने का एक ही मात्रक होना चाहिए। मायर ने परिकलन के आधार पर बताया कि एक किलोग्राम पानी को 1° तक गर्म करना एक किलोग्राम को 365 मीटर ऊंचा उठाने के बराबर है।

अपने दूसरे कार्य में, जिसे मायर ने तीन साल बाद प्रकाशित किया था, उसने बताया कि ऊर्जा-संरक्षण नियम विश्वजनीन है – इसे रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा अन्तरिक्ष से संबंधित प्रश्नों के लिए प्रयोग करना भी संभव है। मायर ने ऊर्जा के अन्य रूपों के साथ चुम्बकीय, विद्युत तथा रसायनिक ऊर्जाओं को मिलाया है।

इंगलैंड के महान भौतिकविद् (जो सेल्फ़ोर्ड में बीयर बनाते थे) जेम्ज़ जूल को, जिन्होंने मायर से अलग काम किया, ऊर्जा-संरक्षण नियम की खोज करने का गौरव प्राप्त है।

यदि मायर के लिए अस्पष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना था

तो जूल का मुख्य गुण था विचाराधीन घटना को केवल प्रयोग द्वारा ही स्पष्ट करना। जूल प्रकृति से प्रश्न करता था और उसका समाधान विशेष और परिशुद्ध प्रयोगों द्वारा पाता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने जितने भी प्रयोग किए उसके पीछे एक ही परिकल्पना थी: ऊष्मीय, रसायनिक, विद्युत तथा यांत्रिक क्रियाओं को मापने के लिए एक ही मात्रक मालूम करना। और साथ-साथ वह यह भी सिद्ध करना चाहते थे कि इन सब क्रियाओं में ऊर्जा संरक्षित रहती है। जूल ने अपनी परिकल्पना को ऐसे व्यक्त किया: "प्रकृति में कार्य करनेवाले बल अनुकूल क्रिया किए बिना नष्ट नहीं होते हैं"।

जूल ने अपनी पहली खोज के बारे में 24 जनवरी, 1843 को रिपोर्ट पढ़ी थी, और उसी साल 21 अगस्त को जूल ने ऊष्मा तथा कार्य के एक ही मात्रक को स्थापित करने के वास्ते अपने प्रयोगों के परिणाम भी पेश किए। उनके अनुसार एक किलोग्राम पानी को 1° तक गर्म करना 1 किलोग्राम भार को 460 मीटर तक उठाने के बराबर होता है।

अगले वर्षों में जूल तथा दूसरे शोधकर्ताओं ने ऊष्मीय तुल्यांक के मान को ठीक-ठीक मालूम करने के लिए बहुत मेहनत की, और यह भी सिद्ध करने की कोशिश की कि तुल्यांक विश्वजनीन है। 1840-49 के अन्त में यह स्पष्ट हो गया कि कार्य ऊष्मा में चाहे किस प्रकार भी परिवर्तित क्यों न हो, ऊष्मा जो इस प्रकार उत्पन्न होती है, वह किए गए कार्य के अनुक्रमानुपात होती है। इसके बावजूद जूल ने ऊर्जा-संरक्षण नियम को प्रयोग द्वारा आधारित किया, वह अपनी रचनाओं में इस नियम की स्पष्टतया व्याख्या नहीं दे सके।

यह काम जर्मनी के भौतिकविद् हेल्म्होल्त्स ने किया। 23 जुलाई, 1847 को उसने ऊर्जा-संरक्षण नियम पर बर्लिन की भौतिकविज्ञान सोसाइटी की मीटिंग में एक रिपोर्ट पढ़ी। इस रिपोर्ट में उसने ऊर्जा-संरक्षण नियम के यांत्रिक आधार की सबसे पहले स्पष्ट रूप से व्याख्या की। संसार परमाणुओं से बना है, परमाणु की स्थितिज तथा गतिज ऊर्जाएं होती हैं। कणों, जिनसे पिंड या तंत्र बना है, की स्थितिज तथा गतिज ऊर्जाओं का योग अपरिवर्तित रहता है, अगर पिंड या तन्त्र बाह्य प्रभाव में नहीं हैं। ऊर्जा-संरक्षण नियम की, जिसके बारे में ऊपर कई पृष्ठों में उल्लेख किया गया है, सबसे पहले हेल्महोल्त्स ने व्याख्या की थी।

हेल्महोल्त्स की लम्बी रिपोर्ट में केवल सामान्य परिकल्पनाओं की व्याख्या ही नहीं थी। उसने विस्तारपूर्वक भौतिकी की सब परिघटनाओं का अध्ययन किया – ऊष्मीय, रसायनिक, विद्युत तथा चुम्बकीय – और सिद्ध किया की तुल्यांक विश्वजनीन है। इसके अतिरिक्त उसने ऊर्जा का परिकलन करने के नियम भी बताए।

हेल्महोल्त्स के पश्चात् दूसरे भौतिकविदों ने ऊर्जा-संरक्षण नियम की जांच की तथा उसके अनुप्रयोगों के बारे में भी बताया। इन सब शोध-कार्यों की सफलता का ही परिणाम था कि 1850-59 के अंत में ऊर्जा-संरक्षण नियम को भौतिक विज्ञान का आधारभूत नियम मान लिया गया।

बीसवीं सदी में ऐसी परिघटनाएं देखने में आयी हैं जो ऊर्जा-संरक्षण नियम को सन्देहास्पद बना देती हैं। हालांकि बाद में इन विषमताओं के कारण मालूम हो गये। आज तक ऊर्जा-संरक्षण नियम हमेशा खरा उतरा है।

१०. पदार्थ की बनावट

अणु

अणु परमाणुओं से बने हैं। अणु में परमाणु उन बलों से जुड़े हैं जिन्हें रसायनिक बल कहते हैं।

ऐसे अणु भी हैं जो दो, तीन या चार परमाणुओं से बने हैं। सबसे विशाल अणु प्रोटीनों के हैं, जो कई हज़ारों और लाखों परमाणुओं से बने होते हैं।

अणु नाना प्रकार के होते हैं। रसायनविदों ने अभी तक प्रकृति में पाए जाने वाले पदार्थों में से, जो विभिन्न कणों से बने हैं, दसियों लाख पदार्थ निकाले और प्रयोगशालाओं में बना लिए हैं।

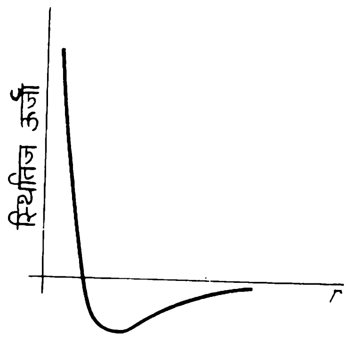
अणुओं के गुणों को केवल इस बात से ही मालूम नहीं करते कि अणु कितने तथा किस प्रकार के परमाणुओं से बने हैं, बल्कि उस बात से भी करते हैं कि वे किस क्रम तथा किस रूप में जुड़े हैं। अणु – यह ईंटों का ढेर नहीं है, बल्कि एक जटिल भवन निर्माण कला है, जहां हर ईंट का अपना स्थान है और उसके सब-के-सब पड़ोसी भी बिल्कुल निश्चित हैं। परमाणु रचना, जो अणु को बनाती है, अधिकतर दृढ़ होती है। हर स्थिति में हर परमाणु अपनी संतुलन स्थिति के आस-पास दोलन करता है। कुछ एक स्थितियों में अणु के कुछ भाग दूसरे भागों की अपेक्षा घूर्णन करते हैं तथा मुक्त परमाणु को उसकी ऊष्मीय गति के दौरान विभिन्न तथा अजीब प्रकार की आकृतियां प्रदान करते हैं।

आइए, अब परमाणुओं की परस्पर क्रिया का सविस्तार अध्ययन करें। चित्र 86 में द्विपरमाणु अणु की स्थितिज ऊर्जा की वक्र रेखा दिखाई हुई है। उसका एक विशेष आकार है – पहले तो वक्र रेखा नीचे की ओर आती है और फिर एक "गढ़ा" बनाती हुई क्षैतिज अक्ष के पास आती है, जिसके इस अक्ष पर परमाणुओं के बीच की दूरी दिखायी गयी है।

हम यह जानते हैं कि वह स्थिति स्थायी होती है जहां स्थितिज ऊर्जा

न्यूनतम होती है। जब परमाणु अणु में सम्मिलित होता है तो वह विभव कूप (potential well) में "बैठ" जाता है और संतुलन स्थिति के पास ऊष्मीय अल्प दोलन करता है।

उदग्र अक्ष से लेकर कूप के तले तक की दूरी को साम्य दूरी (equilibrium distance) कहा जा सकता है। अगर तापीय गति समाप्त हो गयी होती तो परमाणु इसी दूरी में व्यवस्थित हो गये होते।



चित्र 86

परमाणुओं की पारस्परिक क्रिया की सब बारीकियों के बारे में स्थितिज ऊर्जा की वक्र रेखा से मालूम हो जाता है। किसी एक दूरी में कण एक दूसरे की तरफ़ आकर्षित या प्रतिकर्षित होते हैं, कणों के एक दूसरे के पास आने या दूर होने से अन्योन्यक्रिया बल (interaction forces) बढ़ते या कम होते हैं—इन सब के बारे में स्थितिज ऊर्जा-आरेख के विश्लेषण से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। "तले" के बायीं ओर स्थित बिन्दु प्रतिकर्षण को व्यक्त करते हैं। तले के दायीं ओर स्थित वक्र रेखा के भाग गुरुत्वाकर्षण की विशेषता बताते हैं। वक्रता से भी बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है: प्रवणता जितनी ज़्यादा होगी उतना ही अधिक बल होगा।

अधिक दूरियों पर भी रहते हुए परमाणु एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं; यह बल परमाणुओं के बीच का फ़ासला बढ़ने से अति शीघ्र कम हो जाता है। परमाणुओं के पास आने पर गुरुत्वाकर्षण बल बढ़ता है और अति सीमा तक तब पहुंचता है जब परमाणु एक दूसरे के बहुत ही समीप आ जाते हैं। परमाणुओं के और ज़्यादा समीप आने पर गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है और, अन्ततः, साम्य दूरी पर अन्योन्यक्रिया बल शून्य के बराबर हो जाता है। परमाणुओं में फ़ासला साम्य दूरी से कम होने पर प्रतिकर्षण बल पैदा होते हैं, जो बहुत ही जल्दी बढ़ते हैं और व्यावहारिक तौर पर परमाणुओं के बीच दूरी को और कम होना असम्भव बना देते हैं।

अलग-अलग क़िस्म के परमाणुओं के लिए साम्य दूरियां (आगे साम्य दूरी को हम केवल दूरी ही कहेंगे) एक जैसी नहीं होती हैं।

परमाणुओं के अलग-अलग युगलों के लिए केवल उदग्र अक्ष से गढ़े के तले तक की दूरी ही नहीं, बल्कि गढ़ों की गहराई भी अलग-अलग होती है।

गढ़े की गहराई का एक साधारण अर्थ है—गढ़े से निकलने के लिए, उसकी गहराई के बराबर ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसलिए गढ़े की गहराई को कणों की बन्धन-ऊर्जा (binding energy) भी कहते हैं।

अणु के परमाणुओं के बीच की दूरी इतनी कम होती है कि उनको मापने के लिए भी विशेष प्रकार के मात्रकों का इस्तेमाल करना पड़ता है। ऐसा न करने पर तो उनके मान को उदाहरणतय: 0.000000012 cm में व्यक्त करना पड़ता। यह अंक ऑक्सीजन के अणु के लिए है।

अणु संसार को विशेष सुविधा से व्यक्त करने वाले मात्रकों को ऐंग्स्ट्राम (Angstrom) कहते हैं। इस मात्रक को स्वीडन के वैज्ञानिक ऐंग्स्ट्राम का नाम दिया गया है, तथा इसे A के ऊपर ० लिखकर व्यक्त करते हैं।

$$1 \text{ Å} = 10^{-8} \text{ cm}$$

अर्थात् ऐंग्स्ट्राम सेंटीमीटर का 10 करोड़वां हिस्सा है।

अणु के परमाणुओं के बीच की दूरी लगभग 1-4 Å होती है। ऑक्सीजन के लिए साम्य दूरी, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, 1.2 Å के बराबर है।

अंतरापरमाणुक दूरियां, जैसा कि आप देखते हैं, बहुत कम होती हैं। अगर भूमध्य रेखा पर पृथ्वी के गोले को रस्सी से बांधा जाए, तो इस "पेटी" की लम्बाई आपकी हथेली की चौड़ाई से उतने ही गुना ज़्यादा होगी जितने गुना हथेली की चौड़ाई अणु के परमाणुओं के बीच की दूरी से अधिक है।

बन्धन-ऊर्जा को मापने के लिए प्राय: कैलोरियों का इस्तेमाल किया जाता है। यह भी स्पष्ट है कि बन्धन-ऊर्जा एक अणु के लिए नहीं, अगर ऐसा किया जाए तो एक बहुत ही छोटा अंक प्राप्त होगा, बल्कि ग्राम-अणु के लिए नापी जाती है, यानी सापेक्ष अणु भार के बराबर ग्रामों में नापी जाती है।

स्पष्ट है कि अगर एक ग्राम अणु की बन्धन-ऊर्जा को आवोगाद्रो की

संख्या $N = 6.023 \cdot 10^{23}$ से विभाजित किया जाए, तो एक अणु की ऊर्जा प्राप्त होगी।

अणु में परमाणुओं की बन्धन-ऊर्जा तथा अणुओं के बीच दूरी नगण्य सीमाओं में बदलते हैं।

ऑक्सीजन के लिए बन्धन-ऊर्जा 116000 कैलोरी प्रति ग्राम-अणु है, हॉइड्रोजन के लिए 103000 कैलोरी, आदि है।

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि अणु में परमाणु किसी विशेष रूप से एक दूसरे के अनुसार स्थित होते हैं, और जटिल स्थितियों में परमाणुओं की रचना बहुत ही पेचीदा होती है।

हम कुछेक साधारण उदाहरणों का यहां उल्लेख करेंगे । CO_2 (कार्बन डाइऑक्साइड) के अणु में तीनों परमाणु एक ही रेखा पर स्थित हैं और कार्बन का परमाणु बीच में स्थित है। पानी के अणु H_2O का कोणीय आकार है, शीर्ष कोण (जो $105°$ के बराबर है) पर ऑक्सीजन का परमाणु स्थित है।

NH_3 (अमोनिया) के अणु में नाइट्रोजन का परमाणु तिकोने पिरामिड के शीर्ष पर स्थित है; मेथैन CH_4 के अणु में कार्बन का परमाणु एकसमान भुजाओंवाली चतुर्भुजीय आकृति, जिसे चतुष्फलक (tetrahedron) भी कहते हैं, के मध्य में है।

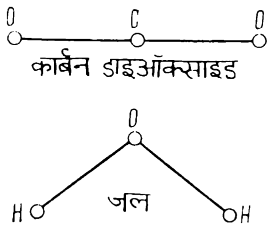
बेन्जीन, C_6H_6 में कार्बन के परमाणु एक समष्टभुज बनाते हैं। षटकोण के सभी शीर्षों पर स्थित कार्बन के परमाणुओं का हाइड्रोजन के परमाणुओं के साथ बन्धन होता है। सब के सब परमाणु एक ही समतल में होते हैं।

चित्र 87, 88 में इन अणुओं के परमाणुओं के केन्द्रों की स्थिति दिखाई गई है। रेखाएं बन्धनों को व्यक्त करती हैं।

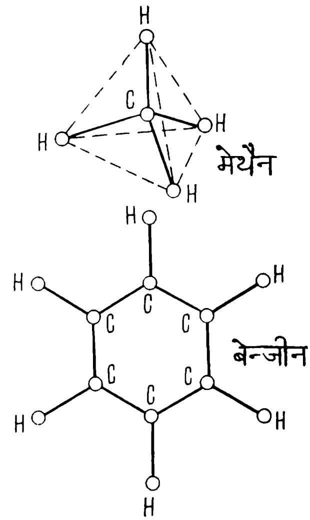
रासायनिक प्रतिक्रिया होती है; एक तरह के अणु, दूसरी तरह के अणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं। कुछ बन्धन टूटते हैं, तो कुछ नए बनते हैं। परमाणुओं के बन्धनों को तोड़ने के लिए उतना ही कार्य करना पड़ता है – चित्र 86 – जितना कि गढ़े में से किसी गेंद को निकालने के वास्ते। इसके विपरीत, नए बन्धनों के बनने से ऊर्जा निकलती है – गेंद गढ़े में चला जाता है।

कौन-सा कार्य अधिक है, वियोजन या संयोजन कार्य? प्रकृति में दोनों प्रकार की क्रियाएं देखने में आती हैं।

अतिरिक्त ऊर्जा को ऊष्मीय प्रभाव या संक्षेप में अभिक्रिया का ऊष्मीय मान कहते हैं। अभिक्रियाओं के ऊष्मीय प्रभाव एक ग्राम अणु के लिए ज़्यादातर दसियों हज़ार कैलोरियों के बराबर होते हैं। प्रायः ऊष्मीय प्रभाव को अभिक्रिया के सूत्र के साथ ही लिखते हैं।



चित्र 87



चित्र 88

उदाहरण के लिए, कार्बन को ग्रैफाइट के रूप में जलाने की क्रिया, अर्थात् कार्बन को ऑक्सीजन के साथ मिलाने की क्रिया इस प्रकार लिखी जाती है:

$$C + O_2 = CO_2 + 94250 \text{ cal}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि जब कार्बन C ऑक्सीजन O_2 के साथ मिलता है, तो 94250 कैलोरी ऊर्जा पैदा होती है।

ग्रैफाइट में कार्बन के ग्राम-अणु तथा ऑक्सीजन के ग्राम-अणु की आंतरिक ऊर्जाओं का योग कार्बन डाइऑक्साइड के ग्राम-अणु की आंतरिक ऊर्जा और 94250 cal के बराबर है।

ऐसे बीजीय समीकरण क्रियाओं की आंतरिक ऊर्जाओं को व्यक्त करने के लिए लिखे जाते हैं।

ऐसे समीकरणों की सहायता से उन परिवर्तनों के ऊष्मीय प्रभावों को मालूम किया जा सकता है जिन्हें कुछ-एक कारणों से सीधे तरीक़ों द्वारा मापा नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि कार्बन (ग्रैफ़ाइट) की हाइड्रोजन के साथ अभिक्रिया की जाए तो ऐसीटिलीन गैस बनेगी:

$$2C + H_2 = C_2H_2$$

अभिक्रिया इस प्रकार नहीं होती है। तिस पर भी इस क्रिया का ऊष्मीय प्रभाव मालूम किया जा सकता है। ऐसा करने के वास्ते तीन ज्ञात अभिक्रियाओं को लिखते हैं:

कार्बन का ऑक्सीकरण –

$$2C + 2O_2 = 2CO_2 + 188000$$

हाइड्रोजन का ऑक्सीकरण –

$$H_2 + \frac{1}{2}O_2 = H_2O + 68000$$

ऐसीटिलीन का ऑक्सीकरण –

$$C_2H_2 + \frac{5}{2}O_2 = 2CO_2 + H_2O + 312000$$

इन समीकरणों को एक तरह से अणुओं की बन्धन-ऊर्जाओं के समीकरण माना जा सकता है। अगर ऐसा है तो उन्हें बीजीय समीकरणों की तरह हल किया जा सकता है। अगर तीसरे समीकरण में से पहले दो समीकरणों को घटा दिया जाए, तो हम पाते हैं:

$$2C + H_2 = C_2H_2 - 56000$$

अर्थात् इस परिवर्तन में एक ग्राम-अणु के लिए 56000 कैलोरियां अवशोषित होती हैं।

अणुओं की अन्योन्यक्रिया

अणु आपस में आकर्षित होते हैं, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। अगर किसी पल अणुओं ने आपस में आकर्षित होना बन्द कर दिया होता, तो सब द्रव्य तथा दृढ़ पिंड अणुओं में विघटित हो गये होते।

अणु आपस में प्रतिकर्षित भी होते हैं, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है, अन्यथा द्रव्य तथा दृढ़ पिंड बहुत ही सरलता से संपीडित हो जाते।

अणुओं के बीच बल लगे होते हैं, जो काफ़ी हद तक इन परमाणुओं के बीच लगे बलों जैसे होते हैं, जिनके बारे में ऊपर कहा जा चुका है। स्थितिज ऊर्जा की वक्र रेखा, जिसे परमाणुओं के वास्ते दो चार पृष्ठ पहले ही खींचा था, अणुओं की अन्योन्यक्रिया के मुख्य लक्षणों को ठीक से व्यक्त करती है। लेकिन इन अन्योन्यक्रियाओं में पर्याप्त अन्तर है।

आइए, उदाहरण के लिए, ऑक्सीजन के परमाणुओं, जो अणु बनाते हैं, और ऑक्सीजन के दो निकटवर्ती अणुओं के परमाणुओं, जो जमे हुए ऑक्सीजन में साम्यावस्था तक आकर्षित थे, के बीच साम्य दूरी की तुलना करें। अन्तर अच्छा खासा होगा। अणु बनानेवाले ऑक्सीजन के परमाणु 1.2 Å की दूरी पर स्थित होते हैं। ऑक्सीजन के भिन्न-भिन्न अणुओं के परमाणु एक दूसरे के 2.9 Å तक समीप आते हैं।

इस प्रकार के परिणाम दूसरे परमाणुओं के वास्ते भी मिलते हैं। दूसरे अणुओं के परमाणु एक ही अणु के परमाणुओं की अपेक्षा एक दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होते हैं। इस कारण अणुओं को एक-दूसरे से अलग करना परमाणुओं को अणुओं से अलग करने की अपेक्षा अधिक आसान होता है। ऊर्जाओं में अन्तर दूरी के अन्तर से कहीं अधिक होता है। अगर ऑक्सीजन के परमाणुओं में, जो अणु बनाते हैं, बंधन तोड़ने के वास्ते लगभग 100 kcal/mol ऊर्जा की ज़रूरत होती है, तो ऑक्सीजन के अणुओं को घसीटने के लिए 2 kcal/mol से कम ऊर्जा की आवश्यक्ता पड़ती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि अणु की स्थितिज ऊर्जा की वक्र रेखा पर "गढ़ा" उदग्र अक्ष से दूर है और इसके अलावा "गढ़ा" कम गहरा है।

लेकिन अणु की रचना करनेवाले परमाणुओं की अन्योन्यक्रिया और अणुओं की अन्योन्यक्रिया में विभिन्नता की बात यहां पर ही समाप्त नहीं हो जाती है।

रसायनविदों ने सिद्ध कर दिया है कि परमाणु अणु में अन्य परमाणुओं के साथ एक निश्चित संख्या में ही जुड़ते हैं। अगर हाइड्रोजन के दो परमाणुओं ने एक अणु बना दिया है, तो तीसरा परमाणु उनके साथ इस लक्ष्य से नहीं जुड़ेगा। पानी में ऑक्सीजन का परमाणु हाइड्रोजन के दो परमाणुओं से जुड़ा है और उनमें एक और परमाणु को जोड़ना असम्भव है।

ऐसी कोई बात अंतराअणुक अन्योन्यक्रिया में देखने में नहीं आती है। एक पड़ोसी को अपनी ओर आकर्षित करके अणु अपना "आकर्षण-बल" तनिक भी नहीं खोता। पड़ोसी तब तक आते रहेंगे जब तक उनके वास्ते जगह है।

"उनके वास्ते जगह है" का क्या तात्पर्य है? क्या अणु अंडे या सेब की तरह कोई वस्तु हैं? जी हां, कुछ हद तक अणुओं की सेबों या अण्डों

से तुलना करना ठीक है: अणु-भौतिक पिंड हैं, जिनकी अपनी "आकृति" तथा "आकार" होता है। अणुओं के बीच साम्य दूरी ही अणुओं का "आकार" है।

तापीय गति कैसी होती है

अणुओं के बीच होनेवाली परस्पर क्रिया का अणु की "ज़िन्दगी" में अधिक या कम महत्त्व हो सकता है।

पदार्थ की तीन स्थितियां – गैस, द्रव्य तथा ठोस – में प्रभेद उनमें अणुओं की अन्योन्यक्रिया की भूमिका के आधार पर किया जाता है।

शब्द "गैस" वैज्ञानिकों ने सोचा है। इसने ग्रीक शब्द "khaos" – अव्यवस्था – से जन्म लिया है।

सच पूछिये तो पदार्थ की गैसीय स्थिति प्रकृति में कणों की गति और उनके पारस्परिक क्रम की पूर्ण अव्यवस्था का उदाहरण है। ऐसा कोई भी माइक्रोस्कोप नहीं है जिसकी मदद से गैस के अणुओं की गति को देखा जा सके। लेकिन इसके बावजूद भी भौतिकविद इस अदृश्य संसार के बारे में पर्याप्त विस्तार से बता सकते हैं।

एक घन सेंटीमीटर हवा में, सामान्य स्थितियों में (कमरे के तापमान और वायुमण्डलीय दाब पर) बहुत अधिक संख्या में, लगभग $2.5 \cdot 10^{19}$ अणु होते हैं (यानी $25 \times 10^9 \times 10^9$ अणु)। हर अणु लगभग $4 \cdot 10^{-20}$ cm^3 आयतन घेरता है अर्थात ऐसे घन के आयतन के बराबर जिसकी एक भुजा $3.5 \cdot 10^{-7}$ cm = 35 Å है। अणु सूक्ष्म होते हैं। उदाहरण के लिए, हवा के मुख्य संघटकों ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के अणुओं का औसत आकार 4 Å के बराबर होता है।

इस प्रकार, अणुओं के बीच औसत दूरी अणु के साइज़ से 10 गुना अधिक है। इससे पता चलता है कि हवा का औसत आयतन, जिसमें उसका एक अणु समाता है, अणु के आयतन से लगभग 1000 गुना अधिक होता है।

अब ज़रा एक ऐसे समतल की कल्पना कीजिए जिसपर 1 cm^2 क्षेत्रफल में औसतन 100 सिक्के बेतरतीबी से फेंके हुए हैं। इसका मतलब यह हुआ कि इस पुस्तक के पन्ने के बराबर क्षेत्रफल पर एक या दो सिक्के हैं। लगभग इतने ही विरले हैं गैस के अणु।

गैस का हर अणु निरंतर तापीय गति में होता है।

आइए, अब किसी एक अणु का अध्ययन करें। देखते हैं कि वह तीव्रता से दायीं ओर जा रहा है। अगर उसके रास्ते में कोई रुकावट न होती, तो अणु उसी वेग से ऋजु रेखा पर अपनी गति जारी रखता। लेकिन अणु के अनगिनत पड़ोसी उसका रास्ता काटते हैं। उनमें टक्कर होना तो अपरिहार्य है और अणु अलग-अलग दिशाओं में जाते हैं जैसे कि टकराने के बाद बिलियर्ड के गेंद भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाते हैं। हमारा अणु किस ओर जाएगा? उसकी गति में वृद्धि होगी या कमी? सब कुछ हो सकता है: टक्करें नाना प्रकार की हो सकती हैं। पीछे से या सामने से, दायीं ओर से या बायीं ओर से, हल्की या ज़ोर की टक्करें लग सकती हैं। स्पष्ट है कि ऐसी आकस्मिक टक्करों के कारण वह अणु जिसका हम प्रेक्षण कर रहे हैं, बर्तन में भरी गैस में सब दिशाओं में भागना शुरू कर देगा।

अणु किसी दूसरे अणु से टक्कर खाये बिना कितना रास्ता तय कर सकता है?

यह बात अणु के आकार तथा गैस के घनत्व पर निर्भर करती है। अणुओं का आकार जितना बड़ा और जितनी अधिक उनकी संख्या होगी, उतनी ही प्रायः उनमें टक्कर होगी। औसत दूरी वह दूरी वह दूरी है, जो अणु टक्कर के बिना तय करता है तथा उसे माध्य मुक्त पथ (mean free path) कहते हैं। सामान्य परिस्थितियों में माध्य मुक्त पथ ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के अणुओं के लिए क्रमशः $11 \cdot 10^{-6}$ cm = 1100Å तथा $5 \cdot 10^{-6}$ cm = 500 Å के बराबर होता है। $5 \cdot 10^{-6}$ cm– मिलीमीटर का बीस हज़ारवां भाग है। बहुत ही कम दूरी है। लेकिन अणु के आकार की तुलना में यह दूरी बहुत अधिक है। ऑक्सीजन के अणु के लिए माध्य मुक्त पथ, $5 \cdot 10^{-6}$ cm, बिलियर्ड के गेंद के मान में 10 मीटर दूरी है।

द्रव की संरचना गैस की संरचना से बहुत भिन्न है, जिसके अणु एक दूसरे से दूर स्थित होते हैं और एक दूसरे से विरले ही टकराते हैं। द्रव में अणु हमेशा एक दूसरे के पास ही होते हैं। द्रव के अणु बोरी में भरे आलुओं की तरह एक दूसरे के पास स्थित होते हैं। अन्तर केवल यह होता है कि द्रव के अणु हमेशा ही अव्यवस्थित तापीय गति में होते हैं। वे ससंकुलित होते हैं इसलिए, वे गैस के अणुओं की भांति इतनी अधिक स्वतन्त्रता से चल नहीं सकते हैं। हर अणु हर समय एक ही स्थान पर

ग्रौर एक ही पड़ोसियों की संगत में "चलता" है ग्रौर द्रव के ग्रायतन में केवल कुछ-कुछ ग्रपने स्थान से हटता है। द्रव जितना ज़्यादा श्यान होगा, उतना ही कम विस्थापन होगा। पानी जैसे "चल" तरल में ग्रणु 3 Å तक ही विस्थापित हो सकता है, जबकि गैस के ग्रणु का माध्य मुक्त पथ 700 Å है।

दृढ़ पिंड में ग्रणुग्रों की ग्रन्योन्यक्रिया के बल उनकी तापीय गति पर ग्रच्छी तरह काबू पाये हैं। दृढ़ पदार्थ में ग्रणु लगभग हमेशा ग्रपरिवर्तित स्थिति में रहते हैं। तापीय गति के कारण ग्रणु मात्र संतुलन स्थिति के ग्रास-पास निरंतर दोलन करते हैं। ग्रणुग्रों में क्रमबद्ध विस्थापन की ग्रनुपस्थिति ही पिंड की दृढ़ता का कारण है। वास्तव में, ग्रगर ग्रणु ग्रपने पड़ोसियों को नहीं बदलते हैं तो निष्कर्षतः पिंड के ग्रलग-ग्रलग भाग एक दूसरे के साथ ग्रपरिवर्तित सम्पर्क में रहते हैं।

पिंडों की संपीड्यता

जैसे वर्षा की बूंदें छत पर गिरने पर ग्रावाज़ करती हैं, वैसे ही गैस के ग्रणु बर्तन की दीवारों से टकराते हैं। इन टक्करों की संख्या बहुत ग्रधिक होती है ग्रौर इन सब को इकट्ठा करने पर ही दाब पैदा होता है, जो इंजन के पिस्टन को धकेल, गोले को तोड़ या गुब्बारे को फुला सकता है। ग्रणुग्रों की टक्करों का करकापात – यह है वायुमंडलीय दाब। यह वह दाब है जो चायदानी के ढक्कन को उछलने पर विवश करता है, यह वह बल है जो बन्दूक में से गोली को बाहर फेंकता है।

गैस का दाब किस से सम्बंधित है? स्पष्ट है कि दाब उतना ही ग्रधिक होगा जितने ज़ोर से एक ग्रणु बर्तन की दीवार पर टक्कर मारेगा। यह भी स्पष्ट है कि दाब एक सेकण्ड में टक्करों की संख्या पर भी निर्भर करेगा। बर्तन में जितने ग्रधिक ग्रणु होंगे उतनी ही जल्दी-जल्दी टक्करें लगेंगी ग्रौर उतना ही ग्रधिक दाब होगा। इसका मतलब यह हुग्रा कि सबसे पहले गैस का दाब p उसके घनत्व के ग्रनुक्रमानुपात होगा।

यदि गैस का द्रव्यमान बदलता नहीं है, तो ग्रायतन कम करने पर हम गैस के घनत्व को उतने ही गुना ग्रधिक करते हैं। ग्रर्थात किसी बन्द बर्तन में गैस का दाब ग्रायतन के व्युत्क्रमानुपात (inversely proportional)

होगा। या दूसरे शब्दों में दाब तथा आयतन के गुणनफल को अपरिवर्तनीय होना चाहिए :

$$pV = \text{const}$$

इस साधारण नियम की खोज इंगलैंड के भौतिकविद बॉयल तथा फ़्रांस के वैज्ञानिक मेरिओट ने की थी। बॉयल-मेरिओट नियम भौतिक विज्ञान के इतिहास में परिमाणात्मक नियमों में से एक है। स्पष्ट है कि यह नियम एक ही तापमान के लिए ठीक है।

गैस को सम्पीडित करने पर बॉयल-मेरिओट समीकरण ठीक तरह से लागू नहीं होता है। अणु पास-पास आ जाते हैं; और उनमें होनेवाली परस्पर क्रिया गैस के व्यवहार पर प्रभाव डालती है।

बॉयल-मेरिओट नियम केवल उन्हीं स्थितियों में लागू होता है, जबकि अन्योन्यक्रिया के बल गैस के अणुओं पर बहुत ही कम प्रभाव डालते हैं। इसलिए बॉयल और मेरिओट नियम के बारे में कहते हैं कि यह नियम आदर्श गैसों के लिए ही सही है।

विशेषण "आदर्श" शब्द "गैस" के लिए थोड़ा-सा अनोखा लगता है। आदर्श का मतलब है श्रेष्ठ, यानी जिससे और बढ़िया नहीं हो सकता है।

प्रतिमान या आरेख जितना साधारण होगा, उतना ही वह भौतिक विज्ञान के वास्ते आदर्श होगा। परिकलन सरल हो जाते हैं और भौतिकी परिघटनाओं को समझाना और समझना सरल तथा स्पष्ट हो जाता है। इसलिए "आदर्श गैस" भी गैस की सबसे सरल वर्गीकरण की ओर संकेत करती हैं। विरलित गैसों का व्यवहार वास्तव में आदर्श गैसों के व्यवहार जैसा ही होता है।

द्रव में संपीड्यता गैस की संपीड्यता से कहीं कम होती है। द्रव में अणु पहले ही एक दूसरे के साथ चिपके होते हैं। द्रव्य को संपीडित करने पर मात्र उसका अणु "संकुलन" (packing) और अच्छी तरह "पैक" हो जाता है। और बहुत ज़्यादा दाब डालने पर अणु भी संपीडित हो जाता है। निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट हो जाएगा कि प्रतिकर्षा बल द्रव को संपीडित करना कितना मुश्किल बना देते हैं। अगर दाब को एक से दो वायुमंडलीय दाब कर दिया जाए, तो गैस का आयतन आधा हो जायेगा, जबकि पानी का आयतन 1/20000 कम होगा और पारे का आयतन केवल 1/25000 कम होगा।

महासागरों की गहराइयों में भी विद्यमान बड़ा दाब पानी को अधिक संपीडित करने में असमर्थ है। वास्तव में, 10 मीटर लम्बा पानी का स्तम्भ एक वायुमंडलीय दाब उत्पन्न करता है। 10 km की गहराई पर दाब 1000 atm के बराबर होता है। वहां पानी का आयतन 1000/20000 यानी 1/20 वें भाग के बराबर कम होता है।

दृढ़ पिंडों और द्रव की संपीड्यता के बीच अन्तर बहुत ही कम है। यह बात तो स्पष्ट ही है—दोनों ही स्थितियों में अणु एक दूसरे के साथ जुड़े हुए होते हैं और संपीड्यता केवल अत्यधिक प्रतिकर्षित अणुओं को और पास लाने पर ही सम्भव हो सकती है। 50000 से 100000 वायुमण्डलीय दाब लगाने पर इस्पात को उसके $\frac{1}{1000}$ वें और सीसे को $\frac{1}{7}$ वें भाग के बराबर संपीडित किया जा सकता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पार्थिव परिस्थितियों में दृढ़ पदार्थों को बहुत ज़्यादा संपीडित करने में सफलता प्राप्त नहीं होगी।

लेकिन ब्रह्मांड में ऐसे भी पिंड हैं जहां पदार्थ बहुत ज़्यादा संपीडित हैं। खगोल शास्त्रियों ने ऐसे तारे मालूम किए हैं जहां पदार्थ का घनत्व 10^6 g/cm^3 है। इन तारों पर, जिन्हें सफ़ेद बौने कहते हैं (सफ़ेद इसलिए कि वे सफ़ेद दीखते हैं और "बौने" इसलिए कि उनका आकार सापेक्षत: छोटा है) दाब अत्याधिक होना चाहिए।

ऊंचाई के साथ-साथ दाब का बदलना

ऊंचाई के साथ-साथ दाब कम होता है। यह बात (सबसे पहले पास्कल के कहने पर) फ़्रांस के वैज्ञानिक पेरिए ने 1648 में मालूम की थी। प्यू दे दोम पहाड़, जिसके पास पेरिए रहता था, की ऊंचाई 975 मीटर थी। मापनों से पता चला कि टॉरिसेलीय नली में पारे का स्तर पहाड़ की चोटी पर पहुंचने पर 8 mm गिर जाता है।

यह बात स्वाभाविक ही है कि वायु का दाब ऊंचाई के साथ कम हो जाएगा चूंकि ऊंचाई पर टॉरिसेलीय नली में रखे पारे पर वायु का कम स्तम्भ दाब डालता है।

अगर आपने कभी हवाई जहाज़ में सफ़र किया है तो आपने देखा होगा

कि केबिन की सामनेवाली दीवार पर वायुमान की ऊंचाई को दसियों मीटर तक की परिशुद्धता से मापनेवाला एक उपकरण लगा होता है। इस उपकरण को तुंगतामापी (altimeter) कहते हैं। यह एक साधारण बैरोमीटर है जिसपर समुद्र तल की ऊंचाई के बराबर निशान लगे होते हैं।

ऊंचाई में वृद्धि के साथ-साथ दाब कम होता जाता है; आइए, अब इन दोनों में सम्बन्ध व्यक्त करनेवाले सूत्र को ढूंढ़े। ऐसा करने के वास्ते हम हवा की एक छोटी-सी परत लेंगे जिसका क्षेत्रफल 1 cm^2 है और, जो h_1 और h_2 ऊंचाइयों के बीच स्थित है। छोटे आकार वाली परत में ऊंचाई में वृद्धि होने पर घनत्व बहुत कम बदलता है। इसलिए ली गयी परत (यह $h_2 - h_1$ ऊंचाई और 1 cm^2 क्षेत्रफल वाला बेलन है) का भार बराबर होगा $mg = \rho(h_2 - h_1)g$। इस भार से पता चलता है कि h_1 ऊंचाई से h_2 ऊंचाई पर जाने से दाब में कमी होती है। यानी

$$\frac{p_1 - p_2}{\rho} = g(h_2 - h_1)$$

लेकिन बॉयल-मेरिओट नियमानुसार गैस का घनत्व दाब के अनुक्रमानुपाती होता है। इसलिए

$$\frac{p_1 - p_2}{p} \backsim (h_2 = h_1)$$

इसके बायीं ओर h_2 से h_1 ऊंचाई तक नीचे आने में दाब में हुई वृद्धि लिखी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने प्रतिशत $(h_2 - h_1)$ ऊंचाई में कमी होती है उतने ही प्रतिशत दाब बढ़ता है।

मापों तथा परिकल्पनों से एक जैसी परिशुद्धता से पता चलता है कि समुद्र तल से एक किलोमीटर ऊपर जाने पर दाब 0.1 भाग कम हो जाता है। बिल्कुल ऐसा ही समुद्र तल से नीचे गहरी खान में जाने पर होता है–खान में एक किलोमीटर नीचे जाने पर दाब अपने मान से 0.1 भाग बढ़ जाएगा।

यहां बात पूर्ववर्ती ऊंचाई के मान में 0.1 गुना परिवर्तन के बारे में हो रही है। इसका अर्थ यह है कि एक किलोमीटर ऊपर जाने पर दाब समुद्र तल के दाब का 0.9 रह जाएगा। एक किलोमीटर और ऊंचा जाने पर दाब 0.9 समुद्र तल पर 0.9 दाब का 0.9 भाग हो जाएगा। तीन

किलोमीटर की ऊंचाई पर दाब समुद्र तल के दाब का $(0.9)^3$ के बराबर होगा। और ज़्यादा ऊंचाई पर भी दाब इसी तरह मालूम किया जा सकता है।

यदि समुद्री सतह पर दाब p_0 है, तो h ऊंचाई (किलोमीटरों में) पर दाब बराबर होगा

$$p = p_0 (0.87)^h = p_0 \cdot 10^{-0.06h}$$

कोष्ठों में अति परिशुद्ध संख्या लिखी है। 0.9 तो लगभग मान है। यह सूत्र इस बात को मानकर निकाला गया है कि हर ऊंचाई पर तापमान एक ही है। वास्तव में, तापमान ऊंचाई के साथ बदलता है और वह भी काफ़ी जटिल नियम के अनुसार। जिस पर भी यह सूत्र काफ़ी अच्छे परिणाम देता है और कई सौ किलोमीटर ऊंचाई तक दाब मापने के वास्ते इस सूत्र का इस्तेमाल किया जा सकता है।

इस सूत्र की सहायता से यह मालूम करना मुश्किल नहीं कि एल्बरूस पहाड़ की ऊंचाई पर – लगभग 5.6 km – दाब लगभग आधा हो जायेगा और 22 km की ऊंचाई पर (इस ऊंचाई तक स्ट्रैटोस्फ़ियर गुब्बारे में मानव जा चुका है) दाब 50 mm Hg तक गिर जायेगा।

जब हम कहते हैं कि दाब 760 mm Hg है – मानक दाब, तो इसके साथ यह कहना नहीं भूलना चाहिये कि "समुद्र तल पर"। 5.6 km की ऊंचाई पर मानक दाब (normal pressure) 760 नहीं, बल्कि 380 mm Hg होगा।

ऊंचाई में वृद्धि के साथ-साथ दाब के साथ उसी नियमानुसार हवा का घनत्व भी कम होता जाता है। 160 km की ऊंचाई पर बहुत ही कम हवा रह जायेगी।

वास्तव में,

$$(0.87)^{160} = 10^{-10}$$

पृथ्वी की सतह पर हवा का घनत्व लगभग 100 g/m^3 है। 160 km ऊंचाई पर एक घन मीटर में हमारे सूत्र के अनुसार 10^{-7} g हवा होनी चाहिए। वास्तव में, रॉकेटों की मदद से लिए गए मापनों से पता चलता है कि हवा का घनत्व इस ऊंचाई पर 10 गुना अधिक है।

ऊंचाई कई सौ किलोमीटर होने पर हमारा सूत्र असली मान से बहुत

कम मान देता है। अधिक ऊंचाइयों पर इस सूत्र की अनुपयुक्ता का कारण है ऊंचाई के साथ-साथ तापमान में आनेवाला परिवर्तन और एक विशेष परिघटना – सौर विकिरण के प्रभाव से हवा के अणुओं का कणीकरण। यहां इसके बारे में उल्लेख नहीं किया जायेगा।

निर्वात

तकनीकी अभिप्राय से खाली बर्तन में भी अणुओं की संख्या बहुत ज़्यादा होती है।

अनेक भौतिकी उपकरणों में गैस के अणु काफ़ी मुश्किलों का कारण होते हैं। रेडियो-वाल्वों, ऐक्स-रे ट्यूबों, मूलकण त्वरित्रों (elementary particle accelerators) – इन सब उपकरणों में निर्वात (vacuum) * होना ज़रूरी है, यानी जगह गैस के अणुओं से मुक्त होनी चाहिए। साधारण विद्युत बल्ब में भी निर्वात होना चाहिए। अगर बल्ब में हवा रह जाती है तो बल्ब के तार का ऑक्सीकरण हो जायेगा और वह तुरन्त जल जायेगा।

अच्छे निर्वात उपकरणों में निर्वात 10^{-8} mm Hg तक होता है। पाठक को लगेगा कि यह बहुत ही कम दाब है: दाब को इतने मान से बदलने पर मैनोमीटर में पारे का स्तर मिलीमीटर के 10 करोड़वें हिस्से के बराबर अपने स्थान से हटेगा।

लेकिन इतने कम दाब पर भी 1 cm^3 में अरबों अणु होते हैं।

अन्तर्नक्षत्रीय आकाश की शून्यता की इस निर्वात से तुलना करना रुचिकर है। अन्तर्नक्षत्रीय आकाश की शून्यता में कुछेक घन सेंटीमीटर में पदार्थ का औसतन एक ही मूल कण होता है।

निर्वात पैदा करने के लिए विशेष प्रकार के पम्पों का प्रयोग किया जाता है। साधारण पम्प, जो पिस्टन के चलने से गैस को बाहर फेंकता है, 0.01 mm Hg से अधिक निर्वात पैदा नहीं कर सकता है। अच्छा, या जैसे कहते हैं, उच्च निर्वात तथाकथित विसरण पम्पों (diffusion pumps) की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है। पारद या तेल विसरण पम्पों में गैस के अणु पारे या तेल की भाप की धारा द्वारा निकाल लिए जाते हैं।

पारद पम्प, जो अपने आविष्कारक लैंगम्यूर के नाम से ज्ञात है, लगभग

---

* लैटिन शब्द "vacuum" का अनुवाद "शून्यता" है।

0.1 mm Hg निर्वात होने पर ही काम शुरू करते हैं। इस पूर्वनिर्वात को प्रारंभिक निर्वात (fore-vacuum) कहते हैं।

ये पम्प निम्नलिखित सिद्धान्त पर काम करते हैं: एक छोटा-सा शीशे का पाराधारी बर्तन, उस जगह के साथ जिसमें निर्वात पैदा करना है, प्रारम्भिक निर्वात पम्प के साथ जुड़ा होता है। पारे को गर्म किया जाता है और प्रारम्भिक निर्वात पम्प पारद वाष्पों को बाहर निकालता है। रास्ते में पारद वाष्प गैस के अणुओं को साथ लेकर उन्हें प्रारम्भिक निर्वात पम्प तक ले जाते हैं। पारे के परमाणु द्रव में परिवर्तित हो जाते हैं (प्रवाही जल से उन्हें ठंडा किया जाता है) और फिर वह उस बर्तन में गिरता है जहां से पारे ने अपनी यात्रा शुरू की थी।

प्रयोगशाला की परिस्थितियों में प्राप्त किया जानेवाला निर्वात, जैसा कि हमने ऊपर हाल ही में बताया है—यह शून्यता शब्द के सही अर्थों से बहुत कम होता है। निर्वात—यह है बहुत ही विरलित गैस। इस गैस के गुण आम गैस से बहुत भिन्न हो सकते हैं।

"निर्वात पैदा करनेवाले" अणुओं की गति अपने लक्षण बदलती है, जबकि अणु के मुक्त पथ की लम्बाई बर्तन के आकार (जिसमें गैस है) से अधिक हो जाती है। ऐसा होने पर अणु आपस में विरले ही टकराते हैं और टेढ़े मेढ़े पथ पर चलते हैं। वे कभी बर्तन की एक दीवार से तो कभी दूसरी दीवार से टकराते हैं।

आइए, अब यह मालूम करें कि ऐसा किस दाब पर होगा। ऊपर बताया गया था कि हवा में एक वायुमण्डल दाब पर मुक्त पथ $5 \cdot 10^{-6}$ cm के बराबर होता है। यदि उसे 10^7 गुना बढ़ा दिया जाए तो वह 50 cm हो जाएगा, अर्थात् बर्तन के औसत आकार से बड़ा होगा। मुक्त पथ चूंकि घनत्व के व्युत्क्रमानुपात होता है अतः दाब के भी, तो इसके लिये दाब कम-से-कम वायुमण्डल दाब 10^{-7} या लगभग 10^{-4} mm Hg होना चाहिए।

अन्तराग्रहीय आकाश तक में भी बिल्कुल शून्य नहीं है। लेकिन वहां पदार्थ का घनत्व केवल $5 \cdot 10^{-24}$ g/cm^3 के बराबर होता है। अन्तराग्रहीय पदार्थ में मुख्यतः हाइड्रोजन है। आज कल यह माना जाता है कि अंतरिक्ष में 1 cm^3 में हाइड्रोजन के कुछेक परमाणु हैं। यदि हाइड्रोजन के अणु को

चने जितना बड़ा कर दिया जाय और, अगर ऐसा एक "अणु" मास्को में है, तो उसका सबसे निकट का कास्मिक पड़ोसी मास्को से लगभग 200 km दूरी पर स्थित तूला शहर में होगा।

क्रिस्टल

बहुत से लोगों का विचार है कि क्रिस्टल – ये सुन्दर तथा विरले ही पाए जाने वाले पत्थर हैं। वे अनेक रंगों के तथा पारदर्शी होते हैं। और सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि वे निश्चित सुन्दर आकार के होते हैं। क्रिस्टल प्रायः बहुफलकीय होते हैं, उनके फलक एकदम चपटे तथा किनारे सर्वथा सीधे होते हैं। उनके फलकों का रंग-बिरंगा अद्भुत खेल तथा उनकी बहुत ही अच्छी रचना आंखों को भाती है।

इनमें से कुछ साधारण क्रिस्टल भी हैं, उदाहरण के तौर पर पत्थर लवण – प्राकृतिक सोडियम क्लोराइड यानी साधारण लवण। ये प्रकृति में लंब समान्तर षट्फलक (right parallelepiped) या क्यूब के रूप में पाए जाते हैं। कैल्साइट के क्रिस्टलों का आकार भी साधारण होता है। वे पारदर्शी तिर्यक समान्तर षट्फलक (oblique parallelepiped) जैसे होते हैं। स्फटिक (क्वार्टज) के क्रिस्टल कहीं अधिक जटिल होते हैं। हर क्रिस्टल के फलक अलग-अलग आकार के होते हैं, जो एक दूसरे को अलग-अलग लम्बाई तक किनारों पर काटते हैं।

जिस पर भी क्रिस्टल अजायबघर में रखने लायक एक विरल वस्तु नहीं है। क्रिस्टल हमें सब जगह घेरे हैं। दृढ़ पिंड, जिनसे हम घर और मशीनें बनाते हैं, पदार्थ, जिनका हम दैनिक जीवन में सेवन करते हैं, लगभग सभी क्रिस्टल हैं। हम ऐसा क्यों नहीं देखते हैं? इसका कारण यह है कि प्रकृति में ऐसे पिंड बहुत ही कम हैं, जो अलग-अलग एकल क्रिस्टलों (या जैसा कि कहते हैं एकाकी क्रिस्टलों [monocrystal]) के बने हों। प्रायः पदार्थ पक्की तरह से जुड़े हुए क्रिस्टलीय दानों के रूप में मिलते हैं जिनका आकार बहुत ही छोटा होता है, यानी मिलीमीटर के एक हज़ारवें हिस्से से भी कम होता है। ऐसी संरचना को केवल माइक्रोस्कोप की सहायता से ही देखा जा सकता है।

क्रिस्टलीय दानों से बने पदार्थों को सूक्ष्म-क्रिस्टलीय या बहु-क्रिस्टलीय कहते हैं।

अवश्य सूक्ष्म-क्रिस्टलीय पिंडों को भी क्रिस्टलों के साथ ही वर्गीकृत करना चाहिए। तब पता चलेगा कि हमारे पास-पड़ोस के सब पिंड क्रिस्टल हैं। रेत तथा ग्रेनाइट, तांबा और लोहा, अंग्रेज़ी दवा की दुकान में मिलनेवाला सैलॉल (salol) और रंग – ये सभी क्रिस्टल हैं।

अपवाद भी हैं, शीशा और प्लास्टिक क्रिस्टल नहीं है। इन दृढ़ पिंडों को अक्रिस्टलीय कहते हैं।

क्रिस्टलों का अध्ययन करने का अर्थ है – अपने पास-पड़ोस की लगभग सभी चीज़ों का अध्ययन करना। कितना महत्व रखता है यह अध्ययन।

एकाकी क्रिस्टलों को आकार की नियमितता से तुरन्त पहचाना जा सकता है। चपटी भुजाएं और सीधे किनारे – ये क्रिस्टल के विशेष गुण हैं। आकार की नियमितता, निस्सन्देह, क्रिस्टल की आन्तरिक संरचना की नियमितता से सम्बन्धित है। यदि क्रिस्टल किसी एक दिशा में ज़्यादा खिंचा हुआ है तो इसका अर्थ है कि क्रिस्टल की संरचना इस दिशा में खास है।

तनिक सोचिए कि खराद पर क्रिस्टल में से एक गेंद तैयार किया गया है। तो क्या यह मालूम किया जा सकता है कि हमारे हाथ में क्रिस्टल है, और क्या इस गेंद तथा शीशे के गेंद में अन्तर मालूम किया जा सकता है? क्रिस्टल के वास्तविक आकार से पता चलता है कि क्रिस्टल अलग-अलग दिशाओं में भिन्न होता है। अगर यह अन्तर आकार में देखने में आता है तो वह दूसरे गुणों में प्रकट होना चाहिए। क्रिस्टल की दृढ़ता, उसके विद्युत गुण, ऊष्मा चालकता (thermal conductivity) – यह सब गुण भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न हो सकते हैं। क्रिस्टल की इस विशेषता को उसके गुणों की विषमदैशिकता कहते हैं। विष्मदैशिक – इसका अर्थ है अलग-अलग दिशाओं में भिन्न।

क्रिस्टल विषमदैशिक होते हैं। इसके विपरीत अक्रिस्टलीय पिंड, द्रव तथा गैस समदैशिक (isotropic) हैं यानी भिन्न-भिन्न दिशाओं में उनके गुण समान होते हैं।

गुणों की विषमदैशिकता ही यह मालूम करने के योग्य बनाती है कि पारदर्शी आकारहीन पदार्थ का टुकड़ा क्रिस्टल है या नहीं।

क्रिस्टल-संरचना

क्रिस्टल का समरूप इतना सुन्दर क्यों होता है? उसके चमकीले और बराबर फलक ऐसे दिखाई देते हैं मानों किसी हुनरमंद कारीगर ने उन्हें पालिश किया हो। क्रिस्टल के अलग-अलग हिस्से एक दूसरे को दोहराते हैं और एक सुन्दर सममित (symmetrical) आकृति बनाते हैं।

ऊपरलिखित प्रश्न का उत्तर एक ही हो सकता है—बाह्य सुन्दरता क्रिस्टल की आन्तरिक नियमितता के अनुकूल होनी चाहिए। यह नियमितता इसमें निहित है कि एक जैसे मुख्य हिस्से अपने को कई बार दोहराते हैं।

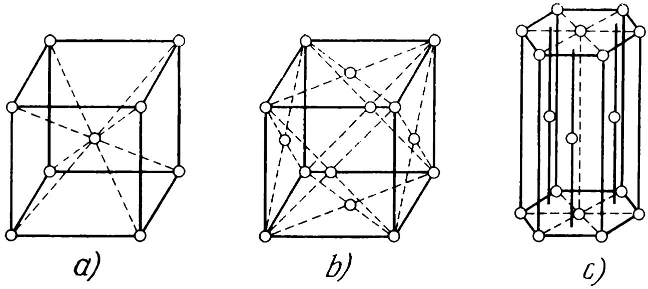
आइए, अब एक ऐसे जंगले की कल्पना करें, जो विभिन्न लम्बाईवाली छड़ों से बना है, और ये छड़ें किसी तरतीब से नहीं लगायी गयी हैं। असुन्दर आकृति होगी ऐसे जंगले की। अच्छा जंगला तो केवल नियमित तरीक़े से और एकसमान दूरी पर रखी एक जैसी लम्बाई वाली छड़ों से बनेगा।

स्वयं आवर्ती तस्वीर को हम भित्ति-कागज़ (wall paper) पर देखते हैं। यहां चित्र—गेंद से खेल रही बच्ची,—एक ही दिशा में नहीं दोहराया जाता, जैसा कि जंगले में होता है, बल्कि समतल को भरता है।

जंगले और भित्ति-कागज़ का क्रिस्टल से क्या सम्बन्ध है? सीधा सम्बन्ध है। जंगला कड़ियों से बना है, जो एक ही लाइन में एक दूसरे के बाद लगी होती हैं। भित्ति-कागज़ में तस्वीरें एक ही समतल में आवृति करती हैं, लेकिन क्रिस्टल परमाणुओं के समूह से बने हैं जो आकाश में अपने आप को दोहराते हैं। फलतः कहते हैं कि क्रिस्टल के परमाणु आकाशी (या क्रिस्टल) जालक (space or crystal lattice) बनाते हैं।

अब कई सौ क्रिस्टलों की संरचना मालूम है। आइए, आपको बहुत साधारण क्रिस्टलों की संरचना के बारे में बताएं। सबसे पहले हम एक ही क़िस्म के परमाणुओं से बने क्रिस्टलों का अध्ययन करेंगे।

अधिकतर तीन तरह के जालक पाए जाते हैं। वे चित्र 89 में दिखाये गये हैं। बिन्दु परमाणुओं के केंद्रों को व्यक्त करते हैं, बिन्दुओं को मिलानेवाली लाइनों का कोई वास्तविक अर्थ नहीं है। उन्हें तो केवल इसलिए खींचा गया है कि पाठक परमाणुओं के आकाशी वितरण को आसानी से समझ सके।

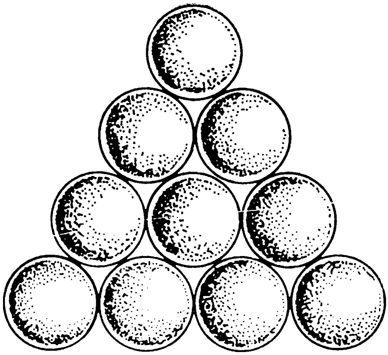


चित्र 89

चित्रों 89 a और 89 b में घनाकृति जालक दिखाये हुए हैं। इन जालकों को सरलता से समझने के लिए तनिक कल्पना कीजिये कि आपने छोटे छोटे क्यूबों को सबसे आसान तरीक़े से – किनारे को किनारे से और भुजा को भुजा से – मिला दिया है।

अगर आप ख़याली तौर पर बिन्दुओं को शीर्षों और घनों के आयतनों के केन्द्रों पर रखें, तो बायें चित्र में दिखाया घनाकृति जालक बन जायेगा। ऐसी संरचना अंतः केन्द्रित घन संरचना (body-centred cubic structure) कहलाती है। यदि बिन्दुओं को घनों के शीर्षों तथा उनकी भुजाओं के केन्द्रों पर रखें तो बीच वाले चित्र में दिखाई गई संरचना बनेगी। उसे फलक-केन्द्रित घन संरचना (face-centred cubic structure) कहते हैं।

तीसरा जालक (चित्र 89c) षट्कोण सुसंकुलित संरचना (hexagonal close-packed structure) कहलाती है। इस शब्द के उद्गम को समझने तथा इस जालक में परमाणुओं की अवस्थिति को अधिक स्पष्टता से जानने के वास्ते हम बिलियर्ड के गेंदों को लेकर उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा पास रखना शुरू करते हैं। सबसे पहले एक सघन संस्तर बनाएंगे – वह ऐसे दीखता है जैसे कि बिलियर्ड के गेंद खेल से पहले "त्रिकोण में" रखे होते हैं (चित्र 90)। यहां यह बता दें कि त्रिभुज के बीच वाला गेंद छः पड़ोसी-गेंदों को छूता है, और ये छः पड़ोसी षट्कोण बनाते हैं। आइए, अब इनके ऊपर ऐसी ही एक और तह लगायें। अगर हम दूसरी परत के गेंदों को पहली परत के गेंदों पर ही रखेंगे तो ऐसी संरचना सघन नहीं होगी।



चित्र 90

अधिकतम गेंदों को रखने के लिए हमें दूसरी परत के गेंदों को पहली परत के गेंदों के बीच के गढ़ों में, और तीसरी परत के गेंदों को दूसरी परत के गेंदों, इत्यादि के गढ़ों के बीच रखना होगा। षट्कोण सुसंकुलित संरचना में तीसरी परत के गेंद ऐसे रखे होते हैं कि उनके केन्द्र पहली परत के गेंदों के केन्द्रों पर होते हैं।

षट्कोण सुसंकुलित जालक में परमाणुओं के केन्द्र ऐसे स्थित होते हैं जैसे कि ऊपरलिखित विधि के अनुसार सघन रूप से रखे गेंदों के केन्द्र।

उपरोक्त तीन जालकों में अनेक तत्वों के क्रिस्टल बनते हैं :

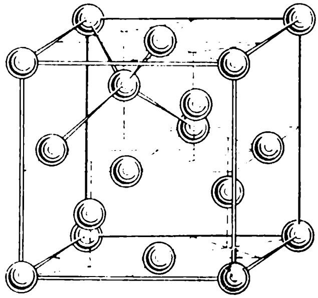
षट्कोण सुसंकुलित संरचना Be, Co, Hf, Ti. Zn, Zr

फलक-केंद्रित घन संरचना Al, Cu, Co, Fe, Au, Ge, Ni,Ti

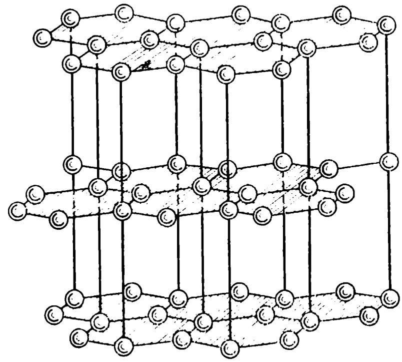
अंतः केंद्रित घन संरचना Cr, Fe, Li, Mo, Ta, Ti, U, V

दूसरी संरचनाओं में से हम कुछेक का ही उल्लेख करेंगे। चित्र 91 में हीरे की संरचना दिखाई हुई है। इस संरचना की विशेषता यह है कि हीरे में कार्बन के परमाणु के चार निकट-पड़ोसी होते हैं। आइए, अब इस संख्या की ऊपरलिखित तीन संरचनाओं, जो अक्सर देखने में आती हैं, में पाए जानेवाले पड़ोसियों की संख्या से तुलना करें। जैसा कि चित्रों से स्पष्ट है, षट्कोण सुसंकुलित संरचना में हरेक परमाणु के 12 निकट-पड़ोसी होते हैं। इतने ही पड़ोसी उन परमाणुओं के होते हैं जो फलक-केन्द्रित घन जालक बनाते हैं; अंतः केन्द्रित घन जालक में हरेक परमाणु के 8 पड़ोसी होते हैं।

अब ग्रैफ़ाइट के बारे में कुछ शब्द कहेंगे, जिसकी संरचना चित्र 92 में दिखायी गयी है। इस संरचना की विशेषता तुरंत मालूम हो जाती है। ग्रैफ़ाइट परमाणुओं की परतों से बना है और एक ही परत के परमाणु आस-पास की परतों के परमाणुओं की अपेक्षा एक-दूसरे से मज़बूती से जुड़े हैं। इसका कारण है अंतरापरमाणुक दूरियों में अन्तर: किसी भी परत में पड़ोसियों के बीच में दूरी परतों के बीच की सबसे कम दूरी से ढाई गुना है।



चित्र 91



चित्र 92

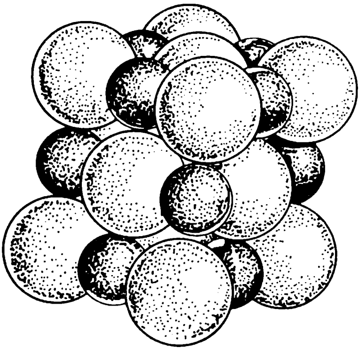
शिथिल-बद्ध परमाणु परतों के कारण ग्रैफ़ाइट के क्रिस्टल किसी भी परत की लम्बाई में आसानी से विखंडित हो जाते हैं। यही कारण है कि ग्रैफ़ाइट स्नेहन के लिए काम में लाया जा सकता है। ऐसा उन स्थितियों में किया जाता है जब स्नेहक तेलों का उपयोग असम्भव होता है। उदाहरण के तौर पर – अतिनिम्न तापों या अतिउच्च तापों पर। ग्रैफ़ाइट ठोस स्नेहक है।

दो पिण्डों के बीच घर्षण, मोटे तौर पर, इसलिए होता है कि एक पिण्ड के सूक्ष्म प्रक्षेप (protrusions) दूसरे पिण्ड के सूक्ष्म गढ़ों में आ गिरते हैं। ग्रैफ़ाइट गढ़ों में आ गिरते हैं। ग्रैफ़ाइट के सूक्ष्म क्रिस्टल को विखंडित करने के लिए पर्याप्त बल, घर्षण बलों से कहीं कम होता है, इसलिए ग्रैफ़ाइट स्नेहक एक पिण्ड का दूसरे पर सरकना बहुत सरल बना देता है।

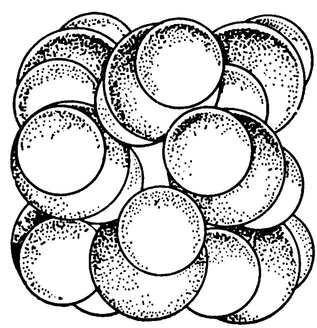
रासायनिक यौगिकों के क्रिस्टलों की संरचनाएं भी अत्यन्त प्रकार की हैं। संरचना में बहुत अधिक अन्तर, उदाहरणार्थ, खनिज नमक तथा कार्बन डाइआक्साइड की संरचना में है, जो चित्रों 93 तथा 94 में दिखायी गयी हैं।

खनिज नमक के क्रिस्टल (चित्र 93) घन के अक्ष के साथ-साथ बारी-बारी में आनेवाले सोडियम के परमाणुओं (छोटे-छोटे काले गोलों) और क्लोरीन के परमाणुओं (बड़े सफ़ेद गोलों) से बने होते हैं।

सोडियम के हरेक परमाणु के छः समान दूरी पर स्थित दूसरी क़िस्म के पड़ोसी होते हैं। यही बात क्लोरिन के लिए भी सही है। तब सोडियम



चित्र 93



चित्र 94

क्लोराइड का अणु कहां है? वह तो है नहीं; क्रिस्टल में न केवल सोडियम के एक परमाणु और क्लोरिन के एक परमाणु का समूह अनुपस्थित है, बल्कि किसी परमाणु समूह को दूसरों के बीच मिलाने से उसे अलग किया जा सकता है।

रासायनिक सूत्र NaCl हमें यह कहने का अधिकार नहीं देता है कि "पदार्थ NaCl के अणुओं से बना है"। रासायनिक सूत्र केवल यही व्यक्त करता है कि पदार्थ एक ही संख्या के सोडियम तथा क्लोरीन परमाणुओं से बना है।

संरचना से ही पता चलता है कि पदार्थ में अणुओं का अस्तित्व है या नहीं। अगर संरचना में सदृश परमाणुओं के समूह नहीं है, तो अणु नहीं होते हैं। अणुहीन क्रिस्टलों को परमाणु क्रिस्टल कहते हैं।

कार्बन डाइआक्साइड का क्रिस्टल (आइसक्रीम बेचनेवाले कुलफ़ी को ठण्डा रखने के वास्ते सूखी बर्फ़ यानी कार्बन डाइआक्साइड का प्रयोग करते हैं) – अणु क्रिस्टल का एक उदाहरण है (चित्र 94)।

CO_2 के अणु में ऑक्सीजन और कार्बन के परमाणुओं के केन्द्र सरल रेखा की लम्बाई में स्थित होते हैं। C–O के बीच दूरी 1.3 Å के बराबर होती है। और पास के अणुओं के ऑक्सीजन के परमाणुओं के बीच दूरी लगभग 3Å होती है। स्पष्ट है कि इन स्थितियों में हम क्रिस्टल में अणु को तुरन्त "पहचान" लेंगे।

अणु क्रिस्टल सुसंकलित अणुओं को बनाते हैं। यह देखने के लिए हमें अणु की रूपरेखा खींचनी होगी। चित्र 94 में अणु की रूपरेखा ही दिखायी गयी है।

११. तापमान

तापमापी

अगर विभिन्न तापमान तक गरम किए गए दो पिण्डों को सम्पर्क में लाया जाय तो अधिक गरम पिण्ड ठंडा होना शुरू करेगा और ठण्डा पिण्ड गरम होने लगेगा। ऐसे पिण्डों के बारे में कहते हैं कि वे ऊष्मा का विनिमय करते हैं; निस्सन्देह दैनिक जीवन में ऐसी क्रिया को हम विनिमय नहीं कहते हैं, जबकि एक आदमी दूसरे को 100 रुपये देता है, और दूसरा वह 100 रुपये लेता है, लेकिन भौतिक विज्ञान में ऐसी परिभाषा का इस्तेमाल किया जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है, ऊष्मा विनिमय ऊर्जा स्थानान्तरण प्रक्रम (energy transfer process) का एक रूप है। हम उस पिण्ड को अधिक गर्म कहते हैं जो ऊर्जा देता है। हम पिण्ड को गर्म महसूस करते हैं अगर वह हाथ को गर्म लगता है, अर्थात हाथ को ऊर्जा प्रदान करता है। इसके विपरीत यदि वह हाथ को ठंडा प्रतीत होता है, तो इसका अर्थ यह है कि वह हमारे शरीर से ऊर्जा लेता है।

उस पिण्ड के बारे में, जो अपनी ऊष्मा देता है (अर्थात ऊष्मा विनिमय के समय ऊर्जा देता है), हम कहते हैं कि उसका तापमान उस पिण्ड से अधिक है, जो ऊष्मा ग्रहण कर रहा है।

यह जानने पर कि कोई पिण्ड दूसरे पिण्ड की उपस्थिति में ठंडा या गर्म हो रहा है, हम मालूम कर सकते हैं कि गर्म पिण्डों में इस पिण्ड का "कौन-सा स्थान है"। तापमान – यह एक अपनी की क़िस्म का चिन्ह है, जो यह बताता है कि विचाराधीन पिण्ड कौन-से पिण्डों के वास्ते ऊष्मा दाता और कौन-से पिण्डों के लिए ऊष्मा ग्राही होगा।

तापमान को तापमापी (थर्मामीटर) से मापते हैं।

तापमापी की रचना में पिण्डों के भिन्न-भिन्न गुणों का प्रयोग किया जा

सकता है, जो तापमान के बदलने पर बदलते हैं। प्रायः तापमान में वृद्धि के साथ पिण्ड के फैलने के गुण का प्रयोग किया जाता है।

यदि भिन्न-भिन्न पिण्डों के सम्पर्क में आने से थर्मामीटर में लिया गया पदार्थ अपने आयतन को बदलता है, तो इसका अर्थ यह है कि पिण्डों का तापमान अलग-अलग है। जब थर्मामीटर में लिए गए पदार्थ का आयतन अधिक होता है तो कहते हैं कि तापमान ऊंचा है, आयतन कम होने पर कहते हैं कि तापमान कम है।

विभिन्न पदार्थ तापमापी के लिए अच्छे सिद्ध हो सकते हैं: तरल – जैसे स्पिरिट, पारा, और ठोस भी – धातु या गैस। लेकिन भिन्न-भिन्न पदार्थ अलग-अलग तरीक़े से फैलते हैं, पारे के, स्पिरिट के, गैस के या दूसरे थर्मामीटरों पर अंकित अंश एक जैसे नहीं होंगे। अवश्य, हर तापमापी पर दो निशान तो हमेशा लगाए जा सकते हैं – बर्फ़ के पिघलने और पानी के उबलने के तापमान के बराबर। इसलिए हर प्रकार के थर्मामीटर 0 और 100 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तो हमेशा एक जैसा दिखाएंगे। लेकिन 0 और 100 डिग्री के बीच पदार्थ एकसमान नहीं फैलेंगे। कुछ पिण्ड पारे के तापमापी की स्केल पर 0 और 50 डिग्री के बीच जल्दी फैलते हैं और उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता, लेकिन दूसरे – इसके विपरीत।

गरम करने पर भिन्न-भिन्न तरीक़े से फैलनेवाले पदार्थों का थर्मामीटरों में उपयोग कर हम देखेंगे कि थर्मामीटरों के पाठ्यांकों में बहुत अन्तर होगा। ऐसा मुख्य बिन्दुओं, यानी बर्फ़ के पिघलने और पानी के उबलने के तापमान एकसमान होने के बावजूद भी होता है। जल थर्मामीटर का उपयोग करने पर तो हम एक नयी खोज ही करते हैं: जीरो डिग्री तक ठण्डा किए पानी को अगर आग पर रखा जाए तो उसका "जल तापमान" पहले कम होता है और फिर बढ़ता है। इसका कारण यह है कि गरम करने पर पानी का आयतन पहले घटता है और इसके उपरांत ही पानी का बर्ताव "सामान्य" होता है, यानी गरम करने पर उसका (पानी का) आयतन बढ़ता है।

इससे एक बात तो स्पष्ट है कि थर्मामीटर में लिए जानेवाले पदार्थ का गलत चुनाव अनेक मुश्किलों का कारण बन सकता है।

लेकिन "सही" पदार्थ का चयन किन बातों पर निर्भर होना चाहिए? थर्मामीटर में लेने के वास्ते कौन-सा पदार्थ आदर्श है?

ऐसे आदर्श पदार्थों के बारे में हम पहले ही बता चुके हैं। ये हैं आदर्श

गैसें। आदर्श गैस के कणों में पारस्पर क्रिया नहीं होती है तथा आदर्श गैस के फैलने का अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि उसके अणुओं की गति में कैसे परिवर्तन आता है। यही कारण है कि थर्मामीटर के लिए गैस एक आदर्श पदार्थ है।

वास्तव में, यह बात स्पष्ट है कि यदि पानी स्पिरिट की तुलना में अलग तरीक़े से फैलता है, और स्पिरिट शीशे की तुलना में अलग तरीक़े से फैलता है, शीशा लोहे की तुलना में अलग तरीक़े से फैलता है, तो हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन या कोई भी दूसरी गैस विरल स्थिति में, ऐसी स्थिति इसलिए आवश्यक है कि गैस को आदर्श माना जा सके, गर्म करने पर बिल्कुल एक जैसी ही फैलती हैं।

अतः, भौतिक विज्ञान में तापमान मालूम करने का आधार है आदर्श गैस की किसी विशेष मात्रा के आयतन में हुआ परिवर्तन। निस्सन्देह, गैसों की अधिक संपीड्यता के कारण इस बात का विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है कि गैस का दाब अपरिवर्तित रहे।

गैस थर्मामीटर को अंशांकन करने के लिए हमें गैस के आयतन को ज़ीरो डिग्री तथा 100 डिग्री पर बहुत परिशुद्धता से मापना चाहिए। फिर V_{100} और V_0 आयतनों में अन्तर को 100 बराबर भागों में बांट देंगे। या दूसरे शब्दों में गैस के आयतन में आया परिवर्तन $1/_{100} \cdot (V_{100} - V_0)$ ही एक अंश सेंटीग्रेड के बराबर होता है।

अब मान लीजिए कि हमारा तापमापी V आयतन बता रहा है। इस आयतन के लिए तापमान $t°C$ कितना होगा? यह मालूम करना मुश्किल नहीं है कि

$$t°\,C = \frac{V - V_0}{V_{100} - V_0} \cdot 100$$

यानी

$$\frac{t°\,C}{100} = \frac{V - V_0}{V_{100} - V_0}$$

इस समीकरण की सहायता से हम हर आयतन V को तापमान t से संबंधित कर वह तापक्रम (temperature scale)* मालूम करेंगे जिसका भौतिकविद इस्तेमाल करते हैं।

---

*सेल्यिलस स्केल, जिसपर 0° C बर्फ़ के पिघलने के तापमान तथा 100° C पानी के उबलने के तापमान के बराबर (दोनों तापमान सामान्य

तापमान को बढ़ाने से गैस का आयतन असीमित बढ़ता है—तापमान में वृद्धि की कोई भी सैद्धान्तिक सीमा नहीं है। इसके विपरीत कम तापमान (सेंटीग्रेड में शून्य से नीचे के तापमान) की सीमा है।

वास्तव में तापमान कम होने से क्या होगा? वास्तविक गैस अन्ततः द्रव में परिवर्तित हो जाएगी और तापमान और ज़्यादा कम करने पर वह जम जाएगी। गैस के अणु छोटे से आयतन में जमा हो जाएंगे। लेकिन आदर्श गैस से भरे हुए थर्मामीटर के लिए यह आयतन किसके बराबर होगा? आदर्श गैस के अणु न तो आपस में पारस्पर क्रिया करते हैं और न ही उनका आयतन होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तापमान कम करने से आदर्श गैस का आयतन शून्य हो जायेगा। व्यावहारिक रूप में आदर्श गैस के ज़ीरो आयतन के अतिनिकट पहुंचना बिलकुल सम्भव है। इसके लिए तापमापी को अधिकाधिक विरलित गैस से भरना चाहिए। इसलिए हम कोई गलती नहीं करेंगे अगर गैस के अति कम आयतन को शून्य मान लें।

दाब, यानी 760 mm Hg पर मापे जाते हैं) लेते हैं, बहुत सुविधाजनक है। इसके बावजूद भी इंगलैंड तथा अमरीका में ऐसे तापक्रम का इस्तेमाल किया जाता है जो हमें बहुत ही अजीब लगता है। उदाहरण के तौर पर, अंग्रेज़ी उपन्यासकार द्वारा लिखे वाक्य "गरमी अधिक नहीं थी, तापमान 60-70 डिग्री था" को पढ़ने पर आप एकदम कहेंगे कि यह मुद्रण-दोष है। नहीं, मुद्रण-दोष नहीं है, तापमान फ़ारेनहाइट ($^\circ$F) में बताया गया है।

इंगलैंड में तापमान —20°C से कम बहुत ही विरले होता है। फ़ारेनहाइट ने बर्फ़ तथा नमक के मिश्रण को लिया था जिसका तापमान लगभग इतना ही होता है, और इस तापमान को ज़ीरो माना था। इस स्केल में 100°, लेखक के अनुसार, मानव शरीर का तापमान लिया गया था। लेकिन इस मान को लेने के वास्ते हो सकता है कि फ़ारेनहाइट ने किसी बिमार आदमी की सेवाओं की मदद ली हो। फ़ारेनहाइट तापक्रम में तन्दुरुस्त मानव शरीर का औसतन तापमान 98°F है। इस तापक्रम में जल +32°F पर जमता तथा 212°F पर उबलता है। फ़ारेनहाइट तापमान को सेल्यिलस तापमान, यानी सेंटीग्रेडों में बदलने के वास्ते निम्नलिखित सूत्र का उपयोग करते हैं:

$$t^\circ C = \frac{5}{9}(t - 32)^\circ F$$

हमारे सूत्र के अनुसार, शून्य आयतन सबसे कम सम्भव तापमान के अनुकूल होता है। इसी तापमान को परम शून्य तापमान (absolute zero temperature) कहते हैं।

सेल्यिलस स्केल में परम शून्य को मालूम करने के लिए तापमान के लिए निकाले गये सूत्र में आयतन शून्य के बराबर लेना चाहिए यानी $V = 0$। इस प्रकार परम शून्य तापमान बराबर होता है $-\frac{V_0 \cdot 100}{V_{100} - V_0}$।

पता चलता है कि इस बिन्दु का मान लगभग -273 डिग्री (ठीक-ठीक -273.15 डिग्री) होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि परम शून्य से कम तापमान नहीं होता है। इससे कम तापमान पर आयतन ऋणात्मक होगा। इसलिए इससे कम तापमान के बारे में बात करना अर्थहीन है। परम शून्य से कम तापमान होना एक ऐसी ही बात है जैसे शून्य व्यास से कम व्यासवाली तार बनाना।

परम शून्य तापमान पर पिण्ड को ठण्डा नहीं किया जा सकता है, अर्थात उससे ऊर्जा नहीं ली जा सकती है। दूसरे शब्दों में परम शून्य पर पिण्डों तथा कणों की, जिनसे वे बने होते हैं, ऊर्जा न्यूनतम होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि परम शून्य पर गतिज ऊर्जा शून्य होती है और स्थितिज ऊर्जा का मान न्यूनतम होता है।

परम शून्य चूंकि सबसे कम तापमान है, तो स्वाभाविक है कि भौतिक विज्ञान की उन शाखाओं में जहां कम तापमानों से वास्ता पड़ता है ताप का परम मापक्रम (absolute scale of temperature) का इस्तेमाल किया जाता है। इस मापक्रम में ताप परम शून्य से मापा जाता है। स्पष्ट है कि $T_{abs} = (t + 273)^\circ C$। ताप के परम मापक्रम में सामान्य ताप लगभग 300 डिग्री के बराबर होता है। इस मापक्रम को केल्विन स्केल भी कहते हैं। इसका नाम इंगलैंड के 19 वीं सदी में मशहूर वैज्ञानिक केल्विन के नाम पर पड़ा है, और T_{abs} के बजाय $T^\circ K$ लिखते हैं।

परम तापमान ज्ञात करने के वास्ते सूत्र निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है:

$$T = 100 \cdot \frac{V - V_0}{V_{100} - V_0} + 273$$

समीकरण $\frac{100 V_0}{V_{100} - V_0} = 273$ का उपयोग कर हम पाते हैं इस प्रकार

$$\frac{T}{273} = \frac{V}{V_0}$$

परम तापमान आदर्श गैस के आयतन के अनुपात में होता है।

तापमान के परिशुद्ध माप के लिए भौतिकविद हर प्रकार के सम्भव उपाय करते हैं। काफ़ी बड़े परिसरों में तापमान मापने के वास्ते पारे के, स्पिरिट के (आर्कटिक में तापमान मापने के लिए) और अन्य क़िस्म के थर्मामीटरों को गैस तापमापी के अनुसार अंशांकित करते हैं। लेकिन गैस थर्मामीटर परम शून्य के निकटवर्ती (0.7° K से कम) तापमानों, जब सब गैसें तरल हो जाती हैं, और 600° C से अधिक, जब गैसें शीशे में से निकल जाती हैं, तापमानों को मापने के काम नहीं आ सकता है। बहुत कम या बहुत अधिक तापमानों को मापने के दूसरे ही सिद्धान्त हैं।

जहां तक तापमान मापने के व्यावहारिक साधनों का सम्बन्ध है, तो वे बहुत हैं। विद्युत परिघटनाओं पर आधारित उपकरणों का बहुत महत्त्व है। यहां हम केवल एक के बारे में ही उल्लेख करेंगे। किसी भी तापमान को मापते समय हमें पक्की तरह से विश्वास होना चाहिए कि वह तापमान जिसे हम माप रहे हैं उस तापमान से मेल खाता है, जो विरलित गैस के फैलने पर प्राप्त होगा।

उच्च ताप भट्ठियों तथा बर्नरों में ही होता है। बिस्कुट सेकने वाली भट्ठी का तापमान 220—280° C तक होता है। धातु कर्म में और उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है—अनीलन भट्ठी (annealing kiln) में तापमान 900—1000° C और लोहार की भट्ठी में तापमान 1400—1500° C होता है, इस्पात पिघलाने की भट्ठियों में तापमान 2000° C तक होता है।

विद्युत चाप भट्ठियों में तापमान लगभग 5000° तक होता है। ऐसी भट्ठियों में दुर्गलनीय धातुओं को पिघलाया जाता है।

गैस ज्वालक शिखा का तापमान कितना होता है? अन्दर की नीली शंकु-नुमा लौ का तापमान केवल 300 डिग्री होता है और बाह्य शंकु का तापमान 1800° C तक होता है।

परमाणु बम फटने पर बहुत अधिक तापमान पैदा होता है। जटिल परिकलनों से पता चलता है कि विस्फोट केन्द्र पर तापमान दसियों लाखों अंश होता है।

पिछले कुछ वर्षों में विज्ञानियों ने विशेष प्रयोगशाला उपकरणों में (ओग्रा, ज़ेता), जिनका निर्माण सोवियत संघ तथा दूसरे देशों में किया जाता है, अति उच्च तापमान प्राप्त करने की चेष्ठाएं की हैं। उन्हें केवल कुछ ही क्षणों के लिए लगभग 20 लाख डिग्री तक तापमान पाने में सफलता मिली है।

इतने अधिक तापमानों का प्रकृति में भी अस्तित्व है, पृथ्वी पर नहीं, परन्तु ब्रह्माण्ड के दूसरे पिण्डों पर है। तारों के केन्द्र में, विशेषकर सूर्य के केन्द्र में, तापमान कई करोड़ डिग्री है।

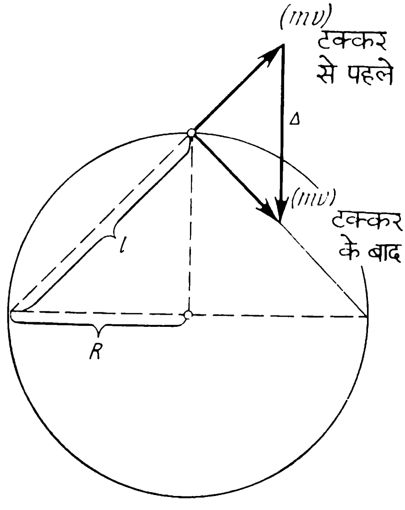
तारों की सतहों का तापमान बहुत कम है, यह तापमान 20000° से अधिक नहीं होता है। सूर्य की सतह का तापमान 6000° है।

आदर्श गैस के सिद्धान्त

आदर्श गैस के गुण, जिनका हमने तापमान को परिभाषा देने के वास्ते इस्तेमाल किया था, बहुत सरल हैं। तापमान स्थिर होने पर गैसों पर बॉयल-मेरिओट नियम लागू होता है। इस नियमानुसार गुणनफल pV आयतन या दाब में परिवर्तन होने पर भी अपरिवर्तित रहता है। आयतन या तापमान में चाहे किसी भी तरह के परिवर्तन हों, लेकिन दाब अपरिवर्तित रहने पर भागफल (quotient) V/T बदलता नहीं है। इससे एक बात स्पष्ट है कि pV/T वैसा ही रहता है जैसा कि तापमान स्थिर होने, लेकिन V तथा p परिवर्तनशील होने के समय था। दाब स्थिर होने लेकिन V और T परिवर्तनशील होने के समय भी pV/T वैसा ही रहता है। अभिव्यंजना pV/T स्थिर रहती है चाहे इसमें प्रकट होनेवाले दो परिमाण या तीनों परिमाण – p, V और T – भी एक साथ क्यों न बदलें। नियम $\frac{pV}{T} = \text{const}$, जैसा कि कहते हैं, आदर्श गैस अवस्था समीकरण का निरूपण करता है।

आदर्श गैस तापमापी के लिए इसलिए चुनी गयी है कि उसके गुण केवल अणुओं की गति से ही (लेकिन उनकी पारस्पर क्रिया से नहीं) सम्बन्धित है।

अणुओं की गति और तापमान के बीच कैसा सम्बन्ध है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें गैस के दाब तथा उसमें हो रही अणुओं की गति में सम्बन्ध मालूम करना होगा।



चित्र 95

किसी गोलाकार बर्तन में, जिसका अर्धव्यास R है, गैस के N अणु बन्द हैं (चित्र 95)। आइए इनमें से किसी एक अणु का अध्ययन करें। उदाहरण के लिए एक ऐसे अणु का, जो अध्ययन के समय बायीं ओर से दायीं ओर l लम्बाई वाली जीवा के साथ जा रहा हो। अणुओं की टक्करों पर कोई ध्यान नहीं देंगे: ऐसी टक्करें दाब पर प्रभाव नहीं डालती हैं। बर्तन की दीवार तक पहुंचने के बाद अणु दीवार के साथ टकराता है और वह उसी वेग से (चूंकि टक्कर प्रत्यास्थ है) वापस, लेकिन दूसरी दिशा में जायेगा। आदर्श स्थिति में अणु की बर्तन में ऐसी यात्रा हमेशा तक चल सकती है। अगर v अणु का वेग है, तो हर टक्कर l/v सेकंड बाद होगी। दूसरे शब्दों में, एक सेकंड में अणु दीवारों के साथ v/l बार टकरायेगा। N अणुओं की निरन्तर टक्करें दाब के संयुक्त बल को जन्म देती हैं।

न्यूटन के नियमानुसार बल आवेग के एक सेकंड में परिवर्तन के बराबर है। आइए, हर टक्कर के बाद आवेग में होनेवाले परिवर्तन को Δ से व्यक्त करें। यह परिवर्तन एक सेकंड में v/l बार होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बल में एक अणु का अंशदान $\frac{\Delta}{l} \cdot v$ होगा।

चित्र 95 में टक्कर से पहले और टक्कर के बाद आवेग वेक्टर दिखाए हुए हैं इसके साथ ही आवेग में हुई वृद्धि Δ का वेक्टर भी दिखाया गया है। इस तरह से बने दो त्रिभुजों की समरूपता से हम पाते हैं: $\frac{\Delta}{l} = \frac{mv}{R}$। अब एक अणु के बल में अंशदान बराबर होगा:

$$\frac{mv^2}{R}$$

इस सूत्र में जीवा की लम्बाई प्रकट नहीं होती है, इसलिए यह स्पष्ट है कि बल में अणुओं का अंशदान एकसमान होगा, चाहे वे किसी भी लम्बाई वाली जीवा के साथ क्यों न चलें। निस्सन्देह, तिरछी टक्कर होने पर आवेग में परिवर्तन कम होगा, लेकिन ऐसी स्थिति में टक्करें बहुधा होंगी। परिकलनों से पता चलता है कि ये दोनों प्रभाव एक-दूसरे की ठीक-ठीक पूर्ति करते हैं।

चूंकि गोले में N अणु हैं, इसलिए पूर्ण बल बराबर होगा:

$$\frac{Nmv^2_{\text{औसत}}}{R}$$

जहां $v_{\text{औसत}}$ – अणु का औसत वेग है।

गैस का दाब p बराबर होगा:

$$p = \frac{Nmv^2_{\text{औसत}}}{R \cdot 4\pi R^2} = \frac{\frac{1}{3} Nmv^2_{\text{औसत}}}{\frac{4}{3}\pi R^3} = \frac{Nmv^2_{\text{औसत}}}{3V}$$

जहां $4\pi R^2$ – गोले का क्षेत्रफल और V – गोले का आयतन है।

अतः

$$pV = \frac{1}{3} Nmv^2_{\text{औसत}}$$

इस समीकरण को सबसे पहले डेनियल बर्नूली* ने 1738 में प्राप्त किया था।

---

*डेनियल बर्नूली का जन्म स्विट्ज़रलैंड में हुआ था लेकिन वह रूस में रहते तथा काम करते थे। वह पीटर्सबर्ग अकादमी के अकादमिशियन थे। जान बर्नूली तथा याकव (याक) बर्नूली के काम भी कम प्रसिद्ध नहीं हैं। ये तीनो एक कुलनामी नहीं, परन्तु भाई हैं।

आदर्श गैस अवस्था-समीकरण से निष्कर्ष निकलता है : $pV = \text{const} \cdot T$। प्राप्त किए गए समीकरण से हमें पता चलता है कि pV आनुपातिक है $v^2_{\text{औसत}}$ के। अर्थात्

$$T \backsim v^2_{\text{औसत}} \quad \text{या} \quad v_{\text{औसत}} \backsim \sqrt{T}$$

यानी आदर्श गैस के अणु का वेग निरपेक्ष तापमान के वर्गमूल के अनुक्रमानुपात है।

आवोगाद्रो नियम

आइए, ज़रा यह सोचें कि पदार्थ विभिन्न अणुओं का मिश्रण है। क्या गति की विशेषता बतानेवाला ऐसा कोई भौतिकी परिमाण है जो इन सब अणुओं के लिए एक जैसा हो, उदाहरण के लिए ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन के वास्ते जिनका तापमान एक समान है।

यांत्रिकी इस प्रश्न का उत्तर देती है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि सब अणुओं की स्थानांतर गति (translatory motion) की औसत गतिज ऊर्जा बराबर होगी $\frac{mv^2_{\text{औसत}}}{2}$।

इसका अर्थ यह हुआ कि दिये गये तापमान पर अणुओं के औसत वेग के वर्ग कणों के द्रव्यमान के व्युत्क्रमानुपात हैं :

$$v_{\text{औसत}} \backsim \frac{1}{\sqrt{m}}$$

आइए, अब समीकरण $pV = \frac{1}{3} Nmv^2_{\text{औसत}}$ पर वापस आएं।

चूंकि निश्चित तापमान पर $mv^2_{\text{औसत}}$ सब गैसों के लिए बराबर है, इस कारण निश्चित दाब p और तापमान T पर बर्तन में बन्द अणुओं की संख्या N सब गैसों के लिए बराबर होगी। इसी प्रसिद्ध नियम को सबसे पहले आवोगाद्रों ने परिभाषित किया था।

1 cm^3 में कितने अणु होते हैं? पता चलता है कि 1 cm^3 में $0°$ C तापमान तथा 760 mm Hg दाब पर $2.7 \cdot 10^{19}$ अणु होते हैं। यह एक विशाल संख्या है। इस अभिप्राय से कि आप इस संख्या की विशालता महसूस कर

सकें, हम एक उदाहरण पेश करते हैं। मान लीजिए कि 1 cm^3 आयतनवाले एक छोटे-से बर्तन में से गैस इतने वेग से निकलती है कि प्रति सेकण्ड दस लाख अणु बाहर निकल जाते हैं। यह मालूम करना मुश्किल नहीं है कि दस लाख साल बाद पूरी गैस बर्तन में से निकल जाएगी।

आवोगाद्रों नियम बताता है कि किसी निश्चित दाब तथा तापमान पर गैस में अणुओं की संख्या तथा उसके आयतन का अनुपात, जिसमें वह बन्द है, N/V सब गैसों के लिए बराबर है।

चूंकि गैस का घनत्व बराबर है $\rho = \frac{N}{V} m$, इस कारण गैस के घनत्वों का अनुपात उनके अणु-भारों के अनुपात के बराबर होगा, अर्थात

$$\frac{\rho_1}{\rho_2} = \frac{m_1}{m_2}$$

इसलिए अणुओं के सापेक्ष वज़न गैसीय पदार्थों को साधारण तुला में तौल कर मालूम किए जा सकते हैं। एक समय था कि ऐसे मापों ने रसायन विज्ञान के विकास में बड़ा योगदान दिया था, और उनका महत्त्व आज भी है जब हमें किसी नये संश्लेषी पदार्थ का अणु-भार मालूम करना होता है। अणु-भार मालूम करने के वास्ते इस नये पदार्थ को हानि पहुंचाए बिना गैसीय अवस्था में लाना है। हवा गैसों का मिश्रण है और उसके घनत्व का दूसरे गैसों के घनत्व के साथ मुकाबला करने के लिए हवा का औसत अणु-भार निकालना आसान होता है। वह 28.8 के बराबर है। हवा का औसतन अणु-भार मालूम होने पर अलग-अलग गैसों का घनत्व, वायु की तुलना में, आसानी से निकाला जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, जलवाष्प, जिसका अणु-भार 18 है, का वायु की तुलना में घनत्व $\frac{18}{28.8} = 0.62$ है।

अणुओं के वेग

सिद्धान्त से पता चलता है कि एक ही तापमान पर अणुओं की औसत गतिज ऊर्जा $\frac{mv^2_{\text{औसत}}}{2}$ एकसमान होती है। तापमान की परिभाषा में हमने गैस के अणु की स्थानांतर गति की औसत गतिज ऊर्जा को निरपेक्ष तापमान के आनुपातिक माना था। यह महत्त्वपूर्ण नियम समीकरण के रूप

में ऐसे लिखा जाता है:

$$\left(\frac{mv^2}{2}\right)_{\text{औसत}} = 2.1 \cdot 10^{-16} T$$

यहां ऊर्जा अर्गों में मापी जाती है।

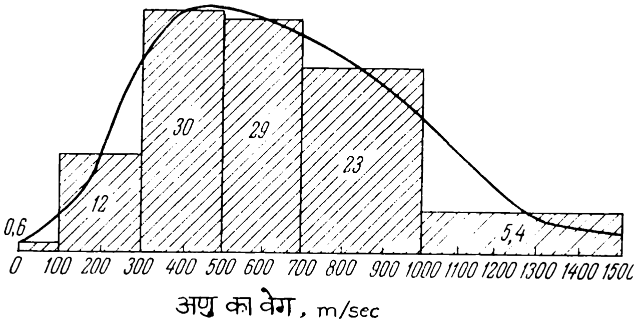
हम पहले ही कह चुके हैं कि तापमान ऊष्मीय गति की तीव्रता का माप है। और अब हम देखते हैं कि आदर्श गैस से भरे थर्मामीटर से तापमान मापना इस माप को बहुत ही साधारण अर्थ देता है। तापमान अणुओं की स्थानांतर गति की औसत ऊर्जा के आनुपातिक होता है।

आइए, अब सामान्य तापमान पर ऑक्सीजन के अणुओं का औसत वेग मालूम करें। ऐसा करने के लिए हम सामान्य तापमान $27° C = 300° K$ के बराबर लेंगे। ऑक्सीजन का अणु-भार 32 है, इसलिए एक अणु का भार बराबर है $32/6 \cdot 10^{23}$। साधारण परिकलन से हम पाते हैं कि $v_{\text{औसत}} = 4.8 \cdot 10^4$ cm/sec अर्थात लगभग 500 m/sec। हाइड्रोजन के अणु काफ़ी तेज़ी से चलते हैं। उनका द्रव्यमान 16 गुना कम और वेग $\sqrt{16} = 4$ गुना अधिक होता है, अर्थात सामान्य तापमान पर 2 km/sec होता है। आइए, अब यह मालूम करें कि छोटा-सा कण, जिसे सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है, किस ऊष्मीय वेग से चलता है। आम सूक्ष्मदर्शी की सहायता से 1 माइक्रॉन (10^{-4} cm) व्यास के कण देखे जा सकते हैं। ऐसे कण का द्रव्यमान, जिसका घनत्व लगभग एक है, क़रीब $5 \cdot 10^{-13}$ g होगा, तथा उसका वेग लगभग 0.5 cm/sec होगा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि ऐसी गति सरलता से देखी जा सकती है।

0.1 g द्रव्यमानवाले कण की ब्राऊनी गति का वेग मात्र 10^{-6} cm/sec होगा। ऐसे कणों की ब्राऊनी गति को न देख पाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

हमने अणु के औसत वेग के बारे में बताया था। लेकिन सब अणुओं का वेग तो एकसमान नहीं होता है। उनमें से तो कुछ धीरे चलते हैं, तो कुछ तेज़। अणुओं के वेगों का परिकलन किया जा सकता है। यहां हम केवल उनके परिणाम ही लिखेंगे।

लगभग $15° C$ तापमान पर नाइट्रोजन के अणु का औसत वेग 500 m/sec होता है। 300 से 700 m/sec तक के वेग से लगभग 59% अणु



चित्र 96

चलते हैं। मात्र 0.6% अणु 0 से 100 m/sec के वेग से चलते हैं। केवल 5.4% अणु ही 1000 m/sec से अधिक वेग से चलते हैं (चित्र 96)।

स्थानान्तर गति की ऊर्जा के अलग-अलग मानों के आधार पर मालूम किया जा सकता है कि अणु कैसे वितरित हैं।

उन अणुओं की संख्या, जिनकी ऊर्जा औसत ऊर्जा से दुगुनी होती है, 10% से कम होती हैं। और अधिक "ऊर्जापूर्ण" अणुओं का अंश ऊर्जा बढ़ने के साथ-साथ कम होता जाता है। उन अणुओं की संख्या, जिनकी ऊर्जा औसत ऊर्जा से चार गुना होती है, 0.7%, और जिनकी ऊर्जा औसत ऊर्जा से आठ गुना अधिक होती है, $0.06 \cdot 10^{-4}$% और जिनकी ऊर्जा औसत ऊर्जा से 16 गुना अधिक होती है, $2 \cdot 10^{-8}$% होती है।

11 km/sec के वेग से चलनेवाले ऑक्सीजन के अणु की ऊर्जा $32 \cdot 10^{-12}$ अर्ग होती है। अणु की औसत ऊर्जा सामान्य तापमान पर केवल $6 \cdot 10^{-14}$ अर्ग होती है। इस प्रकार 11 km/sec के वेग से चलनेवाले अणु की ऊर्जा औसत वेग से चल रहे अणु की ऊर्जा से कम-से-कम 500 गुना अधिक होती है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि उन अणुओं की संख्या, जो 11 km/sec के वेग से चल रहे हैं, अत्यन्त ही कम होगी यानी 10^{-300} के बराबर।

लेकिन हमने 11 km/sec के वेग का ही यहां उल्लेख क्यों किया है? पृष्ठ १८४ पर हमने बताया था कि इतने ही, यानी 11 km/sec के, वेग से चलनेवाले पिण्ड ही पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र को छोड़ सकते हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि बहुत ऊंचाई पर पहुंच चुके अणु पृथ्वी से सम्बन्ध तोड़ और लम्बी यात्रा पर निकल सकते हैं, लेकिन ऐसा करने के वास्ते उनका वेग 11 km/sec होना चाहिए। इतनी तेज़ रफ़्तार से चलनेवाले अणुओं की संख्या इतनी कम है कि अगले कई करोड़ सालों में भी पृथ्वी पर वायुमंडल की समाप्ति का डर नहीं है।

वायुमंडल के समाप्त होने का वेग बहुत ज़्यादा हद तक गुरुत्वीय ऊर्जा $\gamma \frac{Mm}{r}$ पर निर्भर करता है। अगर अणु की औसत गतिज ऊर्जा गुरुत्वीय ऊर्जा से बहुत कम है, तो अणु का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से निकलना वास्तव में असम्भव है। चांद पर गुरुत्वीय ऊर्जा 20 गुना कम है जहां ऑक्सीजन के अणु को "भागने" के वास्ते $1.5 \cdot 10^{-12}$ अर्ग ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह मान अणु की औसत गतिज ऊर्जा के परिमाण से 20-25 गुना अधिक है। उन अणुओं की संख्या, जो चांद को छोड़ सकते हैं, 10^{-17} है। यह संख्या तो 10^{-300} की अपेक्षा बड़ी है, और परिकलन से पता चलता है कि हवा चांद से काफ़ी जल्दी अंतराग्रहीय अंतरिक्ष में जा सकती है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि चांद पर वायुमंडल नहीं है।

तापीय प्रसार

अगर पिंड को गर्म किया जाए तो परमाणुओं (अणुओं) की गति और तेज़ हो जाएगी। वे एक-दूसरे को धकेलेंगे तथा अधिक स्थान घेरेंगे। यही बात प्रसिद्ध तथ्य को स्पष्ट करती है कि दृढ़, द्रव तथा गैसीय पिंड गरम करने पर फैलते हैं।

गैस के तापीय प्रसार के बारे में अधिक विस्तार से बताने की ज़रूरत नहीं पड़ती है: गैस का तापमान उसके आयतन के अनुपातिक होता है, इसी को तापक्रम (temperature scale) का आधार माना गया था।

सूत्र $V = \frac{V_0}{273} \cdot T$ से हमें पता चलता है कि 1°C तक गरम करने पर गैस का आयतन उसके 0°C आयतन से अचर दाब पर $\frac{1}{273}$, यानी 0.0037 गुना बढ़ता है। इस नियम को गै-लुसैक नियम भी कहते हैं।

सामान्य परिस्थितियों में, अर्थात सामान्य तापमान तथा सामान्य दाब पर अधिकांश द्रवों का प्रसार गैसों के प्रसार से 2-3 गुना कम होता है।

हम पानी के प्रसार की विशेषता के बारे में ऊपर अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं। 0° से $4^\circ C$ तक पानी को गर्म करने पर उसका आयतन कम होता है। पानी के फैलने की यह विशेषता पृथ्वी पर जीवन में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। पतझड़ में पानी जैसे-जैसे ठंडा होता जाता है उसकी ऊपरी सतहें, जो ठंडी हो चुकी होती हैं, तले की ओर नीचे हो जाती हैं। उनकी जगह नीचे से ज़्यादा गरम पानी ले लेता है। यह क्रिया तब तक जारी रहती है, जब तक पानी का तापमान $4^\circ C$ तक नहीं पहुंच जाता। तापमान के और गिरने पर ऊपरी सतहें और अधिक नहीं सिकुड़ेंगी, इसका मतलब यह हुआ कि वे अधिक भारी नहीं होंगी और और न ही तले की तरफ़ नीचे जाएंगी। इस तापमान से लेकर ऊपरी सतह धीरे-धीरे ठंडी होने लगती है, और शून्य तापमान पर पानी जम जाता है।

पानी की इस विशेषता की बदौलत ही नदी में पानी तले तक नहीं जमता है। अगर पानी इस अद्भुत विशेषता को अचानक खो दे, तो तनिक-सी कल्पना से आसानी से पता चल सकता है कि इसके कितने भयंकर परिणाम होंगे।

दृढ़ पिंडों का तापीय प्रसार द्रव के तापीय प्रसार से काफ़ी कम होता है। वह गैस के प्रसार के मुक़ाबले सैकड़ों, हज़ारों गुना कम है।

अनेक स्थितियों में तापीय प्रसार एक अप्रिय रुकावट होता है। तापमान परिवर्ती होने पर घड़ी के चल हिस्सों के आकार में परिवर्तन करने से घड़ी की चाल में परिवर्तन हो सकता है, अगर इन बारीक-बारीक हिस्सों को एक विशेष मिश्रधातु—इन्वार—से न बनाया जाए। इन्वार—यह एक प्रकार का इस्पात है जिसमें निकल धातु की मात्रा अधिक होती है—का उपकरण बनाने में काफ़ी इस्तेमाल किया जाता है। तापमान में $1^\circ C$ वृद्धि होने पर, इन्वार की छड़ी की लम्बाई अपनी पहलेवाली लम्बाई से मात्र दस लाखवां भाग ही बढ़ती है।

दृढ़ पिंडों के नाममात्र तापीय प्रसार के गम्भीर परिणाम निकल सकते हैं। कारण यह है कि संपीड्यता कम होने के कारण दृढ़ पिंडों के तापीय प्रसार में आसानी से परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है।

इस्पात की छड़ को $1^\circ C$ तक गरम करने पर उसकी लम्बाई केवल

एक लाखवें हिस्से के बराबर ही बढ़ेगी अर्थात् लम्बाई में इतनी वृद्धि आंख के लिए अदृश्य होगी। लेकिन इस वृद्धि को रोकने के लिए और छड़ को एक लाखवें हिस्से तक सुकेड़ने के लिए 1 cm^2 पर 20 kg.f बल की आवश्यकता होगी। इतना बल केवल 1° C तापमान बढ़ाने पर होनेवाली वृद्धि को रोकने के लिए लगाने की ज़रूरत होती है!

प्रसार बलों को, जो तापीय प्रसार के कारण उत्पन्न होते हैं, अगर ध्यान में न रखा जाये तो उनके कारण पुरज़े टूट सकते हैं और दुर्घटना भी हो सकती है। उदाहरण के तौर पर, प्रसार बलों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए रेल की पटरियों के बीच थोड़ा फ़ासला रखा जाता है। शीशे के बर्तन का उपयोग करते समय भी इन बलों का ध्यान रखा जाता है, चूंकि कांच असमान गरम करने पर आसानी से तड़क जाता है। इसीलिए प्रयोगशाला में कांच (गलित स्फटिक अक्रिस्टलीय स्थिति में सिलिकोन आक्साइड) के बने बर्तन इस्तेमाल किए जाते हैं, जो इस त्रुटि से मुक्त होते हैं। किसी विशेष तापमान तक गरम करने पर अगर तांबे के टुकड़े की लम्बाई में एक मिलीमीटर वृद्धि होती है तो स्फटिक कांच के उतने ही लम्बे टुकड़े की लम्बाई केवल 30-40 माइक्रॉन ही बढ़ेगी। आंख के लिए यह वृद्धि अदृश्य होती है। स्फटिक कांच का प्रसार इतना कम है कि स्फटिक बर्तन को कई सौ अंश तक गरम कर बिना किसी डर के पानी में डाला जा सकता है।

ऊष्मा धारिता

पिंड की आंतरिक ऊर्जा, अवश्य, तापमान पर निर्भर करती है। पिंड को जितना अधिक गरम किया जाएगा, उतनी ही अधिक ऊर्जा की ज़रूरत पड़ेगी। अगर T_1 तापमान से T_2 तापमान तक गरम करने के वास्ते ऊष्मा के रूप में ऊर्जा Q की आवश्यकता पड़ेगी।

$$Q = C(T_2 - T_1)$$

यहां C अनुपात का गुणांक है, जिसे पिंड की ऊष्मा धारिता कहते हैं। इस सूत्र से ऊष्मा धारिता की संकल्पना की परिभाषा निकलती है। C ऊष्मा की वह मात्रा है जिसकी तापमान में 1° C वृद्धि करने के वास्ते

ग्रावश्यकता पड़ती है। ऊष्मा धारिता स्वयं भी तापमान पर निर्भर करती है: 0° से $1^\circ C$ तक या 100° से 101° तक गरम करने के वास्ते ऊष्मा की ग्रलगग्रलग मात्रा की ग्रावश्यकता पड़ती है।

C के परिणामों को प्राय: एक ग्राम के लिए मालूम करते हैं ग्रौर उन्हें विशिष्ट ऊष्मा धारिता कहते हैं, तथा c से व्यक्त करते हैं।

m द्रव्यमानवाले पिंड को गरम करने के लिए ऊष्मा की ग्रावश्यक मात्रा निम्न सूत्र से मालूम की जा सकती है:

$$Q = mc\,(T_2 - T_1)$$

भविष्य में हम विशिष्ट ऊष्मा धारिता की संकल्पना का ही प्रयोग करेंगे, लेकिन संक्षेप में उसे पिंडों की ऊष्मा धारिता कहेंगे। इसके ग्रतिरिक्त इस परिमाण का मात्रक सदा इंगित करेगा कि यह विशिष्ट ऊष्मा धारिता है।

ऊष्मा धारिताग्रों का परिसर काफ़ी बड़ा है। निस्सन्देह, ऊपरलिखित परिभाषा के ग्रनुसार पानी की ऊष्मा धारिता 1 cal/degree है।

ग्रधिकांश पिंडों की ऊष्मा धारिता जल की ऊष्मा धारिता से कम है। उदाहरण के लिए, ग्रधिकांश तेलों, स्पिरिटों तथा दूसरे द्रवों की ऊष्मा धारिता 0.5 cal/g · degree है। स्फटिक, शीशे तथा रेत की ऊष्मा धारिता 0.2 है। लोहे तथा ताम्बे की ऊष्मा धारिता लगभग 0.1 cal/g · degree है। कुछ गैसों की ऊष्मा धारिता निम्नलिखित हैं: हाइड्रोजन – 3.4 cal/g · degree हवा – 0.24 cal/g · degree।

सब पिंडों की ऊष्मा धारिताएं, सिद्धान्ततः, तापमान कम होने से कम हो जाती हैं, तथा परम शून्य के निकटवर्ती तापमानों पर तो उनका मान ग्रति कम होता है। उदाहरण के तौर पर ताम्बे की ऊष्मा धारिता $20^\circ K$ पर सिर्फ़ 0.0035 होती है, यह सामान्य तापमान पर ऊष्मा धारिता से 24 गुना कम है।

पिंडों के बीच ऊष्मा के वितरण से सम्बंधित ग्रनेक प्रश्नों को हल करने के वास्ते उनकी ऊष्मा धारिताग्रों के ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है।

पानी ग्रौर मिट्टी की ऊष्मा धारिताग्रों में ग्रन्तर ही ग्रनेक कारणों में से एक है जो समुद्री ग्रौर महाद्वीपीय जलवायु में ग्रन्तर को निर्धारित करता है। पानी की ऊष्मा धारिता मिट्टी की ऊष्मा धारिता से पांच गुना ग्रधिक है, ग्रतः पानी धीरे-धीरे गर्म ग्रौर धीरे-धीरे ठण्डा होता है।

गर्मियों में समुद्र के पास के क्षेत्रों में पानी धरती की अपेक्षा मन्थर गति से गरम होता है, जिसके कारण गरमी कुछ कम हो जाती है। सर्दियों में समुद्र का गरम पानी आहिस्ता-आहिस्ता ठण्डा होता है, गरमी हवा को मिलती है और सर्दी थोड़ी कम हो जाती है। यह मालूम करना मुश्किल नहीं है कि $1 m^3$ समुद्री पानी $1^\circ C$ ठण्डा होने पर $3000 m^3$ हवा को $1^\circ C$ गरम करता है। यही कारण है कि समुद्र के पास के क्षेत्रों में सर्दियों और गर्मियों में तापमान में अन्तर महाद्वीपों की अपेक्षा काफ़ी कम होता है।

ऊष्मा चालकता

प्रत्येक पिंड "पुल" का काम कर सकता है जिसकी सहायता से अधिक गरम पिंड की ऊष्मा कम गरम पिंड तक पहुंच जाती है।

ऐसा एक पुल गरम चाय के गिलास में पड़ी एक चमची है। धातु के पिंड ऊष्मा के अच्छे संवाहक हैं। चाय के गिलास में डाली चमची एक सेकण्ड में ही गर्म हो जाती है।

किसी गरम मिश्रण को हिलाने के वास्ते विडोलक की मुठ लकड़ी या प्लास्टिक की होनी चाहिए। ऐसा इसलिए ज़रूरी है कि ये दृढ़ पिंड धातु के मुक़ाबले में एक हज़ार गुना कम संवाहक हैं। हम कहते हैं कि पिंड "ऊष्मा के संवाहक" हैं लेकिन इसी तरह यह भी तो कहा जा सकता है कि पिंड "ठंड के संवाहक" हैं। निस्सन्देह, पिंडों के गुण इस कारण नहीं बदलेंगे कि उनमें ऊष्मा का प्रवाह किस ओर हो रहा है। सर्दियों में हम खुले में पड़ी किसी धातु को नंगे हाथ से छूते समय बहुत सावधानी बरतते हैं, लेकिन लकड़ी की मूठ को बिना डर पकड़ लेते हैं।

लकड़ी, ईंट, शीशा, प्लास्टिक ऊष्मा के ख़राब संवाहकों की श्रेणी में आते हैं। इन्हें ऊष्मा रोधक भी कहते हैं। इन पदार्थों का घरों, भट्ठियों और रैफ़्रीजेरेटरों की दीवारें बनाने के वास्ते उपयोग किया जाता है।

सब धातुएं ऊष्मा की सुचालक हैं। सबसे अच्छे संवाहक ताम्बा या चांदी हैं, वे लोहे की अपेक्षा दुगुनी अधिक ऊष्मा का चालन करते हैं।

यह बात सही है कि ऊष्मा संवाहकता के लिए केवल दृढ़ पिंड ही इस्तेमाल नहीं होते। द्रव भी ऊष्मा का चालन करते हैं, लेकिन धातुओं से

बहुत कम। ऊष्मा चालकता में धातुएं, दृढ़ तथा द्रव अधात्विक पिंडों से सैकड़ों गुना अच्छी हैं।

यह सिद्ध करने के लिए कि पानी ऊष्मा का अच्छा संवाहक नहीं है, हम निम्नलिखित प्रयोग करते हैं। पानी से भरी एक परखनली के तले पर बर्फ़ का टुकड़ा रखते हैं और परखनली के ऊपरी भाग को गैस बर्नर पर गरम करते हैं। पानी उबलने लगता है, लेकिन बर्फ़ तो वैसे की वैसी ही पड़ी है। लेकिन अगर परखनली में पानी न होता और वह धातु की बनी होती तो बर्फ़ का टुकड़ा एकदम पिघलना शुरू कर देता। पानी ताम्बे की तुलना में 200 गुना कम संवाहक है।

गैस संघनित अधात्विक पिंडों की तुलना में दसियों गुना कम संवाहक है। ताम्बे की ऊष्मा चालकता हवा की ऊष्मा चालकता से 20000 गुना कम है।

गैस की संवाहकता बहुत कम होती है, यही कारण है कि ठोस कार्बन डाइआक्साइड (सूखी बरफ़), जिसका तापमान $-78°C$ होता है, के टुकड़े को तथा द्रव नाइट्रोजन, जिसका तापमान $-196°C$ होता है, की बून्द को हथेली पर रख सकते हैं। अगर इन ठण्डे पिंडों को ऊंगली से न दबाएं तो "छाला" नहीं पड़ेगा। कारण यह है कि ख़ूब गर्म करने पर द्रव या दृढ़ पिंड का टुकड़ा "भाप जैकेट" में लिपट जाता है और गैस की यह परत ऊष्मा रोधक का काम करती है।

द्रव की गोलाकार स्थिति—वह स्थिति है जब बूंद वाष्प में लिपटी होती हैं—तब पैदा होती है जब पानी बहुत ही गर्म तवे पर गिरता है। हथेली पर गर्म पानी की बूंद गिरने से हाथ जल जाता है, हालांकि गर्म पानी तथा मानव शरीर के तापमानों में अन्तर हाथ और द्रव हवा के तापमानों में अन्तर से कम होता है। हाथ गर्म पानी की बूंद से ठंडा होता है, बूंद में से ऊष्मा निकलती है, क्वथन बन्द हो जाता है और वाष्प जैकेट नहीं बन पाती है।

यह समझना कठिन नहीं है कि सबसे अच्छा ऊष्मा रोधक है निर्वात। निर्वात में ऊष्मा को संवाहन करने वाले कण नहीं होते हैं इसलिए ऊष्मा धारिता न्यूनतम होगी।

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम ऊष्मा परिरक्षक (thermal shield) बनाना चाहें, यानी ठंडी चीज़ को गर्म से, या गर्म चीज़ को ठंडी चीज़

से अलग रखना चाहें, तो सबसे अच्छा तो यह होगा कि दो दीवारोंवाला खोल बनाया जाए और उसकी दीवारों के बीचवाली हवा को निकाल दिया जाए। ऐसा करने पर हमें निम्नलिखित रोचक स्थिति देखने को मिलती है। गैस के विरलित होते जाने पर अगर हम उसकी ऊष्मा चालकता में होनेवाले परिवर्तन को देखें तो हम पायेंगे कि दाब कम होने पर ऊष्मा चालकता लगभग बदलती नहीं है, लेकिन जब निर्वात काफ़ी गहरा हो जाता है तो हमारी आशा साकार हो जाती है, यानी ऊष्मा चालकता बहुत कम हो जाती है।

इसका क्या कारण है?

इस परिघटना को समझने के लिए सबसे पहले तो हमें यह अच्छी तरह से समझना चाहिये कि गैस में ऊष्मा स्थानान्तरण (heat transfer) कैसे होता है।

गरम पिंड से ठण्डे पिंडों तक ऊष्मा स्थानान्तरण एक अणु द्वारा पड़ोसी अणु को ऊर्जा देने के कारण होता है। स्पष्ट है कि तेज़ गति वाले अणुओं का धीमी गति वाले अणुओं से टकराव प्रायः धीमी गतिवाले अणुओं को त्वरित तथा तेज़ गतिवाले अणुओं को मन्थर करता है। और इसका मतलब है कि गर्म जगह ठण्डी और ठण्डी जगह गर्म हो जाती है।

दाब में कमी का ऊष्मा स्थानान्तरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? चूंकि दाब में कमी आने से घनत्व में कमी होती है, अतः तेज़ और धीमी गति वाले अणुओं के बीच टक्करें भी कम हो जायेंगी जिसकी वजह से ऊष्मा स्थानान्तरण होता है। इससे ऊष्मा चालकता कम हो जानी चाहिए। लेकिन दूसरी ओर दाब में कमी होने से अणुओं का माध्य मुक्त पथ बढ़ जाता है, जो ऊष्मा को बहुत दूरी तक ले जाते हैं, और इस कारण ऊष्मा चालकता बढ़ जाती है। परिकलन से पता चलता है कि दोनों प्रभाव एक दूसरे को संतुलित करते हैं और ऊष्मा स्थानांतरण क्षमता हवा को निकालने के बाद कुछ समय तक नहीं बदलती है।

ऐसा उस समय तक होगा जब तक कि निर्वात इतना अधिक नहीं हो जाता है कि माध्य मुक्त पथ बर्तन की दीवारों के बीच फ़ासले के बराबर हो जाए। इसके बाद अगर दाब और कम कर दिया जाए, तो वह बर्तन की दीवारों के बीच "आवारागर्दी" कर रहे अणुओं के माध्य मुक्त पथ को और बदल नहीं सकता है, घनत्व में कमी अब "संतुलित" नहीं होती

है और ऊष्मा चालकता दाब के अनुपातिक जल्दी कम होती है। बहुत गहरा शून्यक होने पर ऊष्मा चालकता नाम मात्र ही रह जाती है। थर्मस की रचना भी शून्यक की प्रयुक्ति पर आधारित है। थर्मस बोतलें बहुत प्रचलित हैं, उनका प्रयोग न केवल भोजन को गरम या ठण्डा रखने के लिए किया जाता है, बल्कि विज्ञान तथा तकनीक में भी इस्तेमाल किया जाता है। जहां वे अपने आविष्कारक ड्यूग्रर के नाम से जानी जाती है। ऐसे बर्तन (उन्हें सिर्फ़ ड्यूग्ररस भी कहते हैं) द्रव वायु, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन रखने के काम आते हैं। आगे चलकर हम बताएंगे कि इन गैसों को द्रवित कैसे बनाया जाता है*।

संवहन

अगर पानी ऊष्मा का ख़राब संवाहक है तो वह चायदानी में गरम कैसे हो जाता है? हवा तो पानी से भी ख़राब संवाहक है; तब यह समझ में नहीं आता कि कमरे के हर हिस्से में सर्दियों में तापमान एकसमान कैसे रहता है।

चायदानी में पानी गुरुत्वाकर्षण के कारण जल्दी उबल जाता है। पानी की निचली तहें गर्म होकर फैलती हैं, हलकी हो जाती हैं और ऊपर की ओर उठती हैं और उनकी जगह ठण्डा पानी ले लेता है। संवहन के कारण ही पानी जल्दी गरम हो जाता है। अंतरिक्ष यान में चायदानी में पानी गरम करना इतना सरल नहीं होगा।

पानी के संवहन के बारे में हमने पहले भी उल्लेख किया था, परन्तु संवहन शब्द का प्रयोग किए बिना। ऐसा हमने तब किया था जब यह बताया था कि नदियों में पानी सर्दियों में तह तक क्यों नहीं जमता है।

---

*जिस किसी ने थर्मस देखा है, उसने यह देखा होगा कि उसकी दीवारें हमेशा चमकती हैं। इसका क्या कारण है? कारण यह है कि ऊष्मा संवाहकता जिसके बारे में हमने पहले चर्चा की है, ऊष्मा स्थानान्तरण का एकमात्र साधन नहीं है। एक और साधन भी है विकिरण, जिसके बारे में दूसरी पुस्तक में उल्लेख करेंगे। सामान्य स्थितियों में ऊष्मा चालकता की अपेक्षा उसका प्रभाव बहुत कम परन्तु प्रत्यक्ष होता है। विकिरण को कम करने के लिए ही थर्मस बोतल की दीवारों पर पालिश किया जाता है।

क्या कारण है कि घरों को गरम रखनेवाली बैटरियां फ़र्श के पास लगी होती हैं और रोशनदान खिड़की के ऊपरी भाग में लगा होता है? रोशनदान अगर नीचे लगा होता तो उसे खोलना आसान होता, और बैटरी को छत पर लगाना अच्छा होता ताकि वह फ़र्श पर जगह मत घेरे।

अगर हमने इस राय को मान लिया होता तो शीघ्र ही हमें मालूम हो गया होता कि कमरा गरम नहीं हो रहा है और खिड़की खुली होने पर भी कमरे में ताज़ी हवा नहीं आ रही है।

कमरे में हवा के साथ वही होता है जो कि चायदानी में पानी से। जब कमरे को गरम करनेवाली बैटरी को चालू करते हैं तो कमरे के निचले भाग की हवा गरम होने लगती है। हवा फैलती है और हल्की होकर ऊपर छत की ओर उठती है। उसकी जगह ठंडी हवा की ज़्यादा भारी परतें लेती हैं। वे भी गरम ही होकर छत की ओर ऊपर चली जाती हैं। इस प्रकार कमरे में हवा का निरन्तर प्रवाह शुरू हो जाता है – गरम हवा नीचे से ऊपर जाती है और ठंडी हवा ऊपर से नीचे आती है। सर्दियों में रोशनदान खोलने पर ठंडी हवा कमरे में आती है। वह कमरे की हवा से भारी होती है, इसलिए वह नीचे की ओर जाती है और गरम हवा का स्थान लेती है। गरम हवा ऊपर की ओर जाती है और रोशदान से बाहर निकल जाती है।

मिट्टी के तेल का लैम्प उसी समय अच्छा जलता है जब उसके ऊपर लम्बी शीशे की चिमनी लगी हो। यह सोचना गलत होगा कि लौ को हवा से बचाने के लिए चिमनी का इस्तेमाल किया जाता है। शान्त मौसम में लैम्प पर चिमनी लगाने से रोशनी एकदम बढ़ जाती है। चिमनी की भूमिका इसमें निहित है कि वह लौ के वास्ते हवा की धारा – वात प्रवाह – बढ़ाती है। ऐसा इसलिए होता है कि चिमनी के अन्दर की हवा, जिसमें ऑक्सीजन लौ को जलाने के लिए खर्च हो चुकी होती है, जल्दी गरम होकर ऊपर की ओर उठती है और उसकी जगह लेने के वास्ते ठंडी हवा लैम्प के ज्वालक में बनाए गए छेदों में से आती है।

चिमनी जितनी अधिक ऊंची होगी लैम्प उतना ही अच्छा जलेगा। वास्तव में लौ की ओर बढ़नेवाली ठंडी हवा की तीव्रता इस लैम्प में गरम हवा के स्तम्भ के भार तथा लैम्प के बाहर की ठंडी हवा के भार के अन्तर पर निर्भर करती है। हवा का स्तम्भ जितना ऊंचा होगा उतना ही अधिक

भारों में अन्तर होगा तथा हवा के बदलने की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी।

यही कारण है कि मिलों की चिमनियां ऊंची होती हैं। मिलों की भट्ठियों के लिए हवा की काफ़ी तेज़ धारा की आवश्यकता पड़ती है, वात प्रवाह अच्छा होना चाहिए। यह ऊंची चिमनियों की बदौलत उपार्जित किया जाता है।

संवहन की अनुपस्थिति के कारण गुरुत्वाकर्षणहीन रॉकेट में, माचिस का, लैम्पों या गैस ज्वालकों का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है: दहन गैसें लौ को बुझा देंगी।

हवा ख़राब चालक है: इसकी मदद से हम गरमी को सुरक्षित रख सकते हैं, लेकिन एक शर्त पर, अगर संवहन न हो, अर्थात ठंडी और गरम हवाओं का मिलन न होने पर। संवहन हवा के ऊष्मा रोधक गुणों को समाप्त कर देता है।

अनेक प्रकार के सरंध्र (porous) तथा रेशेदार पिंडों का इस्तेमाल कर संवहन को समाप्त किया जा सकता है। ऐसे पिंडों में हवा को अपना स्थान बदलना मुश्किल होता है। ऐसे सब पिंड अच्छे ऊष्मा रोधक मात्र इसलिए होते हैं कि उनमें हवा होती है। रेशों या छिद्रों की दीवारों की ऊष्मा संवाहकता बहुत कम भी नहीं हो सकती है।

समूरदार कोट की फर में जितने अधिक और घने बाल होंगे वह उतना ही अच्छा तथा गरम होगा। समुद्री बतख़ के पंखों का, जिनके रेशे अति बारीक होते हैं, आधे किलोग्राम से हल्के गरम सोने के थैले बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जिनमें भभरे ऐसे आधा किलोग्राम पंख अपने अन्दर उतनी ही हवा "रोक" सकते हैं जितनी की दस किलो रूई।

संवहन को कम करने के लिए दोहरे फ़्रेम बनाते हैं। शीशों के बीच की हवा कमरे के अन्दर हवा की परतों को मिलाने में हिस्सा नहीं लेती है।

इसके विपरीत वायु की प्रत्येक क्रिया मिलाने की क्रिया को तीव्र करती हैं और ऊष्मा स्थानांतरण को बढ़ाती हैं। यही कारण है कि जब हमें गरमी से शीघ्र पीछा छुड़वाना होता है, तो हम या तो हाथ के पंखे का या बिजली के पंखे का इस्तेमाल करते हैं। फलतः हवा चलने पर ठंड लगती है। लेकिन अगर हवा का तापमान हमारे शरीर के तापमान से अधिक है तो स्थानांतरण का परिणाम उलटा होगा और हवा गरम सांस जैसी लगेगी।

बायलर का उपयोग आवश्यक तापमान पर भाप प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसके वास्ते गुरुत्व क्षेत्र में स्वाभाविक संवहन का होना ज़रूरी नहीं है। यही कारण है कि स्टीम बायलर डिज़ाइन करते समय पानी और भाप के तीव्र परिसंचारण (circulation) की, जिसके कारण ठण्डे और गरम पानी की सतहों का स्थानांतरण होता है, समस्या पर विशेष तौर पर ध्यान दिया जाता है।

१२. पदार्थ की स्थितियां

लौह वाष्प तथा ठोस हवा

है न शब्दों का यह अजीब संगठन? लेकिन यह सब बेकार की बात नहीं हैं: लौह वाष्प तथा दृढ़ हवा दोनों ही का प्रकृति में अस्तित्व है। हां, यह सच है कि सामान्य स्थितियों में नहीं।

किन स्थितियों में ऐसा होता है? पदार्थ की स्थिति दो बातों पर निर्भर करती है: दाब तथा तापमान।

हम आपेक्षाकृत कम बदलती स्थितियों में रह रहे हैं। हवा का दाब वायुमंडलीय दाब ($1 \, kg.f/cm^2$) से कुछ प्रतिशत ही कम या अधिक होता है; हवा का तापमान, उदाहरणार्थ, मास्को के इलाके में -30 से $+30$ तक बदलता है। परम ताप स्केल पर, जिसमें सबसे कम सम्भव तापमान -273° को शून्य माना गया है, मास्को का तापमान $240-300^\circ K$ होगा। यह भी औसत परिमाण से केवल 10% है।

स्वाभाविक है कि हम सामान्य स्थितियों के इतना अभ्यस्त हो चुके हैं कि जब हम कहते हैं कि "लोहा दृढ़ पिंड है और हवा गैस है", तो यह और कहना भूल जाते हैं कि "सामान्य स्थितियों में"।

यदि लोहे को गर्म किया जाए तो वह पहले पिघलेगा, फिर वाष्प में परिवर्तित हो जाएगा। अगर हवा को ठण्डा किया जाए तो वह पहले द्रव में परिवर्तित होगी और फिर जम जाएगी।

यदि पाठक ने कभी लौह वाष्प और दृढ़ हवा को देखा नहीं भी है, तो वह शायद इस बात पर सरलता से विश्वास कर लेगा कि किसी भी पदार्थ को तापमान में परिवर्तन करने से दृढ़, द्रव्य तथा गैस स्थिति में परिवर्तित किया जा सकता है या दूसरे शब्दों में दृढ़, द्रव तथा गैस रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

इस बात पर आसानी से विश्वास इसलिए किया जा सकता है कि एक पदार्थ को, जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन असम्भव होता, हर किसी ने गैस, द्रव्य तथा दृढ़ अवस्था में देखा है। यह पदार्थ है पानी।

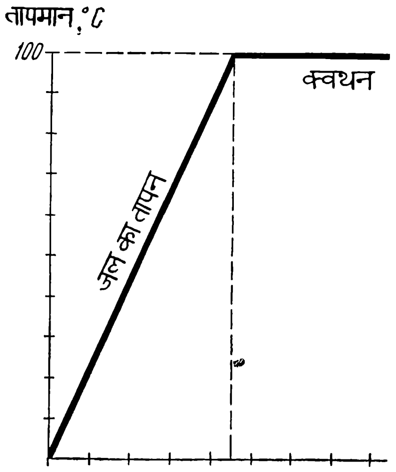
किन परिस्थितियों में पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं?

क्वथन

अगर चायदानी में रखे पानी में तापमापी डुबोकर हीटर चालू कर दिया जाए तो निम्नलिखित देखने में आता है: थर्मामीटर में पारा जल्दी से ऊपर चढ़ने लगता है, तापमान 90°, 95° तथा अन्त में 100° हो जाता है। पानी उबलना शुरू करता है और इसके साथ ही थर्मामीटर में पारा और ऊपर चढ़ना बंद हो जाता है। पानी को खौलते अब कई मिनट हो गये हैं लेकिन पारे का स्तर बदलता नहीं है। जब तक सारा पानी वाष्पित न हो जाए, तापमान में कोई परिवर्तन नहीं होगा (चित्र 97)।

अगर तापमान बदलता नहीं है तो ऊष्मा किस चीज़ पर ख़र्च होती है? उत्तर स्पष्ट है, पानी को वाष्प में परिवर्तित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

आइए, अब एक ग्राम पानी की ऊर्जा और उससे प्राप्त एक ग्राम वाष्प की ऊर्जा की तुलना करें। वाष्प के अणु पानी के अणुओं की तुलना में एक-दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होते हैं। स्पष्ट है कि इस कारण पानी की स्थितिज ऊर्जा वाष्प की स्थितिज ऊर्जा से भिन्न होगी।



चित्र 97

आकर्षित हो रहे कणों की स्थितिज ऊर्जा उनको पास लाने से कम हो जाती है। इसलिए वाष्प की ऊर्जा पानी की ऊर्जा से अधिक होती है और पानी को वाष्प में परिवर्तित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह अतिरिक्त ऊर्जा ही चायदानी में खौल रहे पानी को हीटर से मिलती है।

जिस ऊर्जा की पानी को वाष्प में परिवर्तित करने के वास्ते आवश्यकता पड़ती है, उसे वाष्पन ऊष्मा कहते हैं। एक ग्राम पानी को वाष्प में परिवर्तित करने के लिए 539 कैलोरी की आवश्यकता पड़ती है (इतनी कैलोरी की 100°C पर ज़रूरत पड़ती है)।

अगर एक ग्राम पानी को वाष्प में बदलने के लिए 539 cal की आवश्यकता पड़ती है, तो पानी के एक ग्राम-अणु के लिए $18 \times 539 =$ 9700 cal की आवश्यकता पड़ेगी। इतनी ही ऊष्मा की अंतराअणुक बन्धन को तोड़ने के लिए आवश्यकता होती है।

इसकी कार्य के परिमाण के साथ तुलना की जा सकती हैं, जो अंतराअणुक बन्धन को तोड़ने के लिए व्यय किया जाता है। पानी के एक ग्राम-अणु वाष्प को परमाणुओं में विघटित करने के लिए लगभग 220000 cal यानी 25 गुना अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यह बात प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध करती है कि अणुओं के बन्धन-बल अणुओं में परमाणुओं के बन्धन बलों की अपेक्षा कमज़ोर होते हैं।

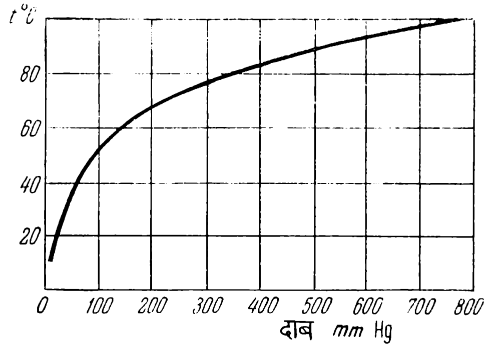
क्वथनांक की दाब पर निर्भरता

पानी का क्वथनांक 100° हैं; यह कहा जा सकता है कि यह पानी का स्वाभाविक गुण है अर्थात पानी किन्हीं भी परिस्थितियों में अथवा किसी भी जगह पर क्यों न हो वह हमेशा 100°C पर ही उबलेगा।

लेकिन ऐसा नहीं होता है। पहाड़ों पर रहनेवाले लोग इसके बारे में अच्छी तरह जानते हैं।

एल्ब्रुस पहाड़ की चोटी से थोड़ा नीचे पर्यटकों के लिए एक विश्राम गृह तथा वैज्ञानिक केन्द्र स्थित हैं। अनाड़ी प्रायः इस बात पर आश्चर्य प्रगट करते हैं कि गर्म पानी में "अंडे को पकाना कितना मुश्किल हैं" या "उबलता पानी हाथ को जलाता क्यों नहीं"। यह समझाने के वास्ते उन्हें बताते हैं कि पानी एल्ब्रुस की चोटी पर 82°C पर उबलता है।

क्या कारण है इसका? यहां कौन-सा भौतिक कारक क्वाथी परिघटना में रुकावट डालता है? और समुद्री सतह से ऊंचाई का क्वथनांक पर क्या प्रभाव पड़ता है?



चित्र 98

यह भौतिक कारक है दाब, जो द्रव की सतह पर प्रभाव डालता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए पहाड़ की चोटी पर जाने की आवश्यकता नहीं है।

पानी को घण्टाकार बर्तन में रखकर और उसमें हवा भरने या उसमें से हवा निकालने पर यह बात समझ में आ जाती है कि क्वथनांक दाब में वृद्धि के साथ बढ़ता और दाब में कमी होने पर घटता है।

पानी 100°C पर केवल 760 mm Hg दाब पर ही उबलता है।

चित्र 98 में दाब क्वथनांक वक्र रेखा दिखाई हुई है। एल्ब्रुस पहाड़ की चोटी पर दाब केवल 0.5 atm है, इस दाब पर जल 82°C पर उबलने लगता है।

10—15 mm Hg दाब पर उबलनेवाले पानी से गर्मियों में स्नान किया जा सकता है। इस दाब पर पानी का क्वथनांक 10—15°C तक गिर जाता है।

ऐसा "क्वाथी जल" भी प्राप्त किया जा सकता है जिसका तापमान अतिशीत जल के तापमान के बराबर होगा। इसके वास्ते दाब को 4.6 mm Hg तक लाना होगा।

एक बहुत ही रोचक चीज़ देखने में आयेगी, अगर पानी भरे बर्तन को घण्टानुमा बर्तन में रखकर उसमें से हवा निकालनी शुरू की जाए। यह क्रिया पानी को खौलने पर विवश करेगी, लेकिन उबलने के वास्ते ऊष्मा चाहिए। ऊष्मा कहीं से भी नहीं मिल सकती है, तथा पानी को अपनी

ऊर्जा देनी पड़ेगी। उबलते हुए पानी का तापमान कम होने लगेगा, हवा निकालने की क्रिया जारी है इसलिए दाब भी कम हो जाएगा। इस कारण पानी उबलना बन्द नहीं करेगा, पानी और ज़्यादा ठण्डा होता रहेगा तथा अन्ततः जम जाएगा।

ठंडे पानी का ऐसे उबलना केवल हवा निकलने पर ही सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के लिए, जब समुद्री जहाज़ का नोदक पंखा घूमता है तो तेज़ी से हिल रहे पानी की परत में, जो कि धातु की सतह के पास है, दाब बहुत कम हो जाता है और पानी इस परत में उबलने लगता है अर्थात उसमें अनेक वाष्पीय बुलबुले उत्पन्न होते हैं। इस परिघटना को कोटरन (cavitation) कहते हैं।

दाब कम करने पर क्वथनांक कम होता है। और अगर दाब बढ़ा दिया जाए, तो? इस प्रश्न का उत्तर भी चित्र 98 में दिखाए गए ग्राफ़ जैसे ग्राफ़ से मिल सकता है। 15 atm दाब पर पानी केवल 200°C पर ही उबलेगा। और 80 atm दाब पर पानी 300°C पर उबलेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि निश्चित बाह्य दाब पर पानी का निश्चित क्वथानांक होता है। इस बात को "उलटे" तरीके से भी कहा जा सकता है: प्रत्येक क्वथनांक का अपना ही निश्चित दाब होता है। इस दाब को वाष्प दाब (vapour tension) कहते हैं।

क्वथनांक दाब ग्राफ़ एक साथ ही वाष्प दाब और तापमान का परितंत्रता संबंध (dependence relation) है।

ग्राफ़ पर लिखें क्वथनांक (या वाष्प दाब) यह बताते हैं कि वाष्प दाब तापमान में परिवर्तन होने पर बहुत ज़्यादा बदल जाता है। यदि 0°C या 273°K पर वाष्प दाब 4.6 mm Hg है, तो 100°C या 373°K पर वह 760 mm Hg होता है, अर्थात 165 गुना बढ़ जाता है। तापमान को दुगुना करने पर अर्थात 0°C, या 273°K, से 273°C, या 546°K, तक बढ़ा दिया जाए तो वाष्प दाब 4.6 mm Hg से लगभग 60 atm तक बढ़ जाता है, अर्थात 10,000 गुना अधिक हो जाता है।

इसलिए, इसके विपरीत, क्वथनांक दाब के बदलने से बहुत धीरे-धीरे बदलता है। दाब दो गुना बढ़ाने पर – 0.5 atm से 1 atm तक – क्वथनांक 82°C (यानी 355°K) से 100°C (यानी 373°K) हो जाएगा। दाब

1 atm से 2 atm तक बढ़ाने से क्वथनांक 100°C (यानी 373°K) से 120°C (यानी 393°K) हो जाएगा।

वही वक्र रेखा, जिसका हम अध्ययन कर रहे थे, वाष्प का पानी में संघनन की क्रिया पर भी लागू होती है।

वाष्प को पानी में या तो ठंडा करके या संपीडन करके बदला जा सकता है।

क्वथन और संघनन दोनों की क्रिया के समय बिन्दु वक्र रेखा से नहीं विस्थापित होगा, जब तक कि वाष्प पानी में, या पानी वाष्प में पूरी तरह से परिवर्तित न हो जाए। यह निम्नलिखित तरीके से भी सूत्रबद्ध किया जा सकता है: केवल उन स्थितियों में जिनके वास्ते वक्र रेखा खींची गयी है द्रव तथा वाष्प का अस्तित्व सम्भव हो सकता है। ऐसी स्थिति में अगर ऊष्मा न तो निकाली जाए और न ही प्रदान की जाए तो बन्द बर्तन में वाष्प तथा द्रव की मात्राएं अपरिवर्तित रहेंगी। ऐसे वाष्प तथा द्रव के बारे में कहते हैं कि वे साम्यावस्था में हैं और वाष्प को, जो अपने द्रव के साथ संतुलन स्थिति में होता है, संतृप्त वाष्प कहते हैं।

जैसा हम देखते हैं, क्वथन तथा संघनन वक्ररेखा का एक और अर्थ भी है–वह वाष्प तथा द्रव की संतुलन वक्र रेखा भी है। संतुलन वक्र रेखा चित्र के क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती है। बायीं ओर और ऊपर की ओर (ज़्यादा तापमान तथा कम दाब) वाष्प की स्थिर स्थिति का क्षेत्र है। दायीं और नीचे की ओर द्रव की स्थिर स्थिति का क्षेत्र है।

वाष्प-द्रव संतुलन वक्र रेखा यानी तापमान की दाब पर निर्भरता व्यक्त करनेवाली वक्र रेखा या तापमान पर वाष्पीय दाब की निर्भरता व्यक्त करनेवाली रेखा सभी द्रवों के लिए लगभग एकसमान है। कुछ द्रवों के लिए यह परिवर्तन कुछ अधिक, और कुछ द्रवों के लिए कम हो सकता है, लेकिन तापमान में वृद्धि के साथ-साथ वाष्प दाब बहुत तेज़ी से बढ़ता है।

हमने "गैस" और "वाष्प" शब्दों का अब तक बहुत इस्तेमाल किया है। ये दोनों शब्द बहुत हद तक एक ही अर्थ रखते हैं। यह कहा जा सकता है कि पानी की गैस वाष्प है, ऑक्सीजन गैस तरल ऑक्सीजन का वाष्प है, आदि। फिर भी इन शब्दों को इस्तेमाल करने की कुछ आदत-सी पड़ गई है। चूंकि हम तापमानों के किसी निश्चित लेकिन आपेक्षाकृत छोटे अंतराल के आदी हो चुके हैं, इसलिए "गैस" शब्द का इस्तेमाल हम उन

पदार्थों के लिए करते हैं जिनका वाष्पीय दाब सामान्य तापमानों पर वायुमंडलीय दाब से अधिक होता है। इसके विपरीत वाष्प शब्द का प्रयोग हम तब करते हैं जब सामान्य तापमान पर तथा वायुमंडलीय दाब पर पदार्थ द्रव अवस्था में अधिक स्थिर होता है।

वाष्पन

क्वथन एक द्रुत क्रिया है, और थोड़े समय बाद ही उबलते पानी का निशान मात्र तक भी नहीं रहता, वह वाष्प में परिवर्तित हो जाता है।

लेकिन पानी या किसी और द्रव के वाष्प में बदलने का एक और तरीक़ा भी है – इसे वाष्पन कहते हैं। वाष्पन हर तापमान पर होता रहता है और दाब पर निर्भर नहीं करता है। सामान्य स्थितियों में दाब हमेशा 760 mm Hg के लगभग होता है। वाष्पन क्वथन की अपेक्षा बहुत धीमी क्रिया है। इत्र की शीशी, जिसका ढक्कन बन्द करना हम भूल गये थे, कुछ दिनों बाद ख़ाली हो जाएगी ; प्लेट में रखा पानी बहुत समय तक रहेगा, लेकिन कभी न कभी वह भी ख़ाली हो जाएगी।

वाष्पन क्रिया में हवा बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। वह पानी को वाष्पित हो जाने से नहीं रोकती है। द्रव की सतह को नंगा करते ही पानी के अणु हवा की सबसे पासवाली परत में जाना शुरू कर देते हैं। इस परत में वाष्प का घनत्व बढ़ना शुरू होगा और कुछ समय बाद वाष्प का दाब माध्यम के तापमान के लिए लाक्षणिक वाष्प दाब के बराबर हो जाएगा। ऐसा होने पर वाष्प दाब उतना ही होगा जितना कि हवा की अनुपस्थिति में।

वाष्प का हवा में जाने का निस्सन्देह यह मतलब नहीं कि दाब बढ़ जाता है। पानी की सतह के ऊपरी आकाश में कुल दाब बढ़ता नहीं है, इस दाब में केवल एक अंश, जो वाष्प अपने साथ लाता है, बढ़ जाता है, और तदानुसार वाष्प द्वारा प्रतिस्थापित हवा का अंश कम हो जाता है।

पानी के ऊपर वाष्प होता है जो हवा के साथ मिला होता है। इसके ऊपर हवा का संस्तर होता है जिसमें वाष्प नहीं होता है। वे एक दूसरे के साथ अवश्यंभावी मिलेंगे। जल-वाष्प अधिक ऊंचे संस्तरों में निरन्तर जाता रहेगा और निचले संस्तर में उसकी जगह हवा लेगी, जिसमें पानी के अणु

नहीं होते हैं। इसलिए पानी के सबसे पास के संस्तर में पानी के नए अणुओं के लिए हमेशा जगह ख़ाली होती रहेगी। पानी निरन्तर उड़ता रहेगा और सतह पर वाष्प दाब जितना दाब रहता है और यह क्रिया तब तक चलती है जब तक पानी पूर्णतः उड़ नहीं जाता है।

अनुच्छेद के शुरू में हमने इत्र तथा पानी के उदाहरण दिए थे। यह बात भी अच्छी तरह से मालूम है कि उनका वाष्पन अलग-अलग तीव्रता से होता है। ईथर बहुत ही जल्दी उड़ जाता है, स्पिरिट भी काफ़ी तेज़ी से वाष्पित होती है, लेकिन पानी का वाष्पन बहुत धीरे होता है। इसका क्या कारण है, इसके बारे में हम सन्दर्भ पुस्तक में से इन द्रवों के वाष्प दाब, उदाहरण के लिए कमरे के तापमान पर, मालूम करने पर हमें तुरन्त पता चल जाता है। आंकड़े निम्नलिखित हैं ईथर, स्पिरिट तथा पानी के वाष्प दाब क्रमशः 437 mm, 44.5 mm और 17.5 mm Hg हैं।

वाष्प दाब जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक वाष्प हवा के निकट-वर्ती संस्तर में होगा और उतनी ही तेज़ी से द्रव वाष्पित हो जाएगा। हम यह जानते हैं कि वाष्प दाब तापमान के साथ बढ़ता है। स्पष्ट है कि गरम करने पर वाष्पन दर बढ़ जाता है।

वाष्पन दर को दूसरे तरीकों से भी प्रभावित किया जा सकता है। वाष्पन क्रिया को तेज़ करने के वास्ते द्रव से वाष्प को शीघ्र निकालना चाहिए, दूसरे शब्दों में हवा को अधिक तेज़ी से मिलाना चाहिए। यही कारण है कि द्रव में हवा फूंकने पर वाष्पन तीव्र गति से होता है। पानी, हालांकि उसका वाष्प दाब अपेक्षाकृत कम है, बहुत जल्दी उड़ जाता है, अगर पानी भरी प्लेट को हवा के बहाव की विपरीत दिशा में रखा जाए।

अब समझ में आया, पानी में से निकलने पर तैराक ठंड महसूस क्यों करता है। वायु-प्रवाह हवा तथा वाष्प के मिलने की क्रिया को तीव्र कर देती है, अर्थात वाष्पन को तेज़ कर देती है और वाष्पन के लिए ऊष्मा तैराक के शरीर को देनी पड़ती है।

मनुष्य की तबीयत इस बात पर निर्भर करती है कि हवा में पानी के वाष्प कम हैं या अधिक। सूखी तथा नम हवा अप्रिय होती है। 60% आर्द्रता (humidity) सामान्य मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि एक ही तापमान पर जल-वाष्प का घनत्व पानी के संतृप्त वाष्प का 60% है।

यदि आर्द्र हवा को ठंडा किया जाए तो अन्ततः उसमें जल-वाष्पों का दाब उसी तापमान पर वाष्प दाब के बराबर हो जाएगा। वाष्प संतृप्त हो जाएगी और तापमान और कम करने पर पानी में द्रवित होना शुरू कर देगी। घास तथा पत्तों को भिगोने वाली प्रातःकालीन ओस के बनने का भी यही कारण है।

20°C पर हवा के संतृप्त वाष्पों का घनत्व लगभग 0.00002 g/cm^3 होता है। अगर इस संख्या के 60% के बराबर अर्थात 1 cm^3 में 1 ग्राम के एक लाखवें हिस्से से थोड़े अधिक जल-वाष्प हवा में उपस्थित हों तो हमारी तबीयत ठीक होगी।

हालांकि यह संख्या बहुत कम है, लेकिन कमरे के लिए यह पानी की पर्याप्त मात्रा है। यह जानना कठिन नहीं है कि 12 m^2 क्षेत्रफलवाले कमरे में, जिसकी ऊंचाई 3 मीटर है, तो एक किलोग्राम पानी संतृप्त वाष्प के रूप में "उपस्थित" हो सकता है।

इसका मतलब यह हुआ कि अगर ऐसे एक कमरे में पानी से भरे ड्रम को, जिसका मुंह खुला हो, रखकर उसे बन्द कर दिया जाए तो एक लिटर पानी वाष्पित होगा, ड्रम का आयतन चाहे कितना भी क्यों न हो।

इस परिणाम की (पानी के लिए) पारे के वास्ते आंकड़ों के साथ तुलना करना रोचक होगा। उसी तापमान पर (20°C) पारे के संतृप्त वाष्प का घनत्व 10^{-8} g/cm^3 होता है। 12 m^2 क्षेत्रफलवाले कमरे में 1 g से अधिक पारा "उपस्थित" नहीं हो सकता है।

सत्य तो यह है कि पारे के वाष्प बहुत ही ज़हरीले हैं, और पारे के 1 ग्राम वाष्प किसी भी मानव के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा सकते हैं। पारे से काम करते समय इस बात का ध्यान करना चाहिए कि उसकी एक बूंद भी न गिरे।

क्रांतिक तापमान

गैस को द्रव में किस प्रकार बदला जा सकता है? क्वथन की क्रिया को चित्रित करनेवाले ग्राफ़ से इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। गैस को द्रव में केवल तापमान कम करने या दाब अधिक करने पर ही बदला जा सकता है।

19 वीं सदी में दाब को अधिक करना तापमान को कम करने की अपेक्षा

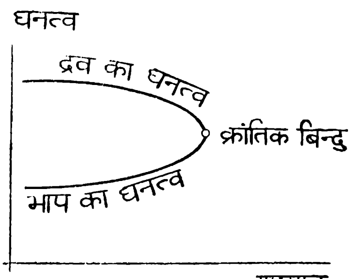
आसान समझा जाता था। इस सदी के शुरू में इंगलैंड के महान भौतिक-विज्ञानी माइकेल फैराडे गैसों को वाष्प दाब तक संपीडित करने में सफल हुए। उन्होंने क्लोरीन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि को द्रव में परिवर्तित किया।

लेकिन कुछ गैसों, जैसे हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन को वह किसी भी प्रकार द्रव स्थिति में नहीं ला सके। दाब बहुत ज़्यादा बढ़ाने पर भी वे द्रव में परिवर्तित नहीं हुईं। यह कहा जा सकता था कि आक्सीजन तथा दूसरी गैसें द्रव नहीं हो सकती हैं, फलतः उनकी वास्तविक तथा स्थिर गैसों में गिनती हुई।

वास्तव में इन असफलताओं का कारण था एक महत्वपूर्ण तथ्य की नसमझी।

आइए, अब द्रव तथा वाष्प का संतुलन स्थिति में अध्ययन करें, और यह देखें कि क्वथनांक में और, अवश्य, दाब में वृद्धि करने पर उनके साथ क्या होता है। दूसरे शब्दों में, ज़रा कल्पना करें कि क्वथन के ग्राफ़ में बिन्दु वक्र रेखा के साथ-साथ ऊपर की ओर जाता है। स्पष्ट है कि तापमान में वृद्धि करने पर द्रव फैलता है और उसका घनत्व कम होता है। जहां तक वाष्प का सम्बन्ध है तो क्वथनांक में बढ़ोतरी, निस्सन्देह, वाष्प के फैलाव में सहायता करती है। लेकिन, जैसा कि हमने पहले बताया है, संतृप्त वाष्प का दाब क्वथनांक की अपेक्षा अधिक तेज़ी से बढ़ता है। इसलिए वाष्प का घनत्व कम नहीं होता है, लेकिन इसके विपरीत क्वथनांक में वृद्धि के साथ तेज़ी से बढ़ता है।

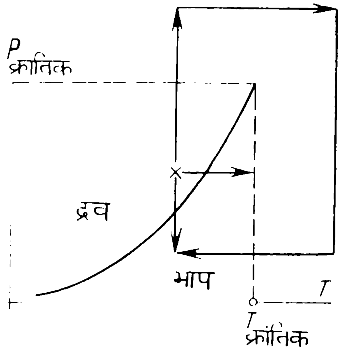
द्रव का घनत्व चूंकि कम और वाष्प का घनत्व अधिक होता है, तो क्वथन वक्र रेखा के साथ-साथ "ऊपर" जाने पर हम अवश्य ही ऐसे बिन्दु पर पहुंचेंगे जहां द्रव तथा वाष्प के घनत्व बराबर होंगे (चित्र 99)।



चित्र 99

इसी बिन्दु पर, जिसे क्रान्तिक बिन्दु कहते हैं, क्वथन वक्र रेखा टूट जाती है। क्योंकि गैस और द्रव के बीच सब अन्तर घनत्व के

अन्तर से सम्बन्धित होते हैं, इसलिए क्रान्तिक बिन्दु पर द्रव तथा गैस के गुण समान हो जाते हैं। हर पदार्थ का अपना क्रान्तिक ताप और अपना क्रान्तिक दाब है।पानी का क्रान्तिक ताप 374°C और दाब 218.5 atm है।



चित्र 100

अगर क्रांतिक ताप से कम तापमान पर गैस को संपीडित किया जाए तो उसकी संपीडन क्रिया क्वथन वक्र को काटते हुए तीर से चित्रित होगी (चित्र 100)। इसका मतलब यह हुआ कि जब दाब वाष्प दाब के बराबर हो जाता है (वक्र तीर का प्रतिच्छेद बिन्दु), तो गैस द्रवित होना शुरू करती है। अगर हमारा बर्तन पारदर्शी होता तो इस पल हम बर्तन के तले पर द्रव के संस्तर का बनना देखते। दाब स्थिर होने पर द्रव की परत बढ़ेगी जब तक कि समग्र गैस द्रव में परिवर्तित नहीं हो जाती है। और अधिक संपीडन के लिए दाब को और अधिक बढ़ाना पड़ेगा।

क्रांतिक ताप से अधिक तापमान पर गैस को संपीडित करने पर एकदम दूसरा चित्र देखने को मिलता है। यहां भी संपीडन की क्रिया को तीर से चित्रित कर सकते हैं, जो नीचे से ऊपर की ओर जाता है। लेकिन अब यह तीर वक्र रेखा को काटता नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि संपीडन के दौरान वाष्प द्रव अवस्था में परिणत नहीं होगा, बल्कि उसका घनत्व निरन्तर बढ़ता जाएगा।

क्रान्तिक ताप से ऊपर पृथक्करण सीमा द्वारा वियुक्त द्रव तथा गैस का अस्तित्व सम्भव नहीं है। किसी भी घनत्व तक संपीडन करने पर पिस्टन के नीचे एक सामांगी पदार्थ होगा और यह कहना मुश्किल होगा कि किस क्षण उसे गैस या द्रव कहा जाए।

क्रान्तिक बिन्दु का अस्तित्व बताता है कि द्रव तथा गैस अवस्थाओं के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं है। पहली दृष्टि में ऐसा लग सकता है कि ऐसा कोई मुख्य अन्तर तब नहीं होगा, जबकि क्रान्तिक ताप से अधिक तापमान हो। लेकिन ऐसा नहीं है। क्रान्तिक बिन्दु का अस्तित्व यह बताता

है कि द्रव को, उस वास्तविक द्रव को, जिसे गिलास में डाला जा सकता है, उबालने जैसी क्रिया के बिना ही गैस में परिवर्तित करना सम्भव है।

परिवर्तन का यह तरीक़ा चित्र 100 में दिखाया गया है। क्रॉस से द्रव व्यक्त किया गया है। दाब थोड़ा कम करने पर (तीर नीचे की ओर) द्रव उबलने लगेगा। तापमान में थोड़ी वृद्धि करने पर भी (तीर दायीं ओर) द्रव उबलेगा। लेकिन हम दूसरा तरीक़ा भी अपना सकते हैं। द्रव को बहुत तेज़ी से क्रान्तिक दाब से अधिक दाब तक दबाएंगे। द्रव की अवस्था को व्यक्त करनेवाला बिन्दु, अभिलम्ब रूप से ऊपर की ओर जाएगा। इसके बाद द्रव को गरम करेंगे। क्षैतिज रेखा इस क्रिया को व्यक्त करती है। और जब हम क्रान्तिक ताप की दायीं ओर हैं, दाब को प्रारम्भिक दाब तक कम कर दें। अब अगर तापमान को कम कर दिया जाए तो असली वाष्प प्राप्त की जा सकती है। यह वाष्प द्रव में से काफ़ी सरल तथा छोटे तरीक़े से भी प्राप्त की जा सकती थी।

क्रान्तिक बिन्दु के आस-पास दाब तथा तापमान में परिवर्तन करने से वाष्प को द्रव में या द्रव को वाष्प में निरन्तर बदलने से वाष्प हमेशा प्राप्त किया जा सकता हैं। ऐसे निरन्तर परिवर्तन के लिए आवश्यक नहीं है कि क्वथन या द्रवण हो।

ऐसी गैसों, जैसे ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन को द्रव में परिवर्तित करने के पहले प्रयत्न इसीलिए असफल सिद्ध हुए कि क्रान्तिक ताप के अस्तित्व का पता नहीं था। इन गैसों का क्रान्तिक ताप बहुत कम है: नाइट्रोजन का क्रांतिक ताप $-147°C$, ऑक्सीजन का $-119°C$, हाइड्रोजन $-240°C$, या $33°K$ है। हीलियम का क्रांतिक ताप तो बहुत ही कम है, केवल $4.3°K$ है। इन गैसों को द्रव में केवल ऊपरलिखित तापमानों से अधिक तापमानों तक ठण्डा करने पर ही द्रव में परिवर्तित किया जा सकता है।

निम्न ताप प्राप्त करना

कई तरीक़ों से तापमान में काफ़ी कमी की जा सकती है। यह सब तरीक़े एक ही बात पर आधारित है: उस पिंड को, जिसे ठंडा करना है, अपनी आंतरिक ऊर्जा ख़र्च करने पर विवश करना।

लेकिन यह कैसे किया जा सकता है? निम्न ताप प्राप्त करने के तरीक़ों में से एक तो यह है कि द्रव को बाहर से ऊष्मा प्रदान किए बिना उबलने पर विवश किया जाय। ऐसा करने के वास्ते, जैसा कि हम जानते हैं, दाब को कम करना चाहिए यानी दाब वाष्प दाब के बराबर होना चाहिए। क्वथन पर ख़र्च होनेवाली ऊष्मा द्रव से ही ली जाएगी, और द्रव तथा वाष्प का तापमान तथा उसके साथ वाष्प दाब गिरेंगे। यही कारण है कि द्रव भरे बर्तन से निरन्तर हवा निकालते रहना चाहिए ताकि क्वथन रुके नहीं, बल्कि तीव्र गति से हो।

लेकिन इस क्रिया में तापमान किसी निश्चित सीमा तक ही कम किया जा सकता है: अन्त में वाष्प दाब इतना कम हो जाता है कि बहुत शक्तिशाली चूषण पम्प भी आवश्यक दाब पैदा नहीं कर सकते हैं।

तापमान को और कम करने के लिए प्राप्त द्रव से गैस को ठंडा करके उसे कम क्वथनांक वाले द्रव में बदला जा सकता है। अब चूषण क्रिया को दूसरे पदार्थ के साथ दोहराया जा सकता है। अतः और कम तापमान प्राप्त किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर निम्न ताप प्राप्त करने की इस "क्रमबद्ध" क्रिया को जारी रखा जा सकता है।

पिछली शताब्दी के अन्त में इस तरीक़े का निम्न ताप प्राप्त करने के वास्ते उपयोग किया जाता था: निम्न ताप पाने के वास्ते एथिलीन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन को, जिनके क्वथनांक क्रमशः —103°, —183°, —196° और —253°C हैं, क्रमबद्ध द्रव में परिवर्तित किया जाता था। द्रव हाइड्रोजन उपलब्ध होने पर सबसे कम तापमान पर उबलनेवाला द्रव – हीलियम (—269°C) – भी प्राप्त किया जा सकता है। "बायीं ओर" का पड़ोसी, "दायीं ओर" के पड़ोसी को प्राप्त करने में सहायता करता है।

ठंडा करने की क्रमबद्ध क्रिया लगभग 100 सालों से मालूम है। इस तरीक़े से सन् 1877 में द्रव वायु प्राप्त की गई थी। 1884–1885 में द्रव हाइड्रोजन पहली बार प्राप्त की गयी थी। इसके 20 साल बाद आख़िरी किले पर भी विजय प्राप्त हो गयी: सन् 1908 में केम्मेरलिंग ओनेन्स ने हॉलैंड के लीडन शहर में हीलियम – सबसे कम क्रान्तिक तापवाले पदार्थ – को द्रव में परिवर्तित किया था। पिछले साल इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सफलता की ७० वीं वर्षगांठ मनाई गई थी।

बहुत सालों तक लीडन प्रयोगशाला ही एकमात्र "निम्न ताप प्रयोगशाला" थी। ग्राज हरेक देश में ऐसी दसियों प्रयोगशालाएं ग्रौर तकनीक के लिए द्रव वायु पैदा करनेवाली ग्रनेक मिलें भी हैं।

लेकिन ग्राजकल निम्न ताप प्राप्त करने के लिए क्रमबद्ध क्रिया का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। ग्रब ग्रौद्योगिक उपकरणों में गैस की ग्रांतरिक ऊर्जा कम करने का दूसरा तरीक़ा निम्न ताप प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यहां गैस को शीघ्र फैलने ग्रौर ग्रांतरिक ऊर्जा के व्यय पर काम करने पर विवश किया जाता है।

उदाहरणार्थ ग्रगर कुछेक वायुमंडलीय दाब तक संपीडित वायु को प्रसारित्र (expander) में जाने दिया जाए तो पिस्टन या टरबाइन के चलने से जो कार्य होगा उससे हवा इतनी ग्रधिक ठंडी हो जाएगी कि वह द्रव में परिवर्तित हो जाएगी। कार्बन डाइग्रॉक्साइड गैस, ग्रगर उसे संपीडित गैस सिलिन्डर में से तेज़ी से निकलने दिया जाए, इतनी जल्दी ठंडी हो जाती है कि वह बाहर निकलते ही बर्फ़ में परिवर्तित हो जाती है।

द्रव गैसों का उद्योग में बहुत प्रयोग होता है। द्रव ग्रॉक्सीजन का विस्फोटी तकनीक में जेट इंजनों के ईंधन-मिश्रण के घटक के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

वायु में स्थित विभिन्न गैसों को ग्रलग करने के लिए इंजीनियरिंग में वायु को द्रव में परिवर्तित करने के तरीक़े का प्रयोग किया जाता है, जिसका वर्णन ग्रागे चलकर किया जाएगा।

इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाग्रों में द्रव वायु के तापमान का प्रयोग किया जाता है। लेकिन बहुत से भौतिकीय शोध-कार्यों के वास्ते यह तापमान ज़्यादा निम्न नहीं है। वास्तव में, ग्रगर सेंटीग्रेड ग्रंशों को ताप के परम मापक्रम में व्यक्त किया जाए तो हम देखेंगे कि द्रव वायु का तापमान सामान्य तापमान का लगभग $\frac{1}{3}$ है। "हाइड्रोजन" तापमान ग्रर्थात 14-20°K के बराबर तापमान भौतिक विज्ञान के लिए ग्रधिक रोचक है। "हीलियम" तापमान तो विशेषकर रुचीकर हैं। तरल हीलियम का चूषण करने पर न्यूनतम यानी 0.7°K के बराबर तापमान मिलता है।

भौतिकविदों ने परम शून्य के बहुत पास तक के तापमानों को प्राप्त करने में सफलता पायी है। ग्राज तक जो न्यूनतम तापमान प्राप्त हुग्रा है वह

परम शून्य से केवल 1 अंश के कुछेक हज़ारवें हिस्सों से ऊपर है। लेकिन इतने कम तापमान को प्राप्त करने के लिए उन साधनों का प्रयोग नहीं किया जाता है, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

अति ठंडी वाष्प तथा अति तप्त द्रव

क्वथनांक पार करने पर वाष्प को द्रव में परिणत हो जाना चाहिए। लेकिन पता चलता है कि अगर वाष्प द्रव के सम्पर्क में नहीं है, और अगर वाष्प बहुत ही स्वच्छ है तो अति ठंडी या अतिसंतृप्त वाष्प – वह वाष्प जिसे बहुत पहले ही द्रव में परिणत हो जाना चाहिए था, प्राप्त की जा सकती है।

अतिसंतृप्त वाष्प बहुत ही अस्थिर होती है। कई बार तो एक हल्क़ा-सा झटका या वाष्प के अवकाश में फेंके गए कण ही पर्याप्त होते हैं कि जिस वाष्प को द्रवित होने में देर हो गई थी, वह एकदम द्रवण होना शुरू हो कर दे।

प्रयोग से पता चलता है कि वाष्प के अणुओं का संघनन बहुत सरल हो जाता है अगर वाष्प में बहुत बारीक बाहरी कण हों। धूल में जल-वाष्प की अतिसंतृप्ति नहीं होती है। संघनन केवल धुएं के बादलों द्वारा ही शुरू किया जा सकता है। कण अपने गिर्द अणुओं को इकट्ठा करते और संघनन के केन्द्र बन जाते हैं।

यही कारण है कि अस्थिर होने पर भी वाष्प द्रव के "जीवन" के लिए अनुकूल तापमानों के परिसर में विद्यमान हो सकती है।

क्या द्रव वाष्प के परिसर में उन्हीं स्थितियों में "रह" सकता है? या दूसरे शब्दों में, क्या द्रव को अति तप्त किया जा सकता है?

पता चलता है कि यह सम्भव है। इसके लिए ज़रूरी है कि द्रव के अणु उसकी सतह से अलग न हों। एक आमूल तरीक़ा है – स्वतन्त्र सतह को समाप्त कर दिया जाए, यानी द्रव को एक ऐसे बर्तन में डाल दिया जाए जिसमें वह चारों तरफ़ से दृढ़ दीवारों द्वारा दबा रहे। ऐसा करने पर द्रव को कुछेक अंशों तक अति तप्त किया जा सकता है, यानी द्रवों की स्थिति व्यक्त करनेवाले बिन्दु को क्वथन वक्र से दायीं ओर लाया जा सकता है (चित्र 100)।

अतितापन – यह है द्रव का वाष्प क्षेत्र में जाना। यही कारण है कि द्रव का अतितापन दोनों ऊष्मा देने से तथा दाब कम करने पर सम्भव होता है।

दाब कम करने से आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं। पानी या धुली हुई गैसों से एकदम मुक्त (ऐसा करना आसान नहीं है) किसी द्रव को पिस्टन-सज्जित पात्र में डालते हैं। पिस्टन को ऐसे लगाया जाता है कि वह द्रव की सतह तक पहुंच सके। बर्तन तथा पिस्टन द्रव से तर होने चाहिएं। अब अगर पिस्टन को अपनी ओर खींचा जाए तो पिस्टन के तले के साथ लगा पानी पिस्टन के पीछे-पीछे चलने लगेगा, और पिस्टन के साथ लगी पानी की तह अगली तह को अपने साथ ले चलेगी, और वह अगली तह को। परिणामस्वरूप सारा द्रव ही खिंच जाएगा।

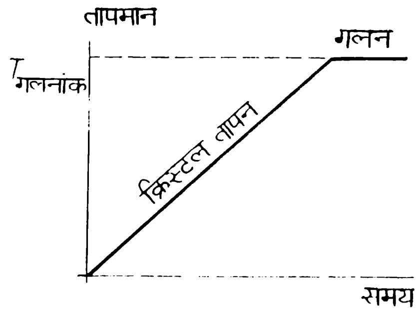
अन्ततः पानी का स्तम्भ टूट जाएगा (पानी का स्तम्भ, न कि पानी पिस्टन से अलग हो जाएगा), लेकिन ऐसा तब होगा, जब एकाक क्षेत्र पर दसियों किलोग्राम बल प्रभाव डलेगा। दूसरे शब्दों में, दसियों वायुमण्डलीय दाब के बराबर पानी में ऋणात्मक दाब पैदा हो जाता है।

थोड़े-से घनात्मक दाब पर ही पदार्थ की वाष्पीय अवस्था स्थिर होती है। लेकिन द्रव को ऋणात्मक दाब तक लाया जा सकता है। "अतितापन का" इससे अच्छा उदाहरण नहीं सोचा जा सकता।

गलन

ऐसा कोई भी दृढ़ पदार्थ नहीं है जो उच्च तापों पर भी अपनी पहलेवाली अवस्था में रह सके। ठोस टुकड़ा कभी न कभी द्रव में बदल जाता है, लेकिन हां, कुछेक स्थितियों में शायद हमें गलनांक तक पहुंचने में सफलता प्राप्त न हो – रासायनिक अपघटन शुरू हो सकता है, कारण यह है कि रासायनिक विघटन शुरू हो सकता है।

तापमान में वृद्धि करने पर अणु और तीव्र गति से चलने लगते हैं। अन्ततः एक ऐसा समय आ जाता है जब बहुत तेज़ी से "झूल" रहे अणुओं को व्यवस्था में रखना मुश्किल हो जाता है। ठोस पदार्थ पिघलने लगता है। वोल्फ़ाम का गलनांक सबसे ऊंचा है: 3 380°C, सोना 1 063°C और लोहा 1 539°C पर पिघलता है। संगलनीय (fusible) धातुएं भी हैं। पारा, जैसा कि मालूम है, सिर्फ़ —39°C पर पिघलता है। कार्बनिक



चित्र 101

पदार्थों का गलनांक अधिक ऊंचा नहीं होता है। नैफ़थलीन केवल 80°C पर ही पिघल जाती है जब कि टॉलूईन –94.5°C पर पिघलती है।

पिंड के गलनांक को मापना बिल्कुल मुश्किल नहीं है अगर वह किसी ऐसे तापमान पर पिघलता है, जिसे साधारण थर्मामीटर द्वारा सरलता से मापा जा सकता है। पिघलने की क्रिया को देखना भी आवश्यक नहीं है। तापमापी में पारे के स्तम्भ को देखना ही पर्याप्त होता है (चित्र 101)। पिघलना शुरू न होने तक तापमान बढ़ता है। जैसे ही ठोस पिघलना शुरू करता है, तापमान बढ़ना बन्द हो जाता है। तापमान तब तक नहीं बदलेगा जब तक पिघलने की क्रिया पूर्ण नहीं हो जाएगी।

जिस प्रकार द्रव को वाष्प में परिवर्तित करने के वास्ते ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार दृढ़ पिंड को द्रव में परिवर्तित करने के लिए भी ऊष्मा की आवश्यकता होती है। इसके लिए जितनी ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है उसे गलन की गुप्त ऊष्मा कहते हैं। उदाहरण के तौर पर एक किलोग्राम बर्फ़ को पिघलाने के लिए 80 बृहत कैलोरियों की आवश्यकता पड़ती है।

बर्फ़ उन पिंडों में से है जिनके लिए अधिक गलन-ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के तौर पर, एक किलोग्राम बर्फ़ को पिघलाने के वास्ते सीसे की उसी मात्रा को पिघलाने के लिए ख़र्च की गयी ऊर्जा से 10 गुना अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। निस्सन्देह, यहां बात केवल पिघलाने की ही हो रही है, हम यहां यह नहीं बता रहे हैं कि सीसे को पिघलाने के लिए +327°C तक गरम करने की आवश्यकता पड़ती हैं। बर्फ़ की

गलन-ऊष्मा अधिक होने के कारण वह धीरे-धीरे पिघलती है। अगर गलन-ऊष्मा दस गुना कम होती तो! ऐसा होने पर वसन्त ऋतु में आनेवाली बाढ़ (बर्फ़ पिघलने के कारण) से अकल्पनीय नुक़सान पहुंचता।

बर्फ़ के पिघलने की ऊष्मा अधिक है, लेकिन वह कम भी है, अगर हम उसकी तुलना वाष्पण-ऊष्मा से करें, जो 540 बड़ी कैलोरियों के बराबर है (एक किलोग्राम पानी को वाष्प बनाने के लिए)। वाष्पण-ऊष्मा बर्फ़ की गलन-ऊष्मा से 7 गुना अधिक है। यह अन्तर स्वाभाविक ही है। द्रव को वाष्प में बदलने के लिए एक अणु को दूसरे अणु से तोड़ना होता है, और पिघलाने के वास्ते केवल अणुओं की स्थितियों के क्रम को तोड़ना होता है, लेकिन वे एक दूसरे से लगभग एक ही दूरी पर स्थित रहते हैं। स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति में कम कार्य करना पड़ेगा।

क्रिस्टलीय पदार्थों का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि वे किसी निश्चित तापमान पर ही पिघलते हैं। इसी गुण के कारणवश उन्हें दूसरे दृढ़ पिंडों से, जिन्हें अक्रिस्टलीय या शीशा कहते हैं, अलग कर सकते हैं। शीशा ऑर्गेनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ दोनों में ही पाया जाता है। खिड़की के शीशे आम तौर पर सोडियम तथा कैल्शियम के सिलिकेटों से बने होते हैं। लिखने की मेज़ पर प्रायः आर्गेनिक शीशा ही रखते हैं, जिसे प्रायः प्लेक्सि-ग्लास कहते हैं।

अक्रिस्टलीय पदार्थों का क्रिस्टलों के मुक़ाबले पिघलने का कोई विशेष तापमान नहीं होता है। शीशा पिघलता नहीं, बल्कि नर्म हो जाता है। गरम करने पर शीशे का टुकड़ा नर्म हो जाता है, उसे आसानी से मोड़ा या लम्बा किया जा सकता है; उच्च तापमान पर गरम किया हुआ शीशा अपने ही भार के कारण अपना आकार बदलना शुरू कर देता है। और ज़्यादा गरम करने पर शीशे का विस्कस द्रव्यमान पहले उस बर्तन का आकार लेता है जिसमें उसे गरम किया जाता है। द्रव्यमान पहले शहद जैसा गाढ़ा होता है, फिर क्रीम जैसा और अन्ततः पानी जैसा कम विस्कस तरल बन जाता है। बहुत चाहते हुए भी हम यह नहीं बता सकते कि किस तापमान पर पिंड तरल अवस्था में बदलता है। इसका कारण शीशे की संरचना तथा क्रिस्टलीय पिंडों की संरचना के बीच आधारभूत अन्तर है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया था, अक्रिस्टलीय पिंडों में परमाणु अस्तव्यस्त स्थिति में होते हैं। शीशे भी अपनी संरचना में द्रवों जैसे हैं।

दृढ़ शीशे में भी अणु अस्तव्यस्त स्थिति में होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि तापमान बढ़ाने पर मात्र शीशे के अणुओं का दोलन और अधिक हो जाएगा और धीरे-धीरे उन्हें गति में अधिकाधिक स्वतन्त्रता मिलेगी। यही कारण है कि शीशा आहिस्ता-आहिस्ता नर्म होता है और "दृढ़" से "तरल" अवस्था में सुस्पष्ट परिवर्तन दिखाई नहीं देता है, जो क्रमबद्ध अणुओं का अस्तव्यस्त स्थिति में आने का विशेषतासूचक है।

क्वथन वक्र रेखा की चर्चा करते समय हमने बताया था कि द्रव तथा वाष्प, हालांकि उनकी अवस्था अस्थिर होगी, पराये क्षेत्रों में भी रह सकते हैं—अर्थात वाष्प को अति ठंडा किया जा सकता है तथा उसे क्वथन वक्र रेखा के बायीं ओर ले जाया जा सकता है, द्रव को अति गर्म किया जा सकता है और इस वक्र रेखा के दायीं ओर ले जाया जा सकता है।

क्या ये परिघटनाएं क्रिस्टल तथा द्रव के लिए भी सम्भव हैं? पता चलता है कि ऐसी अनुरूपता पूर्ण नहीं है।

अगर किसी क्रिस्टल को गरम किया जाए तो वह अपने गलनांक पर पिघलने लगेगा। क्रिस्टल को अति गरम नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत द्रव को ठंडा करते समय, अगर कुछ उपाय किए जाएं, अपेक्षाकृत आसानी से गलनांक को "पार" किया जा सकता है। कई द्रवों को अधिकाधिक ठंडा किया जा सकता है। ऐसे भी द्रव हैं जिन्हें सरलता से अति ठंडा किया जा सकता है, लेकिन उनके क्रिस्टल बनाना मुश्किल है। ऐसे द्रव को ठंडा करने पर वह अधिकाधिक विस्कस हो जाता है और अन्ततः क्रिस्टल बने बिना जम जाता है। ऐसा द्रव है शीशा।

जल को भी अतिशीतित किया जा सकता है। तापमान शून्य से कम होने पर भी धुंध की बून्दें जमती नहीं हैं। अगर अतिशीतित द्रव में किसी पदार्थ का एक छोटा-सा क्रिस्टल यानी बीजन डाला जाए, तो क्रिस्टलन तुरन्त आरम्भ हो जाता है।

अन्त में, बहुत-सी स्थितियों में रुका हुआ क्रिस्टलीकरण हिलाने से या किन्हीं दूसरे कारणों से शुरू हो सकता है। यह मालूम ही है कि क्रिस्टलीय ग्लिसरीन सबसे पहले उसके रेल परिवहन के दौरान प्राप्त हुआ था। शीशे भी बहुत देर तक खड़े रहने के बाद क्रिस्टल बन सकते हैं (यानी उनका विकाचन हो जाता है) या "टूट" जाते हैं।

क्रिस्टल कैसे बनाये जाएं

हम पहले यह बता चुके हैं कि अधिकांश दृढ़ पिंड छोटे-छोटे क्रिस्टलों से बने हैं, जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है। जहां तक एकल क्रिस्टलों का, जो बहुत बड़े होते हैं तथा क्रिस्टल के ऐसे बाह्य लक्षण, जैसे चपटे फलक, सीधे किनारे, सही तथा नियमित आकार रखते हैं, सवाल है तो वे प्रकृति में विरले ही पाए जाते हैं। यह कोई संयोगवश बात नहीं है। इसका कारण यह है कि अगर कोई विशेष उपाय न किए जाएं, तो द्रवीभूत धातु को ठंडा करने पर हमेशा महीन क्रिस्टलीय पदार्थ बनता है, लेकिन एकल क्रिस्टल नहीं बनता है। इसकी व्याख्या यह दी जाती है कि द्रवीभूत धातु में कई जगहों पर एक साथ क्रिस्टल की वृद्धि शुरू होती हैं और धीरे-धीरे समस्त द्रवीभूत धातु में छोटे-छोटे क्रिस्टल बड़ी संख्या में पैदा हो जाते हैं।

एकल क्रिस्टल बनाने के लिए हमें ऐसे उपाय करने चाहिए ताकि क्रिस्टल का प्ररोहण एक ही जगह हो। अगर अन्य स्थानों पर क्रिस्टल बनने शुरू हो जाएं तो ऐसे उपाय करने चाहिए कि मात्र एक ही जगह पर क्रिस्टल प्ररोहण के वास्ते अनुकूल परिस्थितियां हों।

उदाहरणार्थ, संगलनीय धातुओं के क्रिस्टल निम्नलिखित क्रम में उगाये जाते हैं। धातु को शीशे की परखनली में पिघलाते हैं जिसका सिरा बहुत खिंचा होता है। परखनली को, जो ऊर्ध्वाधर बेलनीय भट्ठी में धागे से लटकायी होती हैं, आहिस्ता-आहिस्ता नीचे करते हैं। खिंचा हुआ किनारा धीरे-धीरे भट्ठी से बाहर निकलता है और ठंडा हो जाता है। क्रिस्टलन आरम्भ होता है। शुरू में कुछेक क्रिस्टल बनते हैं, लेकिन ऐसे क्रिस्टलों की वृद्धि पार्श्व होती है, और वे परखनली की दीवार के साथ चिपक जाते हैं तथा उनकी वृद्धि-दर कम हो जाती है। उचित स्थितियों में केवल वही क्रिस्टल होगा, जो परखनली के अक्ष के साथ-साथ अर्थात द्रवीभूत धातु की गहराई में उगेगा। परखनली को नीचा करने पर द्रवीभूत धातु के नए भाग कम तापमान के क्षेत्र में आते हैं और इस एकल क्रिस्टल का "पोषण करते हैं"। इसलिए सब क्रिस्टलों में से वही एक बचेगा। जैसे-जैसे परखनली को नीचा किया जाता है, वह परखनली के अक्ष के साथ-

साथ उगता रहता है। अन्त में समग्र द्रवीभूत धातु एकल क्रिस्टल के रूप में जम जाती है।

दुर्गलनीय रूबी के क्रिस्टल बनाने के वास्ते भी इसी तरीक़े को अपनाया जाता है। पदार्थ के महीन पाऊडर की धार आग में से गुज़ारी जाती है। ऐसा करने पर पाउडर के कण पिघलते हैं, सूक्ष्म बूंदें बहुत कम क्षेत्रफलवाले रिफ़्रैक्टरी चबूतरे पर गिरती हैं तथा बहुत से क्रिस्टल बनते हैं। और बूंदें गिरने पर सभी क्रिस्टल बढ़ेंगे, लेकिन उनमें सबसे अधिक वही बढ़ेगा जो गिरती हुई बूंदों को प्राप्त करने के लिए सबसे अनुकूल स्थिति में होगा। प्रायः क्रिस्टलों को घोलों में उगाते हैं। ऐसे क्रिस्टलीकरण के बारे में हम आगे चलकर चर्चा करेंगे।

बड़े क्रिस्टलों की क्या आवश्यकता है?

उद्योग तथा विज्ञान को बड़े एकल क्रिस्टलों की प्रायः आवश्यकता होती है। स्फटिक तथा रोशेल-लवण के क्रिस्टलों का औद्योगिकी में बहुत महत्व है। इन क्रिस्टलों का एक बहुत महत्वपूर्ण गुण यह है कि वे यांत्रिक क्रिया को (उदाहरण के लिए, दाब को) विद्युत में बदलते हैं।

प्रकाश उद्योग में कैल्साइट, खनिज नमक तथा फ़्ल्यूराइट आदि के बड़े क्रिस्टलों की आवश्यकता पड़ती है।

घड़ी उद्योग के लिए लाल, नीलम या दूसरे मूल्यवान पत्थरों की ज़रूरत होती है। कारण यह है कि घड़ी के कई गतिमान पुर्ज़े एक घंटे में लगभग 20000 दोलन करते हैं। इतनी बड़ी गति के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि धुरे तथा बॉल बेयरिंगों के सिरे अच्छी कोटि के हों। अगर 0.07 — 0.15 mm व्यासवाले धुरे का सिरा लाल या नीलम का बना होगा तो वह कम घिसेगा। इन पदार्थों के कृत्रिम क्रिस्टल भी बहुत मज़बूत होते हैं तथा इस्पात के बने पुर्ज़ों के साथ रगड़ खाने पर बहुत कम घिसते हैं। कमाल की बात तो यह है कि कृत्रिम पत्थर प्राकृतिक पत्थरों से भी ज़्यादा अच्छे निकलते हैं।

धातुओं के गुणों का अध्ययन करने के लिए हमें लोहे, तांबे आदि के बड़े एकल क्रिस्टलों की आवश्यकता पड़ती है।

दाब का गलनांक पर प्रभाव

अगर दाब में परिवर्तन किया जाए तो गलनांक भी बदल जाएगा। ऐसी

ही बात हमने उस समय कही थी जब क्वथन के बारे में चर्चा की थी। दाब जितना अधिक होगा, उतना ही उच्च क्वथनांक होगा। सिद्धान्ततः यही बात गलन के लिए भी सही है। लेकिन कुछेक ऐसे पदार्थ हैं जिनका गलनांक दाब में वृद्धि करने पर कम हो जाता है।

कारण यह है कि अधिकांश दृढ़ पदार्थ अपने द्रवों से अधिक घने हैं। इस नियम के अपवाद केवल वे पदार्थ हैं जिनका गलनांक दाब में परिवर्तन होने पर व्यावहारिक तौर पर बिल्कुल नहीं बदलता है—उदाहरण के तौर पर, पानी। बर्फ़ पानी से हल्की है, और बर्फ़ का गलनांक दाब में वृद्धि होने से कम हो जाता है।

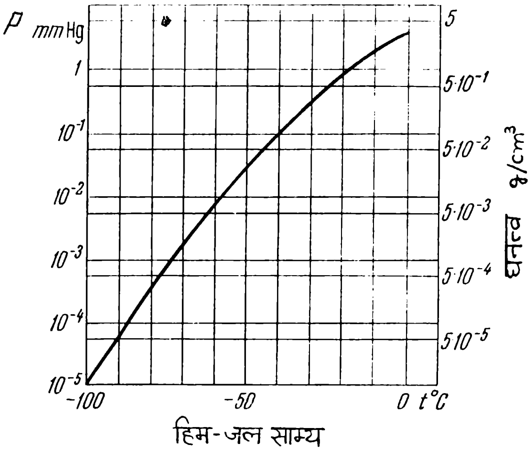
संपीडन अधिक घनी अवस्था के विरचन में सहयोग देता है। यदि दृढ़ पिंड द्रव से अधिक घना हो तो संपीडन घनीकरण में सहायता देता है तथा गलन की क्रिया में बाधा डालता है। लेकिन अगर गलन की क्रिया संपीडन से मुश्किल हो जाती है, तो इसका अर्थ है कि पदार्थ दृढ़ ही रहता है जबकि पहले इस तापमान पर पदार्थ पिघल गया होता, या दूसरे शब्दों में दाब में वृद्धि होने से गलनांक में भी वृद्धि होती है। असामान्य स्थिति में द्रव दृढ़ पिंड से अधिक घना होता है और दाब द्रव के बनने में मदद करता है अर्थात गलनांक को कम करता है।

गलनांक पर दाब का असर क्वथन पर दाब के प्रभाव से बहुत कम होता है। दाब में 100 kg. f/cm^2 से अधिक वृद्धि करने पर बर्फ़ का गलनांक मात्र 1°C ही कम होता है।

इससे स्पष्ट है कि स्केट के बर्फ़ पर फिसलने के बारे में अक्सर सुनने में आनेवाली दलील, यानी दाब बढ़ने पर बर्फ़ का गलनांक कम हो जाता है, कितनी साधारण है। स्केट के ब्लेड पर किसी भी हालत में 100 kg.f/cm^2 से अधिक दाब नहीं होता है और इसीलिए गलनांक का कम होना स्केटिंग करनेवालों के लिए कोई महत्व नहीं रखता है।

दृढ़ पिंडों का वाष्पीकरण

जब कहते हैं कि "पदार्थ का वाष्पीकरण" हो रहा है तो यह समझा जाता है कि किसी द्रव का वाष्पीकरण हो रहा है। लेकिन दृढ़ पदार्थ भी वाष्पित हो सकते हैं। दृढ़ पदार्थों के वाष्पीकरण को ऊर्ध्वपातन (sublimation) कहते हैं।



चित्र 102

उदाहरण के लिए फ़िनाइल एक ऐसा दृढ़ पदार्थ है जिसका वाष्पीकरण होता है। उसका गलनांक 80°C है तथा उसका वाष्पीकरण सामान्य तापमान पर होता है। इसी गुण के कारण ही फ़िनाइल कपड़े के कीड़ों को मारने के लिए प्रयोग की जाती है। समूरदार ओवर कोट, जिसमें फ़िनाइल की गोलियां डाली हो, फ़िनाइल के वाष्पों को ग्रहण कर लेता है और ऐसा वातावरण पैदा करता है जिसे कपड़े के कीड़े सहन नहीं कर सकते हैं। हर महकनेवाले दृढ़ पदार्थों का बहुत ऊर्ध्वपातन होता है। महक दृढ़ पदार्थ से अलग हो चुके अणुओं द्वारा हमारी नाक तक पहुंचती है। लेकिन ऐसा प्रायः होता है कि पदार्थ का ऊर्ध्वपातन बहुत कम होता है, कभी-कभी तो इतना कम होता है कि बहुत सूक्ष्म खोज करने पर भी उसे मालूम नहीं किया जा सकता है। सिद्धान्ततः हर दृढ़ पदार्थ (चाहे कोई भी हो, लोहा या तांबा) का वाष्पीकरण होता हैं। अगर हम ऊर्ध्वपातन मालूम नहीं कर सकते हैं, तो उसका केवल एक ही अर्थ होता है कि संतृप्त वाष्पों का घनत्व बहुत ही कम है।

संतृप्त वाष्प का घनत्व, जो दृढ़ पदार्थ के साथ साम्यावस्था में है, तापमान में वृद्धि के साथ-साथ तीव्रता से बढ़ता है (चित्र 102)। यह भी

पता चलता है कि कुछेक पदार्थ, जिनकी सामान्य तापमान पर महक बहुत तेज़ होती है, कम तापमान पर अपनी महक खो देते हैं।

ठोस पदार्थ के संतृप्त वाष्प के घनत्व को बहुत बढ़ाना अधिकांश स्थितियों में इस सरल कारण की वजह से सम्भव नहीं है कि वे पहले ही पिघलने लगता है।

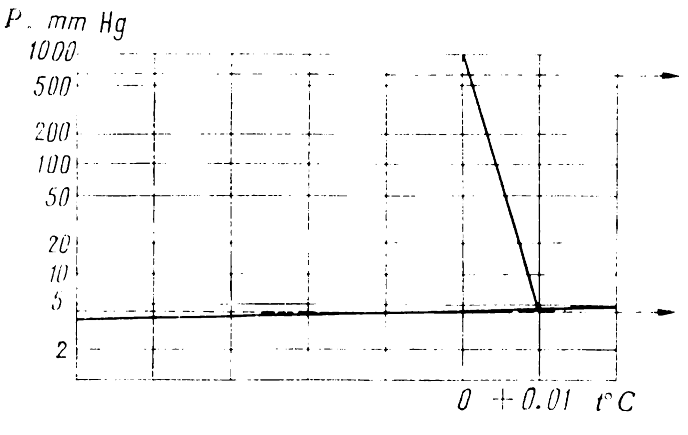
बर्फ़ भी वाष्पित होती है। गृहणियां इससे अच्छी तरह परिचित हैं, जो गीले कपड़ों को ठंडे मौसम में बाहर सुखाती हैं। पानी पहले जम जाता है और फिर बर्फ़ वाष्पित हो जाती है तथा कपड़े सूख जाते हैं।

त्रिक बिन्दु

ऐसी स्थितियां भी हैं जब वाष्प, द्रव तथा क्रिस्टल दो-दो के जोड़ों में साम्यावस्था में रह सकते हैं।

क्या सब अवस्थाएं भी साम्यावस्था में रह सकती हैं? ऐसा बिन्दु दाब-तापमान आरेख पर दिखाया हुआ है जिसे त्रिक बिंदु कहते हैं। यह बिन्दु कहां स्थित होता है?

अगर किसी बन्द बर्तन में 0°C पर पानी और उसपर तैर रही बर्फ़ को रखा जाए तो बर्तन की ख़ाली जगह में जल (और "बर्फ़") के वाष्प



चित्र 103

दिखाई देंगे। 4.6 mm Hg दाब पर वाष्पीकरण बन्द हो जाएगा और संतृप्ति शुरू हो जाएगी। अब तीन अवस्थाएं – बर्फ़, पानी तथा वाष्प साम्यावस्था में होंगी। यही बिन्दु ही त्रिक बिन्दु है।

पानी का आरेख, जो चित्र 103 में दिखाया गया है, अलग-अलग अवस्थाओं के बीच परस्पर सम्बन्धों को स्पष्टतया दिखाता है।

ऐसा आरेख किसी भी पदार्थ के लिए बनाया जा सकता है।

चित्र में दिखाई गई वक्र रेखाएं हमारी जानी पहचानी हैं–ये हैं बर्फ़ तथा वाष्प, बर्फ़ तथा पानी, पानी और वाष्प के बीच संतुलन की वक्र रेखाएं। ऊर्ध्वाधर अक्ष पर हमेशा की तरह दाब तथा क्षैतिज अक्ष पर तापमान लिया जाता है।

ये वक्र रेखाएं एक दूसरे को त्रिक बिन्दु पर काटती हैं और आरेख को तीन हिस्सों में – बर्फ़, पानी और पानी के वाष्प के अस्तित्व क्षेत्रों में बांटती हैं।

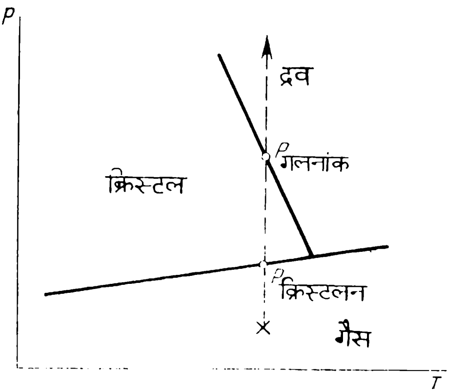
रचना आरेख एक संक्षिप्त निर्देश-ग्रन्थ है। इसका लक्ष्य निम्नलिखित का उत्तर देना है: पिंड की कौनसी अवस्था कितने दाब और तापमान पर स्थिर होती है।

अगर "बायें क्षेत्र" की परिस्थितियों में जल या भाप को रखा जाए, तो वे जम जाएंगे। अगर "निचले क्षेत्र" में द्रव या ठोस पिंड लाया जाए, तो वाष्प बन जाएगा। "दायें क्षेत्र" में भाप द्रव में परिवर्तित हो जाएगी और बर्फ़ पिघल जाएगी।

रचना आरेख की सहायता से तुरंत बताया जा सकता है कि पदार्थ को गरम करने या दबाने पर उसकी क्या हालत होगी। अचर दाब पर गरम करने की क्रिया क्षैतिज लाइन से व्यक्त होगी। पिंड की अवस्था के बारे में बतानेवाला बिन्दु इस रेखा पर बायीं से दायीं ओर जाएगा।

चित्र में ऐसी दो लाइनें दिखायी गयी हैं। इनमें से एक सामान्य दाब पर गरम करने की क्रिया को व्यक्त करती है तथा त्रिक बिन्दु से ऊपर है। यही कारण है कि वह पहले गलन रेखा को, और फिर चित्र की सीमाओं के बाहर स्थित वाष्पन वक्र को काटेगी। सामान्य दाब पर बर्फ़ 0°C पर पिघलती और जल 100°C पर उबलता है।

बहुत कम दाब पर, उदाहरण के लिए 5 mm Hg के बराबर दाब पर गरम की गयी बर्फ़ का बर्ताव ऊपरलिखित से भिन्न होगा।



चित्र 104

गरम करने की क्रिया त्रिक बिन्दु से नीचे स्थित रेखा से व्यक्त होगी। गलन रेखा और वाष्पन वक्र इस लाइन को नहीं काटेंगे। इतने कम दाब पर गरम करने से बर्फ़ वाष्प में परिवर्तित हो जाएगी।

चित्र 104 में दिखाए गए आरेख से पता चलता है कि कितनी रोचक परिघटना देखने को मिलेगी, अगर जल वाष्पों को उस स्थिति में दबाया जाए, जो चित्र में क्रॉस से व्यक्त की गयी है। वाष्प पहले बर्फ़ में परिवर्तित होगा और फिर बर्फ़ पिघल जाएगी। इस चित्र की सहायता से हम तुरन्त बता सकते हैं कि क्रिस्टल वृद्धि किस दाब पर शुरू होगी और गलन-क्रिया कब आरम्भ होगी।

सब पदार्थों के रचना आरेख सदृश हैं। व्यावहारिक दृष्टि से, उनमें अधिकांश अन्तरों का कारण यह है कि विभिन्न पदार्थों के लिए रचना आरेख पर त्रिक बिन्दुओं की स्थितियां बहुत भिन्न हो सकती हैं।

साधारणतया हमारा वास्ता "सामान्य परिस्थितियों" से यानी एक वायु-मण्डलीय दाब के लगभग दाब से पड़ता है। इसलिए, सामान्य दाब रेखा की अपेक्षा किसी पदार्थ के त्रिक बिन्दु की स्थिति के बारे में ज्ञान हमारे लिए विशेष महत्त्व रखता है।

अगर त्रिक बिन्दु पर दाब वायुमण्डलीय दाब से कम है, तो "सामान्य" परिस्थितियों में पदार्थ पिघल सकता है। तापमान बढ़ाने पर पदार्थ पहले तो द्रव में परिवर्तित होता है और फिर उबलने लगता है। विपरीत स्थिति

में, यानी जब त्रिक बिन्दु पर दाब वायुमण्डलीय दाब से कम होता है, पिंड को गरम करने पर द्रव नहीं बनता है, ठोस पिंड सीधा वाष्प में परिवर्तित हो जायेगा। "सूखी बर्फ़" के साथ ऐसा ही होता है। इस गुण की बदौलत ही कुलफ़ी बेचनेवाले "सूखी बर्फ़" का उपयोग करते हैं। आइसक्रीम के पैकटों पर "सूखी बर्फ़" के टुकड़े रखने पर यह भय नहीं रहता कि आइस-क्रीम के पैकट गीले हो जाएंगे। "सूखी बर्फ़" ठोस कार्बन डाइऑक्साइड है। इस पदार्थ का त्रिक बिन्दु 73 atm पर स्थित होता है। यही कारण है कि ठोस कार्बन डाइऑक्साइड को गरम करने पर उसकी अवस्था को व्यक्त करनेवाला त्रिक बिन्दु क्षैतिज रेखा के साथ-साथ चलता है, जो ठोस पदार्थ के वाष्पन वक्र को ही केवल काटती है (उसी प्रकार जैसे कि साधारण बर्फ़ लगभग 5 mm Hg दाब पर व्यवहार करती है)।

परमाणु एक जैसे, लेकिन क्रिस्टल भिन्न-भिन्न

काले द्युतिहीन मृदु ग्रैफाइट, जिससे हम लिखते हैं, और चमकीला पारदर्शी, कठोर, कर्तन शीशा-हीरा एक जैसे परमाणुओं से बने हैं। क्या कारण है कि इन एकसमान संघटनवाले पदार्थों के गुण इतने भिन्न हैं?

स्तरित ग्रैफ़ाइट के जालक को याद कीजिए, उसके हरेक परमाणु के तीन पड़ोसी हैं। इसके साथ ही हीरे के जालक को याद कीजिए, जिसके हरेक परमाणु के चार पड़ोसी हैं। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि परमाणुओं की स्थिति पर क्रिस्टलों के गुण कैसे निर्भर करते हैं। ग्रैफ़ाइट से अग्निरोधी क्रूसिबल बनाते हैं। ऐसे क्रूसिबल दो तीन हज़ार डिग्री तक तापमान सह सकते हैं। हीरा 700° से अधिक तापमान पर जलने लगता है। हीरे का आपेक्षिक भार 3.5 और ग्रैफ़ाइट का 2.3 है; ग्रैफ़ाइट विद्युत संवाहक है लेकिन हीरा विद्युत संवाहक नहीं है, इत्यादि।

विभिन्न प्रकार के क्रिस्टल देने की यह विशेषता केवल कार्बन ही नहीं, लगभग हरेक रसायनिक तत्व रखता है; केवल तत्व ही नहीं, बल्कि हर कोई रसायनिक पदार्थ भी अनेक क़िस्मों में अस्तित्व रख सकता है। हमें बर्फ़ की छः क़िस्मों, गंधक की नौ तथा लोहे की चार क़िस्मों का पता है।

साम्यावस्था आरेख की चर्चा करते समय हमने क्रिस्टलों की अलग-

अलग क़िस्मों के बारे में नहीं बताया था और दृढ़ पदार्थ को मात्र एक क्षेत्र से ही व्यक्त किया था। लेकिन यह क्षेत्र अनेक पदार्थों के लिए कई हिस्सों में बंटता है, जिनमें से हर हिस्सा दृढ़ पदार्थ की कोई विशेष "क़िस्म" ही या जैसा कि कहते हैं किसी विशेष दृढ़ अवस्था (किसी विशेष क्रिस्टलीय रूपान्तरण) को व्यक्त करता है।

हर क्रिस्टलीय प्रवस्था का अपना ही स्थिर प्रवस्था-क्षेत्र होता है, जो दाब तथा तापमान के किसी विशेष परिसर में स्थित होता है। एक क्रिस्टलीय क़िस्म से दूसरी क्रिस्टलीय क़िस्म में परिवर्तन के नियम गलन तथा वाष्पीकरण के नियमों जैसे ही हैं।

हर दाब के लिए ऐसा तापमान भी व्यक्त किया जा सकता है, जिस पर दोनों तरह के क्रिस्टल अपना अस्तित्व बनाये रख सकते हैं। अगर तापमान में वृद्धि की जाए तो एक तरह का क्रिस्टल दूसरी तरह के क्रिस्टल में परिवर्तित हो जाएगा। और अगर दाब कम कर दिया जाए तो विपरीत परिवर्तन देखने में आयेगा।

सामान्य दाब पर लाल गंधक को पीली गन्धक में बदलने के लिए तापमान 110°C से कम होना चाहिए। इससे अधिक तापमान पर, गलनांक तक, अणुओं के वितरण का क्रम, जो लाल गंधक के लिए अभिलक्षक है, स्थिर रहेगा। तापमान कम होता है, अणुओं का दोलन कम हो जाता है और 110°C से लेकर प्रकृति अणुओं को और सुविधाजनक स्थिति में व्यवस्थित कर देती है। एक क्रिस्टल दूसरे क्रिस्टल में परिवर्तित होने लगता है।

बर्फ़ की छः भिन्न क़िस्मों को किसी ने अलग-अलग नाम नहीं दिए हैं। बस, ऐसा कहते हैं, बर्फ़ न० 1, बर्फ़ न० 2, बर्फ़ न० 3..., और बर्फ़ न० 7। न० 7 कहां से आ गया अगर बर्फ़ की क़िस्में मात्र 6 हैं? कारण यह है कि बर्फ़ न० 4 प्रयोगों के दोहराने पर मालूम नहीं की जा सकी।

अगर पानी को लगभग 0° पर संपीडित किया जाए तो लगभग 2000 वायुमंडलीय दाब पर बर्फ़ न० 5 बनती है, और लगभग 6000 वायुमंडलीय दाब पर बर्फ़ न० 6 बनती है।

बर्फ़ न० 2 और बर्फ़ न० 3 शून्य डिग्री से कम तापमान पर स्थिर हैं।

बर्फ़ न० 7 गर्म बर्फ़ है; वह गर्म पानी को 20,000 वायुमंडलीय दाब तक संपीडित करने पर प्राप्त होती है।

बर्फ़ की सब क़िस्में, आम बर्फ़ के सिवाय, पानी से भारी होती हैं। सामान्य बाह्य परिस्थितियों में प्राप्त की गयी बर्फ़ का बर्ताव असामान्य होता है। लेकिन, इसके विपरीत सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में प्राप्त की गयी बर्फ़ का बर्ताव सामान्य होता है।

हम कहते हैं कि प्रत्येक क्रिस्टल रूपांतरण किसी एक विशेष क्षेत्र में पाया जाता है। अगर ऐसे होता है तो ग्रैफाइट और हीरा एकसमान परिस्थितियों में कैसे पाये जाते हैं?

ऐसी "अराजकता" क्रिस्टलीय संसार में प्रायः देखने में आती हैं। "पराई" परिस्थितियों में रहना क्रिस्टलों का नियम ही है। अगर वाष्प या द्रव को अस्तित्व के किसी दूसरे हिस्से में परिवर्तित करना हो तो विशिष्ट तरीक़े अपनाने पड़ते हैं। इसके विपरीत, क्रिस्टल को कभी भी उन सीमाओं के अन्दर, जो प्रकृति ने उसे प्रदान की हैं, रखने में सफलता लगभग प्राप्त होती ही नहीं है।

क्रिस्टलों को अति ठंडा या अति गरम करना इसलिए मुश्किल है कि वे संकीर्ण परिस्थितियों में एक से दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। पीली गन्धक को 95.5°C पर लाल गन्धक में परिवर्तित हो जाना चाहिए। कम-ज़्यादा गरम करने पर हम परिवर्तन के इस बिन्दु को "पार" कर जायेंगे तथा गंधक के गलनांक को 113° C तक पहुंचा देंगे।

क्रिस्टलों के सम्पर्क से परिवर्तन का असली तापमान आसानी से मालूम किया जा सकता है। अगर उन्हें एक के ऊपर दूसरे को ख़ूब पास-पास रखा जाए और तापमान 96°C हो, तो पीली गन्धक को लाल गन्धक खा जायेगी और 95°C पर पीली गन्धक लाल गन्धक को निगल लेगी। "क्रिस्टल – द्रव" परिवर्तन के मुक़ाबले "क्रिस्टल – क्रिस्टल" परिवर्तन अति गरम तथा अति ठंडा करने पर भी प्रायः धीमे पड़ जाते हैं।

कई स्थितियों में हमारा सम्बन्ध पदार्थ की ऐसी अवस्थाओं से होता है जिनका अस्तित्व बिल्कुल दूसरे तापमानों पर ही होता है।

तापमान के +13°C तक गिरने पर सफ़ेद टिन को ग्रे टिन में परिवर्तित हो जाना चाहिए। हम प्रायः सफ़ेद टिन ही देखते हैं और यह जानते हैं कि सर्दियों में उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। वह 20° से 30° की अति ठंड को आसानी से सह लेता है। लेकिन जब बहुत अधिक सर्दी पड़ती है तो सफ़ेद टिन ग्रे टिन में परिवर्तित हो जाता है। इस बात की

अज्ञानता ही स्काट के दक्षिणी ध्रुव अभियान (1912) में भाग लेनेवालों की मृत्यु के कारणों में से एक कारण था। अभियान द्वारा अपने साथ लिया गया द्रव ईंधन ऐसे कनस्तरों में था जिनपर टिन के टांके लगे थे। बहुत अधिक ठंड में सफ़ेद टिन ग्रे टिन पाऊडर में बदल गया **तथा** कनस्तरों के जोड़ खुल गए और ईंधन बह गया। यही कारण है कि सफ़ेद टिन पर काले धब्बे प्रकट होने की क्रिया को टिन प्लेग कहते हैं।

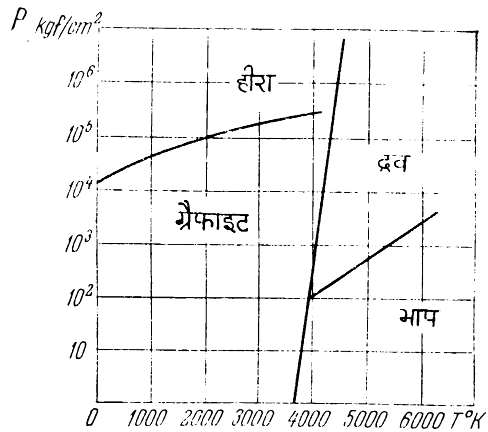
अगर टिन की बनी चीज़ पर काली गन्धक की एक छोटी-सी बूंद पड़ जाती है, तो उस वस्तु के तापमान को 13°C से थोड़ा कम करने पर गन्धक की तरह सफ़ेद टिन को भी ग्रे टिन में परिवर्तित किया जा सकता है।

एक ही पदार्थ की कई क़िस्मों का अस्तित्व और उनके एक दूसरे में बदलने में देरी औद्योगिकी में बहुत महत्त्व रखते हैं।

सामान्य तापमान पर लोहे के परमाणु अंतः केन्द्रित घन जालक बनाते हैं जिसमें परमाणु घन के केन्द्र तथा शीर्ष बिन्दुओं पर स्थित होते हैं। हर परमाणु के 8 पड़ोसी होते हैं। उच्च तापमानों पर लोहे के परमाणु और सुसंकुलित हो जाते हैं—अब हर परमाणु के 12 पड़ोसी होते हैं। आठ पड़ोसियों वाला लोहा नरम और 12 पड़ोसियों वाला लोहा कठोर होता है। पता चलता है कि कठोर लोहे को सामान्य तापमान पर प्राप्त किया जा सकता है। इस तरीक़े—कठोरीकरण—का धातुकर्म में बहुत इस्तेमाल किया जाता है।

कठोरीकरण की क्रिया अत्यन्त आसान है। धात्वीय वस्तु को पहले ख़ूब गर्म करते हैं और फिर उसे पानी में या किसी तेल में डाल देते हैं। धात्वीय वस्तु इतनी जल्दी ठंडी होती है कि संरचना को, जो उच्च तापमान पर काफ़ी स्थिर होती है, बदलने का समय ही नहीं मिलता है। इसलिए उच्च तापमान पर प्राप्त संरचना बहुत देर तक उन परिस्थितियों में रहेगी, जो उसके लिए सामान्य नहीं हैं। स्थिर संरचना में बदलने के वास्ते पुनः क्रिस्टलन इतना मन्थर होता है कि उसका वास्तव में पता ही नहीं चलता।

लोहे के कठोरीकरण के बारे में बताते समय हमने अपने विचारों को ठीक तरह से व्यक्त नहीं किया था। इस्पात अर्थात लोहे का कठोरीकरण करते हैं जिसमें कार्बन भी नगण्य मात्रा में (प्रतिशत के कुछ अंशों के



चित्र 105

बराबर) होती है। कार्बन की नगण्य मात्रा ही दृढ़ लोहे को नर्म लोहे में परिवर्तित नहीं होने देती, और कठोरीकरण को सम्भव बनाती है। जहां तक शुद्ध लोहे का सम्बन्ध है, तो उसका कठोरीकरण सम्भव नहीं है। बहुत तेज़ी से ठंडा करने पर भी संरचना बदल जाती है।

रचना-आरेख की क़िस्म के अनुसार, दाब या तापमान में परिवर्तन करके, विभिन्न परिवर्तन सम्भव हैं।

क्रिस्टल के क्रिस्टल में अनेक परिवर्तन सिर्फ़ दाब को बदलने पर ही सम्भव होते हैं। काली फ़ॉस्फ़ोरस ऐसे ही प्राप्त की गयी थी।

एकसाथ उच्च तापमान तथा उच्च दाब पर ही केवल ग्रेफ़ाइट को हीरे में बदलना संभव हुआ था। चित्र 105 में कार्बन का रचना-आरेख दिखाया गया है। 10000 वायुमंडलीय से कम दाब पर और 4000°K से कम तापमान पर ग्रैफ़ाइट कार्बन का स्थिर रूपान्तरण है। इसलिए हीरा "परायी" परिस्थितियों में रहता है, अतः उसे ग्रैफ़ाइट में सरलता से बदला जा सकता है। ग्रैफ़ाइट को हीरे में बदलने के लिए दाब को बढ़ाने से ही काम नहीं चलेगा। दृढ़ अवस्था में प्रवस्था परिवर्तन स्पष्टतः बहुत धीरे-धीरे होता है। रचना-आरेख का आकार ठीक हल को बताता है: दाब को बढ़ाने के साथ-साथ गरम भी करो: ऐसा करने पर हम (आरेख का

दायां कोना) पिघला हुआ कार्बन प्राप्त करेंगे। उच्च दाब पर उसे ठंडा करने पर हमें हीरे के क्षेत्र में पहुंचना होगा।

इस क्रिया की व्यावहारिक सम्भवता के बारे में सन् 1955 में बताया गया था, और आज इस समस्या को तकनीकी दृष्टि से हल हो चुकी समझा जाता है।

कमाल का द्रव

अगर किसी पदार्थ का तापमान कम किया जाए तो कभी न कभी वह जम जायेगा और क्रिस्टलीय संरचना प्राप्त करेगा। यह नगण्य है कि वह किस दाब पर जमता है। यह बात एकदम प्राकृतिक है तथा भौतिक विज्ञान के नियमों की दृष्टि से समझ में आती है, जिनसे हम परिचित हैं। वास्तव में तापमान कम करने पर हम ऊष्मीय गति की तीव्रता को कम करते हैं। जब अणुओं की गति इतनी कम हो जाएगी कि वह उनके बीच पारस्परिक क्रिया के बलों के लिए रुकावट नहीं रहेगी, अणु क्रमबद्ध हो जाएंगे यानी क्रिस्टल को जन्म देंगे। तापमान और ज़्यादा कम करने पर अणुओं की गति की पूर्ण ऊर्जा समाप्त हो जाती है और परम शून्य पर पदार्थ विराम अणुओं की तरह हो जाता है, जो नियमित जालक में अवस्थित होते हैं।

प्रयोग से पता चलता है कि सब पदार्थ ही ऐसा बर्ताव करते हैं, सब के सब सिवाय एक पदार्थ के। ऐसा "भद्दा" पदार्थ है हीलियम।

हीलियम के बारे में हमने पहले आपको कुछ जानकारी दी थी। हीलियम का क्रान्तिक तापमान सबसे कम है। ऐसा और कोई पदार्थ नहीं है जिसका क्रान्तिक तापमान 4.3°K से कम हो। लेकिन इतना कम क्रान्तिक तापमान स्वयं किसी आश्चर्यजनक बात का संकेत नहीं देता है। आश्चर्यजनक बात तो दूसरी है: हीलियम को उसके क्रान्तिक तापमान से ज़्यादा, लगभग परम शून्य तक, ठंडा करने पर दृढ़ हीलियम प्राप्त नहीं होती है। परम शून्य पर भी हीलियम द्रव अवस्था में ही रहती है।

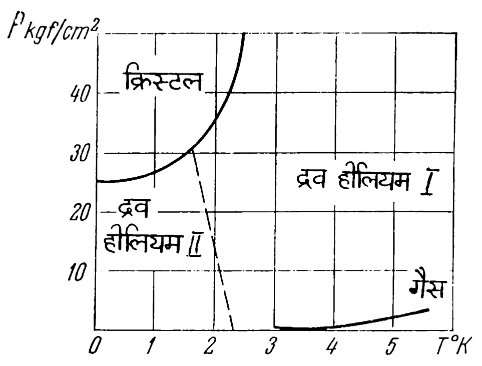
हीलियम के इस बर्ताव की ऊपरलिखित गति के नियमों के आधार पर किसी प्रकार से भी समझाया नहीं जा सकता है। और यह बर्ताव

प्रकृति के इन नियमों की, जिन्हें हमने सार्वत्रिक माना था, सीमित उपयुक्तता के लक्ष्णों में से एक है।

अगर पदार्थ द्रव है तो उसके परमाणु गति में होंगे। पदार्थ को परम शून्य तक ठंडा करने पर तो हम उसकी गति-ऊर्जा को उससे छीन लेते हैं। यहां यह मानना पड़ता है कि हीलियम ऐसी गति-ऊर्जा रखती है, जो उससे ली नहीं जा सकती। यह बात यान्त्रिकी से तालमेल नहीं खाती जिससे कि हम अभी तक परिचित थे। उस क्रिया के अनुसार जिसका हमने अध्ययन किया है पदार्थ की गति को उससे गतिज ऊर्जा छीन कर पूर्ण विराम की अवस्था में लाया जा सकता है; ऐसे ही परमाणुओं की गति को भी रोका जा सकता है, अगर उनकी ऊर्जा को छीन लिया जाए जब वे उस बर्तन की दीवारों से टकराते हैं जिसे ठण्डा किया जाता है। स्पष्टतः हीलियम के लिए ऐसी क्रिया लागू नहीं होती।

हीलियम का यह "अजीब" बर्ताव एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य की तरफ़ संकेत करता है। परमाणुओं के संसार में यान्त्रिकी के मुख्य तथा आधारभूत नियमों का, जो दृश्यमान पिंडों की गति के सीधे अध्ययन पर आधारित है, लागू न होने से हमारा यह पहला परिचय है।

यह बात कि परम शून्य पर हीलियम का क्रिस्टलीकरण "नहीं होता है" किसी भी हालत में यान्त्रिकी से, जिसका हमने अभी तक अध्ययन किया है, सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता है। यह विरोधात्मक



चित्र 106

बात, जिससे हमारा वास्ते पहली बार ही पड़ा है,—परमाणुओं के संसार द्वारा यांत्रिकी के नियमों का पालन न करना—, मात्र यांत्रिकी में बहुत से गम्भीर और तीव्र अन्तर्विरोधों में से एक है।

इन अन्तर्विरोधों के कारण परमाणु संसार की यान्त्रिकी के आधारभूत नियमों पर पुनर्विचार करने की ज़रूरत पड़ती है। यह पुनर्विचार काफ़ी गम्भीर है तथा प्रकृति की हमारी सब संकल्पनाओं को बदल देता है।

परमाणु संसार की यांत्रिकी पर मूल रूप से पुनर्विचार करने की आवश्यकता का यह अर्थ नहीं कि जो भी अभी तक हमने यान्त्रिकी के नियम पढ़े हैं उनको भूल जाएं। पाठकों को अनावश्यक चीज़ों का अध्ययन करवाना अच्छा नहीं होगा। पुरानी यान्त्रिकी बड़े पिंडों के संसार के लिए बिल्कुल सही है। बस यही बताना पर्याप्त है कि भौतिक विज्ञान के अध्यायों को ध्यान से पढ़ा जाए। लेकिन यहां यह भी बताना ज़रूरी है कि "पुरानी" यान्त्रिकी के बहुत से नियम बिना किसी परिवर्तन के "नई" यान्त्रिकी में लागू होते हैं। इसका एक उदाहरण है ऊर्जा-संरक्षण नियम।

परम शून्य पर "न निकाली जा सकने वाली" ऊर्जा का अस्तित्व हीलियम का कोई विशेष गुण नहीं है। पता चलता है कि "शून्य" ऊर्जा तो सब पदार्थों में होती है। लेकिन केवल हीलियम में ही यह ऊर्जा अणुओं को नियमित क्रिस्टलीय जालक बनाने में रुकावट डालने के लिए काफ़ी होती है।

यह नहीं सोचना चाहिए कि हीलियम क्रिस्टलीय अवस्था में नहीं रह सकती। हीलियम के क्रिस्टलीकरण के लिए दाब लगभग 25 atm तक बढ़ाना पड़ता है। हीलियम को इससे अधिक दाब पर ठंडा करने पर दृढ़ क्रिस्टलीय हीलियम बनती है जिसके साधारण गुण होते हैं। हीलियम फलक-केन्द्रित घन जालक बनाती है।

चित्र 106 में हीलियम का साम्यावस्था आरेख दिखाया गया है। यह दूसरे सब पदार्थों के आरखों से भिन्न है, इसमें त्रिक बिन्दु नहीं है। गलन तथा क्वथन वक्र रेखाएं एक दूसरे को काटती नहीं हैं।

१३. घोल

घोल क्या है?

अगर शोरबे में नमक डाल कर चमचे से हिलाया जाए तो नमक का नामों निशान भी नहीं रहेगा। यह नहीं सोचना चाहिए कि नमक के कणों को नंगी आंखों से देखा नहीं जा सकता है: नमक के क्रिस्टल किसी भी तरह दिखाई नहीं देंगे मात्र इस कारण कि वे घुल चुके हैं। अगर शोरबे में मिर्च डाल दी जाए तो घोल नहीं बनेगा। शोरबे को चाहे कई दिनों तक हिलाते रहें तो भी मिर्च के काले-काले कण दिखाई देते रहेंगे।

इस वाक्य का क्या मतलब है कि "पदार्थ घुल गया है?" जिन परमाणुओं या अणुओं से पदार्थ बना है क्या वे अपनी कोई निशानी छोड़े बिना लुप्त हो सकते हैं? बिल्कुल नहीं, वे लुप्त तो होते ही नहीं हैं। घोलने पर तो पदार्थ के कण ही सिर्फ़ गायब होते हैं, क्रिस्टल और एक ही क़िस्म के अणुओं का इकट्ठा होना ख़त्म हो जाता है। मिश्रण के कणों के मिलने के कारण घोल बनता है। कणों के मिलने की वजह से एक पदार्थ के अणु दूसरे पदार्थ के अणुओं में बंट जाते हैं। विभिन्न पदार्थों के अणुओं या परमाणुओं के मिश्रण को घोल कहते हैं।

घोल में विलेय (solute) की विभिन्न मात्राएं हो सकती हैं। घोल का संयोजन (composition) उसकी सांद्रता, उदाहरण के लिए, घोले गए पदार्थ की ग्रामों में मात्रा तथा घोल की लीटरों में मात्रा के बीच अनुपात से व्यक्त करते हैं।

जैसे-जैसे घोले जानेवाले पदार्थ की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे घोल की सांद्रता बढ़ती जाती है, लेकिन बिना किसी हद के नहीं। कभी न कभी घोल संतृप्त हो जायेगा तथा घोले जानेवाले पदार्थ को और ज़्यादा "ग्रहण" नहीं करेगा। संतृप्त घोल की सांद्रता को, यानी घोल की अधिकतम सांद्रता को, घुलनशीलता (solubility) कहते हैं।

गर्म पानी में चीनी की बहुत ज़्यादा मात्रा घोली जा सकती है। 80

डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम पानी के गिलास में 720 ग्राम चीनी बगैर किसी अवशेष के घोल सकते हैं। यह संतृप्त घोल गाढ़ा तथा विस्कस होगा, रसोइये ऐसे घोल को चाश्नी कहते हैं। हमने जिस गिलास के बारे में उल्लेख किया है उसका आयतन 0.2 लिटर था। अर्थात 80 डिग्री सेंटिग्रेड पर पानी में चीनी की सांद्रता 3600 ग्राम/लिटर (इसे पढ़ा जाता है ग्राम प्रति लिटर) है।

कुछेक पदार्थों की घुलनशीलता काफ़ी हृद तक तापमान पर निर्भर करती है। सामान्य तापमान (20 डिग्री सेंटीग्रेड) पर चीनी की पानी में घुलनशीलता 2000 ग्राम/लिटर है। इसके विपरीत नमक की घुलन-शीलता तापमान में परिवर्तन आने से कोई ज़्यादा नहीं बदलती है।

चीनी और नमक पानी में अच्छी तरह घुलते हैं। नैफ़थलीन पानी में वास्तव में घुलती ही नहीं है। विभिन्न पदार्थ विभिन्न विलायकों (solvents) में विभिन्न हृद तक घुलते हैं।

एकल क्रिस्टल उगाने के लिए घोलों का इस्तेमाल किया जाता है। अगर घुले हुए पदार्थ के छोटे क्रिस्टल को संतृप्त घोल में लटका दिया जाए तो विलायक जैसे-जैसे उड़ेगा, वैसे-वैसे इस क्रिस्टल की सतह पर घुला हुआ पदार्थ जमता जाएगा। ऐसा होने पर अणु उचित क्रम में आ जायेंगे और परिणामस्वरूप छोटा क्रिस्टल एकल क्रिस्टल रहते हुए बड़े क्रिस्टल में परिवर्तित हो जायेगा।

द्रवों तथा गैसों के घोल

क्या द्रव को द्रव में घोल सकते हैं? जी हां, घोल सकते हैं। उदाहरण के तौर पर वोदका स्पिरिट का पानी में घोल है (यह भी कह सकते हैं कि पानी का स्पिरिट में घोल है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन-सी चीज़ ज़्यादा मात्रा में है) वोदका एक असली घोल है, पानी और स्पिरिट के अणु पूरी तरह से एक-दूसरे में घुल जाते हैं।

लेकिन दो द्रवों को घोलने पर हमेशा ऐसा परिणाम ही नहीं मिलता है।

मिट्टी के तेल को ज़रा पानी में डालिए। उन्हें कैसे भी क्यों न मिलाया जाए, समांग घोल (homogeneous solution) प्राप्त नहीं होगा। मिट्टी के तेल को पानी में घोलना उतना ही निराशाजनक है जितना कि

मिर्च को शोरबे में घोलना। जैसे ही विलोड़ना बन्द करते हैं वैसे ही द्रवों की तह बन जाती है। ज़्यादा भारी पदार्थ अर्थात पानी नीचे रह जाता है और ज़्यादा हल्का पदार्थ अर्थात मिट्टी का तेल ऊपर आ जाता है। पानी और मिट्टी का तेल, स्पिरिट तथा पानी – ऐसे समुदाय (systems) है, जो विलेयता के गुणों के अनुसार एक दूसरे के विपरीत हैं।

लेकिन इनके बीच के घोल भी होते हैं। उदाहरण के लिए, ईथर को पानी में घोलने पर हम बर्तन में दो तहें स्पष्टतः देखेंगे। शुरू में ऐसा लग सकता है कि ईथर ऊपर है और पानी नीचे। वास्तव में नीचे और ऊपर की तहें घोल हैं: नीचे पानी है, जिसमें कुछ ईथर घुला है (25 ग्राम ईथर प्रति लिटर पानी में घुलती है) और ऊपर ईथर है, जिसमें कुछ मात्रा पानी की है (60 ग्राम प्रति लिटर)।

आइए अब ज़रा गैसों के घोलों के बारे में आपको बताएं। स्पष्ट है कि सब गैसें एक-दूसरे में असीमित मात्राओं में घुलती हैं। दो गैसें सदा ऐसे घुलती हैं कि एक गैस के अणु दूसरी गैस के अणुओं में घुस जाते हैं। गैसों के अणु एक-दूसरे से परस्पर क्रिया कम करते हैं। हर बार ऐसा लगता है कि एक गैस के अणु दूसरी गैस के अणुओं की उपस्थिति में हैं। या यह कहिए कि वे अपने पास के अणु की ओर "देखते" नहीं।

गैसें पानी में भी घुल सकती हैं, लेकिन किसी हद तक। गैस का यह गुण दृढ़ पदार्थों से भिन्न नहीं हैं। लेकिन अलग-अलग गैसें अलग-अलग मात्रा में ही घुलती हैं। यहां घुलनशीलता में अन्तर बहुत ज़्यादा हो सकता है। पानी में अमोनिया बहुत बड़ी मात्रा में घुल सकता है। (आधे गिलास ठण्डे पानी में लगभग 100 ग्राम)। हाइड्रोजन सल्फ़ाइड और कार्बोनिक अम्ल भी काफ़ी मात्रा में पानी में घुलते हैं। ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन पानी में बहुत कम घुलते हैं (एक लिटर ठण्डे पानी में क्रमशः 0.07 तथा 0.03 ग्राम)। एक लिटर ठण्डे पानी में सिर्फ़ ग्राम के सौवें भाग के बराबर ही हवा होती है। लेकिन हवा की यह जरा-सी मात्रा पृथ्वी पर जीवन में काफ़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मछलियां पानी में घुली ऑक्सीजन से सांस लेती हैं।

गैस का दाब जितना ज़्यादा होगा, गैस उतनी ही ज़्यादा द्रव में घुलेगी। अगर घोली जानेवाली गैस की मात्रा ज़्यादा न हो, तो उस और द्रव की सतह के ऊपर गैस के दाब के बीच सीधा अनुपात होता है।

किसने अपनी प्यास बुझाने के वास्ते ठण्डे सोडावाटर का मज़ा नहीं लिया है! सोडावाटर की प्राप्ति दाब पर गैस की घुली मात्रा पर निर्भर करती है। कार्बन डाइऑक्साइड काफ़ी दाब पर पानी में घोलते हैं (सोडावाटर की दुकान में रखे गैस सिलिंडरों में से)। पानी को गिलास में डालने पर दाब वायुमंडलीय दाब तक गिर जाता है और पानी में से "फालतू" गैस बुलबुलों के रूप में निकल जाती है।

ऐसे ही प्रभावों को ध्यान में रखते हुए ग़ोताख़ोरों को पानी में से सतह पर आने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। गहराई में अधिक दाब पर ग़ोताख़ोर के ख़ून में अतिरिक्त हवा घुल जाती है। ऊपर उठने पर दाब गिरता है और घुली हुई वायु बुलबुलों के रूप में निकलनी शुरू हो जाती है, यह बुलबुले रक्तवाहिकाओं को अवरुद्ध कर सकते हैं।

ठोस विलयन

सामान्यतः 'विलयन' शब्द द्रवों के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन ठोस मिश्रणों का भी अस्तित्व है जिनके परमाणु अथवा अणु एकसमान मिले होते हैं। लेकिन ठोस विलयन को कैसे प्राप्त किया जाए? मूसल और ओखली द्वारा तो इसे बनाया नहीं जा सकता है। इसलिए मिश्रण में शामिल होनेवाले पदार्थों को पहले तरल में बदलना चाहिए, यानी गलाया जाना चाहिए। इसके बाद तरलों को मिलाना चाहिए और मिश्रण को ठण्डा होने देना चाहिए। दूसरा तरीक़ा भी अपनाया जा सकता है: दो पदार्थों को किसी तरल में घोला जा सकता है जिन्हें हम मिलाना चाहते हैं। इसके उपरांत विलायक का वाष्पन कर देते हैं। इन विधियों द्वारा ठोस विलयन प्राप्त किए जा सकते हैं। प्राप्त तो किए जा सकते हैं पर आम तौर से प्राप्त होते नहीं हैं। वास्तव में ठोस विलयन विरल हैं, अगर नमकीन जल में चीनी का टुकड़ा डाल दें तो वह आसानी से घुल जाता है, अगर अब पानी का वाष्पन करें तो बर्तन की तह पर नमक और मिस्री के सूक्ष्म क्रिस्टल दिखाई देंगे। नमक चीनी के साथ ठोस विलयन नहीं बनाता।

एक क्रूसिबल में कैडमियम तथा बिस्मथ को गलाया जा सकता है। ठण्डा करने के बाद सूक्ष्मदर्शी में हम कैडमियम तथा बिस्मथ का मिश्रण देखेंगे। बिस्मथ तथा कैडमियम भी ठोस विलयन नहीं बनाते हैं।

ठोस विलयन बनने के लिए अनिवार्य (किन्तु अपर्याप्त) शर्त यह है कि विलयन में शामिल होनेवाले पदार्थों के अणुओं अथवा परमाणुओं का आकार तथा साइज़ लगभग एकसमान होना चाहिए। इस स्थिति में मिश्रण के जमने पर एक क़िस्म के क्रिस्टल बनते हैं। सामान्यतः प्रत्येक क्रिस्टल के जालक स्थल भिन्न-भिन्न प्रकार के अणु (परमाणु) बेतरतीबी से बसे होते हैं।

मिश्रधातुएं, जो इंजीनियरी में विशेष महत्त्व रखती हैं, प्रायः ठोस विलयन होती हैं। मिश्रण की थोड़ी-सी मात्रा घोलने पर धातु के गुणों में बहुत परिवर्तन किए जा सकते हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण है—इंजीनियरी में अधिकतर प्रयोग होनेवाला पदार्थ—इस्पात। इस्पात कार्बन तथा लोहे का ठोस विलयन है, जिसमें कार्बन की मात्रा 0.5 भार प्रतिशत होती है, अर्थात लोहे के 40 परमाणुओं में कार्बन का एक परमाणु होता है। कार्बन के परमाणु लोहे के परमाणुओं के बीच में बेतरतीबी से डाले होते हैं।

लोहे में कार्बन के बहुत कम परमाणु घुल पाते हैं। किन्तु कुछ ठोस विलयन विलेय पदार्थों को किसी भी अनुपात में मिलाने पर भी प्राप्त किए जा सकते हैं। उदाहरणतः सोने और तांबे की मिश्रधातु। सोने तथा तांबे के जालक एक ही प्रकार के हैं—फलक-केन्द्रित घन जालक (face centred cubic lattice)। तांबे और सोने की मिश्रधातु का जालक भी ऐसा ही होता है।

तांबे की अधिक मात्रावाले मिश्रधातु के जालक के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है, अगर जालक में से मन में सोने के परमाणुओं को तांबे के परमाणुओं से प्रतिस्थापित कर दिया जाए। ऐसा करने पर प्रतिस्थापन किसी क्रम से नहीं होता है, तांबे के परमाणु जालक स्थितियों पर साधारणतः बेतरतीबी से वितरित हो जाते हैं। तांबे तथा सोने की मिश्रधातुओं को प्रतिस्थापनात्मक ठोस विलियन (substitution solid solution) कहते हैं, लेकिन इस्पात दूसरे क़िस्म का विलयन—अंतराकाशी ठोस विलयन (interstitial solid solution) है।

अधिकांश स्थितियों में ठोस विलयन नहीं बनते हैं और, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, विलयन को ठण्डा करने के बाद सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है कि उसमें दोनों पदार्थों के छोटे-छोटे क्रिस्टल विद्यमान हैं।

घोल कैसे जमते हैं

यदि पानी में किसी नमक के घोल को ठंडा किया जाय तो यह देखा जाएगा कि हिमांक कम हो गया है। तापमान शून्य डिग्री से कम हो गया है लेकिन घोल जमा नहीं है। तापमान ज़ीरो डिग्री से कुछ अंश कम होने पर ही द्रव में छोटे-छोटे क्रिस्टल दिखाई देंगे। ये क्रिस्टल शुद्ध हिम के होते हैं। ठोस हिम में नमक घुलता नहीं है।

हिमकारी ताप (freezing temperature) घोल की सान्द्रता पर निर्भर करता है। घोल की सान्द्रता बढ़ाने पर हम क्रिस्टलन ताप कम करते हैं। संतृप्त घोल का हिमकारी ताप सबसे कम होता है। घोल के हिमकारी ताप में गिरावट कम नहीं होती हैं। उदाहरण के तौर पर, पानी में खाने के नमक का घोल —21°C पर जमता है। अन्य लवणों की सहायता से हिमकारी ताप को और भी कम किया जा सकता है। उदाहरणतया केल्शियम क्लोराइड की सहायता से घोल का हिमकारी ताप —55°C तक पहुंचाया जा सकता है।

आइए, अब देखें कि हिमीकरण प्रक्रिया कैसे होती है। घोल में जब पहले क्रिस्टल बन जाएं तो उसका गाढ़ापन बढ़ने लगता है। अब बाह्य अणुओं की आपेक्षिक गिनती बढ़ने लगती है जिनके फलस्वरूप पानी की क्रिस्टलन क्रिया में विघ्न बढ़ते हैं और हिमकारी ताप कम हो जाता है। अगर तापमान को और कम न होने दिया जाए तो क्रिस्टलन बंद हो जायेगा। तापमान और कम होने पर पानी (विलायक) के क्रिस्टल अलग होते रहते हैं। अन्ततः घोल संतृप्त हो जाता है। घोले जानेवाले पदार्थ को घोल में और घोलना असम्भव हो जायेगा और घोल तत्काल जम जायेगा। अगर इस जमे हुए मिश्रण को खुर्दबीन में से देखें तो पता चलेगा कि उसमें बर्फ़ और नमक दोनों के क्रिस्टल मौजूद हैं।

भाव यह हुआ कि घोल एक साधारण द्रव की तरह नहीं जमता है। हिमीकरण-क्रिया तापमान के लम्बे परिसर पर फैल जाती है।

यदि जमे हुए तल पर कुछ नमक छिड़क दिया जाए तो क्या होगा? जो लोग ऐसी परिस्थितियों से परिचित हैं वे इसका उत्तर जानते हैं। नमक के हिम के साथ संपर्क में आते ही हिम पिघलने लगती है। ऐसा होने के लिए आवश्यक है कि नमक के संतृप्त घोल का हिमकारी ताप

वायु के तापमान से कम हो। यदि यह शर्त पूरी हो जाय तो हिम और नमक का मिश्रण परायी अवस्था, यानी घोल की साम्यावस्था के क्षेत्र में होता है। इसलिए हिम और नमक का मिश्रण घोल में बदल जायेगा, यानी बर्फ़ पिघल जायेगी और नमक उसमें घुल जायेगा। अन्ततः या तो सारी की सारी बर्फ़ घुल जायेगी या ऐसा घोल बन जायेगा जिसके जमाव का तापमान वातावरण के तापमान के बराबर होगा।

100 वर्ग मीटर के दलान पर बर्फ़ की एक सेंटीमीटर मोटी तह जमी है—यह बर्फ़ की कम मात्रा नहीं है, इतनी बर्फ़ का बोझ लगभग एक टन होता है। आइए, अब यह मालूम करें कि दलान को साफ़ करने के वास्ते कितने किलोग्राम नमक की आवश्यकता पड़ेगी अगर तापमान —3°C है। 45 ग्राम प्रति लीटर सांद्रतावाले नमक के घोल का क्रिस्टलन (गलन) इतने तापमान पर होता है। लगभग एक लीटर पानी एक किलोग्राम बर्फ़ के बराबर होता है। इसका मतलब यह हुआ कि —3°C पर एक टन बर्फ़ को पिघलाने के वास्ते 45 किलोग्राम नमक की आवश्यकता होगी। वास्तव में इससे बहुत कम नमक प्रयोग किया जाता है, क्योंकि सारी बर्फ़ को पूरी तरह पिघलाने की कोशिश नहीं की जाती है।

बर्फ़ को नमक से मिलाने पर बर्फ़ पिघलती है और नमक पानी में घुल जाता है। लेकिन बर्फ़ को पिघलाने के लिए ऊष्मा की आवश्यकता होती है। और बर्फ़ यह ऊष्मा वातावरण से ग्रहण करती है। इस प्रकार नमक को बर्फ़ से मिलाने पर तापमान गिरता है।

हम बर्फ़खाने में बनी आइस्क्रीम ख़रीदने के आदी हो चुके हैं। पहले आइस्क्रीम घरों में बनाते थे। कुलफ़ी जमाने के लिए बर्फ़ और नमक के मिश्रण का प्रयोग किया जाता था।

घोलों का क्वथन

घोलों के क्वथन की क्रिया घोलों की हिमीकरण-क्रिया से मिलती-जुलती है।

विलायक की उपस्थिति में क्रिस्टलन मुश्किल हो जाता है। यही कारण है कि विलायक क्वथन-क्रिया में विघ्न डालते हैं। यों समझ लीजिए कि दोनों स्थितियों में पराये अणु मानों घोल को जितना हो सके उतना पतला

(dilute) रखने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे शब्दों में पराये अणु आधार पदार्थ को सुस्थिर करते हैं (यानी उसका अस्तित्व बनाये रखने में सहयोग देते हैं) जो उन्हें घोल सकता है।

यही कारण है कि पराये अणु द्रव के क्रिस्टलन में बाधा डालते हैं। भावार्थ यह कि वे क्रिस्टलन-तापमान को घटा देते हैं। ठीक इसी प्रकार पराये अणु द्रव के क्वथन में बाधा डालते हैं यानी उसके क्वथनांक को बढ़ा देते हैं।

विचित्र बात यह है कि सान्द्रता की निश्चित सीमाओं तक (बहुत गाढ़े घोलों को छोड़ कर) घोल के क्रिस्टलन तापमान में कमी और क्वथनांक में वृद्धि दोनों ही घोले जानेवाले पदार्थ के गुणों पर बिल्कुल ही निर्भर नहीं करती है, लेकिन पदार्थ के अणुओं की मात्रा से केवल निर्धारित की जाती है। इस विचित्र तथ्य का घोले जानेवाले पदार्थ का अणुभार आंकने के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐसा एक परिचित सूत्र द्वारा किया जाता है (इस सूत्र को हम यहां पेश नहीं करेंगे), जो हिमकारी ताप या क्वथनांक में परिवर्तन को घोल के एकांक आयतन (unit volume) में विद्यमान अणुओं की मात्रा (और गलन-ऊष्मा या क्वथन-ऊष्मा) से संबंधित करता है।

पानी के क्वथनांक में उसके हिमकारी ताप की अपेक्षा लगभग तीन गुना कम वृद्धि होती है। इस तरह समुद्री जल, जिसमें नमक की मात्रा लगभग 3.5 प्रतिशत है, $100.6°C$ पर उबलता है और जबकि उसका हिमकारी ताप $2°$ कम होता है।

अगर एक द्रव दूसरे द्रव की अपेक्षा अधिक तापमान पर उबलता है तो (उसी तापमान पर) उसका वाष्प दाब (vapour tension) कम होगा। इस का अर्थ यह हुआ कि घोलों का वाष्प दाब शुद्ध विलायक के वाष्प दाब से कम होता है। इस अन्तर को निम्नलिखित आंकड़ों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। $20°C$ पर जल-वाष्प दाब 17.5 mm Hg और इसी तापमान कर नमक के संतृप्त घोल का वाष्प दाब 13.2 mm Hg होता है।

जल के लिए असंतृप्त वाष्प, जिसका दाब 15 mm Hg है, नमक के संतृप्त घोल के वास्ते अतिसंतृप्त होगी। ऐसे घोल की उपस्थिति में वाष्प द्रवित होना तथा द्रव में परिवर्तित होना शुरू करेगा। निस्सन्देह; हवा

में से जल-वाष्प को न केवल नमक का घोल, परन्तु पिसा हुआ नमक भी लेगा। जल की पहली बूंद ही, जो नमक में से निकलेगी, नमक को घोल देगी और संतृप्त घोल बनाएगी।

हवा से नमक द्वारा पानी के कणों को सोख लेना हमें यह दर्शाता है कि नमक गीला हो जाता है। इससे गृहिणीयां अच्छी तरह परिचित हैं। नमक के गीला हो जाने से उन्हें असुविधा भी होती है। लेकिन घोल की सतह के ऊपर वाष्प दाब में कमी के अनेक लाभ भी हैं: इस परिघटना का प्रयोगशालाओं में वायु को सुखाने के लिए उपयोग किया जाता है। आर्द्र हवा को कैल्शियम क्लोराइड में से गुज़ारते हैं, जो हवा में से बहुत पानी सोख लेता है। अगर नमक के संतृप्त घोल का वाष्प दाब 13.2 mm Hg है, तो कैल्शियम क्लोराइड का वाष्प दाब 5.6 mm Hg है। इसका जल-वाष्प दाब भी इतना ही हो जाएगा अगर इसे कैल्शियम क्लोराइड की पर्याप्त मात्रा में से गुज़ारा जाए (एक किलोग्राम कैल्शियम क्लोराइड अपने में लगभग एक किलो पानी "धारण" करता है)। यह आर्द्रता बहुत कम है और हवा को शुष्क माना जा सकता है।

द्रव को अपद्रव्यों से कैसे अलग करते हैं

द्रवों को अपद्रव्यों से अलग करने की महत्त्वपूर्ण विधियों में से एक है आसवन (distilation)। द्रव को उबालते हैं और उसके वाष्प को प्रशीतित्र में भेजते हैं। वाष्प ठण्डे होने पर फिर द्रव में परिवर्तित हो जाते हैं, लेकिन यह द्रव पहलेवाले द्रव से ज़्यादा साफ़ होगा।

आसवन द्वारा द्रव में घुले ठोस पदार्थों को अलग किया जा सकता है। इन पदार्थों के अणु वाष्प में लगभग अनुपस्थित होते हैं। इसी तरीक़े से आसुत जल (distilled water) प्राप्त किया जाता है। आसुत जल स्वादहीन और खनिज अपद्रव्यों से मुक्त होता है।

लेकिन वाष्पीकरण द्वारा तरल अपद्रव्यों से भी मुक्ति पायी जा सकती है, और दो या अधिक तरलों के मिश्रण का पृथक्करण किया जा सकता है। ऐसा करने के वास्ते हम इस तथ्य का आश्रय लेते हैं कि मिश्रण में शामिल दो द्रवों का वाष्पीकरण दो भिन्न-भिन्न तापमानों पर होता है।

आइए, अब देखें कि दो द्रवों का मिश्रण, उदाहरण के तौर पर, पानी

ग्रौर एथिल ऐल्कोहॉल का मिश्रण, जिसमें दोनों द्रवों को एकसमान मात्रा में लिया गया है (50° वाली वोदका), उबालने पर कैसा बरताव करेगा।

सामान्य दाब पर पानी $100^\circ C$ पर ग्रौर ऐल्कोहॉल $78^\circ C$ पर उबलने लगता है। ऊपरलिखित मिश्रण किसी मध्यवर्ती तापमान पर उबलने लगेगा यानी $81.2^\circ C$ पर। ऐल्कोहॉल ग्रासानी से वाष्प में परिवर्तित हो जाता है, इसलिए उसका वाष्प दाब ग्रधिक होता है। 50% वाले मिश्रण की वाष्प के पहले ग्रंश में 80% ऐल्कोहॉल होगा।

वाष्प के इस ग्रंश को प्रशीतित्र में से निकाल कर द्रव में परिवर्तित किया जा सकता है। यह द्रव ऐल्कोहॉल-समृद्ध होगा। इस विधि को दोहराया जा सकता है। परन्तु व्यावहार में यह विधि बहुत ग्रच्छी नहीं है, क्योंकि हर बार उबालने पर हमें द्रव्य की मात्रा कम मिलती है। इस हानि से बचने के लिए परिशोधन कॉलमों का द्रवों को साफ़ करने के वास्ते उपयोग किया जाता है।

इस रोचक उपकरण के कार्य का सिद्धान्त निम्नलिखित में निहित है। एक ऊर्ध्वाधर कॉलम की कल्पना कीजिए जिसके निचले भाग में तरल मिश्रण रखा है। कॉलम को नीचे से गरम ग्रौर ऊपर से ठण्डा करते हैं। तरल मिश्रण के उबलने पर जो वाष्प बनता है। वह ऊपर की ग्रोर उठता है ग्रौर ठण्डा होकर द्रव में बदल जाता है। इस प्रकार जो द्रव बनता है वह नीचे गिरता जाता है। कॉलम को लगातार गरम करते ग्रौर ऊपर से ठण्डा करते रहने पर बन्द कॉलम में एक दूसरे के विपरीत दिशा में जानेवाली दो धाराएं बन जाती हैं–वाष्प ऊपर की ग्रोर जाता है ग्रौर द्रव नीचे की ग्रोर बहता है।

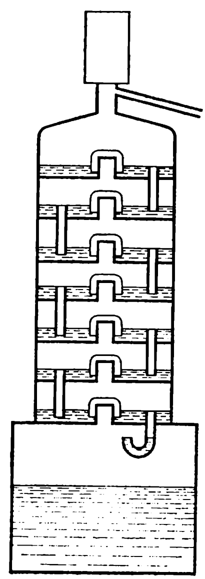
ग्राइए, ग्रब इस कॉलम के किसी क्षैतिज ग्रनुप्रस्थ-परिच्छेद (horizontal cross-section) पर दृष्टिपात करें। देखते हैं कि इस परिच्छेद में से द्रव नीचे की ग्रोर बहता है ग्रौर वाष्प ऊपर की ग्रोर जाता है। ऐसा होने पर तरल मिश्रण में विद्यमान द्रवों में से कोई भी कहीं रुकता नहीं है। यहां बात ऐल्कोहॉल ग्रौर पानी के मिश्रण से भरे कॉलम की हो रही है। ऊपर ग्रौर नीचे जानेवाली ऐल्कोहॉल ग्रौर पानी की नीचे ग्रौर ऊपर जानेवाली मात्राएं दोनों बराबर होंगी। क्योंकि द्रव नीचे की ग्रोर बहता है ग्रौर वाष्प ऊपर की ग्रोर उठता है, इसका मतलब यह हुग्रा कि कॉलम की प्रत्येक ऊंचाई पर द्रव ग्रौर वाष्प की कॉमपज़िशन बराबर होगी।

जैसा कि हाल में ही हमने देखा है द्रव और वाष्प के मिश्रण के संतुलन के लिए इसके विपरीत विभिन्न कॉमपजिशनवाली द्रव और वाष्प-प्रावस्था की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि कॉलम की प्रत्येक ऊंचाई पर द्रव वाष्प में और वाष्प द्रव में परिवर्तित होता है। ऐसा होने पर मिश्रण में विद्यमान उच्च ताप पर उबलनेवाला पदार्थ द्रवित हो जाता है, और कम ताप पर उबलनेवाला पदार्थ द्रव से वाष्प में परिवर्तित हो जाता है।

इसलिए वाष्प की ऊपर जानेवाली धारा सब ऊंचाइयों पर से कम ताप पर उबलनेवाले पदार्थ को मानों अपने में इकट्ठा कर लेगी, और नीचे बहनेवाला द्रव उच्च ताप पर उबलनेवाले पदार्थ से समृद्ध होता जाएगा। हर ऊंचाई पर मिश्रण की कॉमपजिशन भिन्न होती है: ऊंचाई जितनी अधिक होगी कम ताप पर उबलनेवाले द्रव की मात्रा उतनी अधिक होगी। आदर्श स्थिति में चोटी पर कम ताप पर उबलनेवाले पदार्थ की शुद्ध तह होगी और सबसे नीचे ऊंचे तापमान पर उबलनेवाला शुद्ध द्रव होगा।

अब हमारा कार्य कम तापमान पर उबलनेवाले द्रव को ऊपरी भाग में से तथा ऊंचे तापमान पर उबलनेवाले द्रव को निचले भाग में से इस प्रकार धीरे-धीरे अलग करना है कि ऊपरलिखित आदर्श अवस्था बिगड़ न पाए।

हमें वाष्पों और द्रवों की ऊपर और नीचे जानेवाली धाराओं को अच्छी तरह मिलने देना चाहिए ताकि द्रवों को व्यावहारिक तौर पर अलग करना सम्भव हो सके। ऐसा करने के लिए द्रवों और वाष्पों की धाराओं को एक दूसरे के ऊपर रखी और द्रव को बाहर ले जानेवाली नलियों से जुड़ी हुई प्लेटों की मदद से रोका जाता है। द्रव से भरी प्लेट में से द्रव केवल निचली प्लेटों में ही बह सकता है। ऊपर जा रहे वाष्प की तेज़ धारा (0.3—1 m/sec) द्रव की पतली परत में से गुज़रती है। परिशोधन कॉलम का आरेख चित्र 107 में दिखाया है।



चित्र 107

द्रव को पूर्णतया शुद्ध करना हमेशा सम्भव नहीं होता है। कुछ मिश्रण "अजीबोगरीब" गुण रखते हैं: मिश्रण के निश्चित अनुपात में वाष्प में बदलनेवाले अणुओं का अनुपात भी उतना ही होता है जितना कि तरल मिश्रण में पदार्थों का। इस स्थिति में, निस्सन्देह, मिश्रण को और ज़्यादा साफ़ करना ऊपरलिखित तरीक़े से असम्भव हो जाता है। ऐसा मिश्रण होता है 96% ऐल्कोहॉल और 4% पानी का: यह मिश्रण गरम करने पर इसी मात्रा का वाष्प देता है। यही कारण है कि 96% ऐल्कोहॉल सबसे अच्छी मानी जाती है। ऐसी ऐल्कोहॉल वाष्पीकरण द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

द्रवों का परिशोधन (या आसवन) रासायन उद्योग में एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। परिशोधन द्वारा कच्चे तेल में से पेट्रोल प्राप्त करते हैं।

रोचक बात तो यह है कि ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए आसवन एक बहुत सस्ती विधि है। ऐसा करने के लिए, निस्सन्देह, वायु को पहले द्रव में परिवर्तित किया जाता है, और फिर आसवन द्वारा इसमें से शुद्ध ओज़ोन और ऑक्सीजन प्राप्त की जाती है।

ठोस पदार्थों का संशोधन

रसायन पदार्थों की बोतलों पर हमें प्रायः उसके रासायनिक नाम के साथ "ч,", "ч.д. а." या "сп.ч."* अक्षर भी लिखे हुए मिलते हैं। इन अक्षरों द्वारा इन पदार्थों की शुद्धता अंकित की जाती है, जहां "ч." अक्षर का अर्थ है कि यह पदार्थ बहुत शुद्ध नहीं है, उसमें एक प्रतिशत अपद्रव्य हो सकते हैं; "ч.д.а."—पदार्थ "विश्लेषण के लिए शुद्ध" है और इसमें अपद्रव्यों की मात्रा एक प्रतिशत के कुछेक अंशों के बराबर है; "сп.ч."—spectrally pure, इतना शुद्ध पदार्थ प्राप्त करना आसान काम नहीं है, स्पेक्ट्रमी विश्लेषण द्वारा अपद्रव्यों के एक प्रतिशत के हज़ारवें हिस्से तक की विद्यमानता मालूम की जा सकती है। अगर पदार्थ पर "сп.ч." अक्षर लिखे हैं, तो यह माना जा सकता है कि पदार्थ कम से कम 99.99% शुद्ध है।

---

* ये रूसी शब्दों के पहले अक्षर हैं, जिनका अर्थ इस पृष्ठ पर ही बताया गया है। (सं०)

शुद्ध ठोस पदार्थों की बहुत मांग है। एक प्रतिशत के हज़ारवें भाग की अशुद्धता भी पदार्थ के भौतिक गुणों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। तकनीक के एक नवीनतम क्षेत्र में यानी अर्ध-चालक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए 99.99999 प्रतिशत शुद्धता की आवश्यकता होती है। इसका मतलब यह हुआ कि एक करोड़ वांछित परमाणुओं में एक अनिच्छित परमाणु भी इंजीनियरी की समस्याएं हल करने में बाधा डालता है। इस प्रकार की अति शुद्ध धातुएं प्राप्त करने के लिए एक विशेष विधि अपनायी जाती है।

अति शुद्ध जर्मेनियम तथा सिलिकान (इन्हीं धातुओं से मुख्यतः अर्ध-चालक बनाए जाते हैं) को पिघली हुई धातु में उग रहे क्रिस्टल को धीरे-धीरे खींचने से प्राप्त किया जा सकता है। पिघली हुई सिलिकान (या जर्मेनियम) में एक छड़ डालते हैं जिसके सिरे पर एक संरोपित बीज (inoculator seed) लगा होता है। फिर छड़ को आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकालना शुरू करते हैं, पिघली हुई धातु में से बाहर निकल रहा क्रिस्टल मुख्य पदार्थ के परमाणुओं द्वारा बनाया जाता है, अपद्रव्यों के परमाणु पिघली हुई धातु में ही रह जाते हैं।

तथाकथित मंडल परिष्करण (zone refining) विधि का अधिकांश उपयोग किया जाता है। जिस धातु को साफ़ करना होता है उसकी एक छड़ बनायी जाती है। छड़ की लम्बाई कितनी भी हो सकती है और उसका व्यास कुछेक मिलीमीटर होना चाहिए। छड़ के साथ-साथ छोटी-सी बेलनाकार भट्ठी, जो छड़ को अपनी लपेट में लेती है, सरकती है। भट्ठी का तापमान छड़ को पिघलाने के लिए पर्याप्त होता है। धातु का वह हिस्सा, जो भट्ठी के अन्दर होता है, पिघल जाता है। इस तरह छड़ के साथ-साथ पिघली हुई धातु का छोटा-सा मंडल (zone) सरकता है।

अपद्रव्य के परमाणु प्रायः द्रव में ठोस पदार्थ की अपेक्षा सुगमता से घुल जाते हैं। इसलिए पिघली हुई धातु के मंडल की सरहद पर ठोस धातु में से अपद्रव्य के परमाणु पिघले हुए भाग में चले जाते हैं और वापिस नहीं आते हैं। यों कहिए कि पिघली हुई धातु का गतिमान मंडल मानों अपद्रव्य के परमाणुओं को पिघली हुई धातु के साथ-साथ खींच रहा है। उलटी दिशा में भट्ठी को गरम नहीं किया जाता है, और छड़ को बाहर निकालने की क्रिया को अनेक बार दोहराया जाता है। इस प्रक्रिया

को काफ़ी बार दोहराने के पश्चात छड़ के गन्दे सिरे को काटना ही बाक़ी रह जाता है। अति शुद्ध धातुएं निर्वात या अक्रिय गैसों के वातावरण में प्राप्त की जाती हैं।

अपद्रव्यों के परमाणुओं का अंश अधिक होने पर धातुओं को साफ़ करने के दूसरे तरीक़े इस्तेमाल किए जाते हैं। मंडल परिष्करण और पिघली हुई धातु में से क्रिस्टलन निकालने के तरीक़े मात्र अन्तिम शोधन के लिए उपयोग किए जाते हैं।

अधिशोषण

गैसें ठोस पदार्थों में बहुत कम घुलती हैं अर्थात वे धातुओं के क्रिस्टलों में बहुत कम प्रवेश करती हैं। गैसों के ठोस पदार्थों में प्रवेश करने की एक और ही विधि है। गैस के अणु ठोस पदार्थ के तल पर एकत्र हो जाते हैं। अणुओं के ठोस पदार्थ की सतह पर चिपक जाने की इस क्रिया को अधिशोषण कहते हैं।* अधिशोषण तब होता है जब कोई अणु पदार्थ के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है, लेकिन अच्छी तरह उसकी सतह पर चिपक जाता है।

अधिशोषण का अर्थ है सतह द्वारा अवशोषण। क्या यह परिघटना कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है? सबसे बड़े पिण्ड पर एक अणु की मोटाई के बराबर जमाई गई परत का भार एक ग्राम के छोटे-से हिस्से से भी कम होगा।

आइये, इसका अनुमान लगायें। एक छोटे-से अणु का क्षेत्रफल लगभग $10\,Å^2$ यानी 10^{-15} cm^2 के बराबर होता है। इसका मतलब यह हुआ कि 10^{15} अणु $1\,cm^2$ पर समा जाएंगे। जल के इतने अणुओं का भार $3 \cdot 10^{-8}$ g होता है। $1 m^2$ क्षेत्रफल पर कुल 0.0003 g पानी होगा। सैंकड़ों वर्गमीटर क्षेत्रफलवाली सतहों पर काफ़ी अणु जमा हो जाएंगे। उदाहरण के लिए $100\,m^2$ क्षेत्रफल में अब 0.03 g पानी (10^{21} अणु) होगा।

---

*अधिशोषण को अवशोषण से उलझाना नहीं चाहिए, जिसका अर्थ मात्र अवचूषण है।

क्या प्रयोगशाला की परिस्थितियों में इतने बड़े क्षेत्रफलों से हमारा वास्ता पड़ता है? लेकिन यह कल्पना करना मुश्किल नहीं कि कभी-कभी बिलकुल छोटे-छोटे पिंड, जो चाय की चमची के सिरे पर समा जाते हैं, सैकड़ों वर्गमीटर क्षेत्रफल रखते हैं।

एक सेंटीमीटर भुजावाले घन की सतह का क्षेत्रफल $6\,cm^2$ होता है। आइए, अब इसे $0.5\,cm$ भुजावाले घनों में बांट दें। छोटे घनों की सतह का क्षेत्रफल $0.25\,cm^2$ होगा। ऐसी $6 \times 8 = 48$ सतहें होंगी। उनका कुल क्षेत्रफल $12\,cm^2$ होगा। भाव यह कि सतह का क्षेत्रफल दुगुना हो गया।

इस तरह पिण्ड को अनेक भागों में बांटने पर उसकी सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाता है। आइए, अब एक सेंटीमीटर भुजावाले घन को एक माइक्रोन के बराबर भुजावाले घनों में बांटें। एक माइक्रोन $10^{-4}\,cm$ के बराबर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बड़े घन के $10^{12}\,cm$ भाग बन जायेंगे (आसानी के लिए मान लीजिए कि यह सब भाग घनाकार हैं)। इनका क्षेत्रफल 6 वर्ग माइक्रोन अर्थात $6 \cdot 10^{-8}\,cm^2$ होगा। सभी भागों की सतह का क्षेत्रफल $6 \cdot 10^4\,cm^2$ यानी 6 वर्ग मीटर होगा। याद रहे कि माइक्रोन ही बांट की सीमा नहीं है इससे और छोटे घन बनाना भी संभव है।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि आपेक्षिक सतह (यानी एक ग्राम पदार्थ की सतह) को बहुत बड़ी संख्या में व्यक्त किया जा सकता है। पदार्थ के बहुत छोटे-छोटे भाग करने पर यह संख्या भी तेज़ी से बढ़ती जाती है— दाने की सतह उसके आकार के वर्ग के अनुपातिक कम होती है, और एकांक आयतन में कणों की संख्या आकार के त्रिघात के अनुपात में बढ़ती है। यदि किसी गिलास में एक ग्राम पानी डाला जाय तो उसकी सतह कई वर्ग सेंटीमीटरों के बराबर होगी। वर्षा की बूंदों के रूप में यही एक ग्राम पानी की सतह का क्षेत्रफल दसियों वर्ग सेंटीमीटर होगा। धुंध के रूप में एक ग्राम पानी की सतह का क्षेत्रफल सैकड़ों वर्ग मीटर होता है।

पिसा हुआ कोयला (कोयला जितना महीन होगा उतना ही अच्छा परिणाम होगा) अमोनिया, कार्बोनिक अम्ल और अनेक विशैली गैसों का अधिशोषण कर सकता है। कोयले की इसी विशेषता के कारण ही उसे श्वास यंत्रों में इस्तेमाल किया जाता है। कोयले को पीसना बहुत आसान

है ग्रौर उसके कणों के रखिक मापों (linear dimensions) को 10 Å तक कम किया जा सकता है। इसलिए विशेष प्रकार के एक ग्राम कोयले की सतह का क्षेत्रफल कुछ सौ वर्ग मीटर होता है। वह श्वास यंत्र, जिसमें कोयला प्रयुक्त किया जाता है, कई लीटर गैस का ग्रधिशोषण कर सकता है।

रासायनिक उद्योग में ग्रधिशोषण का बहुत प्रयोग होता है। भिन्न-भिन्न गैसों के ग्रणु सतह पर ग्रधिशोषित होने पर एक-दूसरे के बहुत निकट हो जाते हैं। ऐसा करने पर वे ग्रासानी से रासायनिक क्रिया करते हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया को तेज़ करने के लिए कोयले की तरह बारीक पिसा हुग्रा निकल, तांबा या ग्रौर धातुएं भी इस्तेमाल की जाती हैं।

रासायनिक प्रतिक्रिया को बढ़ावा देनेवाले पदार्थों को उत्प्रेरक (catalyst) कहते हैं।

परासरण

जीवन्त ऊतकों में ग्रपनी ही क़िस्म की झिल्लियां होती हैं जिनमें से पानी के ग्रणु निकल सकते हैं, परन्तु उसमें (पानी में) घुले पदार्थ इन झिल्लियों में से नहीं निकल सकते हैं।

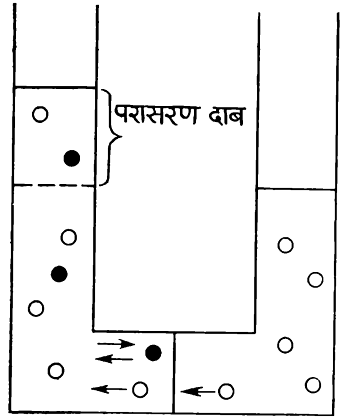
इन झिल्लियों की विशेषताग्रों के कारण वह भौतिक प्रक्रियाएं होती हैं जिन्हें परासरण (osmosis) का नाम दिया गया है।

ग्रब ज़रा कल्पना करें कि U ग्राकार की नली में ऐसी एक ग्रर्धपार-गम्य झिल्ली लगी हुई है, जो उसे दो भागों में बांटती है। नली के एक भाग में घोल डालते हैं ग्रौर दूसरे भाग में पानी या कोई ग्रौर घोल। दोनों भागों में घोलों की एकसमान मात्रा डालने पर हम देखेंगे कि तल बराबर होने पर भी साम्यावस्था नहीं है। कुछ समय बाद घोल विभिन्न तलों पर रुक जाते हैं। ऐसा होने पर U ग्राकार की नली के उस हिस्से में तल ऊंचा होता है जिसमें घोल है। पानी झिल्ली में से निकल कर घोल को पतला करता है। इस परिघटना को परासरण, ग्रौर ऊंचाइयों में ग्रन्तर को परासरण दाब कहते हैं।

परासरण दाब पैदा होने का क्या कारण है?

दायीं ग्रोर की नली में दबाव मात्र जल पैदा करता है (चित्र 108)।

बायीं ओर कुल दाब जल और घुले हुए पदार्थ के दाब का योग होता है। लेकिन केवल जल ही झिल्ली में से निकल सकता है, और झिल्ली की उपस्थिति में साम्यावस्था केवल तब स्थापित नहीं होती है जब बायीं ओर दाब दायीं ओर के कुल दाब के बराबर होता है, परन्तु तब जब स्वच्छ जल का दाब घोल में "जलीय" अंश के दाब के बराबर हो जाता है। दबाव में यह अन्तर विलयक के दबाव के बराबर होता है।



चित्र 108

यह अतिरिक्त दबाव ही तो परासरण दाब है। जैसा कि प्रयोगों और परिकलनों से पता चलता है, परासरण दाब उसी आयतन के बराबर घोले गए पदार्थ के गैस दबाव के बराबर होता है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि परासरण का मान बहुत बड़ा होता है।

आइये, अब हम एक लिटर पानी में 20 ग्राम चीनी घोलने पर पैदा हुआ परासरण दाब मालूम करें। (एक गिलास चाय में चीनी की सान्द्रता शायद अधिक होती है)। चीनी, जिसका रासायनिक सूत्र $C_{12}H_{12}O_{11}$ है, का आण्विक भार 342 होता है। इस समस्या के अनुसार एक लिटर पानी में ग्राम-अणु चीनी का 20/342 अंश है। इस प्रकार एक ग्राम-अणु चीनी $\frac{342}{20} = 17.1$ लिटर में होगी। परन्तु सामान्य परिस्थितियों में यानी 0°C तापमान और एक वायुमण्डलीय दाब पर एक ग्राम-अणु गैस 22.4 लिटर स्थान घेरती है। इसलिए, आदर्श गैसों के नियमानुसार चीनी का दाब गैस-चीनी की तरह 0°C पर $\frac{22.4}{17.1}$ atm और 20°C पर $\frac{22.4}{17.1} \cdot \frac{293}{273} = 1.4$ atm होना चाहिए था। यह ही तो है चीनी का परासरण दाब। अर्धपारगम्य झिल्ली (semipermeable membrane) के साथ किए गए प्रयोग में यह परासरण दाब 14 मीटर ऊंचे पानी के स्तम्भ द्वारा संतुलित होता।

22—940

पाठक के दिमाग में से अप्रिय याददाश्तों को दूर करने के लिए आइए अब यह देखें कि परासरण दाब कुछ लवणों की शोधक क्रिया से कैसे सम्बंधित है। आंत्र (intestine) की दीवारें कुछेक लवणों के लिए अर्धपारगाम्य हैं। अगर लवण इंटेस्टाइन की दीवारों में से नहीं निकलता है (ऐसा है Glauber's salt, सज्जी,), तो इंटेस्टाइन में परासरण दाब पैदा हो जाता है, जो ऊतकों में से पानी को चूस कर इंटेस्टाइन में लाता है।

यही कारण है कि बहुत नमकीन पानी पीने से प्यास नहीं बुझती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें दोषी है परासरण दाब। गुर्दे परासरण दाब पर पेशाब बाहर नहीं निकाल सकते हैं, जो ऊतकों के दाब से अधिक होता है। इसलिए शरीर, जो नमकीन समुद्री जल प्राप्त करता है, न केवल ऊतकों को पानी ही नहीं देता है, बल्कि उनसे लिए गए पानी को मूत्र के साथ निकालता है।

१४. घर्षण

घर्षण बल

हम घर्षण का पहली बार ही उल्लेख नहीं कर रहे हैं। यह बात तो सही है, घर्षण की चर्चा किए बिना गति के बारे में कैसे बताया जा सकता है? हमारे इर्द-गिर्द के पिण्डों की प्रायः हर गति घर्षण से संबंधित है। मोटरगाड़ी रुक जाती है, उसके चालक ने इंजन जो बन्द कर दिया है। लोलक की गति कई दोलन करने के बाद रुक जाती है। सूरजमुखी के तेल से भरे बर्तन में फेंकी गई धात्वीय गेंद ग्राहिस्ता-ग्राहिस्ता नीचे की ग्रोर जाती है। गतिमान् पिण्डों को सतह पर रुकने के लिए क्या विवश करता है, तेल में गेंद की मन्थर गति का क्या कारण है? इसका कारण है घर्षण बल, जो पिंडों की दूसरे पिंडों की सतह पर गति के दौरान पैदा होते हैं।

परन्तु स्मरण रहे कि घर्षण बल केवल गति के समय ही पैदा नहीं होते हैं। ग्रापको शायद कमरे में रखे सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखना तो पड़ा होगा। भारी ग्रल्मारी को ग्रपनी जगह से हटाने पर काफ़ी दम लगाना पड़ता है। इस बल के विपरीत लगे बल को विराम में घर्षण-बल कहते हैं।

जब हम किसी पिंड को सरकाते या लुढ़काते हैं तो घर्षण बल पैदा होता है। दोनों भौतिक परिघटनाएं एक दूसरी से तनिक भिन्न हैं। इसलिये घर्षण भी दो प्रकार के होते हैं: लोटनिक घर्षण (rolling friction) तथा सर्पी घर्षण (sliding friction)।

कुछेक स्थितियों में पिंडों को सरकाना काफ़ी ग्रासान होता है। स्लेज-गाड़ी बर्फ़ पर सुगमता से फिसलती है तथा स्केट तो बर्फ़ पर ग्रौर भी सुगमता से फिसलता है।

ग्राइए, ग्रब यह देखें कि घर्षण बल किन बातों पर निर्भर करते हैं?

दो ठोस पिण्डों के बीच घर्षण बल उनकी गति पर कम निर्भर करता है ग्रौर पिंड के भार के ग्रानुपातिक होता है। ग्रगर पिंड का भार दुगुना

हो जाए, तो उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर खींच कर ले जाने में दुगुनी कठिनाई होगी। इतना कहने पर हम अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं करते हैं। भार का ज्ञान इतना महत्त्व नहीं रखता है जितना कि पिंड को सतह पर दबानेवाला बल। अगर पिंड हल्का है तो निस्सन्देह इसका प्रभाव घर्षण बल पर पड़ेगा। अगर पिंड की सतह पर दबानेवाले बल (अधिकांशतः यह भार होता है) को P से व्यक्त करें, तो घर्षण बल $F_{घ}$ के लिए निम्नलिखित साधारण सूत्र लागू होगा :

$$F_{घ}=kP$$

ऊपरलिखित सूत्र में सतह का क्षेत्रफल प्रकट नहीं होता है : घर्षण बल आपस में रगड़ खानेवाली सतहों के क्षेत्रफल पर निर्भर नहीं करता है।

लेकिन सतहों के गुणों को ध्यान में कैसे रखा जाता है? यह सर्वविदित है कि एक ही स्लेज गाड़ी भिन्न-भिन्न वेगों से सरकती है। सरकने का वेग इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी सरकनेवाली सतहों पर लोहा लगा है या नहीं। इन गुणों को ध्यान में रखने के वास्ते आनुपातिकता गुणांक का प्रयोग किया जाता है, जिसे **घर्षण गुणांक** कहते हैं।

धातुओं का लकड़ी के साथ घर्षण गुणांक $\frac{1}{2}$ के बराबर होता है। लकड़ी की एक समतल मेज़ पर रखी दो किलोग्राम भारी धातु की सिल्ली को हिलाने के लिए एक किलोग्राम बल की आवश्यकता पड़ेगी। इस्पात का बर्फ़ के साथ घर्षण गुणांक केवल 0.027 के बराबर है। धातु की दो किलोग्राम भारी पट्टी को बर्फ़ पर सरकाने के लिए 54 ग्राम बल लगाना पड़ेगा।

घर्षण बल उस तल के क्षेत्रफल के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता है जिस पर पिण्ड को खींचा जा रहा हो। इस्पात की एक किलोग्राम भारी लम्बी पट्टी को अपनी जगह से हिलाने या खींचने के लिए उतने ही बल की आवश्यकता होगी जितनी कि एक किलोग्राम के बाट को, जो एक बहुत छोटी-सी सतह पर टिका होता है, सरकाने पर लगेगा।

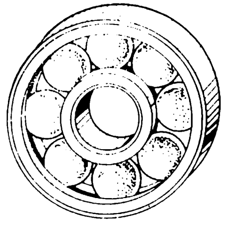
यहां हम पिण्ड को सरकाने के दौरान पैदा होनेवाले घर्षण बल के बारे में बताते हैं। पिंड को अपने स्थान से हटाना सरकाने की अपेक्षा थोड़ा मुश्किल होता है। गति को शुरू करने के लिए लगाया गया बल (विराम में घर्षण) बाद में लगाए गए बल से 20—30 % अधिक होता है।

लोटन के दौरान उत्पन्न होनेवाले घर्षण बल के बारे में क्या कहा जा सकता है। सर्पी घर्षण की तरह यह बल भी उतना ही अधिक होगा जितना बड़ा पहिए की सतह पर दबानेवाला बल होगा। इसके अतिरिक्त लोटनिक घर्षण बल पहिए के व्यास के व्युत्क्रमानुपातिक होता है। यह बात बिलकुल स्पष्ट है: पहिया जितना बड़ा होगा उतना ही कम उस सतह के खुरदरेपन का महत्त्व होता है, जिस पर पहिया घूमता है।

अगर उन बलों की, जो पिंड को लोटने और लुढ़कने पर विवश करते हैं, तुलना की जाए तो यह अन्तर बहुत बड़ा होगा। उदाहरणतया स्टील की एक टन भारी छड़ को सड़क पर खींचने के लिए 200 किलोग्राम बल लगाना पड़ेगा। इतनी भारी छड़ को केवल हृष्ट-पुष्ट खिलाड़ी ही हिला सकेगा। लेकिन हथ-गाड़ी पर इस बोझ को बच्चा भी लुढ़का सकता है, ऐसा करने के वास्ते 10 किलोग्राम से अधिक बल नहीं लगाना पड़ेगा।

इसलिए यह कोई विचित्र बात नहीं कि लोटनिक घर्षण सर्पी घर्षण से "बाज़ी" ले गया है। यह बात यों ही नहीं हुई कि परिवहन में मानव ने पहियों का प्रयोग शुरू किया।

स्मरण रहे कि पहियों द्वारा सरकनेवाले भागों को प्रतिस्थापित करना सर्पी घर्षण पर पूरी विजय नहीं है। पहिए को एक धुरे पर तो लगाना पड़ता है। पहली नज़र में लगता है कि धुरे और बेयरिंग के बीच घर्षण को समाप्त करना सम्भव नहीं है। पिछली कुछ शताब्दियों में इंजीनियरों का ऐसा विचार था और उन्होंने सर्पी घर्षण को कम करने के वास्ते स्नेहकों का उपयोग किया। स्नेहकों का इस्तेमाल कर सर्पी घर्षण 8—10 गुना कम किया जा सकता है। लेकिन कई अवस्थाओं में स्नेहन के होते हुए भी सर्पी घर्षण काफ़ी रहता है और उसे दूर करना बहुत महंगा पड़ता है। इस बाधा ने गत शताब्दी के अन्त में तकनीकी प्रगति में बहुत रुकावट डाली। तब ही तो सर्पी घर्षण बेयरिंग की जगह लोटनिक घर्षण बेयरिंग इस्तेमाल करने के विचार ने जन्म लिया, और बॉल बेयरिंग अस्तित्व में आया। धुरे और बुशिंग के बीच बॉल रखे गए। जब पहिया घूमता है तो ये बॉल बुशिंग और धुरे के बीच लुढ़कते हैं। यह व्यवस्था चित्र 109 में दिखाई गई है। इस प्रकार सर्पी घर्षण



चित्र 109

का स्थान लोटनिक घर्षण ने ले लिया, और घर्षण बल केवल पहले घर्षण बल का दसवां भाग रह गया।

आधुनिक यांत्रिकी के क्षेत्र में रोलर बेयरिंग का महत्त्व बहुत अधिक है। इन्हें बेलनदार और कोणदार रोलरों से बनाते हैं। सभी छोटी-बड़ी मशीनों में ऐसे बेयरिंगों का प्रयोग किया जाता है। ऐसे बॉल बेयरिंग भी है जिनका साइज़ एक मिलीमीटर होता है; बड़ी मशीनों में इस्तेमाल किए जानेवाले बॉल बेयरिंगों का भार कभी-कभी एक टन तक होता है। बॉल बेयरिंगों की गोलियों (आपने शायद उन्हें शो केसों में देखा होगा) का व्यास एक मिलीमीटर से लेकर कुछेक सेंटीमीटर तक होता है।

द्रवों और गैसों में श्यान घर्षण

अब तक हमने «शुष्क» घर्षण की चर्चा की थी यानी उस घर्षण के बारे में, जो ठोस पिण्डों के एक दूसरे के साथ संपर्क में आने के कारण पैदा होता है। लेकिन तैरते हुए और उड़ते हुए पिण्डों पर भी घर्षण बल का प्रभाव पड़ता है। घर्षण का स्रोत बदल जाता है और शुष्क घर्षण का स्थान «आर्द्र» घर्षण ले लेता है।

पानी में चल रहे या हवा में उड़ रहे पिण्ड पर जो घर्षण प्रभाव डालते हैं उन पर शुष्क घर्षण के नियम, जिनके बारे में हमने ऊपर बताया है, लागू होते हैं।

घर्षण के लिए द्रवों और गैसों के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए निम्नलिखित द्रवों और गैसों के वास्ते एक-सा लागू होता है। आगे हम जो कुछ द्रवों के बारे में बताएंगे वह गैसों के वास्ते भी एक-सा लागू होगा।

"आर्द्र" घर्षण शुष्क घर्षण से इस बात में भिन्न होता है कि उसमें स्थैतिक-घर्षण नहीं होता है—जल में या हवा में स्थित किसी पिण्ड को हिलाने के लिए प्राय: बहुत ही कम बल की आवश्यकता पड़ती है। जहां तक गतिमान पिण्ड द्वारा सहे जानेवाले घर्षण बल का सम्बन्ध है वह पिण्ड की गति, उसकी आकृति और साइज़ तथा द्रव की विशेषताओं पर निर्भर करता है। द्रवों और गैसों में पिण्डों की गति का अध्ययन दर्शाता है कि «आर्द्र» घर्षण के लिए कोई एकीकृत नियम नहीं है, लेकिन दो भिन्न नियम

हैं। जिनमें से एक मन्द गति और दूसरा तीव्र गति के लिए होता है। दो नियमों का होना यह प्रकट करता है कि ठोस पिण्डों की द्रवों और गैसों में छोटी और बड़ी गतियों पर माध्यम पिण्ड के साथ भिन्न गतियों पर बहता है।

मन्द गतियों पर घर्षण बल पिण्ड की गति और आयाम के आनुपातिक होता है :

$$F \backsim vL$$

आयाम की आनुपातिकता को कैसे समझा जाए, यदि यह न बताया हो कि पिण्ड के किस आकार के बारे में बात हो रही है? इसका अर्थ यह हुआ कि सदृश आयामोंवाले दो पिण्डों के लिए (यानी ऐसे पिण्डों के लिए जिनके सब आयाम एकसमान अनुपात में है) घर्षण बल उसी प्रकार होंगे जिस प्रकार उस पिण्ड के रेखीय आयाम होंगे।

घर्षण बल अधिकांशतः द्रव की विशेषताओं पर निर्भर करता है। विभिन्न माध्यमों में एकसमान गति से चल रहे सदृश पिंडों पर लगे घर्षण बलों की तुलना करने पर हम देखेंगे कि माध्यम जितना गाढ़ा होगा, या जैसा कि कहते हैं श्यानता जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक घर्षण बल पिण्ड पर लगा होगा। यही कारण है कि जिस घर्षण की हम यहां चर्चा कर रहे हैं उसे श्यान घर्षण कहते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि वायु का श्यान घर्षण अधिक नहीं होता है, जल के श्यान घर्षण से लगभग 60 गुना कम। द्रव पानी की तरह कम गाढ़े और क्रीम या शहद की तरह अधिक विस्कस भी हो सकते हैं।

किसी द्रव की श्यानता का अनुमान उसमें ठोस पिण्डों की गति या छिद्र में से उसके बहने की गति से लगाया जा सकता है।

पानी एक आधे लिटर की पीक में से कुछ ही सेकंडों में बह जाएगा। अधिक गाढ़े द्रव को ऐसी ही पीक में से निकलने के लिए कई घंटे या दिन लगेंगे। और अधिक श्यान द्रवों के उदाहरण भी पेश किए जा सकते हैं। भूवैज्ञानिकों ने इस बात की ओर ध्यान दिया कि कुछ ज्वालामुखियों के क्रेटरों की भीतरी ढलानों में संचित लावे में गोलाकार टुकड़े पाए जाते हैं। पहली बार देखने से यह बिलकुल समझ में नहीं आता कि क्रेटर में लावे के इस प्रकार के गोले कैसे बने। यदि हम लावे को एक ठोस पिण्ड समझ

लें तो यह बात समझ में नहीं आती है। अगर लावा द्रव है तो वह क्रेटर की पीक में से बूंदों के रूप में बाहर आएगा, जैसा कि अन्य द्रव करते हैं। लावे की एक बूंद क्षणमात्र में नहीं बनती है, उसे बनने में दसियों वर्ष लग जाते हैं। जब यह बूंद बहुत कठोर हो जाती है, तो क्रेटर की तह पर गिर जाती है।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि वास्तविक ठोस और रवाहीन (amorphous) पिण्डों को, जो, जैसा कि हम जानते हैं, क्रिस्टलों की अपेक्षा द्रवों से अधिक मिलते-जुलते हैं, एक साथ रखना उचित नहीं है। लावा भी ऐसा ही एक रवाहीन पिण्ड है। देखने में वह ठोस लगता है, परन्तु वास्तव में यह बहुत श्यान द्रव है।

लाख के विषय में आपका क्या विचार है, क्या वह ठोस है? दो कार्क लें और उन्हें दो प्यालों के तल पर रख दें। एक में कोई पिघला हुआ नमक (उदाहरण के लिए, शोरे को – शोरा आसानी से सुलभ है) डाल दें, दूसरे प्याले में सील करने वाली लाख डाल दें। दोनों द्रव कठोर हो जाएंगे और कार्क दब जाएंगे। इन दोनों प्यालों को एक अलमारी में रख दें और उनके बारे में भूल जाएं। कुछ महीनों के बाद आपको नमक और लाख में अन्तर दिखाई देगा। जिस कार्क पर शोरा डाला गया था वह तो पहले की भांति तल पर ही रहेगा। लेकिन वह कार्क जिस पर लाख डाली गई थी लाख के ऊपर आ जाएगा। यह कैसे हुआ? इसका उत्तर बहुत सरल है। कार्क लाख की सतह पर उसी प्रकार तैर कर आ गया जैसे पानी की सतह पर आ जाता है। अन्तर केवल समय में है। जिन द्रवों की श्यानता कम होती है उनमें कार्क कुछ क्षण में ही ऊपर आ जाता है, और अधिक विस्कस द्रव्यों में इसे ऊपर आने में कई महीने लग जाते हैं।

अधिक वेगों पर घर्षण बल

आइए, "आर्द्र" घर्षण के नियमों की एक बार फिर चर्चा करें। जैसा कि पहले बताया गया है कि कम वेगों पर घर्षण द्रवों की श्यानता, पिण्डों के वेग और उनके रेखीय आयामों पर निर्भर करता है। अब हम तीव्र वेगों पर घर्षण के नियमों पर विचार करेंगे। परन्तु पहले यह बता देना आवश्यक है कि किन वेगों को हम कम और किन्हें अधिक मानते हैं। हमें

निरपेक्ष वेग में कोई रुचि नहीं है, लेकिन यह जानना चाहते हैं कि वेग इतना कम ज़रूर है कि श्यान घर्षण के ऊपरलिखित नियम उसपर लागू किए जा सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिमाण को मीटर प्रति सेकंड में व्यक्त नहीं किया जा सकता है, ताकि सब स्थितियों में कम वेगों पर श्यान घर्षण के नियम लागू हो सकें। जिस नियम का हमने अध्ययन किया है उसके विनियोग की सीमा पिण्ड के आयाम, श्यानता-मात्रा (degree of viscosity) और द्रव के घनत्व पर निर्भर करती है।

वायु के लिए "कम" वेग उसे कहेंगे, जो

$$\frac{0.75}{L(cm)} \frac{cm}{sec}$$

से कम हो और पानी के लिए

$$\frac{0.05}{L\ (cm)} \frac{cm}{sec}$$

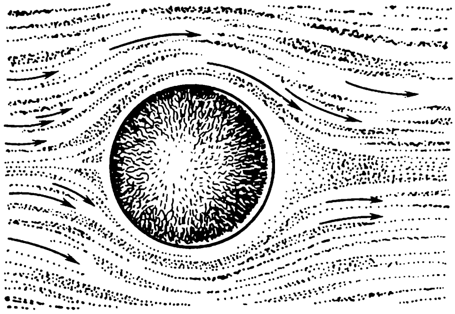
से कम हो, और शहद की तरह के श्यान द्रवों के लिए

$$\frac{100}{L\ (cm)} \frac{cm}{sec}$$

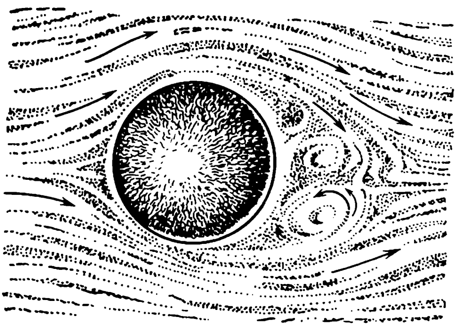
से कम हो।

इसका निष्कर्ष यह है कि श्यान घर्षण के नियम वायु और विशेषतया पानी पर कम लागू होते हैं। वे वेग की $1 \frac{cm}{sec}$ की कम मात्रा पर भी पूरे नहीं उतरते हैं। वे केवल उन सूक्ष्म पिण्डों के लिए ही सत्य सिद्ध होते हैं जिनके आयाम मिलीमीटरों में नापे जाते हैं। पानी में तैर रहे मनुष्य द्वारा सहा जानेवाला घर्षण किसी भी हद तक श्यान घर्षण के नियमों का पालन नहीं करता है।

यह कैसे सिद्ध किया जाए कि वेग में परिवर्तन होने पर माध्यम के घर्षण नियम बदल जाते हैं। इसके कारण द्रव में गतिमान पिण्ड के चारों ओर बहाव में होनेवाले परिवर्तनों में ढूंढ़ने चाहिए। चित्र 110 में दो वृताकार सिलेण्डर दिखाए गए हैं, जो द्रव्य में गतिमान् हैं (सिलेण्डर का अक्ष चित्र पर लम्ब है)। जब प्रवाह गति धीमी होती है, द्रव गतिमान् पिण्ड के चारों ओर शान्त बहता है। यहां उसे केवल श्यान घर्षण बल को



a)



b)

चित्र 110

पार करना होता है (चित्र 110 a)। गति तीव्र होने पर गतिमान् पिण्ड के पीछे द्रव का प्रवाह बहुत जटिल और अस्तव्यस्तित होता है (देखिए चित्र 110 b)। द्रव में भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं बनती और समाप्त होती हैं। वे विचित्र प्रकार के चित्र, छल्ले, भंवर बनाती हैं। इन धाराओं का रूप निरन्तर बदलता रहता है। इस प्रकार के प्रवाह को प्रक्षुब्ध प्रवाह (turbulent flow) कहते हैं, जो मूल रूप से घर्षण नियमों को बदल देता है।

प्रक्षुब्ध घर्षण पिण्ड के वेग और आयाम पर श्यान द्रवों की अपेक्षा बिलकुल दूसरी ही तरह निर्भर करता है। वह वेग के वर्ग तथा पिण्ड के रैखिक माप के वर्ग के आनुपातिक होता है। ऐसी गति में द्रव की श्यानता

विशेष भूमिका अदा करना बन्द कर देती है; घर्षण केवल घनत्व पर निर्भर करता है और घर्षण बल द्रव (गैस) के घनत्व की प्रथम मात्रा के आनुपातिक होता है। इस प्रकार, प्रक्षुब्ध घर्षण बल F के लिए निम्नलिखित सूत्र यथार्थ है:

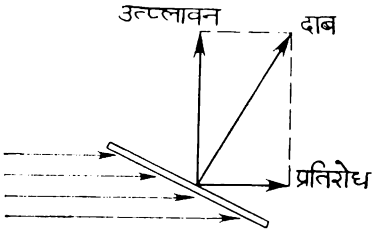
$$F \backsim \rho v^2 L^2$$

जिसमें v – गति का वेग, L – पिण्ड के रैखिक आयाम और ρ – माध्यम का घनत्व है। आनुपातिकता के संख्यात्मक गुणांक के, जिसे हमने ऊपरलिखित सूत्र में नहीं लिखा है, भिन्न-भिन्न मान होते हैं। वे पिण्ड के आकार पर निर्भर करते हैं।

सुप्रवाही धारारेखी आकार

जैसे कि हम बता चुके हैं वायु में गति प्रायः "तेज़" होती है, यानी इस गति में प्रक्षुब्ध घर्षण मुख्य भूमिका अदा करता है, न कि श्यान घर्षण। वायुयान, पक्षी तथा पैराशुटिस्ट प्रक्षुब्ध घर्षण का अनुभव करते हैं। यदि कोई व्यक्ति पैराशूट के बिना आकाश से पृथ्वी की ओर गिरता है, तो कुछ समय पश्चात वह समगति से गिरने लगेगा (घर्षण बल भार के बराबर हो जाता है), परन्तु यह वेग लगभग 50 m/sec के बराबर होता है। पैराशूट के खुलने पर छतरीबाज के गिरने के वेग में बहुत कमी आ जाती है– भार अब पैराशूट के गुम्बज के घर्षण से संतुलित हो जाता है। क्योंकि घर्षण बल एक क़दर गति के वेग और गिरने वाले पिण्ड के आयाम के आनुपातिक होता है, इसलिये गिर रहे पिण्ड के रैखिक मापों में जितने गुना परिवर्तन होगा उतने गुना ही वेग कम हो जायेगा। छाते का व्यास लगभग 7 मीटर और छाताधारी का व्यास कोई एक मीटर होता है। छाताधारी के नीचे गिरने का वेग लगभग 7 m/sec हो जायेगा। इस वेग से छाताधारी अपने जीवन को ख़तरे में डाले बिना धरती पर उतर सकता है।

यहां यह बताना आवश्यक है कि घर्षण को बढ़ाना उसे कम करने की अपेक्षा काफ़ी आसान है। वायुयानों और मोटर कारों के लिए वायु के प्रतिरोध को कम करना, या फिर पनडुब्बियों के हित पानी के प्रतिरोधी बल को घटाना बहुत गम्भीर इंजीनियरी समस्याएं हैं, जिन्हें हल करना आसान नहीं है।



चित्र 111

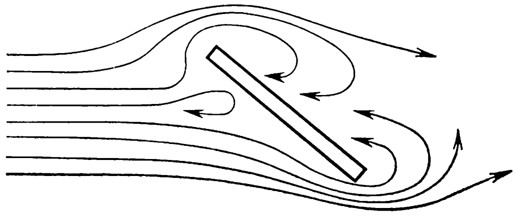
ऐसा प्रतीत होता है कि पिण्ड के आकार को बदल कर प्रक्षुब्ध प्रतिरोध को कई गुना कम किया जा सकता है। ऐसा करने के लिये प्रक्षुब्ध प्रवाह, जो घर्षण का स्रोत होता है, कम से कम होना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पिण्ड को विशेष, जैसा कि कहते हैं, धारारेखी आकार प्रदान करते हैं।

इस दृष्टि से किस प्रकार के आकार को सर्वोत्तम कहा जा सकता है? पहली दृष्टि में ऐसा लगता है कि पिण्ड को ऐसा आकार प्रदान करना चाहिए कि उसका आगे बढ़नेवाला भाग नुकीला हो। ऐसा नुकीला भाग, जैसा कि लगता है, हवा को अधिकतम सफलता से "काटेगा"। लेकिन, मालूम पड़ता है कि हवा को "काटना" ज़रूरी नहीं होता है, बल्कि हवा को कम से कम उत्तेजित करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि वह पिण्ड के चारों ओर शान्त प्रवाह करें। द्रव या गैस में गतिमान् पिण्ड का सबसे अच्छा प्रोफ़ाइल वह होता है जिसका अगला भाग अधिक चौड़ा हो और पिछला भाग कम चौड़ा हो*। ऐसे प्रोफ़ाइल के कम चौड़े भाग से तरल सरलता से बहता है तथा प्रक्षुब्ध प्रवाह कम से कम होता है। कम चौड़े भाग को आगे की ओर कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह प्रक्षुब्ध प्रवाह उत्पन्न करेगा।

वायुयान का धारारेखी आकार गति में न केवल न्यूनतम प्रतिरोध पैदा करता है, बल्कि उसके साथ ही यान को अधिकतम उत्थापन बल (lifting force) भी प्रदान करता है जब धारारेखी सतह गति की दिशा के साथ ऊपर की ओर झुकी होती है। पंख को धारारेखी बनाने से वायु मुख्यतः उसके समतल की लम्ब दिशा में दबाव डालती है (देखिये चित्र

---

*नौकाओं और समुद्री जहाज़ों के अगले भाग लहरों को "काटने" के वास्ते तीक्ष्ण बनाए होते हैं। उनकी ज़रूरत मात्र तब पड़ती है जब गति सतह पर होती है।



चित्र 112

111)। स्पष्ट है कि झुके हुए पंख के लिए यह बल ऊपर की ओर दिष्ट होता है।

कोण को बढ़ाने से उत्थापन बल में वृद्धि होती है। लेकिन, इस तर्क से, जो मात्र ज्यामितिय संकल्पनायों पर आधारित है, हम गलत परिणाम पर पहुंचते हैं: गति की दिशा के साथ कोण जितना अधिक होगा उतना ही अच्छा होगा। वास्तव में कोण के बढ़ने के साथ-साथ धारारेखी प्रवाह प्राप्त करना कठिन हो जाता है। एक निश्चित कोण पर, जैसा कि चित्र 112 में दिखाया गया है, तीव्र प्रक्षुब्ध प्रवाह उत्पन्न होता है, घर्षण तेज़ी से बढ़ता है और उत्थापन बल घट जाता है।

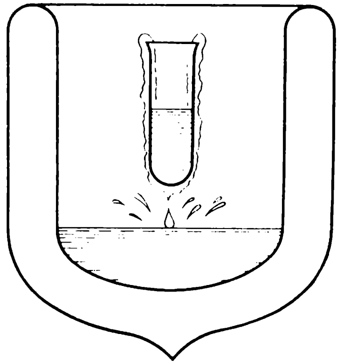
श्यानता का लोप

कुछ क्रियाओं को स्पष्ट करते समय या कुछ पिण्डों के व्यवहार के विषय में लिखते समय बहुधा हम सरल उदाहरण पेश करते हैं। हम कहते हैं कि यह बात स्पष्ट है कि यह पिण्ड इस प्रकार गति करता है, लेकिन दूसरे पिण्ड भी तो उन्हीं नियमों के अनुसार गति करते हैं। बड़ा भाग तो सदा उस व्याख्या पर पूरा उतरता है, जो नये को उसमें परिणत करता है जिससे हम दैनंदिन के जीवन से परिचित हैं। यही कारण है कि पाठक को उन नियमों को, जिनके अनुसार द्रव प्रवाहित होते हैं, समझाने में हमें कोई विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। हर किसी ने देखा है कि जल कैसे बहता है, और इस बहाव के नियम बहुत प्राकृतिक प्रतीत होते हैं।

लेकिन एक बहुत ही अजीब द्रव है, जो अन्य द्रवों जैसा नहीं है और

वह प्रवाहित भी विशेष नियमों के अनुसार होता है। ये नियम उसके लिए ही सत्य सिद्ध होते हैं। यह है द्रव हीलियम।

हम पहले बता चुके हैं कि हीलियम केवल परम शून्य के लगभग ताप पर ही द्रव रूप में रह सकती है। 2°K (ठीक-ठीक 2.19°K) से अधिक तापमान पर और इससे कम तापमान पर पाये जानेवाले द्रव बिलकुल भिन्न होते हैं। 2°K से अधिक तापमान पर प्राप्त हीलियम अन्य द्रवों से भिन्न नहीं होती है। इससे कम तापमान पर हीलियम एक विचित्र द्रव बन जाती है। इस विचित्र द्रव को हीलियम II कहते हैं।



चित्र 113

हीलियम II की सबसे असाधारण विशेषता, जिसकी खोज पी० एल० कापित्सा ने 1938 में की थी, अति तरलता (superfluidity) यानी श्यानता का पूर्ण अभाव है।

अति तरलता का अध्ययन करने के लिए एक पात्र बनाया जाता है जिसके तले पर एक बहुत बारीक – केवल आधा माइक्रोन चौड़ा – छेद होता है। ऐसे छेद में से कोई भी साधारण द्रव नहीं निकलता हैं; 2.19°K से अधिक तापमान पर हीलियम भी ऐसे छेद में से नहीं निकलती है। ज्यों ही तापमान 2.19°K से कम होता है हीलियम के बहने की गति कम से कम 1000 गुना बढ़ जाती है। हीलियम II इस सूक्ष्म छिद्र में से एकदम बह निकलती है, या यों कहिए कि वह अपनी श्यानता बिलकुल ही खो देती है। हीलियम की अति तरलता एक और विचित्र परिघटना को जन्म देती है। हीलियम II उस गिलास या परखनली में से, जिसमें उसे डाला गया है, अपने आप "बाहर निकल" सकती है।

इस प्रयोग को करने का ढंग चित्र 113 में दिखाया गया है। परखनली को, जिसमें हीलियम II है, ड्यूअर फ़्लास्क (Dewar Flask) में रखते हैं, जो हीलियम बाथ पर पड़ी है। "बिना किसी कारण" के फ़िल्म के

रूप में ऊपर की हीलियम का स्तर परखनली में बढ़ने लगता है और वह एक पतली-सी परत, जिसे नंगी आंख से देखा भी नहीं जा सकता है, के रूप में परखनली में से बहने लगती है; परखनली के निचले हिस्से से बूंदें गिरती दिखाई देती हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि केशिका-बलों की बदौलत, जिनका उल्लेख पहले किया गया है (पृष्ठ २२१), पात्र की दीवारों को गीला करनेवाले हर किसी द्रव के अणु पात्र की दीवारों के साथ ऊपर चढ़ते हैं और उस पर एक पतली-सी परत (film) बनाते हैं। इस परत को मोटाई मिलीमीटर के दस लाखवें भाग के बराबर होती है। यह परत नंगी आंख से तो दिखाई ही नहीं देती, और आम श्यान द्रव के लिए कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती है।

सारा मामला ही एकदम बदल जाता है जब हमारा श्यानताहीन हीलियम से वास्ता पड़ता है। सूक्ष्म छेद अति तरल हीलियम की गति में बाधा नहीं डालता है, लेकिन पतली पृष्ठीय फ़िल्म (surface film) भी तो सूक्ष्म परत जैसी होती है। श्यानताहीन द्रव पतली-सी परत के रूप में बहता है। गिलास या परखनली के किनारे पर पृष्ठीय फ़िल्म एक साइफन बनाती है जिसके द्वारा पात्र में से बहती है।

हम यह भली भांति समझते हैं कि इस प्रकार की क्रिया किसी साधारण द्रव में नहीं देखी जाती है। सामान्य श्यानता पर द्रव अति तंग साइफ़न में से नहीं बह सकता है। ऐसी गति इतनी धीमी होती है कि द्रव के बहाव में लाखों वर्ष लग जाएंगे।

इस प्रकार हीलियम II श्यानताहीन द्रव है। इससे एक तर्कपूर्ण परिणाम निकलता है कि ऐसे द्रव में ठोस पिण्ड को घर्षण के बिना चलना चाहिए। यह देखने के वास्ते हम तागे से एक डिस्क बांधकर तरल हीलियम में लटकाते हैं और तागे को मरोड़ देते हैं। इस साधारण उपस्कर को मुक्त करने पर हम मानों एक लोलक बनाते हैं—तागा डिस्क के साथ दोलन करेगा और सावधि एक दिशा में और फिर दूसरी दिशा में लिपटेगा। अगर घर्षण नहीं है तो डिस्क का दोलन अनन्त होगा। लेकिन ऐसा होता नहीं है। थोड़े समय बाद, यह समय लगभग उतना ही होता है जितना कि साधारण हीलियम I ($2.19^{\circ}K$ पर प्राप्त होनेवाली हीलियम) के लिए, डिस्क दोलन करना बंद कर देती है। हैरानी की बात क्या है? सूक्ष्म छेद

में से निकलने पर हीलियम श्यानताहीन द्रव की तरह बरताव करती है, लेकिन अपने में गतिमान् पिंडों के प्रति साधारण श्यान द्रवों की तरह ही बरताव करती है। यह बात तो वास्तव में ही असाधारण तथा समझ में न आनेवाली है।

हमें अब इस तथ्य से संबंधित कही गयी बात तो याद होगी कि हीलियम लगभग परम शून्य तक ठोस नहीं बनती है। यहां बात गति के साधारण नियमों के बेकार होने के बारे में हो रही है। अगर हीलियम "अवैध" रूप से तरल ही रहती है तो क्या इस द्रव के विधिविरुद्ध व्यवहार पर हैरानी प्रकट करने की ज़रूरत है।

द्रव हीलियम के व्यवहार को केवल गति के विषय में नई संकल्पनाओं के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। इन संकल्पनाओं को क्वांटम यांत्रिकी का नाम दिया गया है। हम यहां बहुत साधारण तरीक़े से क्वांटम यांत्रिकी के आधार पर द्रव हीलियम के इस व्यवहार को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

क्वांटम यांत्रिकी – समझने के लिए एक बहुत ही मुश्किल सिद्धान्त है। पाठक को हैरान होने की ज़रूरत नहीं कि व्याख्या परिघटना से भी काफ़ी विचित्र होती है। यह देखा गया है कि द्रव हीलियम का प्रत्येक कण एक ही समय में दो गतियों में भाग लेता है: एक गति अति तरल है, जिसका श्यानता से कोई सम्बन्ध नहीं है, और दूसरी – साधारण गति है।

हीलियम II ऐसा व्यवहार करती है मानों वह दो द्रवों का मिश्रण हो, जो एक-दूसरे पर निर्भर न हो कर अलग-अलग गति करते हों। एक द्रव का व्यवहार सामान्य है, यानी साधारण श्यानता वाला है, दूसरा द्रव अति तरल है।

जब हीलियम सूक्ष्म छिद्र में से निकलती या गिलास के किनारों पर से बहती है, तो हम अति तरलता का प्रभाव देखते हैं। लेकिन द्रव हीलियम में निमज्जित डिस्क के दोलन के समय डिस्क को रोकनेवाला घर्षण इस बदौलत पैदा होता है कि हीलियम के साधारण भाग में डिस्क का घर्षण अपरिहार्य है।

हीलियम की दो प्रकार की गति में भाग लेने की क्षमता ही असाधारण ऊष्मा-संचालन विशेषताओं को जन्म देती है। जैसे कि पहले बताया जा चुका है, द्रव ऊष्मा के कुचालक हैं। हीलियम I साधारण द्रवों की तरह व्यवहार करती है। जब वह हीलियम II में परिवर्तित होती है तो इसकी

ऊष्मा-चालन-क्षमता लगभग 10^9 गुना अधिक हो जाती है। इस प्रकार, हीलियम II सबसे उत्तम साधारण ऊष्मा-चालकों, तांबे और चांदी जैसे ऊष्मा-चालकों, से भी अच्छा ऊष्मा-चालक है।

बात यह है कि हीलियम की अति तरल गति ऊष्मा-चालन में भाग नहीं लेती है। इसलिए जब हीलियम II का तापमान कम होता है तो भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलनेवाले दो प्रवाह उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक सामान्य प्रवाह होता है, जो अपने साथ ऊष्मा को ले जाता है। यह साधारण ऊष्मा संवाहन से बिलकुल भिन्न है। साधारण द्रव में ऊष्मा अणुओं की टक्करों द्वारा एक जगह से दूसरी जगह भेजी जाती है। हीलियम II में ऊष्मा हीलियम के साधारण भाग के साथ ही द्रव की भांति प्रवाहित होती है। यहां शब्द ऊष्माभिवाह (heat flux) का उपयोग बिलकुल सही है। ऊष्मा के स्थानांतरण की इस विधि से बहुत ज़्यादा ऊष्मा संवाहन होता है।

हीलियम की ऊष्मा-चालकता की यह व्याख्या इतनी अजीब लग सकती है कि आप इसपर विश्वास करने से इन्कार कर देंगे। परन्तु जो कुछ हमने कहा है उस पर निम्नलिखित साधारण प्रयोग द्वारा विश्वास किया जा सकता है।

द्रव हीलियम-बॉथ में ड्यूअर फ़्लास्क रखी है। यह फ़्लास्क भी हीलियम से भरी है। फ़्लास्क को बॉथ के साथ एक केशिका नली द्वारा जोड़ा हुआ है। फ़्लास्क में रखी हीलियम विद्युत सर्पिल से गरम की जाती है, ऊष्मा फ़्लास्क के चारों ओर रखी हीलियम तक नहीं पहुंचती है, क्योंकि फ़्लास्क की दीवारें ऊष्मा को उस तक नहीं पहुंचाती हैं।

केशिका नली के सामने एक बारीक धागे द्वारा एक हलक़ा-सा पंख लटकाया हुआ है। यदि ऊष्मा द्रव की भांति बहती हो तो वह पंख को दूसरी दिशा में धकेल देगी। वास्तव में होता ऐसे ही है; ऐसा होने पर बर्तन में पड़ी हीलियम की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस अद्भुत क्रिया को कैसे समझाया जाए? इसको केवल एक तरीक़े से समझाया जा सकता है। गरम करने पर द्रव के सामान्य भाग का अभिवाह (flux) गरम किए गए स्थान से ठण्डे स्थान की ओर होता है, और अति तरल भाग का अभिवाह विपरीत दिशा में होता है। हर बिन्दु पर हीलियम की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, क्योंकि ऊष्मा के स्थानान्तरण के साथ-साथ द्रव का सामान्य भाग भी चलता है। इस भाग के श्यानीय घर्षण

के कारण ही पंख की दिशा बदल जाती है और उस समय तक बदली रहती है जब तक गरम करने की क्रिया जारी रहती है।

इस तथ्य से कि अति तरल गति के साथ-साथ ऊष्मा नहीं जाती है, एक और परिणाम भी निकलता है। इससे पहले हमने गिलास में से ही हीलियम के "बाहर निकलने" के बारे में बताया था। लेकिन गिलास में से हीलियम का अति तरल भाग "बाहर निकलता" है, और सामान्य भाग गिलास में ही रहता है। ऊष्मा केवल हीलियम के सामान्य भाग से ही संबंधित है, वह "बाहर निकलनेवाले" अति तरल भाग के पीछे-पीछे नहीं जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हीलियम के "बाहर निकलने" पर ऊष्मा की एक ही मात्रा कम ही कम हीलियम के लिए रह जाएगी — बर्तन में बाक़ी रही हीलियम का तापमान बढ़ना चाहिए। ऐसा, वास्तव में, प्रयोग करने पर दिखाई देता है।

अति तरल और सामान्य गति में भाग लेनेवाले हीलियम के द्रव्यमानों की मात्रा एकसमान नहीं होती है। उनकी मात्रा तापमान पर निर्भर करती है। तापमान जितना कम होगा हीलियम के अति तरल भाग की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। परमशून्य पर सारी की सारी हीलियम अति तरल बन जाती है। ज्यों-ज्यों तापमान बढ़ता है, त्यों-त्यों हीलियम का अधिक से अधिक भाग सामान्य हीलियम की विशेषता ग्रहण करने लगता है और 2.19°K पर सारी की सारी हीलियम सामान्य रूप धारण कर लेती है तथा उसमें साधारण तरल हीलियम की विशेषताएं आ जाती हैं।

लेकिन पाठक पहले से ही अनेक प्रश्न पूछने का उत्सुक है: क्या है यह अति तरल हीलियम? द्रव का एक कण एक ही समय पर दो प्रकार की गतियों में कैसे भाग ले सकता है? एक ही कण की दो गतियों की व्याख्या कैसे की जाए? खेद की बात है कि हम यहां इन प्रश्नों के उत्तर न देने पर विवश हैं। हीलियम II का सिद्धान्त बहुत ही पेचीदा है, इस सिद्धान्त को समझने के लिए बहुत-सी बातों को जानना ज़रूरी है।

सुघट्यता

प्रत्यास्थता — यह पिण्डों द्वारा अपने आकार को पुनः ग्रहण करने की क्षमता है, जब उन पर लगे बलों का प्रभाव समाप्त हो जाता है। अगर

हम एक मीटर लम्बी तार पर, जिसकी अनुप्रस्थ काट 1 mm^2 है, एक किलोग्राम भार लटका दें तो वह तन जायेगी। दैर्घ्यवृद्धि नगण्य है, केवल 0.05 mm। लेकिन इस वृद्धि को मालूम करना मुश्किल नहीं है। अगर भार हटा लिया जाए तो तार की लम्बाई 0.5 mm ही कम हो जाएगी, और तार पर लगाया निशान अपनी पूर्वस्थिति पर लौट आएगा। ऐसा विरूपण (deformation) ही प्रत्यास्थ विरूपण (elastic deformation) कहलाता है।

हम यहां यह बता दें कि 1 mm^2 अनुप्रस्थ काटवाली तार, जिस पर एक किलोग्राम भार लटका हुआ है, और 1 cm^2 अनुप्रस्थ काटवाली तार, जिसपर 100 किलोग्राम भार लटका हुआ है, एकसमान बलकृत प्रतिबलों (mechanical stresses) के प्रभाव में होती हैं। यही कारण है कि पदार्थ के व्यवहार के बारे में ब्योरा दिया जाता है। बल के बारे में नहीं (जो बेकार की बात होती है अगर पिण्ड की अनुप्रस्थ काट मालूम न हो), परन्तु प्रतिबल के बारे में बताते हैं, यानी एकांक क्षेत्रफल पर प्रभाव डाल रहे बल के बारे में। आम पिण्डों – धातुओं, शीशे, पत्थरों – को प्रत्यास्थता सीमाओं में अधिक से अधिक कुछेक प्रतिशत ही लम्बा किया जा सकता है। रबड़ के प्रत्यास्थ गुणधर्म बहुत ही अच्छे हैं। रबड़ को प्रत्यास्थतया कई सौ प्रतिशत लम्बा किया जा सकता है (यानी उसको दो और तीन गुना लम्बा किया जा सकता है), लेकिन ऐसे रबड़ को छोड़ने पर हम देखेंगे कि वह अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है।

बिना किसी अपवाद के पिण्ड छोटे बलों के प्रभाव में प्रत्यास्थ होते हैं। लेकिन कुछेक पिण्डों के लिए प्रत्यास्थता सीमा (elastic limit) जल्दी आ जाती है, और कुछेक के वास्ते काफ़ी देर बाद। उदाहरण के लिए, सीसे जैसी नर्म धातु की प्रत्यास्थता सीमा तब आती है जब 1 mm^2 अनुप्रस्थ काटवाली तार के सिरे पर 0.2—0.3 किलोग्राम भार लटकाया जाता है। इस्पात जैसे कठोर पदार्थों के लिए यह सीमा लगभग 100 गुना बड़ी होती है, यानी लगभग 25 किलोग्राम।

प्रत्यास्थता सीमा से बड़े बलों के अनुसार भिन्न-भिन्न पिण्डों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – शीशे जैसे भंगुर पदार्थों को एक श्रेणी में और चिकनी मिट्टी जैसे सुघट्य पदार्थों को दूसरी श्रेणी में।

अगर चिकनी मिट्टी को अंगुली से दबाएं तो मिट्टी पर अंगुली का निशान

बन जाएगा, जिसमें त्वचा पर बनी जटिल रेखाएं भी अंकित होती हैं। यदि हम नरम लोहे या सीसे पर हथौड़े से चोट करें, तो उन पर चोट का साफ़ निशान पड़ जाता है। कोई बल नहीं लगा हुआ है, लेकिन विरूपण रह गया है—ऐसे विरूपण (deformation) को प्लैस्टिकी (plastic) या अवशिष्ट विरूपण (residual deformation) कहते हैं। शीशे पर ऐसे निशान नहीं बनाए जा सकते हैं: निशान बनाने की बहुत चेष्ठा करने पर शीशा टूट जाएगा। कुछेक धातुएं और मिश्रधातुएं भी इतनी ही भंगुर होती हैं, उदाहरण के तौर पर ढलवां लोहा। लोहे की बालटी हथौड़े से चोटें लगाने पर चिपक जाएगी परन्तु ढलवां लोहे का बर्तन टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

भंगुर पिण्डों की दृढ़ता के बारे में निम्नलिखित आंकड़ों से अनुमान लगाया जा सकता है: कच्चे लोहे के टुकड़े को महीन करने के लिए उसके एक वर्ग मिलीमीटर तल पर 50 से 80 किलोग्राम बल लगाने की आवश्यकता होती है। इंट के लिए 1.5 से 3 किलोग्राम बल की ज़रूरत होती है।

हर किसी वर्गीकरण की तरह पिण्डों का भंगुर तथा सुघट्य पिण्डों में वर्गीकरण भी काफ़ी हद तक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

सबसे पहले, कम तापमान पर भंगुर पिण्ड ज़्यादा बड़े तापमानों पर सुघट्य बन सकता है। शीशे को कई सौ डिग्री तापमान पर गरम करने पर उसे प्लैस्टिक (सुघट्य) पदार्थ की तरह भिन्न-भिन्न आकृतियां प्रदान की जा सकती हैं।

सीसे जैसी नर्म धातुओं को सामान्य तापमान पर फ़ोर्ज किया जा सकता है, लेकिन कठोर धातुओं का फ़ोर्जन तो केवल लाल तप्त अवस्था में ही संभव होता है। तापमान बढ़ाने पर पदार्थ के प्लैस्टिक गुण बेहतर हो जाते हैं।

धातुओं के महत्त्वपूर्ण गुणों में से एक गुण—सामान्य तापमान पर कठोर और उच्च ताप पर सुघट्य होना—की बदौलत ही धातुएं निर्माण पदार्थों में अद्वितीय हैं। लाल तप्त धातु को आसानी से आवश्यक रूप दिया जा सकता है, लेकिन सामान्य तापमान पर ऐसा बहुत बल लगाने पर ही सम्भव होता है।

धातुओं की आंतरिक बनावट उनकी यांत्रिक विशेषताओं पर बहुत प्रभाव डालती है। हर कोई जानता है कि धातुओं में दरारें और खोखलापन उनकी सुघट्यता को कम करते तथा उन्हें भंगुर बनाते हैं।

प्लैस्टिक अवस्था में विरूपित होनेवाले पिण्डों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है सुव्यवस्था (orderliness)। धातु का एकल क्रिस्टल, जो हाल ही में द्रव धातु में उगा है, बहुत नरम होता है। बहुत-सी धातुओं के एकल क्रिस्टल तो इतने नरम होते हैं कि उन्हें अंगुलियों से भी भींचा जा सकता है, लेकिन मोड़े गए क्रिस्टल को अपनी पूर्वावस्था में लाने में सफलता प्राप्त नहीं होती है। क्रमीकरण (ordering) जो हो जाता है। अब ऐसे क्रिस्टल को काफ़ी बल लगा कर ही प्लैस्टिक अवस्था में विरूपित किया जा सकता है। मालूम होता है कि सुघट्यता पदार्थ का मात्र गुण ही नहीं है, परन्तु प्रक्रम का गुण भी है।

क्या कारण है कि टूल धातु को ढाल कर नहीं, परन्तु फ़ोर्ज करके बनाया जाता है। इसका कारण स्पष्ट है – कुटिलिकायित (forged) धातु (बेल्लित या कर्षित धातु) से कई गुना कठोर होता है।

धातु को कितना भी फ़ोर्ज क्यों न किया जाए, उसकी दृढ़ता को एक निश्चित सीमा से ज़्यादा बढ़ाया नहीं जा सकता है। इस निश्चित सीमा को पराभव बिन्दु (yield point) कहते हैं। इस्पात का पराभव बिन्दु $30 - 50\ kg \cdot f/mm^2$ के बीच होता है।

यह आंकड़ा निम्नलिखित को सूचित करता है। अगर $1\ mm^2$ अनुप्रस्थ काटवाली तार पर एक पूद* का बाट (पराभव बिन्दु से कम भार) लटकाया जाए, तो तार की लम्बाई में वृद्धि और तार का क्रमण एक साथ शुरू हो जाएगा। यही कारण है कि तार की लम्बाई में वृद्धि शीघ्र ही बन्द हो जाएगी – बाट शान्ति से तार पर लटका रहेगा। अगर इसी तार पर दो-तीन पूद का बाट (पराभव बिन्दु से अधिक भार) लटकाया जाए, तो तार में ऊपरलिखित से भिन्न परिवर्तन होंगे। तार की लम्बाई निरन्तर बढ़ने (बहने) लगेगी, और तब तक बढ़ती रहेगी जब तक कि तार टूट न जाए। हम यहां एक बार फिर बता दें कि पिण्ड के यांत्रिक गुण उसपर लगे बल द्वारा नहीं, परन्तु प्रतिबल (stress) द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। 100 वर्ग माइक्रोन अनुप्रस्थ काटवाली तार $30 - 50 \cdot 10^{-4}$ kg. f यानी 3 - 5 g. f के प्रभाव से बहने लगेगी।

---

*पूद = 16.38 किलोग्राम (सं०)

कठोरता

दृढ़ता ग्रौर कठोरता एक साथ प्राप्त नहीं होती हैं। सूत्र की रस्सी, कपड़े का टुकड़ा ग्रौर रेशम का तागा बहुत मज़बूत हो सकते हैं–उन्हें तोड़ने के लिए काफ़ी दम लगाना पड़ेगा। निस्सन्देह, कोई भी यह नहीं कहेगा कि रस्सी या कपड़े का टुकड़ा कठोर पदार्थ हैं। इसके विपरीत शीशे की दृढ़ता ग्रधिक नहीं है, लेकिन वह एक कठोर पदार्थ है।

कठोरता का जो भाव ग्रौद्योगिकी में ग्रपनाया गया है वह दैनंदिन की क्रियाग्रों से लिया गया है। कठोरता का ग्रभिप्राय है–किसी पिण्ड के ग्रन्दर घुसने का प्रतिबल। ग्रगर पिण्ड पर पक्की रेखा खींचनी या निशान डालना कठिन हो तो उसे कठोर कहेंगे। पाठक को ये परिभाषाएं बहुत ग्रस्पष्ट प्रतीत होंगी। हम इस बात के ग्रभ्यस्त हो चुके हैं कि भौतिक धारणाग्रों को ग्रंकों में व्यक्त करते हैं। कठोरता को ग्रंकों में कैसे व्यक्त किया जाए।

खनिज वैज्ञानिक कठोरता मालूम करने के वास्ते बहुत समय से एक साधारण, परन्तु व्यावहारिक रूप से बहुत लाभकारी ढंग ग्रपना रहे हैं। 10 धातुग्रों को कठोरता की दृष्टि से क्रमबद्ध करते हैं। इनमें पहले नम्बर पर है हीरा, उसके बाद ग्राते हैं कारंडम, टोपैज़ (पुखराज), क्वार्ट्ज़, फेल्डस्पर, ऐपाटाइट, फ़्लुग्रोर-स्पर, लाइम-स्पर, जिप्सम तथा टेल्क। यह सूचि इस प्रकार बनाई गई है: हीरे से धातुग्रों पर रेखा ग्रंकित की जा सकती है परन्तु बाक़ी में से किसी भी धातु द्वारा हीरे पर रेखा नहीं खींची जा सकती है। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि हीरा सबसे कठोर धातु है। हीरे की कठोरता को 10 के बराबर मानते हैं। इसके बाद कोरण्डम ग्राता है, जो हीरे को छोड़ कर ग्रन्य सभी धातुग्रों से कठोर है ग्रौर उन पर रेखा ग्रंकित कर सकता है। कोरंडम की कठोरता को 9 के बराबर माना गया है। इसी प्रकार 8, 7 ग्रौर 6 क्रमशः टोपैज़, क्वार्ट्ज़, ग्रौर फेल्डस्पर की कठोरताएं हैं। इनमें से हरेक ग्रागे लिखे खनिज से कठोर है (यानी उन पर रेखा खींच सकता है) ग्रौर, जो खनिज इन पर रेखा खींच सकते हैं उनसे नरम है। टेल्क सबसे नरम खनिज है, टेल्क की कठोरता एक के बराबर है।

इस स्केल की सहायता से कठोरता "मापने" (शब्द मापने को हमें उद्धरण चिन्ह में लेना पड़ता है) का मतलब है उस खनिज के लिए, जिसमें

हमारी दिलचस्पी है, चुने गए दस मानकों के अनुक्रम में स्थान ढूंढ़ना।

अगर कोई अज्ञात खनिज पर क्वार्ट्ज़ द्वारा रेखा खींची जा सकती है, लेकिन खनिज स्वयं फेल्डस्पार पर निशान लगाने में असमर्थ है तो उसकी कठोरता 6.5 के बराबर मानी जाएगी।

धातु भौतिक विज्ञानी कठोरता मापने के लिए दूसरा तरीक़ा अपनाते हैं। जिस खनिज की कठोरता मापनी होती है उसपर 1 cm व्यासवाली इस्पात की गोली को मानक बल (प्रायः 3000 kg · f) से दबाते हैं। ऐसा करने से गोली खनिज पर एक निशान (dent) बनाती है। इस निशान के अर्द्धव्यास के बराबर संख्या को खनिज की कठोरता माना जाता है।

रेखा खींचने पर मालूम की गयी कठोरता का निशान बनाने के तरीक़े से मालूम की गयी कठोरता के बराबर होना ज़रूरी नहीं है। रेखा खींचने के लिहाज से एक खनिज कठोर, लेकिन बल से दबाने पर नरम सिद्ध हो सकता है।

इस तरह कठोरता की कोई सामान्य धारणा नहीं है, जो मापन विधि पर निर्भर न करती हो। यही कारण है कि कठोरता की धारणा इंजीनियरी धारणाओं से, न कि भौतिक धारणाओं से संबंधित है।

१५. ध्वनि

ध्वनि कम्पन

हम कम्पन के विषय में बहुत-सी जानकारी पहले भी दे चुके हैं। हम यह देख चुके हैं कि एक लोलक, स्प्रिंग के सिरे पर लटका एक गोला कैसे कम्पन करता है, तार के कम्पन नियम क्या हैं–इस पुस्तक के पांचवें अध्याय में इन्हीं प्रश्नों के बारे में चर्चा की गयी है। वहां हमने यह नहीं बताया था कि हवा या दूसरे माध्यम में क्या होता है, जिसमें कम्पन करने-वाला पिण्ड रखा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि माध्यम इस कम्पन के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता। पिण्ड का कम्पन वायु को धकेलता है और वायु के कणों को अपने पहले स्थान से हिला देता है। यह बात भी स्पष्ट है कि वायु के कणों को हिलाने की यह क्रिया वायु की निकटतम परत तक ही सीमित नहीं रहती। पिण्ड निकटतम परत को दबाएगा और यह परत अगली परत को दबाएगी। इस प्रकार एक परत से दूसरी परत और वायु के एक कण से दूसरे कण को हिलाने से चारों तरफ़ की वायु गतिमान् हो जाती है। हम कहते हैं कि वायु कम्पन अवस्था में है, या यह कहते हैं कि वायु में ध्वनि-कम्पन हो रहा है।

हम माध्यम में कम्पन को ध्वनि कम्पन का नाम देते हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम सब ध्वनि कम्पनों को सुन भी सकते हैं। भौतिकी में ध्वनि कम्पन की संकल्पना विस्तृत है। कौन-सी ध्वनि तरंगों को हम सुन सकते हैं; इसके बारे में निम्न अनुच्छेदों में चर्चा की जाएगी।

हवा के बारे में मात्र इसलिए बता रहे हैं कि ध्वनि का संचार अक्सर वायु में से होता है। लेकिन, निस्सन्देह, हवा की ऐसी कोई विशेषताएं नहीं हैं कि ध्वनि का संचार केवल हवा में ही होगा। ध्वनि तरंगें हर दब सकनेवाले माध्यम में पैदा होती हैं, क्योंकि दब न सकनेवाले पिण्ड प्रकृति में नहीं हैं, तो इसका मतलब यह हुआ कि हर किसी पदार्थ के कण ऐसी परिस्थितियों में हो सकते हैं। ऐसी तरंगों के बारे में अध्ययन को ध्वानिकी (acoustics) कहते हैं।

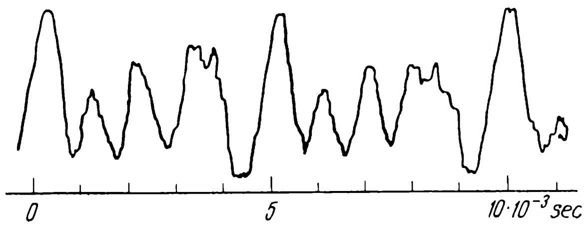
ध्वनि कम्पन के दौरान वायु का हर कण लगभग उसी स्थान पर रहता है जिसपर वह ध्वनि कम्पन से पहले था। कण सन्तुलित अवस्था के आस-पास ही दोलन करता है। सबसे साधारण स्थिति में वायु का कण सरल आवर्त दोलन कर सकता है, जो, जैसा कि हम जानते हैं, साइन नियम के अनुसार होता है। संतुलन बिन्दु से अधिकतम विस्थापन – आयम और दोलन-अवधि, यानी पूर्ण दोलन पर लगे समय – द्वारा ऐसे दोलन की विशेषता बताई जाती है।

ध्वनि तरंगों की विशेषताओं को बताने के लिए तरंग अवधि की अपेक्षा तरंग आवृति का प्रायः उपयोग किया जाता है। आवृति $\nu = \frac{1}{T}$ अवधि का व्युत्क्रम मान है। आवृति की इकाई सेकंड के व्युत्क्रम (sec^{-1}) है। यदि तरंगों की आवृति 100 sec^{-1} है तो इसका अर्थ होता है कि वायु का एक कण एक सेकंड में सौ पूर्ण दौलन करता है। यह कहने के बजाय: 100 व्युत्क्रम सैकंड, कहा जा सकता है «100 हर्ट्स» (Hz) या «100 साइकल»। भौतिकी में अक्सर ऐसी आवृतियों से वास्ता पड़ता है, जो हर्ट्स से कई गुना बड़ी होती हैं, इसलिए आवृति को प्रायः किलोहर्ट्स या मैगाहर्ट्स में व्यक्त किया जाता है; $1\ kHz = 10^3 Hz$, $1\ MHz = 10^6 Hz$।

सन्तुलन अवस्था में से गुज़रते समय दोलित कण का वेग अधिकतम होता है इसके विपरीत विस्थापन के दूरतम बिन्दुओं पर कण का वेग शून्य के बराबर होता है। हम यह पहले बता चुके हैं कि यदि कण का विस्थापन सरल आवर्त तरंग नियमानुसार हो रहा हो, तो तरंग के वेग में परिवर्तन भी इसी नियम के अनुसार होगा।

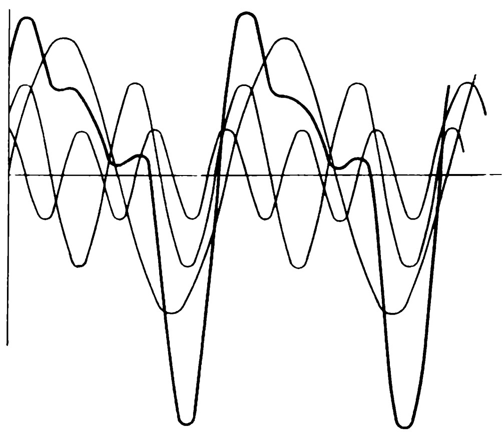
अगर विस्थापन के आयाम को s_0 और वेग को v_0 से व्यक्त करें, तो $v_0 = 2\pi \frac{s_0}{T}$ या $v_0 = 2\pi\nu \cdot s_0$। उच्च स्वर में की जानेवाली बात वायु के कणों को दोलित करती है और दोलन का आयाम एक सेंटीमीटर के मात्र कुछेक लाखवें हिस्से के बराबर होता है। वेग का आयाम कोई 0.02 cm/sec होगा।

एक और महत्त्वपूर्ण भौतिक मान है अतिरिक्त दाब, जो विस्थापन और वेग के साथ-साथ बदलता है। इस अतिरिक्त दाब को ध्वनि दबाव भी कहते हैं। वायु में ध्वनि तरंगें माध्यम के हर बिंदु पर सम्पीडन और



चित्र 114

विरलीकरण क्रियों के निश्चित समय पर और बारी-बारी से होने के कारण बनती हैं। वायु का दाब किसी जगह अधिक और किसी जगह कम होता है, जैसा कि ध्वनि की अनुपस्थिति में था। दाब के इस बाहुल्य (या अभाव) को ही ध्वनि दाब कहते हैं। ध्वनि दाब वायुमण्डलीय दाब के बहुत छोटे-से अंश के बराबर होता है। हमारे उदाहरण में – उच्च स्वर पर बातचीत – ध्वनि दाब का आयाम वायुमण्डलीय दाब के लगभग दस लाखवें हिस्से के बराबर होगा। ध्वनि दाब कण के तरंग-वेग के आनुपातिक होता है, और इन भौतिक मानों का अनुपात केवल माध्यम के गुणों पर निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर, हवा में 1 dyne/cm^2 ध्वनि दाब 0.025 cm/sec तरंग-वेग के तदनुरूप होता है।



चित्र 115

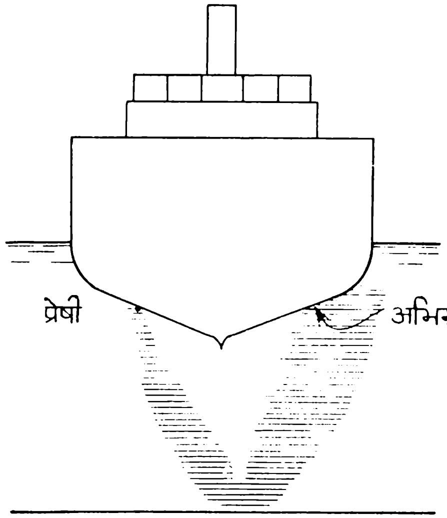
साइन नियम के अनुसार दोलन कर रही तार वायु के कणों को सरल आवृत कम्पन में लाती है। शोर और सुस्वर ध्वनियां बहुत ही जटिल कम्पन चित्र बनाती हैं। चित्र 114 में ध्वनि तरंगों का चित्र, यानी ध्वनि दाब और समय के बीच सम्बन्ध दिखाया गया है। यह वक्र साइन वक्र से बहुत भिन्न है। मालूम होता है कि हर किसी तरंग को, वह चाहे कितनी भी जटिल क्यों न हो, भिन्न-भिन्न आयाम और आवृतिवाले अनेक साइन वक्रों को एक दूसरे पर रखकर प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसी साधारण तरंगें, जैसा कि कहते हैं, जटिल तरंग का स्पेक्ट्रम बनाती हैं। तरंगों को योग करने का एक साधारण उदाहरण चित्र 115 में पेश किया गया है।

ध्वनि वेग

मेघ गर्जन के पश्चात तड़ित से नहीं डरना चाहिए। आपने शायद यह बात पहले भी सुनी होगी। क्या कारण है इसका? बात यह है कि प्रकाश ध्वनि की अपेक्षा अधिक तेज़ी से फैलता है – वास्तव में तत्क्षण। गर्जन और तड़ित एक क्षण ही उत्पन्न होते हैं, लेकिन तड़ित को हम प्रकट होते ही देख लेते हैं और गर्जन तीन सेकण्ड में एक किलोमीटर के वेग से हमारे तक पहुंचता है (वायु में ध्वनि-वेग 330 cm/sec के बराबर होता है)। इसका अर्थ यह हुआ कि जब गर्जन सुनाई देता है तब तक तो बिजली गिरने का भय दूर हो चुका होता है।

ध्वनि संचरण-वेग मालूम होने पर प्रायः पता लगाया जा सकता है कि कितनी दूरी पर गर्जन सुनाई देगी। अगर तड़ित के प्रकट होने के 12 सेकण्ड पश्चात गर्जन सुनाई देता है, तो इसका मतलब है कि गर्जन का उद्गम बिन्दु हमारे से 4 किलोमीटर दूर है।

गैसों में ध्वनि-वेग गैस के अणुओं के औसतन वेग के लगभग बराबर होता है। यह वेग गैस के घनत्व पर निर्भर नहीं करता है, और परम ताप के वर्गमूल का आनुपातिक होता है। गैसों की अपेक्षा द्रवों में ध्वनि-वेग अधिक होता है। पानी में ध्वनि-वेग 1450 m/sec है, यानी वायु में ध्वनि वेग से साढ़े चार गुना है। ठोस पिण्डों में ध्वनि-वेग इससे भी अधिक होता है, उदाहरणतया, लोहे में ध्वनि-वेग लगभग 6000 m/sec होता है।



चित्र 116

जब ध्वनि एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती है, तो उसके संचरण वेग में परिवर्तन हो जाता है। लेकिन इसके साथ ही एक और रोचक परिघटना भी जन्म लेती है: दोनों माध्यमों की सीमा पर ध्वनि का कुछ भाग आंशिक तौर पर परावर्तित हो जाता है। ध्वनि का कितना भाग परिवर्तित हो जायेगा, यह मुख्यतः दोनों माध्यमों के घनत्व के अनुपात पर निर्भर करता है। हवा में से ठोस या तरल सतहों में जाने पर या इसके विपरीत सघन माध्यमों में से हवा में जाने पर ध्वनि लगभग पूर्णतया परावर्तित हो जाती है। जब ध्वनि हवा में से पानी में या इसके विपरीत पानी में से हवा में जाती है, तो दूसरे माध्यम में उसका $\frac{1}{100}$ वां भाग ही पहुंचता है। अगर दोनों माध्यम संघन हैं, तो माध्यम में से निकलनेवाली और परावर्तित होनेवाली ध्वनियों का अनुपात बहुत कम होगा। उदाहरणतया, पानी में से इस्पात में या इस्पात में से पानी में 13% ध्वनि आगे बढ़ेगी और 87% परावर्तित हो जायेगी।

ध्वनि की तरंगों की परावर्तन-परिघटना का जहाज़रानी में बहुत उपयोग

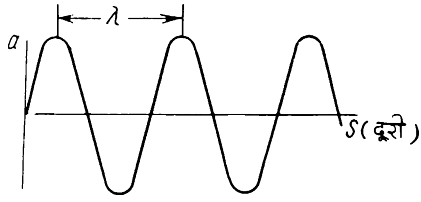
किया जाता है। इसी सिद्धान्त पर समुद्र की गहराई मापनेवाला उपकरण—प्रतिध्वनि गंभीरतामापी (echo sounder)—काम करता है (देखिए चित्र 116)। जहाज़ के एक सिरे पर पानी के अन्दर ध्वनि का स्रोत लगा होता है। आन्तरायिक (intermittent) ध्वनि ध्वनि-तरंगें पैदा करती हैं, जो पानी की गहराइयों में से होती हुई समुद्र या नदी तल तक पहुंचती हैं और उनका कुछ भाग परावर्तित हो कर वापस जहाज़ तक पहुंचता है, जहां सुग्राही उपकरण उन्हें ग्रहण करते हैं। ध्वनि की इस यात्रा पर ख़र्च हुआ समय पराशुद्ध घड़ियों द्वारा मालूम किया जा सकता है। पानी में ध्वनि का वेग मालूम है। साधारण परिकलनों द्वारा गहराई के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

ध्वनि को नीचे की ओर न भेज कर, परन्तु ऊपर या विभिन्न दिशाओं में भेज कर मालूम किया जा सकता है कि जहाज़ के मार्ग में जलमग्न चट्टानें या आइसबर्ग तो नहीं हैं।

ध्वनि तरंग

अगर ध्वनि भी क्षण भर में संचरण कर सकती होती तो वायु के सब कण एक कण की तरह दोलन करते। लेकिन ध्वनि का संचारण क्षणिक नहीं है, और संचारण-रेखा पर आनेवाले वायु के आयतन बारी-बारी में गतिमान् होते हैं, मानों स्रोत से आनेवाली तरंग उन्हें प्रभावित करती हो। बिलकुल इसी प्रकार लकड़ी का टुकड़ा पानी की सतह पर तब तक स्थिर रहता है, जब तक पानी में फेंके गए पत्थर के कारण पैदा हुई वृत्ताकार तरंगें उस तक नहीं पहुंचती हैं और उसे हिलने पर मजबूर करती हैं।

आइए, अब हम एक दोलायमान कण का अध्ययन करें और उसके व्यवहार की ध्वनि संचरण की उसी रेखा पर पड़े दूसरे कणों के व्यवहार से तुलना करें। इस कण के साथ वाला कण थोड़ी देर बात और उससे अगला कण कुछ और देरी बाद दोलायमान होगा। समय पश्चता (time lag) तब तक बढ़ती रहेगी जब तक हम उस कण तक नहीं पहुंच जाएंगे, जो पूर्ण आवर्तकाल के बराबर पिछड़ा है तथा इसी कारण प्रारंभिक आवर्तकाल से दोलन करता है। इसी प्रकार दौड़ में में एक चक्कर पीछे रह गया खिलाड़ी सबसे आगे भाग रहे खिलाड़ी के साथ ही दौड़ समाप्त कर सकता है।



चित्र 117

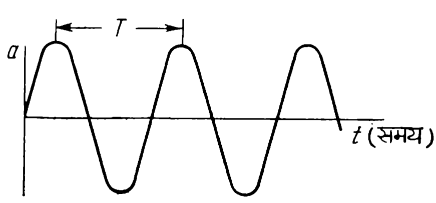
ऐसा कण यानी प्रारंभिक आवर्तकाल के बराबर काल से दोलायमान कण कितनी दूरी पर स्थित होगा? यह मालूम करना मुश्किल नहीं है कि यह दूरी λ ध्वनि के संचरण वेग c और तरंग के आवर्तकाल T के गुणनफल के बराबर होती है। दूरी λ को तरंग-दैर्घ्य (wave length) कहते हैं।

$$\lambda = cT$$

λ दूरी के बाद हम एक जैसे आवर्तकाल से दोलन कर रहे बिन्दु पायेंगे। λ/2 दूरी पर स्थित बिन्दु एक दूसरे की अपेक्षा गतिमान् होंगे, जैसे कि दर्पण के लम्बत: अपने प्रतिबिम्ब की अपेक्षा दोलन करनेवाली वस्तु करती है।

अगर हरात्मक ध्वनि की संचरण रेखा पर पड़े सभी बिन्दुओं के विस्थापन (या वेग या ध्वनि दाब) को चित्रित किया जाए तो साइन वक्र बनेगा।

तरंग-गति और तरंगों के आरेखों को उलझाना नहीं चाहिए। चित्र 117 और 118 बहुत सदृश है, लेकिन पहले में क्षैतिज अक्ष पर दूरी और दूसरे चित्र में – समय लिया गया है। पहला चित्र तरंग का समय केन्द्रज (time evolute) और दूसरा, तरंग का क्षणिक "फ़ोटो" है। इन चित्रों



चित्र 118

की तुलना करने पर मालूम होता है कि तरंग-दैर्घ्य को आकाश आवर्तकाल भी कहा जा सकता है: आकाश में λ समय T की भूमिका अदा करता है।

ध्वनि तरंग के चित्र में कण के विस्थापनों को ऊर्ध्वाधर पर लिया है, और तरंग संचरण की दिशा, जिस में समय मापा जाता है, क्षैतिज है। इससे एक गलत विचार पैदा हो सकता है, वह यह कि कण तरंग संचरण-दिशा के लम्बतः विस्थापित होते हैं। वास्तव में वायु के कण ध्वनि संचरण-दिशा के साथ-साथ दोलन करते हैं। ऐसी तरंग को अनुदैर्घ्य तरंग (longitudinal wave) कहते हैं।

श्रव्य ध्वनि

मनुष्य किन ध्वनि तरंगों को ग्रहण कर सकता है? यह देखा गया है कि कान 20 से 20000 हर्ट्ज़ तक की तरंगों को ग्रहण कर सकता है। इनसे अधिक आवृतिवाली ध्वनियों को हम उच्च तथा कम आवृतिवाली ध्वनियों को कम आवृति ध्वनियां कहते हैं।

कौन कौन-सी तरंग-दैर्घ्य सीमांत श्रव्य आवृतियों के अनुरूप होती हैं? चूंकि ध्वनि वेग लगभग 300 m/sec है, इसलिए सूत्र $\lambda = cT = \frac{c}{\nu}$ से हम पाते हैं कि श्रव्य ध्वनियों के तरंग-दैर्घ्य 15 m (अति निम्न स्वरकों के लिए) से लेकर 3 cm (अति उच्च स्वस्कों के वास्ते) तक होते हैं।

ऐसी तरंगों को हम कैसे "सुनते" हैं?

हमारी श्रव्य इन्द्रियों का कार्य-सिद्धान्त अनुनाद पर आधारित है। आपको याद होगा कि एकसमान आवृति पर बाह्य कम्पनों और पिण्ड के कम्पनों की परिघटना को दोलन कहते हैं। ध्वनि अनुनाद की क्रिया को आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। पियानो का ढक्कन खोलिए, एक गिटार लेकर उसमें से साफ़ लघु स्वर निकालिए। ज़रा ध्यान से सुनिए: पियानो इसका उत्तर देती है, पियानो की तार दोलायमान हो गय है, जो गिटार की उस तार से समस्वरित थी जिसको आपने छेड़ा था।

कान में भिन्न-भिन्न लम्बाईवाले लगभग 4500 तन्तुक होते हैं। प्रकृति ने इन तन्तुकों को सब सम्भव धुनों से समस्वरित किया है। कान का परदा कम्पनों या ध्वनि तरंगों को इन सूक्ष्म तन्तुकों तक भेजता है, लेकिन

दोलायमान मात्र वे तन्तुक होंगे, जो उनके अनुरूप स्वर-संगति (tonality) से समस्वरित होते हैं।

कुछ लोग धुनों को अच्छी तरह पहचानने की क्षमता रखते हैं: अगर आप पियानो पर जटिल स्वर-संघात (chord) बजाएं, तो श्रोता बता देगा कि आपने किन परदों (keys) को दबाया था। मतलब यह हुआ कि श्रोता का कान जटिल स्वर को उसके सनांदी (harmonic) अव्यवों में वियोजित करने के योग्य है।

संगीत

सुस्वर ध्वनि और रव में भेद पहले ही ध्वनि दाब के वक्रों द्वारा प्रदर्शित किया जा चुका है। साधारण संगीतिक धुन निश्चित आवृतिवाली आवर्ती तरंगों द्वारा पैदा की जाती है। मिश्रित ध्वनियां शुद्ध धुनों का सम्मिश्रण होती हैं।

संगीतज्ञों का आर्केस्ट्रा सभी श्रव्य आवृतियां उत्पन्न कर सकता है। पियानो 25 से 4000 हर्ट्ज़ तक के सभी स्वरों को बना सकती है।

लेकिन धुनों की सभी संधियां श्रोता को सन्तोष प्रदान नहीं करती हैं। देखा गया है कि मन को लुभानेवाली धुनें वे धुनें होती हैं जिनकी कम्पन आवृतियां साधारण अनुपातों में होती हैं। अगर कम्पन आवृतियों का अनुपात 2:1 है, तो ऐसी धुन को अष्टम (octave) कहते हैं, अगर अनुपात 5:4 है, तो धुन को गुरु तृतीय (major third) कहते हैं। अनुपात 4:3 तुरीयावस्था (fourth) और 3:2 पंचम स्वर को जन्म देते हैं। अगर ध्वनि तरंगों की आवृतियों को इस साधारण अनुपातों द्वारा व्यक्त न किया जा सके तो धुन मन को मोहित नहीं करती है। कान भिन्न-भिन्न धुनों के सम्मिश्रण को अच्छी तरह ग्रहण करता है। यही कारण है कि संगीत के प्रति कम रुचि रखनेवालों को भी बेसुरापन नहीं भाता है।

बिना परदेवाले (keys के बिना) वाद्यों – उदाहरण के तौर पर, वायलिन – पर संगीतज्ञ कोई भी धुन बजा सकता है और स्वर को अनेक धुनों का सम्मिश्रण बना सकता है।

पियानो में ऐसा करना सम्भव नहीं है। पियानो के तार एक निश्चित आवृति पर सुस्वरित किए होते हैं, परदे (key) को दबाने से ध्वनि की

स्वर-संगति (tonality) बदली नहीं जा सकती है। पियानो के परदा-बोर्ड (keyboard) में सात पूर्ण ऑक्टेव (octave) होते हैं। सबसे निचला परदा "दो" 32.64 हर्ट्ज़ के बराबर आवृतिवाली और सबसे ऊपरवाला – $-32.64 \times 2^7 \approx 4178$ हर्ट्स के बराबर आवृतिवाली धुन पैदा करता है। समस्या इस बात में निहित होती है कि ऑक्टेवों को किस पर बांटा जाए, यानी कैसी मध्यवर्ती धुनें डाली जाएं कि दो शर्तों को पूरा किया जा सके। पहला, आवृतियां जितना सम्भव हो सके साधारण अनुपात में होनी चाहिएं। दूसरा, ऑक्टेव (octave) को बराबर स्वरान्तरालों (आवृतियों के अनुपात) में बांटना चाहिए, क्योंकि केवल ऐसा करने पर ही एक ही लय को किसी भी ऑक्टेव स्वर (octave note) से शुरू कर (उसी ही लय को दूसरी धुन में) बजाना सम्भव होगा। सच पूछिए तो ये दो शर्तें परस्पर विरोधी हैं। इन शर्तों को मोटे तौर पर तथाकथित संस्कारित तारत्व (tempered pitch) का प्रयोग कर पूरा किया जाता है।

आइए, अब देखें कि ऑक्टेव को 12 बराबर-बराबर स्वरान्तरालों में बांटने पर क्या बनेगा। इनमें से हरेक स्वरान्तराल बराबर होगा $2^{\frac{1}{12}} = 1.059$। इसका अर्थ हुआ कि दो पड़ोसी धुनों का अनुपात इस अंक के बराबर होगा।

आइए, अब निम्नलिखित राशियों को लिखें

1) $2^{\frac{1}{12}} = 1.059$ 5) $2^{\frac{5}{12}} = 1.335$ 9) $2^{\frac{9}{12}} = 1.682$

2) $2^{\frac{2}{12}} = 1.122$ 6) $2^{\frac{6}{12}} = 1.414$ 10) $2^{\frac{10}{12}} = 1.782$

3) $2^{\frac{3}{12}} = 1.189$ 7) $2^{\frac{7}{12}} = 1.498$ 11) $2^{\frac{11}{12}} = 1.888$

4) $2^{\frac{4}{12}} = 1.260$ 8) $2^{\frac{8}{12}} = 1.587$ 12) $2^{\frac{12}{12}} = 2$

संगीतज्ञ को यह देखकर सांत्वना मिलती है कि अंकगणित उसकी समस्या हल करता है: ऑक्टेव ठीक-ठीक बराबर भागों में बंटा है और इसके साथ ही अनेक धुनों का अनुपात साधारण अंकों के बहुत क़रीब है। इन स्वरान्तरालों में ही हम पाते हैं पंचम स्वर (7), तुरीयवस्था (5) और गुरु तृतीय (4), क्योंकि अनुपात लगभग $1.498 \approx \frac{3}{2}$, $1.260 \approx \frac{5}{4}$ और $1.335 \approx \frac{4}{3}$ हैं। अन्य धुनें भी, जिनके स्वरान्तराल में 1% से ज़्यादा अन्तर

नहीं है, बहुत अच्छी बजती हैं: $1.414 \approx \frac{7}{5}$; $1.122 \approx \frac{9}{8}$; $1.587 \approx \frac{8}{5}$; $1.682 \approx \frac{5}{3}$; $1.888 \approx \frac{17}{9}$, केवल पहले स्वरान्तराल $1.059 \approx \frac{18}{17}$ में बेसुरापन पाया जाता है।

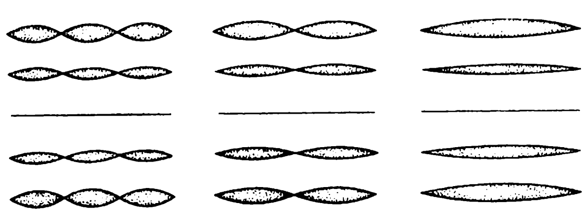
स्वरक से थोड़ी-सी विस्मानता (यानी इतनी विस्मानता जिसमें आवृतियों के अनुपात पूर्णांकों के अनुपात के ठीक-ठीक बराबर हों) श्रवणशक्ति द्वारा कम ग्रहण की जाती है और पियानो को सुस्वरित करने के लिए संस्कारित तारत्व (tempered pitch) का अधिकतर उपयोग किया जाता है।

ध्वनि गुणता

आपने यह तो देखा होगा कि गिटार को कैसे सुस्वरित करते हैं—गिटार की तार को कैसे कसते हैं। अगर तार की लम्बाई और खिंचाव ठीक चुना गया है, तो तार को हिलाने पर वह निश्चित धुन पैदा करेगी।

लेकिन अगर आप तार को भिन्न-भिन्न जगहों पर—बीच में, कसी हुई जगह से चौथाई लम्बाई पर, या किसी और जगह पर—हिलाकर ध्वनि सुनें, तो आपको निश्चित ध्वनियां सुनाई नहीं देंगी। धुन तो एक होगी परन्तु लयें भिन्न होंगी या जैसा कि संगीतज्ञ कहते हैं ध्वनि-गुणता एक जैसी नहीं होगी। इसका क्या कारण है और वह क्या चीज़ है, जो एक ही स्वर-संगति (tonality) वाली ध्वनि को भिन्न लयें प्रदान करती है?

बात इसमें निहित है कि तार एक तरीक़े से ही नहीं, परन्तु भिन्न-भिन्न तरीक़ों से कम्पन कर सकती है। तार के कुछेक सम्भव कम्पन चित्र 119 में दिखाए हैं। निम्न आवृतिवाला (इस आवृति को प्रधान आवृति



चित्र 119

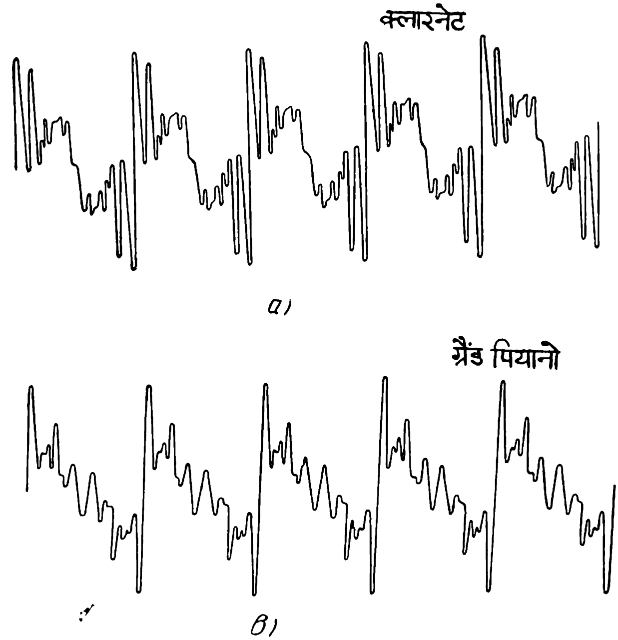
कहते हैं) कम्पन बायें आरेख में दिखाया है। सिरे के बिन्दु स्थिर हैं, बीच का बिन्दु अधिकतम आयाम के साथ कम्पन करता है। पाठक को सारी तार के कम्पन को, संपूर्ण तार की तरह, समझाने के लिए चित्र में उसकी स्थितियों के अनेक अनुक्रम दिखाए हैं। ऐसी स्थिति भी होती है जबकि सारी तार एक सीधी तार की तरह खिंची होती है—तार के सब बिन्दु एक ही समय संतुलन स्थिति में से गुज़रते हैं। बीच वाले आरेख में लगभग दुगुनी आवृतिवाली तरंग दिखाई गई है। यहां सिरे के बिन्दुओं के अतिरिक्त तार का बीच का बिन्दु भी स्थिर है। इस स्थिर बिन्दु को कम्पन निस्पन्द (vibration node) कहते हैं। तार के सिरों से $\frac{1}{4}$ दूरी पर स्थित बिन्दुओं पर कम्पन का आयाम अधिकतम होता है। इन बिन्दुओं को प्रस्पन्द (antinodes) कहते हैं। अन्य स्थितियों की तरह इस स्थिति में भी तार के सभी बिन्दु एक ही समय शून्य बिन्दु में से निकलते हैं।

दायीं ओर के आरेख पर टीका-टिप्पणी करने की अब ज़रूरत नहीं है। इस आरेख में लगभग तीन गुना आवृतिवाले कम्पन दिखाए हैं—दो निस्पन्द (nodes) और एक प्रस्पन्द (antinode) ऐसे कम्पन के विशेषतासूचक हैं।

अधिक उत्तेजित तार बड़ी आवृतियों के साथ भी कम्पन कर सकती है। यह सभी आवृतियां, जैसा कि कहते हैं, तार के स्वाभाविक कम्पनों से संबंधित होती हैं।

तार के स्वाभाविक कम्पन, प्रमुख कम्पन को छोड़ कर, ऐसी ध्वनियां उत्पन्न करते हैं जिन्हें अधिस्वरक (overtones) कहते हैं। तार द्वारा पैदा की गई ध्वनि प्रमुख स्वर और अधिस्वरकों का योग होती है। तार को भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर हिलाने से हम विभिन्न तरंग-स्पेक्ट्रमों को जन्म देते हैं। तार को बीच में हिलाने से प्रमुख स्वर बहुत ऊंचा होगा। एक चौथाई ($\frac{1}{4}$) दूरी पर हिलाने से दुगुनी आवृतिवाला अधिस्वरक पैदा होगा। विवेकाधीन स्थिति में तरंग-स्पेक्ट्रम में भिन्न-भिन्न प्रबलतावाले बहुत से अधिस्वरक होंगे। ये अधिस्वरक ही तो ध्वनि में लयें पैदा करते हैं।

अब हमें विभिन्न आवाज़ों में गायी या पियानो या वायलिन पर बजायी एक ही धुन की भिन्न-भिन्न लयों के पैदा होने का कारण समझ में आने लगा है। ये सब एक ही धुन की, लेकिन विभिन्न अधिस्वरकोंवाली



चित्र 120

ध्वनियां हैं। यही तो धुन को भिन्न-भिन्न लयें प्रदान करता है। चित्र 120 *a* और *b* में क्लारनेट और ग्रैंड पियानो में से निकाली एक जैसी सुर की ध्वनि के आरेख दिखाए गए हैं। इनकी तुलना करने पर हम देखते हैं कि दोनों ध्वनियां साधारण ज्यावक्रीय कम्पन (simple sinusoidal vibrations) नहीं हैं। दोनों स्थितयों में कम्पनों की प्रमुख आवृति बराबर है। इसी के कारण ही तो एक-सी सुर निकलती है, लेकिन वक्र भिन्न हैं। वे ही तो ध्वनि-गुणता को प्रकट करते हैं।

कान द्वारा ग्रैंड पियानो के स्वर "दो" को क्लारनेट के इसी स्वर में भेद करने की क्षमता भी ध्वनि के संनादी अव्यवों पर, यानी प्रमुख स्वर और अधिस्वरक में वियोजन पर आधारित है।

क्लारनेट सुषिर वाद्यों (wind instruments) की बहुत बड़ी श्रेणी से सम्बन्ध रखता है। इन वाद्यों में कौन से कम्पन निश्चित स्वर-संगतिवाली

ध्वनियां और विभिन्न ध्वनिरूप पैदा करते हैं? ये हैं वायु कॉलम के कम्पन।

सुषिर वाद्यों को बजानेवाला संगीतज्ञ गायक की भांति नहीं, परन्तु गिटार बजानेवाले के हाथ की तरह अपने सांस से कार्य करता है। संगीतज्ञ मात्र सुषिर वाद्य में वायु कॉलम को कम्पन में लाता है। जहां तक स्वर-संगति (tonality) और ध्वनिरूपों का सम्बन्ध है, तो वे संगीतज्ञ द्वारा वायु कॉलम की लम्बाई बदलने पर निर्धारित किए जाते हैं। वायु कॉलम की लम्बाई के अनुसार सुषिर वाद्य की हवा, तार की भांति, किसी निश्चित आवृति के साथ कम्पन करने लगती है।

गतिमान् आर्केस्ट्रा

कल्पना करें कि आप सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे सुसता रहे हैं और आपके पास से एक बस निकल जाती है, जिसमें गाना-बजाना हो रहा है। या इसके विपरीत आप किसी गांव के पास से गुज़रते हैं जहां देहाती बड़े जोर-शोर से त्योहार मना रहे हैं। दोनों स्थितियों में आपके कानों में कुछ संगीतमय ध्वनियां पहुंचती हैं। क्या ध्वनि में कोई परिवर्तन होता है जब हम उसे "चलते-चलते" सुनते हैं?

आइए, सबसे पहले ड्राइवर के कानों पर संगीत के प्रभाव का अध्ययन करें। अगर कार ध्वनि-तरंग की विपरीत दिशा में जा रही है, तो एकांक समय में ड्राइवर के कान तक पहुंचनेवाले वायु-सघन अवश्य अधिक होंगे उस स्थिति की अपेक्षा अगर कार खड़ी होती।

अगर ड्राइवर की विपरीत दिशा में ध्वनि-तरंग नहीं, परन्तु दौड़कों की एक लाइन बढ़ रही होती तो परिणाम बिलकुल ऐसे ही होता। इस तुल्या-रूपता को पूर्ण करने के वास्ते यह मान लेते हैं कि दौड़क एक दूसरे से एकसमान दूरी पर (यह तरंग-दैर्घ्य है) और अचर वेग से दौड़ते हैं।

निस्सन्देह, सामने से आती कार के पास से एक सेकण्ड में निकलनेवाले दौड़कों की संख्या अधिक होगी अगर कार गति में है। कार और दौड़कों का आपेक्षिक वेग $c+u$ के बराबर है। आपेक्षिक वेग जितने गुना बढ़ता है उतने गुना ही एकांक समय में कार के पास से निकलनेवाले दौड़कों की संख्या बढ़ जाएगी।

इस प्रकार, गतिमान् प्रेक्षक द्वारा मापी जानेवाली आवृत्ति $\nu_{ग}$ और स्थिर प्रेक्षक द्वारा मापी जानेवाली आवृति ν का अनुपात वेगों का अनुपात होता है:

$$\frac{\nu_{ग}}{\nu} = \frac{c+u}{c}$$

या दूसरे रूप में

$$\nu_{\pi} = \nu\left(1 + \frac{u}{c}\right)$$

इस सूत्र से पता चलता है कि कार और आर्केस्ट्रा के पास आने पर ध्वनि की आवृत्ति बढ़ जाती है। अगर कार 70 km/sec के वेग से आ रही है, तो ध्वनि की आवृत्ति 6% बढ़ेगी।

अगर कार आर्केस्ट्रा से दूर हो रही है, तो u का चिन्ह उलटा लेना होगा। ऐसी आपेक्षिक गति में ध्वनि की आवृत्ति घटेगी। उदाहरण के लिए, अगर कार आर्केस्ट्रा के पास से तेज़ी से गुजरती है तो ध्वनि आवृत्ति $2 \times 6 = 12\%$ बदल जाएगी। 100 हर्ट्स की आवृत्ति 106 या 94 हर्ट्स के बराबर होगी। आवृत्ति में यह परिवर्तन लगभग आधे स्वरक के बराबर है। संगीत का अप्रशिक्षित स्रोता भी इस परिवर्तन को महसूस करेगा।

यदि $u = -c$, अर्थात श्रोता ध्वनि-उद्गम से ध्वनि के वेग से दूर हटता है तो $\nu_{ग} = 0$। साधारण शब्दों में, ध्वनि सुनाई नहीं देगी। अगर दूर हटने का वेग ध्वनि-वेग से अधिक हो, तो ध्वनि सुनाई देने लगेगी और दूर हटने के वेग में वृद्धि होने के साथ-साथ ध्वनि आवृत्ति बढ़ेगी। सूत्र में ऋणात्मक चिन्ह प्रकट होगा। इसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है, क्योंकि आवृत्ति घनात्मक होती है। लेकिन, ऋणात्मक चिन्ह प्रकट होने पर स्वयं परिघटना कुछ हद तक उलटी हो जाती है। ध्वनि वेग से अधिक वेग के साथ दूर हटने पर श्रोता हमेशा ध्वनि के साथ मिलता है; पहले उसके साथ, जो यात्रा पर एक सेकण्ड पहले निकली थी, फिर उसके साथ, जो दो सेकण्ड पहले रवाना हुई थी, इसके बाद यात्री का कान उस ध्वनि को सुनेगा, जो आकाश में तीन, चार, इत्यादि सेकण्ड पहले गयी थी। अतः सब ध्वनियां उलटे क्रम में सुनाई देंगी।

आइए, अब हम आवृत्ति में परिवर्तन के सामान्य सूत्र पर वापस जाएं। क्या इसी सूत्र का गतिमान् आर्केस्ट्रा के लिए उपयोग किया जा सकता है? निस्सन्देह, ऐसा किया जा सकता है, लेकिन सही तरीक़े से उपयोग करने पर।

गतिमान् प्रेक्षक के लिए मालूम किए गए सूत्र में दो आवृत्तियां प्रकट होती हैं—माध्यम में ध्वनि की आवृत्ति, जो, निस्सन्देह, स्थिर श्रोता या अचर वाद्य द्वारा निकाली गयी ध्वनि की आवृत्ति के समान होती है, और गतिमान् पिण्ड की ध्वनि की आवृत्ति $\nu_{\text{ग}}$, जो गतिमान् पिण्ड द्वारा एक सेकण्ड में हवा को दिए गए कम्पनों या हवा से गतिमान् पिण्ड तक पहुंचने-वाले कम्पनों की संख्या के बराबर होती है।

इस प्रकार, अगर पहले उदाहरण में प्रसारित और ग्रहण की गयीं आवृत्तियां क्रमशः माध्यम की आवृत्ति ν और गतिमान् पिण्ड की आवृत्ति $\nu_{\text{ग}}$ होती हैं, तो दूसरे उदाहरण में इसके विपरीत होता है। ग्रहण की जानेवाली आवृत्ति ν और गतिमान् पिण्ड की आवृत्ति $\nu_{\text{ग}}$ होती है।

गतिमान् प्रेक्षक के लिए $\nu_{\text{प्रे}} = \nu_{\text{स्रोत}}\left(1 + \frac{u}{c}\right)$

ध्वनि के गतिमान् स्रोत के लिए $\nu_{\text{प्रे}} = \dfrac{\nu_{\text{स्रोत}}}{1 + \frac{u}{c}}$

यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पहली स्थिति में घनात्मक वेग यह सूचित करता है कि स्रोत प्रेक्षक के समीप आ रहा है, लेकिन दूसरी स्थिति में स्रोत प्रेक्षक से दूर हटता है।

यह देखना मुश्किल नहीं है कि दोनों सूत्र वेग में परिवर्तन होने के साथ आवृत्ति में होनेवाली तबदीली एक ही तरह व्यक्त करते हैं। उदाहरण के तौर पर, अगर $\frac{u}{c} = 0.2$ है और प्रेक्षक स्रोत के समीप आता है, तो आवृति में 20% वृद्धि होगी, तथा जब स्रोत प्रेक्षक की ओर बढ़ता है, तो आवृति में 25% वृद्धि होगी।

अब तक हमने मन ही में यह कल्पना की थी कि आर्केस्ट्रा और श्रोता एक रेखा के साथ-साथ चलते हैं, जो ध्वनि संचरण की दिशा के अनुरूप होती है। अगर श्रोता आर्केस्ट्रा की ओर नहीं जाता है परन्तु उसके पास से निकलता है, तो क्या बदल जाएगा? स्पष्ट है कि ध्वनि संचरण रेखा के साथ कार का वेग-घटक ही मात्र महत्त्व रखता है। प्रेक्षक की ध्वनि

तरंगाग्र (wave front) के साथ गति, यानी ध्वनि संचरण दिशा के लम्बतः, कोई भूमिका अदा नहीं करती है।

ऐसा ही आर्केस्ट्रा की गति के बारे में कहा जा सकता है। इस स्थिति में सूत्रों का उपयोग करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि सूत्र में प्रकट होनेवाला गति का वेग उस क्षण मापना चाहिए जब ध्वनि तरंग ग्रहण की जाती है, न कि जब वह वाद्य से निकलती है।

अगर प्रेक्षक और ध्वनि का स्रोत दोनों हवा की अपेक्षा गतिमान् हों, तो सूत्रों को मिला दिया जाता है। ग्रहण की जानेवाली ध्वनि की आवृति बराबर होती है

$$\nu_{\text{प्रे}} = \frac{1+\frac{u}{c}}{1-\frac{v}{c}}\,\nu_{\text{स्रोत}}$$

यहां u प्रेक्षक का वेग, v ध्वनि के स्रोत का वेग है। प्रेक्षक या ध्वनि के स्रोत की गति के दौरान ध्वनि की आवृति में परिवर्तन को डॉप्लर प्रभाव (Doppler effect) कहते हैं।

ध्वनि ऊर्जा

ध्वनि उत्पन्न करनेवाले पिण्ड के इर्दगिर्द की वायु के सभी कण कम्पन कर रहे होते हैं। जैसा कि हम पांचवें अध्याय में बता चुके हैं कि साइन नियम के अनुसार कम्पन कर रहा द्रव्य-कण निश्चित और अचर पूर्ण ऊर्जा रखता है।

जब दोलायमान बिन्दु संतुलन स्थिति में से निकलता है तो उसका वेग अधिकतम होता है, क्योंकि इस बिन्दु पर विस्थापना शून्य के बराबर होता है तथा उसकी सारी ऊर्जा गतिज ऊर्जा में बदल जाती है।

$$E = \frac{mv^2_{\max}}{2}$$

फलतः, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं (देखिए पृष्ठ १२६) पूर्ण ऊर्जा कम्पन दर के आयम के वर्ग के आनुपातिक होती है।

ध्वनि तरंग में वायु के कम्पित कणों के लिए भी यह बात सही है। लेकिन वायु का कण एक अनिश्चीय वस्तु है। यही कारण है कि ध्वनि

ऊर्जा को एकांक ग्रायाम से संबंधित करते हैं। इस मान को पूर्ण ध्वनि ऊर्जा कहा जा सकता है।

क्योंकि एकांक ग्रायाम का द्रव्यमान है घनत्व ρ, इसलिए ध्वनि ऊर्जा का घनत्व है:

$$w = \frac{\rho v^2{}_{max}}{2}$$

इससे पहले भी हम एक महत्त्वपूर्ण भौतिक मान का उल्लेख कर चुके हैं, जो उसी ग्रावृत्ति ग्रौर वेग से साइन नियमानुसार बदलता है। यह है ध्वनि या ग्रतिरिक्त दाब। ये मान चूंकि ग्रानुपातिक हैं इसलिए कहा जा सकता है कि ऊर्जा-घनत्व ध्वनि-ऊर्जा के ग्रायाम के वर्ग के ग्रानुपातिक है।

ऊंचे स्वर में बातचीत के लिए ध्वनि तरंगों के ग्रायामों के मान हम इससे पहले दे चुके हैं, जहां वेग का ग्रायाम 0.02 cm/sec के बराबर है। 1 cm^3 वायु का भार लगभग 0.001 g होता है। इस तरह, ऊर्जा का घनत्व बराबर होता है

$$\frac{1}{2} \cdot 10^{-3} \cdot \left(0.02\right)^2 \frac{erg}{cm^3} = 2 \cdot 10^{-7} \frac{erg}{cm^3}$$

मान लीजिए कि ध्वनि-स्रोत कम्पन करता है। वह ग्रपने ग्रास-पास ही हवा में ध्वनि ऊर्जा प्रसारित करता है। ऊर्जा मानों ध्वनि स्रोत में से "बहती" है। ध्वनि-संचरण-रेखा के लम्बतः हरेक क्षेत्र में से प्रति सेकण्ड ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा बहती है। क्षेत्र में से निकल चुके इस ग्रभिवाह (flux) को ऊर्जा फ़्लक्स कहते हैं। ग्रगर 1 cm^2 का क्षेत्र लिया जाए तो उसमें से बहनेवाली ऊर्जा को ध्वनि तरंग की तीव्रता कहते हैं।

यह देखना मुश्किल नहीं है कि ध्वनि तीव्रता I ऊर्जा के घनत्व w ग्रौर ध्वनि वेग c के गुणनफल के बराबर है। ग्राइए, ग्रब 1 cm ऊंचे ग्रौर 1 cm^2 ग्राधारवाले बेलन की कल्पना करें जिसके डिरेक्ट्रिस ध्वनि संचरण दिशा के समानान्तर हैं। ऐसे बेलन में समायी हुई ऊर्जा w पूर्णतया $\frac{1}{c}$ समय में निकल जाएगी। इस तरह, एकांक क्षेत्र में से यूनिट समय में $\frac{w}{\frac{1}{c}}$ यानी wc ऊर्जा निकलेगी। ऊर्जा मानों स्वयं ध्वनि वेग से बह रही हो।

ऊंचे स्वरों में बोलते समय आस-पास बैठे लोगों के निकट ध्वनि की तीव्रता (यहां हम ऊपर प्राप्त किये अंक का प्रयोग करते हैं) $2 \cdot 10^{-7} \cdot 3 \times 10^4 = 0.006 \frac{erg}{cm^2 \cdot sec}$ के बराबर होगी।

दूरी के कारण ध्वनि की क्षीणता

बाजे में से निकली ध्वनि तरंग, निस्सन्देह, सभी दिशाओं में फैलती है।

आइए, अब हम ध्वनि स्रोत के निकट भिन्न-भिन्न अर्द्धव्यासोंवाले दो गोलों की कल्पना करें। निस्सन्देह, पहले गोले में से निकलनेवाली ध्वनि ऊर्जा दूसरे गोले की सतह में से भी गुजरेगी। अगर ध्वनि तीव्रता को I से व्यक्त किया जाए तो गोले में से निकलनेवाली तरंग-ऊर्जा बराबर होगी : $I \cdot 4\pi r^2$, जहां $4\pi r^2 - r$ अर्द्धव्यासवाले गोले का पृष्ठीय क्षेत्रफल (surface area) है। यदि पहले गोले से दूसरे गोले तक पहुंचने में ऊर्जा ह्रास न हुआ हो, तो $I_1 \cdot 4\pi r_1^2 = I_2 \cdot 4\pi r_2^2$

इसका अर्थ यह हुआ कि ध्वनि स्रोत से r_1 तथा r_2 दूरियों पर तरंग तीव्रताएं I_1 और I_2 दूरियों के वर्ग के व्युत्क्रमानुपातिक होती हैं। चूंकि ध्वनि तीव्रता ऊर्जा घनत्व के आनुपातिक है, इसलिए ऊर्जा घनत्व की तरह तीव्रता भी तरंगों के आयाम के वर्ग के आनुपातिक है। इससे यह मालूम होता है कि ध्वनि स्रोत से r_1 और r_2 दूरियों पर तरंगों के आयाम दूरियों के व्युत्क्रमानुपातिक होते हैं। ध्वनि की तीव्रता स्रोत से दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात में कम होती है, और आयाम दूरी के पहले घात (first degree) के व्युत्क्रमानुपात होता है। वास्तव में ध्वनि की क्षीणता इससे अधिक तेज़ी से होती है, क्योंकि ऊर्जा का एक अंश मार्ग में नष्ट हो जाता है। इसका कारण है कि माध्यम के कणों के कम्पन के दौरान ऊर्जा का कुछ भाग श्यान घर्षण को अभिभूत करने पर ख़र्च होता है। लेकिन यह हानि अपेक्षतया कम होती है, ध्वनि-स्रोत से निकट दूरी की अपेक्षा अधिक दूरी पर कम ध्वनि सुनाई देने का मुख्य कारण है व्युत्क्रम वर्ग-नियम (inverse square law)।

उच्च तथा धीमा बोल

मानव की इंद्रियां बहुत ही संवेदनशील यंत्रों से कई तरह बेहतर हैं। यही बात श्रवण के लिए कही जा सकती है। कान ध्वनि तरंगों के रूप में 10^{-9} erg/cm² · sec से लेकर 10^{4} erg/cm² · sec तक की तीव्रतावाली ध्वनि को सुन सकते हैं। भाव यह है कि सबसे तीव्र ध्वनि की तीव्रता सबसे धीमी ध्वनि की तीव्रता से 10^{12} गुना होती है।

कान द्वारा ग्रहण की जा सकनेवाली सबसे धीमी ध्वनि किस का प्रतीक होती है? हल्की से हल्की सरसराहट कान के परदे पर $2 \cdot 10^{-4}$ dyne/cm² यानी ग्राम के लगभग दो करोड़वें हिस्से के बराबर की दाब डालती है। अच्छे से अच्छे सूक्ष्म तोलन यंत्र भी इतने संवेदनशील नहीं हैं जितना कि कान का परदा।

अगर कान तक पहुंचनेवाली ध्वनि तरंग में 10^{4} erg/cm² · sec से अधिक ऊर्जा होती है, तो कान ऐसी ध्वनि को सुन नहीं पाता लेकिन दर्द महसूस करता है। ऐसी स्थिति में कान के परदे पर 0.2 g.f/cm² दाब पड़ता है। कान में दर्द होने का कारण दाब की तरंगें यानी तेज़ी से महसूस होनेवाले संपीडन और विरलीकरण के झटके हैं। अगर वायु का अचर दाब इतनी ही मात्रा यानी 0.2 g.f के बराबर बढ़ जाता है, तो कान इसको निस्सन्देह "महसूस" नहीं करेगा। सामान्य वायुमण्डलीय दाब 1 kg.f/cm² के बराबर है; जब आप पहली मंज़िल से सड़क पर आते हैं तो दाब 0.2 g.f से अधिक हो जाता है।

तेज़ ध्वनि तरंग की ऊर्जा फुसफुसाहट और सरसराहट तरंगों की ऊर्जा की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इसलिए ध्वनि की प्रबलता को ऊर्जा के ज़रिए मालूम करना व्यावहारिक तौर पर असुविधाजनक है। अब ज़रा कल्पना कीजिए कि शहर में रव की प्रबलता के स्तर को कम करने के साधन ढूंढ़नेवाले एक कर्मचारी को नगर निगम की बैठक में बताना है कि अगर ट्राम की जगह ट्रालीबस या बस सर्विस शुरू कर दी जाए या सड़कों पर हार्न बजाने की मनाही कर दी जाए, इत्यादि, तो रव की प्रबलता का स्तर कितना कम हो जाएगा। इसके लिए कि यह सब श्रोतागणों की समझ में आ जाए, एक आरेख बनाना होगा। आरेख पर रव की प्रबलता के स्तर को दिखाने के लिए ऊर्ध्वाधर लाइनें बनाई जा सकती हैं। अगर

ध्वनि की प्रबलता को ऊर्जा से मालूम किया जाए तो एक बहुत बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ता है: शोर और सन्नाटा एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि इनको रेखा-लेख में एक ही स्केल में दिखाना, एक ही कागज़ पर हाथी और मक्खी को उनके वास्तविक आकार में चित्रित करने से भी बहुत ही मुश्किल काम होता है।

ऐसी स्थितियों में तथाकथित लॉगेरिथमीय स्केल (logarithmic scale) का उपयोग किया जाता है।

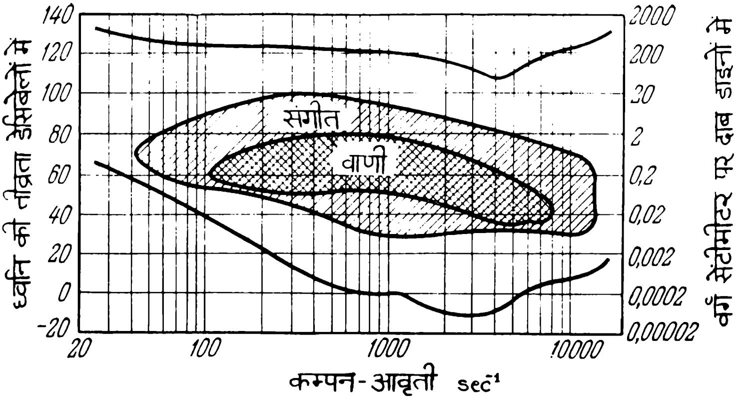
जब कोई मात्रा 10 100 या 1000 या इससे अधिक गुना बढ़ती है तो उसका लॉगेरिथ्म क्रमशः 1, 2 या अधिक गुना बढ़ता है। भाव यह है कि ध्वनि तरंगों की ऊर्जा का उपयोग न कर उसके लॉगेरिथ्मीय मान को लेकर एक ही आरेख में हवाई जहाज़ की मोटर के शोर और मच्छर की भिनभिनाहट को दिखाया जा सकता है।

ध्वनि प्रबलता की स्केल निम्नलिखित तरीक़े से बनाते हैं। 10^{-9} erg/cm^2 · sec के बराबर ध्वनि तीव्रता को शून्य मानते हैं। इतनी तीव्रतावाली ध्वनियां सुनाई नहीं देती हैं चाहे श्रवणशक्ति कितनी भी अच्छी क्यों न हो। इसके उपरांत यह मालूम किया जाता है कि विचाराधीन ध्वनि की ऊर्जा E इस प्रारंभिक स्तर E_0 से कितने गुना अधिक है, यानी अनुपात E/E_0 मालूम किया जाता है।

इस अनुपात का लॉगेरिथ्म ही ध्वनि प्रबलता को मापने के लिए प्रयोग किया गया है। प्रबलता की इकाई को बेल कहते हैं। प्रायः इस इकाई के दसवें भाग के बराबर इकाई का उपयोग किया जाता है, जिसे डेसिबेल कहते हैं। डेसिबेलों में प्रबलता $= 10 \log \frac{E}{E_0}$।

डेसिबेल क्या है—इसके बारे में आगे दी गयी सारणी से मालूम हो जाएगा। इस सारणी में ध्वनि स्रोत से कुछेक मीटर की दूरी पर विभिन्न ध्वनियों की प्रबलता दी हुई है

पत्तों की सरसराहट	 10	डेसिबेल
सुनसान सड़क	 30	»
गुज़रती हुई कार	 50	»
ऊंचे स्वर में बातचीत	 70	»
कोलाहलपूर्ण सड़क	 90	»
हवाई जहाज़	 100	»



चित्र 121

लॉगेरिथ्मीय सारणी से हमें डेसिबेल के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है। ध्वनि में एक डेसिबेल की वृद्धि से ध्वनि की तीव्रता में $10^{0.1} = 1.26$ गुना यानी 26% वृद्धि होती है। ध्वनि तीव्रता में दो गुना वृद्धि प्रबलता में 3 डेसिबेल परिवर्तन के बराबर होती है। पांच गुना वृद्धि 7 डेसिबेल ग्रौर 10 गुना वृद्धि 10 डेसिबेल परिवर्तन के बराबर होती है।

ग्रगर ध्वनि-स्रोत से दूरी दुगुनी ग्रधिक कर दी जाए, तो ध्वनि की तीव्रता चार गुना कम हो जाएगी ग्रौर ध्वनि बल 6 डेसिबेल रह जाएगा। ग्राइए, ग्रब यह मान लें कि हम ध्वनि-स्रोत (बज रही तार) से एक मीटर दूर थे ग्रौर फिर 10 मीटर दूर जा बैठे। कान तक पहुंचनेवाली तरंगों की तीव्रता 100 गुना घट जाएगी ग्रौर ध्वनि तीव्रता 20 डेसिबेल कम हो जाएगी।

इससे पहले हमने श्रव्य ग्रावृत्तियों की सीमा की चर्चा की थी। इस चित्र में दर्शाया गया है कि श्रवण क्षेत्र श्रव्यता के क्षेत्र के ग्रन्दर स्थित है। इन सूचनाग्रों को उच्च तथा मन्द ध्वनि के प्रति कान की संवेदनशीलता के बारे में जानकारी से संपूर्ण कर तदनुरूप मानव के लिए विशेषतासूचक श्रव्य ग्रारेख बनाया जा सकता है (देखिए चित्र 121)। इस ग्रारेख में क्षैतिज ग्रक्ष पर ध्वनि ग्रावृति ग्रौर ऊर्ध्वाधर ग्रक्ष पर ध्वनि ऊर्जा ली गयी है। चित्र में श्रव्यता देहली (audibility threshold) ग्रौर वह देहली, जब कान में दर्द महसूस होता है, दिखाई गयी हैं। श्रव्य क्षेत्र श्रव्यता क्षेत्र के ग्रन्दर ही होता है।

अश्रव्य ध्वनियां

20000 हर्ट्स की ध्वनि आवृति एक सीमा है जिसके परे कान माध्यम के यांत्रिक कम्पनों को ग्रहण नहीं करता है। अधिक आवृतिवाली ध्वनियां विभिन्न तरीकों द्वारा पैदा की जा सकती हैं, मानव उन्हें सुन नहीं सकता है, परन्तु उपकरण इन ध्वनियों को रिकार्ड कर सकते हैं। उपकरण ही ये ध्वनियां रिकार्ड नहीं करते हैं। बहुत-से जानवर, जैसे चमगादड़, मधु मखियां, ह्वेल मछली तथा सूंस (इन उदाहरणों से आप देख सकते हैं कि जानवर का आकार कोई महत्त्व नहीं रखता है) 100000 हर्ट्स तक के यांत्रिक कंपनों को ग्रहण कर सकते हैं।

आज हम सौ करोड़ हर्ट्स तक की आवृतिवाली ध्वनियां पैदा कर सकते हैं। ऐसी ध्वनियों को, हालांकि वे सुनाई नहीं देते हैं, पराध्वनि (ultrasound) कहते हैं।

क्वार्ट्ज़ पट्टियों की सहायता से अधिकतम आवृतिवाली पराध्वनियां पैदा की जाती हैं। ऐसी पट्टियां क्वार्ट् के एकल क्रिस्टल को काट कर बनाई जाती हैं। इन पट्टियों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं: अगर ऐसी पट्टी में से बिजली की धारा प्रवाहित की जाए तो वह बारी-बारी से सिकुड़ेगी या खुलेगी। अगर इसी पट्टी में से प्रत्यावर्ती धारा प्रवाहित की जाए तो वह बारी-बारी से खुलेगी और सिकुड़ेगी यानी कम्पन करना शुरू करेगी।

इस तरह, एक सेकण्ड में कई हज़ार जूल तीव्रतावाला शक्तिशाली पराश्रव्य अभिवाह 1 cm^2 में पैदा किया जा सकता है। इस मान की श्रव्य ध्वनि की तीव्रता से तुलना करना रोचक है। गोले दाग रही तोप के एकदम पास ही ध्वनि तीव्रता मात्र 0.005 $J/cm^2 \cdot sec$ होती है।

पराध्वनि की ऊर्जा इतनी अधिक है कि उसे महसूस किया जा सकता है। अगर आप पराश्रव्य तरंगों से प्रभावित द्रव में हाथ डालें तो आप तीक्ष्ण दर्द महसूस करेंगे।

पराध्वनि पदार्थ में रोचक परिवर्तन कर सकती है। यही कारण है कि उसका विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। ऐसे उपयोगों में से एक है पदार्थ को पीसना। अगर सीसे या तांबे के टुकड़े को द्रव में डाल कर उसे पराध्वनि से प्रभावित किया जाए, तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा और पतला निलंबन पदार्थ बन जाएगा। पदार्थ छोटे-छोटे टुकड़ों में तब परिवर्तित होता है, जब कणों के साइज़ तरंग दैर्घ्यों से बड़े होते हैं।

अगर पदार्थ के कण छोटे हैं तो पराध्वनि का विपरीत प्रभाव होगा। धुएं से भरे कमरे की हवा को पराध्वनि की सहायता से मिनटों में ही पूर्णतय: साफ़ किया जा सकता है। पराध्वनि के प्रभाव सें धुएं के कण एक दूसरे के साथ जुड़ते हैं तथा दसियों और सैकड़ों गुना भारी होकर फ़र्श पर बैठ जाते हैं। इस परिघटना को स्कंदन (coagulation) कहते हैं।

जैविक वस्तुओं पर पराध्वनि का प्रभाव और भी रोचक है। अनेक कोशिकाएं, विशेषकर धागानुमा, पराध्वनि के प्रभाव से नष्ट हो जाती हैं। जीवाणु मर जाते हैं या उनमें काफ़ी हद तक परिवर्तन हो जाते हैं। पराध्वनि से दूध को जीवाणुहीन बनाया जा सकता है।

धातु के बड़े-बड़े (दस मीटर की मोटाई तक के) ढांचों में दरारों और अन्य त्रुटियां मालूम करने के लिए भी पराध्वनि का उपयोग किया जाता है। अगर पराध्वनि किरण के मार्ग में कोई दरार या खोड़ होगी, तो वह उसमें से आगे नहीं जाएगी, परन्तु विपरीत दिशा में परावर्तित हो जाएगी। इस परावर्तन को उपकरण रिजस्टर करते है तथा पराध्वनि द्वारा दरार या खोड़ तक जाने और वहां से वापस आने में ख़र्च हुए समय से त्रुटि की स्थिति मालूम की जाती है।

चमगादड़ पराध्वनि का रोचक उपयोग करते हैं। अन्धेरे में अच्छी तरह जीवन बिताने के लिए प्रकृति ने चमगादड़ को एकदम बढ़िया प्रतिध्वनि लोकेटर (echolocator) से सुसज्जित किया है। यह लोकेटर पराध्वनि आवृत्तियों पर काम करता है। उड़ान के दौरान चमगादड़ आदमी के कान को सुनाई न दी जानेवाले 25000—50000 आवृत्तिवाले संकेत छोड़ता है। हरेक संकेत सेकण्ड के लगभग 10—15 हज़ारवें हिस्से के बराबर समय तक बना रहता है। चमगमदड़ द्वारा अपने शरीर की अपेक्षा निश्चित दिशा में भेजा गया संकेत रुकावट के साथ टकराता और परावर्तित हो कर उस तक पहुंचता है। चमगादड़ की श्रव्यशक्ति भी बहुत अच्छी है। वह प्रारंभिक संकेत से दो हज़ार गुना कमज़ोर परावर्तित संकेत को भी सुन सकता है।

इसके अतिरिक्त चमगादड़ अन्य रवों में अपने परावर्तित संकेत को पहचानने की क्षमता भी रखता है, चाहे ये रव चमगमदड़ द्वारा भेजे संकेत की पराध्वनि से हज़ार गुना शक्तिशाली भी क्यों न हों। संकेत के भेजने से उसके वापस आने के बीच के समय में चमगादड़, निस्सन्देह, अपने सहज-ज्ञान से रुकावट तक की दूरी मालूम करता है।

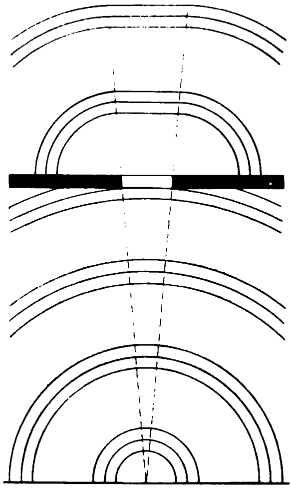
ध्वनि रुकावटों को पार कैसे करती है

आप पहली मंज़िल पर कमरे में बैठे किसी से बातचीत कर रहे हैं। कमरे की खिड़की खुली है और खिड़की के उस ओर आपका साथी बैठा है। क्या उसको आपकी बातचीत सुनाई देगी? जी हां, अगर आप उच्च स्वर से बातचीत करेंगे। आपकी बातचीत उसे इतनी अच्छी तरह सुनाई नहीं देगी उस स्थिति की अपेक्षा जब वह जीने पर खड़ा होकर खिड़की के पास आकर आपकी बातें सुनेगा। खिड़की में से निकलने पर ध्वनि तरंगें मानों चारों तरफ़ फैल जाती हैं, लेकिन ख़ुशी से नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि ध्वनि तरंगें सीधी रेखाओं के साथ अच्छी तरह फैलती हैं, लेकिन कुछ हद तक अपने पथ से विचलित भी हो जाती हैं। क्या यह बात सब क़िस्म की तरंगों के लिए सही है? जी नहीं।

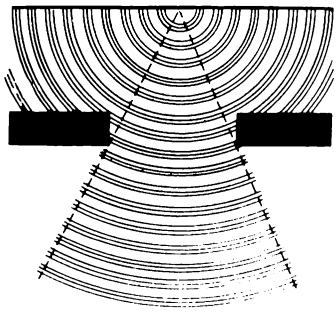
तरंग-दैर्घ्य और खिड़की के आकार का अनुपात महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अगर तरंग-दैर्घ्य खिड़की के आकारों के मुक़ाबले अधिक है, तो खिड़की में से निकलने पर तरंगें सब दिशाओं में "बिखर" जाती हैं, जैसे कि खिड़की स्वयं ही ध्वनि स्रोत हो। इसके विपरीत, अगर तरंग-दैर्घ्य खिड़की के आकारों से बहुत छोटा है, तो ध्वनि किरणों के साथ-साथ फैलती है, और वहां भी जहां ध्वनि स्रोत से प्रेक्षक तक सीधी रेखा बनती है, रुकावट के साथ (हमारे उदाहरण में दीवार के साथ) टकराती है और "छाया" पैदा होती है: ध्वनि बिल्कुल ही सुनाई नहीं देती है।

हमारे उदाहरण में आदमी की आवाज़ की औसत आवृत्ति (1000 हर्ट्स) 30 cm तरंग-दैर्घ्य के अनुरूप है। इसलिए ऐसी तरंगें एक मीटर चौड़ी खिड़की में से आगे बढ़ती हैं, लेकिन वे इधर-उधर काफ़ी विचलित भी हो जाती हैं।

ध्वनि तरंगों के विचलित पथ को चित्रित करना बहुत मुश्किल है। सदृश स्थिति में जल में पृष्ठीय तरंगों के बरताब को चित्र बनाकर समझाना बहुत आसान है। ऐसी तरंगों के बारे में हम आगे चलकर चर्चा करेंगे। इन तरंगों की विशेषताएं अपनी ही क़िस्म की हैं। लेकिन, जहां तक तरंगों द्वारा रुकावटों को पार करने के नियमों का संबंध है, तो वे जल तरंगों और ध्वनि वायु तरंगों के लिए एक जैसे हैं।



चित्र 122



चित्र 123

चित्र 122 और 123 में भिन्न-भिन्न दैर्घ्यवाली जल तरंगों की किसी छिद्र में से निकलने की क्रिया दिखाई गई है। चित्र 122 में तरंग-दैर्घ्य छिद्र के आकार से काफ़ी बड़ा है। इस स्थिति में तरंग पटल के पीछे लगभग सारी जगह को भरती हैं। चित्र 123 में बहुत छोटे दैर्घ्यवाली तरंग चित्रित की गयी है। यहां तरंग संचरण किरणों के साथ-साथ होता है। तरंग ज्यामितीय परछाई-क्षेत्र तक तो पहुंचती ही नहीं है।

इस प्रकार, यह देखा जाता है कि जब ध्वनि तरंगों का दैर्घ्य उन वस्तुओं के आकार से बहुत छोटा होता है, जिनसे वे टकराती हैं, तो ध्वनि तरंगें बिलकुल ऐसे बरताव करती हैं मानों वे वायु तरंगें नहीं हैं, परन्तु वायु में गतिमान् कणों का अभिवाह हैं। साधारण कणों से भिन्नता मुख्यतया इस बात में निहित है कि साधारण कणों का वेग कितना भी हो सकता है, परन्तु ध्वनि का संचरण सदा एक ही वेग से होता है।

ध्वनि की तरंग-प्रकृति का प्रभाव इस बात में निहित है कि वह हमेशा अपने रेखीय संचरण-पथ से किसी-न-किसी हद तक विचलित हो जाती है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, तरंग-दैर्घ्य जितना अधिक होगा उतना ही यह विचलन कम होगा, लेकिन होगा हमेशा ही और उसे मापा भी जा

सकता है। इस विचलन को ध्वनि विवर्तन (diffraction of sound) कहते हैं। विवर्तन का अस्तित्व इस बात को प्रमाणित कर सकता है कि ध्वनि तरंग-गति है, चाहे इसका हमें अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान न भी हो (ध्वनि प्राप्त करने के तरीक़े के अनुसार)। अगर विवर्तन का ध्वनि-स्रोत की तरंगों की आवृत्ति में ज्ञान न हो, तो भी विवर्तन के अध्ययन के दौरान ध्वनि-तरंगों का दैर्घ्य मापा जा सकता है।

ध्वनि परावर्तन

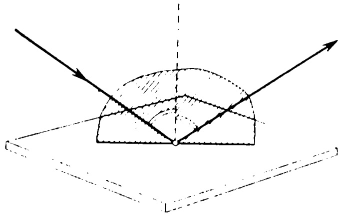
इस अनुच्छेद में हम इस बात की कल्पना करेंगे कि ध्वनि तरंग-दैर्घ्य बहुत ही छोटा है, अतः ध्वनि किरणों की तरह फैलती है। जब कोई ऐसी ध्वनि-किरण हवा में से ठोस सतह पर गिरती है तो क्या होता है? स्पष्ट है कि ध्वनि का परावर्तन होता है। लेकिन उसका परावर्तन कहां होता है?

ध्वनि संचरण की द्रव्यात्मक कणों से तुल्यरूपता दर्शाती है कि ऐसा परावर्तन उसी तरह होना चाहिए जैसा कि गेंद दीवार के साथ टकराने पर वापस आता है। अन्तर केवल यह होगा कि घर्षण बलों के कारण गेंद का वेग कम हो जायेगा, जबकि ध्वनि संचरण-वेग, जो केवल वायु माध्यम के गुणों पर निर्भर करता है, निस्सन्देह, अपरिवर्तित रहेगा। घर्षण यहां ध्वनि-वेग को नहीं बदलेगा लेकिन परावर्तन के समय ध्वनि तरंगों की ऊर्जा के एक भाग को ताप में बदल देगा।

क्योंकि ध्वनि परावर्तन सिद्धान्त में प्रत्यास्थ टक्कर से भिन्न नहीं हैं, ध्वनि परावर्तन नियम को निम्नलिखित शब्दों में सूत्रबद्ध किया जा सकता है: ध्वनि किरण का आपतन-कोण (angle of incidence) यानी आपतन-तल पर अनुलम्ब (यानी लम्ब) और किरण के बीच का कोण परावर्तन-कोण (angle of reflection) के बराबर होता है और परावर्तित किरण आपतन-किरण और तल पर लम्ब में से गुजर रहे समतल में होती है। इस समतल को आपतन-किरण समतल कहते हैं।

परावर्तित किरण किधर जाएगी यह जानने के वास्ते हमें उस बिन्दु पर, जहां किरण आपतन होती है, लम्ब खींचना चाहिए। कोण को माप कर आपतन-समतल बनाना चाहिए। इसके उपरांत इस समतल में लम्ब के दूसरी

ग्रोर ग्रापतन-कोण के बराबर कोण बनाना चाहिए। प्राप्त सरल रेखा ही परावर्तित किरण है (देखिए चित्र 124)।



चित्र 124

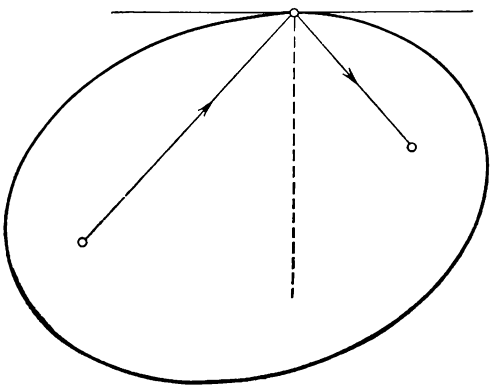
ग्राइए, ग्रब एक रोचक प्रश्न हल करें।

हमें मालूम है कि स्रोत से ध्वनि का संचरण सब दिशाग्रों में होता है। ग्रौर दूरवर्ती बिन्दु तक ऊर्जा का छोटा-सा भाग ही पहुंचता है। परावर्तन तल कैसा होना चाहिए कि स्रोत से निकली ध्वनि को फिर एक बिन्दु पर इकट्ठा किया जा सके? परावर्तन समतल की ग्राकृति ऐसी होनी चाहिए कि ध्वनि स्रोत के एक बिन्दु में से भिन्न-भिन्न कोणों पर गिर रहीं किरणें एक बिन्दु पर ही परावर्तित हों। कौनसा है ऐसा तल?

दीर्घवृत है ऐसा तल। पृष्ठ १८८ पर हमने इस वक्र के बारे में चर्चा की थी। इसकी विशेषता यह है कि दीर्घवृत के एक फ़ोकस से वक्र के किसी बिन्दु तक की दूरी ग्रौर दूसरे फ़ोकस से इस बिन्दु तक की दूरी का योग दीर्घवृत के सब बिन्दुग्रों के लिए एक जैसा होता है। ग्रब ज़रा कल्पना कीजिए कि दीर्घवृत दीर्घ व्यास के चारों ग्रोर घूमता है। परिक्रमी तल एक वक्र बनाएगा जिसे दीर्घवृत्तजीय ग्राकृति (ellipsoidal figure) या दीर्घवृत्तज (ellipsoidal) कहते हैं। दीर्घवृतज ग्रंडाकार होता है।

दीर्घवृत की निम्नलिखित ज्यामितीय विशेषताएं हैं (देखिए चित्र 125) ग्रगर दीर्घवृत के किसी बिन्दु में से एक कोण खींचा जाए जिसकी भुजाएं दीर्घवृत के फ़ोकस बिन्दुग्रों में से निकलती हों, तो इस कोण का द्विभाजक (bisector) दीर्घवृत पर लम्ब होगा (यानी दीर्घवृत के इस बिन्दु में से खींची स्पर्शज्या पर लम्ब होगा)। इसका मतलब यह हुग्रा कि ग्रगर ध्वनि-किरण दीर्घवृतज के एक फ़ोकस में से निकलती है तो परावर्तन के पश्चात वह किरण दूसरे फ़ोकस पर वापस ग्राएगी। एक फ़ोकस में से निकली सब किरणें तथा सारा ध्वनिक ग्रभिवाह दूसरे फ़ोकस पर इकट्ठा हो जाएगा।

इस प्रकार के वक्र पृष्ठों के बारे में पुराने जमाने में भी जानते थे। मध्य-युग में, जब प्रत्येक व्यक्ति के विचारों पर नियंत्रण सरकारी कार्यवाही



चित्र 125

का एक महत्त्वपूर्ण अंग था, गुप्त तौर पर लोगों की बातचीत सुनने के लिए मेहराबनुमा सतहों का उपयोग किया जाता था। मंद स्वर में एक दूसरे से बातें कर रहे दो मनुष्यों को शंका भी नहीं होती थी कि कॉफ़ी हाउस के दूसरे कोने में सुसता रहा मठवासी उनकी बातों को उतनी ही अच्छी तरह सुन रहा है जिस तरह वे स्वयं एक दूसरे को सुन रहे हैं।

दीर्घवृतजीय सतह बनाना मुश्किल है। लेकिन गोलीय सतहों के छोटे-छोटे भाग दीर्घवृतज के भागों से आकृति में बहुत कम भिन्न होते हैं।

अगर ऐसे गोलीय "आइने" के सामने ध्वनिमान् पदार्थ रखा जाए तो उसमें से निकलनेवाली ध्वनि तरंगें परावर्तन के दूसरे क्षेत्र में फिर इकट्ठी हो जाएंगी। लेकिन एक बिन्दु पर नहीं, जैसा कि सही दीर्घवृतज में होता है, परन्तु आकाश के एक छोटे-से भाग में इकट्ठी होंगी।

ऐसा प्रयोग एक साधारण गहरी प्लेट की सहायता से भी किया जा सकता है। अगर ऐसी प्लेट के पास घड़ी रखी जाए, जिसके चलने की ध्वनि उससे एक मीटर की दूरी पर वास्तव में सुनाई ही नहीं देती है, तो प्लेट से बहुत दूर स्थित एक बिन्दु ढूंढ़ा जा सकता है जहां घड़ी के चलने की ध्वनि उतनी ही तीव्रता से सुनाई देगी मानों आप घड़ी अपने कान के पास ले आए हों। थियेटर में प्राम्पट बाक्स के निर्माण में इसी परिघटना का उपयोग किया जाता है। प्राम्पट की स्थिति और बॉक्स की आकृति स्टेज की ओर ध्वनि परावर्तन के अनुकूल होते हैं।

थियेटरों, कान्सर्ट हॉलों और सभा भवन निर्माताओं को इमारतों की दीवारों से ध्वनि परावर्तन में बहुत दिलचस्पी होती है। सिविल इंजीनियरंगी की इस शाखा को, जो थियेटरों, सभा भवनों इत्यादि में अच्छा श्रव्य सुनिश्चित करने की समस्या से संबंधित है, स्थापत्य ध्वानिकी (architectural acoustics) कहते हैं।

पृष्ठीय तरंगें

पनडुब्बों पर समुद्री तूफ़ानों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। भयंकर तूफ़ान के समय भी समुद्र सतह से कुछेक मीटर नीचे पानी बिलकुल शांत होता है। समुद्री तरंगें पदार्थ की मात्र सतह को ही प्रभावित करनेवाली तरंग-गति के उदाहरणों में से एक है।

कभी-कभी ऐसा लग सकता है कि समुद्री तरंगें जल के गतिमान् द्रव्य की धाराएं हैं। लेकिन यह ऐसा नहीं है। लहरों पर डोल रही किश्ती को, जिसमें नौका दौड़ के बाद खेवैये आराम कर रहे हैं, ध्यानपूर्वक देखा जाए तो जल के कणों की कम्पनिक गति को समझने में मुश्किल बिलकुल नहीं होगी। किश्ती ऊपर नीचे, थोड़ा आगे, थोड़ा पीछे होती है लेकिन आगे तो बिलकुल बढ़ती ही नहीं है। सूक्ष्म प्रेक्षणों से पता चलता है कि जल के कण वृत्त में घूमते हैं। जल का हरेक कण लगभग वृत जैसी ट्रजेक्टरि बनाता है। वृत्तों का समतल तरंग-संचरण दिशा में यानी तरंगाग्र (wave front) के आड़ा स्थित होता है।

समुद्री विक्षोभ (sea disturbance) भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है—छोटी लहरें, बड़ी लहरें, एक दूसरे के बाद कम दूरी या अधिक दूरी पर चलनेवाली लहरें। भौतिक विज्ञानियों की भाषा में कहा जा सकता है कि लहरें विभिन्न आयामों और दैर्घ्यवाली हो सकती हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है गहराई में वृद्धि के साथ लहरें शीघ्र क्षय हो जाती हैं। जल के कण जैसे जैसे गहराई में जाते हैं वैसे वैसे उनके दोलन का आयाम कम होता जाता है। तरंग-दैर्घ्य से आधी गहराई पर दोलन का आयाम 20 गुना कम हो जाता है, और तरंग-दैर्घ्य के बराबर गहराई पर तो गति लगभग समाप्त हो जाती है।

अब तक हमने ऐसी तरंगों की चर्चा की है जिनकी संचरण-गति केवल माध्यम के गुणों पर ही निर्भर करती थी। पृष्ठीय तरंगें इनसे भिन्न हैं:

विभिन्न ग्रावृत्तिवाली तरंगें विभिन्न गतियों से फैलती हैं। संचरण-गति ग्रौर दोलन-काल (vibration period) एक साधारण संबंध से जुड़े हैं: $c = \frac{gT}{2\pi}$, जिसमें g गुरुत्वीय त्वरण है। गुरुत्वीय त्वरण g का इस सूत्र में प्रकट होना बिलकुल स्वाभाविक है, गुरुत्वीय बल ही तो जल की सतह को समतल बनाता है। इस सूत्र के ग्रनुसार 1 हर्ट्स ग्रावृतिवाली लहरें लगभग 1.5 m/sec के वेग से चलती हैं। खुले समुद्र में ग्रानेवाली लहरों के लिए यह सूत्र सही है; तट के समीप या कम गहराइयों में ग्रानेवाली लहरों के वास्ते यह साधारण सूत्र जटिल बन जाता है।

क्योंकि $\lambda = cT$, इसलिए $c = \sqrt{\frac{g\lambda}{2\pi}}$। इसका मतलब यह हुग्रा कि समुद्र के किसी भाग में गम्भीर विक्षोभ होने पर पहले सबसे दीर्घ तरंगें, जिनका संचरण-वेग सबसे ग्रधिक है, दूरवर्ती स्थानों पर पहुंचती हैं।

ठोस पिण्ड ध्वनि कैसे ग्रंतरित करते हैं

द्रव पिण्डों ग्रौर गैसों में से ध्वनि का ग्रंतरण ठोस पिण्डों में से ध्वनि के ग्रंतरण से बहुत भिन्न होता है। इन दोनों में ग्रन्तर यह है कि ठोस पिण्डों में ग्रनुदैर्घ्य तरंगों के साथ ग्रनुप्रस्थ तरंगें भी पैदा हो सकती हैं।

ग्रनुप्रस्थ तरंग की विशेषता यह है कि तरंग-क्रिया में भाग लेनेवाले कण तरंग-संचरण दिशा में नहीं, परन्तु ग्रनुप्रस्थ दिशा में यानी तरंग-संचरण दिशा के लम्ब दिशा में दोलन करते हैं।

गैसों ग्रौर द्रवों में ध्वनि तरंग बारी-बारी से संपीडन ग्रौर विरलीकरण की लहर होती है। ऐसी लहर केवल ग्रनुदैर्घ्य होती है, कणों के ग्रनुप्रस्थ दोलन ग्रायतन में स्थानीय परिवर्तन नहीं ला सकते हैं यानी संपीडन ग्रौर विरलीकरण लहरें पैदा नहीं हो सकती हैं। द्रव ग्रौर गैस में ग्रनुप्रस्थ लहर पैदा नहीं हो सकती है क्योंकि ये माध्यम संपीडन ग्रौर विरलीकरण में बाधा डालते हैं परन्तु ग्रपरूपण (shear) में नहीं। ठोस पिण्ड न केवल ग्रपने ग्रायतन में तबदीली परन्तु ग्राकृति में परिवर्तनों के प्रति भी प्रतिरोध करता है। यही कारण है कि ठोस पिण्डों में ग्रनुदैर्घ्य तरंगों के ग्रतिरिक्त ग्रनुप्रस्थ तरंगें भी पैदा हो सकती हैं।

ठोस माध्यम में जब ग्रनुप्रस्थ तरंग का संचरण होता है तो ग्रपरूपण तरंग (shear wave) बनती है, यानी तरंग पिण्ड के कणों को बारी-

बारी से तरंग-संचरण रेखा की विभिन्न दिशाओं में विचलित करती है। द्रवों और गैसों में तरंगों की तरह ठोस माध्यम में अनुदैर्घ्य तरंगों में संपीडन और विरलीकरण बनते हैं।

अनुप्रस्थ और अनुदैर्घ्य तरंगें ध्वनि को एक जैसा लेकिन एकसमान तेज़ी से अंतरित नहीं करती हैं। अनुदैर्घ्य तरंगें हमेशा अनुप्रस्थ तरंगों से जल्दी फैलती हैं।

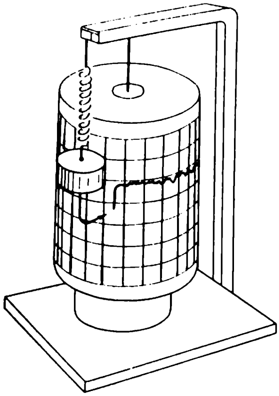
यह निम्न आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। इस्पात में अनुप्रस्थ तरंगों का वेग लगभग 3000 m/sec, लेकिन अनुदैर्घ्य तरंगों का – 6000 m/sec होता है। सीसे में ध्वनि-संचरण वेग कम होता है, अनुप्रस्थ तरंगों के लिए 700m/sec और अनुदैर्घ्य तरंगों के लिए 2200 m/sec होता है।

रबड़ में अनुदैर्घ्य और अनुप्रस्थ तरंग वेगों का अनुपात बहुत अधिक होता है। रबड़ अपनी आकृति में परिवर्तनों के प्रति बहुत कम प्रतिरोध दिखाता है परन्तु अपना आयतन आसानी से नहीं बदलता है। रबड़ में अनुप्रस्थ तरंगें मात्र 30 m/sec के वेग से, यानी हवा में ध्वनि वेग से 10 गुना कम वेग से फैलती हैं।

इन दो क़िस्म की तरंगों के अतिरिक्त ठोस पिण्ड पर पृष्ठीय तरंगें भी फैलती हैं। लेकिन वे समुद्री तरंगों से बिलकुल भिन्न हैं, जिनमें गुरुत्वीय बल विचलित कणों को अपने स्थान पर वापस लाता है। ठोस पिण्ड की सतह पर तरंगें ठोस पिण्ड के कणों को बांधनेवाले प्रत्यास्थ बलों द्वारा थामी होती हैं। यही कारण है कि पृष्ठीय तरंगों का वेग पिण्ड के प्रत्यास्थ गुणों पर निर्भर करता है। पृष्ठीय तरंगों का वेग लगभग 0.9 अनुप्रस्थ-तरंग-संचरण वेग के बराबर होता है। उसी तरह जिस प्रकार द्रव में, दोलायमान कणों का प्रपथ तरंगाग्र (wave front) के अनुप्रस्थ समतल में स्थित होता है। बिन्दु दीर्घवृतों के सदृश संवृत वक्रों (closed curves) में घूमते हैं। बिन्दु सतह से जैसे-जैसे दूर होते जाते हैं वैसे-वैसे तरंग-आयाम घटता जाता है और लहर क्षय होती जाती है।

भूकम्प के सूचक

धरती में से ध्वनि काफ़ी सुगमता से चलती है। मध्यकालीन उपन्यासों में ऐसे दृश्य मिलेंगे जहां नायक घोड़े पर भागा जा रहा हो और कुछ लोग



चित्र 126

उसका पीछा कर रहे हों। घुड़सवार एकाएक अपने घोड़े को रोक कर धरती से कान लगाकर कुछ सुनता है और कहता है: पीछा करनेवाले आ रहे हैं, जल्दी करनी चाहिए। बात यह है कि पीछा करनेवालों के घोड़ों के टापों की आवाज़ धरती द्वारा एक किलोमीटर से अधिक दूरी से सुनी जा सकती है। किसी भी प्रत्यास्थ पिण्ड की भांति धरती भी ध्वनि की तरंगों के मार्गदर्शक का काम करती है।

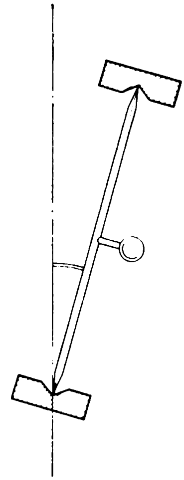
धरती में बढ़नेवाली ध्वनि तरंगें हमारे तक भूकंपों के बारे में सूचनाएं लाती हैं और भू-पर्पटी में होनेवाले परिवर्तनों से हमारा परिचय करवाती हैं। भूकंप आने पर पैदा होनेवाली ध्वनि तरंगों को भूकंपी तरंगें (seismic waves) कहते हैं। भूकंपी तरंग की उपस्थिति, उसका आयाम, वेग, दैर्घ्य, कम्पन-आवृत्ति विशेष अति सुग्राही यंत्रों – भूकंप-लेखियों – द्वारा मालूम किया जा सकता है।

भूकंप-लेखी एक जटिल यंत्र है, लेकिन उसका कार्य-सिद्धान्त समझना आसान है। भूकंप-लेखी का मुख्य भाग स्प्रिंग पर से लटकाया एक भारी भार होता है। धरती के ऊर्ध्वाधर विस्थापन के समय बिन्दु, जहां पर से स्प्रिंग और भार लटके हैं, चित्र 126 में दिखाई गई स्थिति में विस्थापित हो जाएगा। जड़त्व अधिक होने के कारण भार पहले अपने स्थान पर टिका रहता है। भार पर एक निब लगी होती है और ढोल पर कागज़ लिपटा होता है। जब ढोल विस्थापित होगा, तो निब क़ागज़ पर ऊर्ध्वाधर रेखा बना देगी। भूकम्प तरंग रिकार्ड करने के वास्ते काग़ज़ को आगे बढ़ाना होगा।

धरती के ऊर्ध्वाधर विस्थापनों को रिकार्ड करनेवाली ऐसी भूकंप-लेखियों के अतिरिक्त क्षैतिज भूकंप-लेखियों का भी उपयोग किया जाता है। क्षैतिज भूकंप-लेखी का कार्य-सिद्धान्त चित्र 127 में दिखाया है। यंत्र का मुख्य भाग एक लगभग ऊर्ध्वाधर छड़ है। उत्केन्द्र भार (eccentric load) इस छड़ को लोलक बना देता है। अगर धरती शान्त है तो लोलक का

भार सबसे निम्न अवस्था में विराम स्थिति में होता है। क्षैतिज दिशा में प्रधात लोलक के अक्ष में विस्थापन पैदा करता है, जबकि भारी भार जड़त्व के कारण अपनी पहलेवाली जगह पर ही रहता है। लोलक के विस्थापन स्वतः लक्षी क्रियाविधि (self-recording mechanism) द्वारा रिकार्ड किए जाते हैं।

अगर एक ऊर्ध्वाधर और दो क्षैतिज भूकंप-लेखियों का, जो परस्पर लंब समतल में दोलायमान हों, उपयोग किया जाए तो हर किसी विस्थापन का मान और उसकी दिशा रिकार्ड की जा सकती है।



चित्र 127

प्रायः "भूकंप" शब्द को जान और माल के नुक़सान आदि से संबंधित करते हैं। इतने भयंकर भूकंप तो बहुत कम आते हैं, लेकिन भूकम्प विज्ञान का अध्ययन करनेवाले धरती में होनेवाले सब परिवर्तनों के लिए "भूकंप" शब्द का इस्तेमाल करते हैं, जिसके कारण भूकंप-लेखी का निब गति में आता और भू-पर्पटी कम्पनों को रिकार्ड करता है। ऐसे भूकंपों को भूकंप-लेखी के अतिरिक्त और कोई भी महसूस नहीं करता है। भू-पर्पटी में एक साल में लगभग एक लाख ऐसे भूकंप आते हैं। मालूम पड़ता है कि धरती के भीतर काफ़ी उथल-पुथल होती रहती है।

उद्गम केन्द्र से भूकम्प-तरंगें सब दिशाओं में जाती हैं और वे विभिन्न शहरों और देशों में स्थित अनेक भूकंप-लेखियों द्वारा रिकार्ड की जा सकती हैं। प्रत्येक भूमिगत प्रघात के बारे में भूकंप-लेखी तक सूचना तीन बार पहुंचेगी, क्योंकि सभी तीनों तरंगें, जिनके बारे में हमने ऊपर चर्चा की है, उद्गम केन्द्र से यात्रा पर निकलती हैं। प्रेक्षक तक सबसे पहले अनुदैर्घ्य तरंग, इसके उपरांत अनुप्रस्थ और अन्त में पृष्ठीय तरंग पहुंचेगी।

भूकंप विज्ञानी के लिए पृष्ठीय तरंगें विशेष महत्त्व रखती हैं, क्योंकि वे अति तीव्र होती हैं।

पृष्ठ ३७८ पर हमने बताया था कि ध्वनि तरंगों की तीव्रता ध्वनि स्रोत से दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात कम होती है। लेकिन यह बात पृष्ठीय तरंगों के लिए सही नहीं है। आइए, ध्वनि स्रोत के पास दो गोले न बना कर दो वृत्त बनाएं। वृत्त में से निकलनेवाली तरंग की ऊर्जा $I \cdot 2\pi r$

के आनुपातिक होती है। यहां I तीव्रता है। अतः ऊर्जा ह्रास न होने पर पृष्ठीय तरंग की तीव्रता $\frac{1}{r}$ की तरह न कि $\frac{1}{r^2}$ की तरह कम होती है। इसलिए प्रेक्षक तक यह तरंग अनुदैर्घ्य और अनुप्रस्थ आकाश तरंगों की अपेक्षा कम क्षीण होकर पहुंचती हैं।

कम्पन-तरंगों के विश्लेषण से न केवल उद्गम केन्द्र ही मालूम किया जाता है, परन्तु भू-संरचना से संबंधित रोचक अध्ययन-कार्य भी किए जाते हैं। पृथ्वी की गहराई में से आनेवाले संकेत उसकी संरचना जानने में सहायता करते हैं। बात यह है कि भिन्न-भिन्न गहराइयों पर कम्पन-तरंगों का वेग विभिन्न होता है। भू-तल के पास अनुदैर्घ्य तरंगों का वेग 5.5 km/sec और अनुप्रस्थ तरंगों का 3.3 km/sec होता है। जबकि भू-केन्द्र पर कम्पन-तरंगों का संचरण-वेग 11 — 12 km/sec होता है।

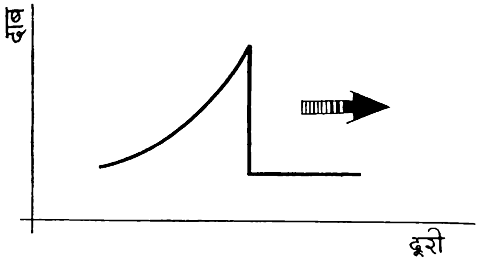
यह जानते हुए कि संरचना की कौन-सी विशेषताएं ध्वनि संरचना-वेग पर प्रभाव डालती हैं शोधकर्त्ता भू-क्रोड़ की संरचना के बारे में निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरण के तौर पर, यह सिद्ध किया जा चुका है कि अनुप्रस्थ तरंगें भू-क्रोड़ की गहराई में नहीं जाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि भू-क्रोड़ द्रव है क्योंकि द्रव पिण्डों में से अनुप्रस्थ तरंगें गुज़रती नहीं हैं।

प्रघाती तरंग

दैनंदिन के जीवन में निश्चित समय पर और बार-बार होनेवाली क्रियों को "तरंग" शब्द का प्रयोग कर व्यक्त किया जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण है समुद्री लहरें। "लहरों" पर झूले खाना समुद्र में तैरनेवालों का मनपसन्द खेल है।

भौतिकी में "तरंग" शब्द का व्यापक अर्थों में उपयोग किया जाता है, और तरंग-संचरण के बारे में तब कहते हैं जब दाब में स्थानीय वृद्धि या कमी एक ही प्रघात, घमाके या हवा के चूषण से हुई हो।

धमाके के कारण पैदा हुई वायु तरंग अपनी ही क़िस्म की होती है। चित्र 128 में ऐसी एक प्रघात तरंग का क्षणिक प्रोफ़ाइल दिखाया है—यह वक्र तरंग-संचरण की किसी एक दिशा के साथ दाब वितरण को



चित्र 128

चित्रित करता है। वक्र पहले आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर उठता है और फिर लम्बतः नीचे आता है। तरंग बायीं ओर से दायीं ओर आती है। विचाराधीन क्षण पर तरंगाग्र (wave front) के दायीं ओर स्थित वायु विराम में होती है यानी तरंग उन तक अभी पहुंची नहीं है।

विचाराधीन धमाका तरंग या, जैसा कि उसे पुकारते हैं, प्रघात तरंग की मुख्य विशेषता है "तरंगाग्र" पर दाब में आकस्मिक परिवर्तन ; विराम-बिन्दु एकदम ही उच्चतम दाब की लपेट में आ जाते हैं: हवा का कण अभी ही वायुमण्डलीय दाब पर था, अगले ही क्षण उसी जगह दाब अधिकतम हो जाता है। इसके बाद, प्रघात तरंग जैसे-जैसे आगे बढ़ेगी उस बिन्दु पर, जिस पर हमने अपनी दृष्टि फ़ोकस की है, प्रोफ़ाइल के अनुसार उसका दाब कम होने लगेगा।

चित्र 128 में तरंग-संचरण की किसी लाइन के साथ दाब वितरण दिखाया है। तरंग आकाश में फैलती है और अग्र (front) सतह होती है।

प्रघात तरंग के अग्र में न केवल दाब में, परन्तु घनत्व तथा तापमान में भी आकस्मिक परिवर्तन होते हैं।

प्रघात तरंग में दाब और तापमान में परिवर्तन के अतिरिक्त गति भी आती है। और ध्वनि तरंग में तरंग-संचरण की लाइन के साथ हवा गतिमान् हो जाती है, लेकिन वहां यह परिघटना कम महत्त्व रखती है। प्रघात तरंग में हवा इतनी विलीन हो जाती है कि इस क्रिया के लिए "विलयन" बहुत नरम शब्द है। प्रघात तरंग हवा में तूफ़ान ला देती है। शक्तिशाली प्रघात तरंगों में गति के लिए उपयुक्त शब्द चुनना तो बहुत मुश्किल है।

गुणों में परिवर्तन, जिसके बारे में हम चर्चा कर रहे हैं, बहुत

आकस्मिक हैं—कण पूर्ण विराम अवस्था में से अधिकतम वेग गैस-अणु के माध्य मुक्त पथ (mean free path) से कई गुना अधिक पथ के अभ्यंतर में प्राप्त करते हैं। हवा के लिए यह अतिसूक्ष्म मान सेंटीमीटर के लगभग हज़ारवें हिस्से के बराबर होता है। परिवर्तन काल सेकण्ड के 10^{-10} वें हिस्से के बराबर होता है। दाब, घनत्व, तापमान और गति के वेग में ऐसा क्षणिक परिवर्तन प्रघात तरंग का ही लक्षण है।

विस्फोटन तीव्रता के अनुसार प्रघात तरंग के दाब में परिवर्तन या दूसरे शब्दों में अग्र की ऊंचाई बहुत भिन्न हो सकती है। जिस क्षण प्रघात तरंग आती है, दाब कुछेक प्रतिशतों से दसियों गुना बढ़ सकता है।

प्रघात तरंगाग्र में आनेवाले परिवर्तनों के मान एक दूसरे से संबंधित हैं। दाब में आया परिवर्तन मालूम होने पर घनत्व, तापमान और गति वेग में हुए परिवर्तन मालूम किए जा सकते हैं। क्षीण प्रघात तरंगों का वेग साधारण ध्वनि तरंगों के संचरण-वेग से भिन्न नहीं होता है। अग्र की ऊंचाई में वृद्धि होने पर प्रघात तरंग के संचरण-वेग में भी वृद्धि होती है।

आइए, अब एक "मामूली-सी" प्रघात तरंग, जो दाब में डेढ़ गुना वृद्धि करती है, के लिए आंकड़े पेश करें। मालूम पड़ता है कि दाब में इतनी वृद्धि होने से हवा का घनत्व 30% और तापमान 35° बढ़ जाएगा। ऐसी प्रघात तरंग के अग्र का वेग 400 m/sec होता है। दाब में डेढ़ गुना परिवर्तन होने पर प्रघात तरंग वायु के कणों को 100 m/sec यानी 360 km/hour की रफ़्तार से अपने साथ ले चलेगी। भयंकर से भयंकर तूफ़ान के समय भी हवा का वेग इतना नहीं होगा।

लेकिन ऐसे विस्फोट हो सकते हैं जब प्रघात तरंगें अतुलनीय शक्तिशाली होंगी। अगर दाब में दस गुना वृद्धि होने पर तरंग आगे बढ़ रही है, तो तरंगाग्र पर घनत्व में चार गुना और तापमान में 500° वृद्धि होती है। इस स्थिति में वायु 725 m/sec की रफ़्तार से बहती है। ऐसी तरंग का संचरण-वेग 1 km/sec के बराबर होता है

शक्तिशाली विस्फोटों द्वारा पैदा हुई प्रघात तरंगें दसियों किलोमीटरों तक जाती हैं। प्रघात तरंगों के गुणों में होनेवाले परिवर्तन तरंगों के मार्ग में आनेवाली रुकावटों पर तेज़ प्रहार करते हैं। क्षीण प्रघात तरंगें खिड़कियों के शीशे तोड़ती और मकानों तथा पेड़ों को गिरा देती हैं। तोप की विध्वंसक क्रिया भी काफ़ी हद तक प्रघात तरंगों की क्रिया पर आधारित है।

प्रघात तरंगों की विध्वंमक क्रिया अनेक परिस्थितियों और विशेषकर तरंगों की क्रिया अवधि पर निर्भर करती है। प्रघात तरंग के विध्वंसक प्रभाव तथा उसके प्रमुख प्राचाल (parameter)– दाब में वृद्धि – में संबंध को समझाने के वास्ते यह बता दें कि प्रघात तरंग, जिसके अग्र की ऊंचाई मात्र 2% है, खिड़कियों के शीशे तोड़ सकती है, लेकिन दो गुना अधिक दाब ले जानेवाली प्रघात तरंग मोटी दीवारों को तोड़ सकती है।

पराध्वनिक गति

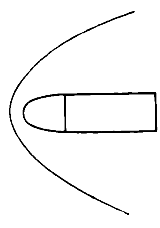
प्रघात तरंगें, जैसा कि हमने अभी बताया है, पराध्वनिक वेगों से फैलती हैं। यह देखा गया है कि ठोस पिण्डों की पराध्वनिक वेगों से हवा में गति भी प्रघात तरंगों को जन्म देती है। यही कारण है कि आधुनिक वैमानिकी में प्रघात तरंगें बहुत महत्त्व रखती हैं।

330 m/sec या 1 200 km/hour से बहुत ज़्यादा वेग से उड़ना कुछ समय पहले ही सम्भव हुआ है। ध्वनि प्राचीर (sound barrier) – 1200 km/hour की रफ़्तार इस नाम से जानी जाती है – को लांघनेवाले विमानों और विमान-राकेटों की गति ध्वनि प्राचीर के दूसरी ओर होनेवाली गतियों से बहुत भिन्न होती है। इसका कारण यह है कि पराध्वनिक वेग से उड्डीयमान् पिण्ड के सामने प्रघात तरंग बनती है।

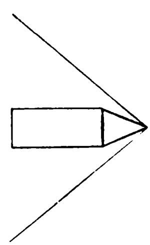
गोल आकृतिवाले राकेट द्वारा बनाई जानेवाली प्रघात तरंग का आरेख चित्र 129 में दिखाया है। तरंग का अग्र एक वक्र पृष्ठ है, जो गतिमान् पिण्ड से थोड़ा-सा पहले निकलता है। गति की रेखा से दूर हटने पर अग्र राकेट से पीछे रह जाता है और परे हट जाता है।

राकेट जैसे आकृतिवाले नुकीले पिण्ड में दूसरी ही बात देखने में आती है। चित्र 130 से स्पष्ट है कि प्रघात तरंग राकेट के "सिर पर ही बैठ गई है"; तरंग के अग्र ने शंकुरूप धारण कर लिया है।

पराध्वनिक वेग से उड्डीयमान् राकेट का फ़ोटो खींचा जा सकता



चित्र 129



चित्र 130

है। प्रघात तरंगाग्र राकेट के चारों ओर की वायु, जिसमें से राकेट निकल रहा है, के घनत्व में अन्तरों की स्पष्ट रूप से रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

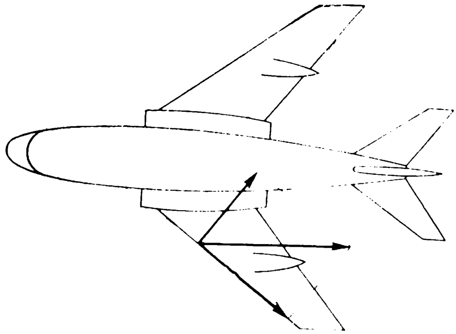
पराध्वनिक वेग से गतिमान् पिण्ड द्वारा सहे जानेवाले प्रतिरोध का मुख्य स्रोत है प्रघात तरंग। ध्वनिक वेग से कम वेगों पर प्रतिरोध मुख्यतः, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, प्रक्षुब्ध गति (turbulent motion) पैदा करती है। इसलिए इन दो प्रकार की गतियों के वास्ते पिण्डों की सबसे अनुकूल आकृतियां भिन्न होती हैं। तेज़ गतियों के लिए जो आकृति अनुकूल है वह मन्द गतियों के लिए अननुकूल होती है, और विपरीततः भी।

आगे से नुकीला पिण्ड प्रक्षोभ (turbulence) को बढ़ावा देता है, इसका अर्थ हुआ अवध्वानिक वेगों से होनेवाली गतियों के वास्ते प्रतिरोध बढ़ाता है। इसके विपरीत, राकेट का नुकीला भाग प्रघात तरंग के प्रतिरोध को कम करता है।

आगे से कुण्ठित पिण्ड प्रक्षोभ को कम करता है, इसलिए नुकीले पिण्ड की अपेक्षा अवध्वानिक वेगों पर होनेवाले गतियों के लिए बहुत अनुकूल है। ध्वनि प्राचीर को लांघने पर यह आकृति कम लाभप्रद हो जाती है क्योंकि प्रघात तरंग प्रतिरोध का मुख्य स्रोत बन जाती है। यही कारण है कि राकेट-मिसाइलों के अग्र भाग नुक़ीले होते हैं। राकेट-मिसाइलें पराध्वनिक वेगों से चलती हैं।

दुर्भाग्यवश, प्रघात तरंग और इसके साथ ही हवा को पराध्वनिक वेग से काटनेवाले पिण्ड के प्रतिरोध के मुख्य स्रोत को समाप्त करना सम्भव नहीं है। राकेट और विमान डिजाइनरों का लक्ष्य प्रघात तरंग द्वारा पैदा किए जानेवाले प्रतिरोध को क्षीण करना होता है। राकेटों और विमानों के ढांचों को नुकीला आकार देकर प्रतिरोध कम किया जाता है। लेकिन विमान के पंखों के वास्ते क्या सुझाव देना चाहिए? गत वर्षों में नयी आकृतियोंवाले पराध्वनिक विमान अस्तित्व में आए हैं: पंख ढांचे के बहुत पास लगाए जाते हैं, विमानों ने तीरनुमा आकृति पा ली है। ऐसा प्रघात तरंगों के प्रतिरोध को कम करने के लिए किया गया है (देखिए चित्र 131)।

हवा को चीरनेवाले हवाई जहाज़ की गति के बारे में बताने के बजाय विमान के साथ सामने से टकरानेवाली वायु के प्रवाह के बारे में चर्चा की जा सकती है। बात तो एक ही है।



चित्र 131

चित्र 131 में एक विमान दिखाया है जिसके पंख वायु प्रवाह के एक ओर झुके हैं। पंख के पास वायु के सदिश वेग को दो सदिशों में विघटित किया जा सकता है, जिनमें से एक पंख के साथ-साथ और दूसरा ऊपर की ओर दिष्ट होगा। पंख की लम्बाई में हवा निर्बाध सरकती है; और यह अनुदैर्घ्य सर्पी गति (longitudinal sliding motion) प्रतिरोध का मुख्य स्रोत नहीं बन सकती है। पंख के अनुप्रस्थ जानेवाली वायु पंख पर प्रधान प्रतिरोध डालेगी। पंख के सामने से आनेवाली वायु के वेग का अनुप्रस्थ घटक प्रतिवेग से बहुत कम हो सकता है। ऐसे भी हो सकता है कि जब विमान पराध्वनिक वेग से आगे बढ़ता है तो उसके पंखों की अपेक्षा वायु का अनुप्रस्थ वेग ध्वनि तरंगाग्र से नीचे होगा। अनुप्रस्थ वेग में यह कमी प्रघात तरंगों को क्षीण और प्रतिरोध को कम करेगी। यही कारण है कि पराध्वनिक विमानों को तीरनुमा आकृति प्रदान करते हैं।

विमान डिज़ाइनरों को एक मुश्किल समस्या हल करनी यानी पराध्वनिक और सामान्य वेगों के लिए अनुकूल आकृतियों में से कोई बीच की आकृति ढूंढ़नी होती है। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी है कि विमान आपेक्षिक छोटे वेगों पर उड़ान शुरू करता और उतरता है।

आज हज़ारों किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ़्तार से उड़नेवाले जेट विमान बनाए जा चुके हैं, और विमान डिजाइनर इससे भी अधिक वेग पर उड़ाने भरनेवाले विमानों को बनाने के प्रयत्न कर रहे हैं। वेग बढ़ाने से नई समस्याएं सामने आती हैं। ध्वनि प्राचीर की समस्या को हल करने के बाद इंजीनियरों के सामने ऊष्मा प्राचीर की समस्या आयी।

तीव्र गति से उड़नेवाले विमान या राकेट अपने सामनेवाली हवा को दबाते हैं। संपीडन से तापमान बढ़ता है। गतिमान् पिण्ड द्वारा चीरी जाने-वाली वायु गरम होती है, अतः विमान की दीवारों का तापमान बढ़ता है।

तापमान में वृद्धि वायु-वेग के वर्ग के आनुपातिक होती है। वेग जितना अधिक होता है वायु का तापमान उतना ही ज़्यादा बढ़ता है। ध्वनि प्राचीर तक पहुंचने के क्षण विमान के सामने हवा का तापमान केवल 60° बढ़ता है। लेकिन अगर विमान ध्वनिक वेग से दुगुनी रफ़्तार पर उड़ता है, तो हवा 240° तक गरम हो जाती है। विमान की रफ़्तार ध्वनिक वेग से तीन गुना अधिक होने पर हवा लगभग 820°C तक गरम हो जाती है, इत्यादि। यह समझना मुश्किल नहीं है कि इससे अनेक तकनीकी मुश्किलें पैदा होती हैं।

पेश किए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि वेग बढ़ाने से तापमान तीव्रता से बढ़ता है। 10 km/sec के वेग पर तापमान इतना बढ़ जाता है कि हरेक पिण्ड पिघल जाता और गैस में परिवर्तित हो जाता है। आकाश में से पृथ्वी के वायुमण्डल में उल्काभ (meteoroid) यानी भिन्न-भिन्न आकार के पत्थर लगातार गिरते हैं। इनका वेग दसियों किलोमीटर प्रति सेकण्ड होता है। पृथ्वी की सतह से 150—200 km की ऊंचाई पर, जहां वायुमण्डल कम विरलित है, ये पत्थर गरम होने लगते हैं और 130—60 km की ऊंचाई पर इनका तापमान इतना बढ़ जाता है कि वे वाष्पित हो जाते हैं। रात के समय आकाश में इन तप्त पत्थरों को हम नंगी आंख से देख सकते हैं। जिस क्षण ये तप्त पत्थर दिखाई देते हैं, हमें लगता है कि आकाश में से कोई सितारा गिरा है। "सितारे का पतन" बहुत देर तक जारी नहीं रहता है: सेकण्ड के कुछेक क्षणों में पत्थर वाष्पित हो जाता है।

दहन और विस्फोट

हम यह जानते हैं कि दहन क्रिया जारी करने के लिए हमें दहनशील पदार्थ के निकट जलती हुई दियासलाई लानी होती है। दियासलाई भी अपने आप नहीं जलती, उसे डिबिया पर रगड़ना पड़ता है। रासायनिक प्रतिक्रिया आरंभ करने के लिए हमें प्रारंभिक तापन आवश्यक है।

इसका कारण स्पष्ट है। रासायनिक अभिक्रिया अणुओं का पुनर्विन्यास

(rearrangement) है। ऐसे पुनर्विन्यास के वास्ते कणों की तीव्र तापीय गति का होना एकदम ग्रावश्यक है। यही कारण है कि रासायनिक ग्रभिक्रिया की दर तापमान पर बहुत निर्भर करती है। साधारणतया, तापमान में 10° वृद्धि होने पर ग्रभिक्रिया दर 2-4 गुना बढ़ जाती है।

ग्रगर तापमान में 10° वृद्धि होने पर ग्रभिक्रिया दर तीन गुना ग्रधिक हो जाती है तो तापमान में 100° वृद्धि होने पर ग्रभिक्रिया दर $3^{10} \approx 60000$ गुना, 200° के लिए – $3^{20} \approx 4 \cdot 10^9$ ग्रौर 500° के वास्ते – 3^{50} यानी लगभग 10^{24} गुना ग्रधिक हो जाएगी।

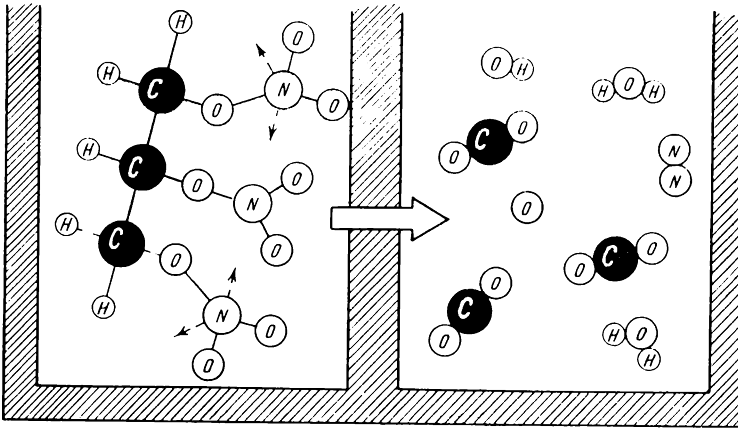
इसलिए यह कोई ग्राश्चर्यजनक बात नहीं कि वह ग्रभिक्रिया जो $500^\circ C$ पर सामान्य दर से होती है सामान्य तापमान पर बिलकुल ही प्रारम्भ नहीं होगी। दहन प्रारम्भिक क्षण पर ग्रभिक्रिया के वास्ते ग्रावश्यक ताप देता है। फिर ग्रभिक्रिया के दौरान निकली ऊष्मा की बदौलत उच्च ताप बना रहता है।

स्थानीय प्रारम्भिक पूर्वतापन पर्याप्त होना चाहिए ताकि ग्रभिक्रिया के दौरान निकली ऊष्मा ग्रास-पास के ठण्डे माध्यम को दी गयी ऊष्मा से ग्रधिक हो। इसलिए हरेक ग्रभिक्रिया का ग्रपना, जैसा कि कहते हैं, ज्वलन-ताप होता है। प्रारंभिक ताप ज्वलन-ताप से ग्रधिक होने पर ही दहन शुरू होता है। उदाहरण के तौर पर, लकड़ी का ज्वलन-ताप $610^\circ C$, बेन्ज़ीन का लगभग $200^\circ C$ ग्रौर सफ़ेद फ़ास्फ़ोरस का $50^\circ C$ है।

लकड़ी, कोयला या कच्चे पैट्रोलियम का दहन इन पदार्थों की हवा की ग्राक्सीजन के साथ एक संयुक्त ग्रभिक्रिया है। इसलिए ऐसी ग्रभिक्रिया सतह पर होती है: बाह्य सतह जब तक जल न जाए उससे ग्रगलेवाली सतह ग्रभिक्रिया में भाग नहीं ले सकती है। इन पदार्थों के ग्राहिस्ता-ग्राहिस्ता जलने का कारण यही है।

व्यवहार में इस कथन की सत्यता में कायल हुग्रा जा सकता है। इन्धन को बारीक करके दहन दर काफ़ी बढ़ायी जा सकती है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए ग्रनेक भट्टियों में कोयलों को पीसने के वास्ते यंत्र लगे होते हैं।

जब दहन के वास्ते वायुमण्डल की ज़रूरत नहीं होती यानी ग्रभिक्रिया के लिए सब कुछ ग्रावश्यक पदार्थ के ग्रन्दर ही होता है, तो बात ऊपरलिखित से एकदम भिन्न होती है। ऐसे पदार्थ का उदाहरण है हाइड्रोजन ग्रौर ग्रॉक्सीजन का मिश्रण (इसे ग्रधिस्फोटी गैस (detonating gas) कहते हैं)।



चित्र 132

अभिक्रिया सतह पर नहीं परन्तु पदार्थ के अन्दर होती है। दहन से भिन्न, यहां अभिक्रिया के दौरान पैदा हुई सारी ऊर्जा क्षण भर में बाहर निकलने दी जाती है, परिणामस्वरूप दाब बहुत बढ़ जाता और विस्फोट होता है। अधिस्फोटी गैस जलती नहीं, परन्तु विस्फोट करती है।

इस प्रकार विस्फोटक के अन्दर अभिक्रिया के वास्ते आवश्यक परमाणु या अणु ज़रूर होने चाहिए। स्पष्ट है कि विस्फोटी गैसीय मिश्रण बनाए जा सकते हैं। ठोस विस्फोटी भी अस्तित्व रखते हैं। वे विस्फोटी इसलिए होते हैं कि उनकी कॉम्पज़िशन में ऊष्मा तथा प्रकाश देनेवाली रासायनिक अभिक्रिया के वास्ते आवश्यक सब परमाणु होते हैं।

विस्फोटन के दौरान होनेवाली रासायनिक अभिक्रिया वियोजन अभिक्रिया, अणुओं का छोटे-छोटे भागों में वियोजन है। उदाहरण के लिए चित्र 132 में विस्फोटन अभिक्रिया दिखाई है यानी नाइट्रोग्लिसरीन के अणु का छोटे-छोटे भागों में वियोजन चित्रित किया है। जैसा कि चित्र के दायें भाग से दिखाई देता है प्रारंभिक अणु से कार्बन डाइआक्साइड, जल और नाइट्रोजन के अणु बनते हैं। अभिक्रिया उत्पादों में हम सामान्य अपशिष्ट गैसें (waste gases) पाते हैं, लेकिन दहन तो वायु के आक्सीजन अणुओं के

बिना ही हुआ था—नाइट्रोग्लिसरीन के अणु में दहन के वास्ते आवश्यक परमाणु होते हैं।

विस्फोट का विस्फोटक में, उदाहरण के तौर पर अधिस्फोटी गैस में संचरण कैसे होता है? जब विस्फोटक को जलाते हैं तो स्थानीय तापन होता है। तापित आयतन में अभिक्रिया होती है। लेकिन अभिक्रिया होने पर ऊष्मा निकलती है, जो ऊष्मा स्थानान्तरण (heat transfer) के ज़रिए मिश्रण की पड़ोसी परतों तक पहुंचती है। पड़ोसी परतों में अभिक्रिया शुरू होने के वास्ते इतनी ऊष्मा पर्याप्त होती है। ऊष्मा की निकली नई मात्रा अधिस्फोटी गैस की अगली परतों तक जाती है। इस तरह ऊष्मा स्थानान्तरण से संबंधित दर पर सारे पदार्थ में अभिक्रिया होने लगती है। ऐसे स्थानान्तरण की दर लगभग 20—30 m/sec होती है। निस्सन्देह, यह काफ़ी तीव्रता से होती है। गैस से भरी एक मीटर लम्बी नली सेकण्ड के बीसवें भाग के बराबर समय में यानी क्षण भर में फूट जाती है, जबकि लकड़ी या कोयले के टुकड़ों की ज्वलन-दर, जिनका ज्वलन सतह पर होता है न कि आयतन में, एक मिनट में कुछेक सेंटीमीटर के बराबर यानी कई हज़ार गुना कम होती है।

तिस पर भी इसे भी मन्द विस्फोट कहा जा सकता है क्योंकि दूसरे प्रकार का, भयंकर विस्फोट से कई सौ गुना तेज विस्फोट सम्भव होता है।

तेज़ विस्फोट को प्रघात तरंग कहते हैं। अगर पदार्थ की किसी परत में दाब एकदम बढ़ जाता है तो इस स्थान से प्रघात तरंग फैलना शुरू करती है। जैसा कि हम जानते हैं, प्रघात तंरग तापमान में बहुत ज्यादा परिवर्तन लाती है। पड़ोसी परत में पहुंचकर प्रघात तरंग उसके तापमान में वृद्धि करती है। तापमान में वृद्धि विस्फोट अभिक्रिया को शुरू करती है, लेकिन विस्फोट दाब को बढ़ाता और प्रघात तरंग की तीव्रता को बनाए रखता है, नहीं तो आगे बढ़ने के साथ-साथ उसकी तीव्रता कम हो जाती। इस प्रकार प्रघात तरंग विस्फोट का कारण बनती है और विस्फोट अपनी बारी में प्रघात तरंग को बनाए रखता है।

जिस प्रकार के विस्फोट का हमने वर्णन किया है उसे अधिस्फोटन (detonation) कहते हैं। इस प्रकार पदार्थ में अधिस्फोटन प्रघात तरंग के वेग (लगभग 1 km/sec के वेग) से फैलता है और वास्तव में "हलके" विस्फोट से सौ गुना तेज़ होता है।

कौन-से पदार्थों का विस्फोट "हलका" और "तेज़" होता है? यह प्रश्न ऐसे नहीं पेश करना चाहिए: एक ही पदार्थ का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में विस्फोट "हलका" और अधिस्फोटन हो सकता है, लेकिन दूसरी स्थितियों में "हलका" विस्फोट अधिस्फोटन में परिवर्तित हो जाता है।

कुछेक पदार्थ, उदाहरण के तौर पर नाइट्रोजन आयोडाइड, तिनके से छूने, थोड़ा गरम होने और प्रकाश की सहसा चमक पड़ने पर विस्फोट करते हैं। ट्राइनाइट्रोटॉलूईन जैसा विस्फोटक गिराने पर तो क्या बन्दूक से उसमें गोली दागने पर भी विस्फोट नहीं करता है। विस्फोट के लिए शक्तिशाली प्रघात तरंग की आवश्यकता होती है।

कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जो बाह्य प्रभावों के प्रति कम संवेदनशील होते हैं। आमोनिया के नाइट्रेट और आमोनियम सल्फ़ेट का मिश्रण सन् 1921 में जर्मनी के एक रासायनिक कारख़ाने में घातक दुर्घटना होने तक विस्फोटक नहीं माना जाता था। इस कारख़ाने में मिश्रण की जम चुकी तहों को तोड़ने के वास्ते विस्फोटन-विधि का प्रयोग किया गया। परिणामत: विस्फोट से गोदाम और सारे कारख़ाने के टुकड़े-टुकड़े हो गए। इस दुर्घटना के लिए इंजीनियरों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था: लगभग बीस हज़ार ऐसे विस्फोट बिना किसी नुक़्सान के हुए और केवल एक बार अधिस्फोटन के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा हुईं।

केवल प्रघात तरंग के प्रभाव से विस्फोट होनेवाले, परन्तु सामान्य परिस्थितियों में स्थिर रहने और आग से भी न डरनेवाले पदार्थ विस्फोटन कार्यों के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। ऐसे पदार्थों को बड़ी मात्रा में बनाया और जमा किया जा सकता है। लेकिन इन अक्रिय विस्फोटन पदार्थों को चालू करने के लिए प्रारंभकों या जैसा कि कहते हैं विस्फोट-प्रवर्तकों की ज़रूरत होती है। ऐसे विस्फोट-प्रवर्तक पदार्थों की प्रघात तरंगों के स्रोत की तरह बहुत आवश्यकता होती है।

विस्फोट-प्रवर्तक पदार्थों का काम लेड ऐजाइड या अधिस्फोटक पारा कर सकता है। अगर इस पदार्थ के छोटे-छोटे कणों को टिन प्लेट पर रखकर जलाया जाए तो धमाका होगा और टिन प्लेट में छेद हो जाएंगे। ऐसे पदार्थों का विस्फोटन हरेक परिस्थितियों में अधिस्फोटक होता है।

अगर थोड़ा-सा लैड ऐजाइड उपविस्फोटक के कारतूस पर रखकर जलाया जाए, तो प्रवर्तक के विस्फोटन से उप-विस्फोटक के अधिस्फोटन के लिए

पर्याप्त प्रघात तरंग पैदा होती है। व्यवहार में विस्फोट के लिए कैपस्यूल-अधिस्फोटक (1—2 g विस्फोट-प्रवर्तक पदार्थ) का उपयोग किया जाता है। कैपस्यूल को एक लम्बे सुरक्षा फ़्यूज़ (बिकफ़ोर्ड फ़्यूज) द्वारा जलाया जा सकता है; कैपस्यूल से निकलनेवाली प्रघात तरंग उप-विस्फोटक का विस्फोट करेगी।

अनेक स्थितियों में अधिस्फोटक परिघटनाओं से डरना चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में मोटर-कार के इंजन में पेट्रोल और हवा के मिश्रण का "हलक़ा विस्फोट" होता है। लेकिन कई बार अधिस्फोटन भी होता है। इंजन में प्रघात तरंगों का क्रमबद्ध प्रकट होना अमान्य है, क्योंकि उनके प्रभाव से इंजन-सिलिण्डर की दीवारें शीघ्र ख़राब हो जाएंगी।

अधिस्फोटन को रोकने के लिए इंजनों में या तो विशेष पेट्रोल (तथाकथित उच्च ऑक्टेन संख्या वाला पेट्रोल) डालना या पेट्रोल में विशेष पदार्थों ऐन्टिनॉक पदार्थों (antiknock materials) का, जो प्रघात तरंग को बढ़ने नहीं देते हैं, उपयोग करना चाहिए। प्रायः टेट्राएथिल लैड (टी० ई० एल) उपयोग किया जाता है। यह पदार्थ बहुत विषैला है, और प्रयोग-आदेशों में ड्राइवरों को इसका उपयोग करते समय सावधानी बरतने की हिदायत की जाती है।

तोपख़ाने को डिजाइन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें अधिस्फोटन न हो। गोला दागने पर नाल में प्रघात तरंगें नहीं बननी चाहिए, अन्यथा तोप ख़राब हो जाएगी।

१६. चारों ओर ऊर्जा

ऊर्जा को कार्य में कैसे परिणत किया जाए

मनुष्य को मशीनें चाहियें। इसके वास्ते पिस्टन को चलाना, पहिये को घुमाना, गाड़ियां खींचनी आनी चाहिए। मशीनों को चलाने के लिए कार्य करना होता है। लेकिन कार्य कैसे पाया जाय?

मालूम होता है कि हम इस प्रश्न पर पहले ही विचार कर चुके हैं: कार्य ऊर्जा के कारण होता है। कार्य करने के लिए पिण्ड या पिण्डों के समूह से ऊर्जा लेनी चाहिए।

नुसख़ा तो यह सही है, लेकिन हमने इस प्रश्न पर, यानी ऊर्जा को कार्य में कैसे बदला जाए, अभी तक विचार नहीं किया है। पिण्ड से ऊर्जा लेना क्या सदा सम्भव होता है? ऐसा करने के लिए परिस्थितियां कैसी होनी चाहिए? अब हम इस बात की ओर ध्यान देंगे कि हमारे चारों ओर विद्यमान ऊर्जा हमारे किसी काम नहीं आ सकती है। उसे कार्य में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। इस ऊर्जा को हम अपने ऊर्जा भण्डारों में सम्मिलित नहीं कर सकते हैं। आइए, अब इस तथ्य को समझने का प्रयास करें।

लोलक को संतुलन की अवस्था में अपने स्थान से हटाने पर वह कुछ समय के पश्चात अपनी पहली स्थिर अवस्था में आ जाएगा। इसी प्रकार यदि पहिये के धुरे को हाथ से घुमाया जाय तो वह धुरी पर घूमता हुआ कुछ चक्कर काटेगा और अन्ततः अपनी स्थिर अवस्था ग्रहण कर लेगा। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को कदापि झुटलाया नहीं जा सकता। हमारे चारों ओर गतिमान् सभी पिण्ड अन्ततः रुक जाएंगे।*

अगर दो पिण्डों में से एक गरम और दूसरा ठण्डा है, तो पहला पिण्ड

---

*निस्सन्देह, यहां हमारा विचार एकसमान स्थानांतरीय गति और पिण्डों के समूह का एक पूर्ण पिण्ड की तरह एकसमान घूर्णन से नहीं है।

तब तक दूसरे पिण्ड को ऊर्जा देता रहेगा जब तक उनका तापमान बराबर नहीं हो जाएगा। ऐसा होने पर ऊष्मा स्थानांतरण समाप्त हो जाता है, ग्रौर पिण्डों की स्थितियों में स्वतः परिवर्तन होने बंद हो जाते हैं, यानी ऊष्मा-संतुलन स्थापित हो जाताहै। ऐसी कोई परिघटना नहीं है जिसके द्वारा पिण्ड ग्रपनी संतुलन ग्रवस्था को बदल लें। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कोई पहिया ग्रपने ग्रक्ष पर स्वतः घूमने लगे। मेज़ पर पड़ा हुग्रा स्याहीदान ग्रपने ग्राप ही गरम नहीं हो सकता है।

संतुलित ग्रवस्था ग्रहण करने की पिण्डों की चेष्ठा का मतलब है कि क्रियाएं प्राकृतिक रूप से हो रही हैं। उदाहरणतया, ऊष्मा ग्रधिक तापवाले पिण्डों से कम तापवाले पिण्डों की ग्रोर बहती है, लेकिन ठण्डे पिण्ड से गरम पिण्ड की ग्रोर ऊष्मा का स्थानांतरण ग्रपने ग्राप नहीं हो सकता है।

दोलायमान लोलक की यांत्रिक ऊर्जा हवा के प्रतिरोध ग्रौर लोलक को लटकानेवाले बिन्दु पर घर्षण की बदौलत ऊष्मा में भी परिवर्तित हो जाती है। लेकिन किन्हीं भी परिस्थितियों में लोलक ग्रास-पास के माध्यम की ऊर्जा के कारण डोलना शुरू नहीं करता। पिण्ड साम्यावस्था में ग्राते हैं, लेकिन स्वयं इस ग्रवस्था में से निकल नहीं सकते हैं।

प्रकृति का यह नियम दर्शाता है कि हमारे चारों ग्रोर विद्यमान् ऊर्जा का कितना बड़ा भाग हमारे काम नहीं ग्रा सकता है। यह साम्यवस्था में स्थित पिण्डों के ग्रणुग्रों की तापीय गति की ऊर्जा है। ऐसे पिंड ग्रपनी ऊर्जा को यांत्रिक गति में बदल नहीं सकते हैं।

इस ऊर्जा की मात्रा बहुत ज़्यादा है। ग्राइए, ग्रब इस "मृतक" ऊर्जा को मालूम करें। तापमान 1° कम करने पर एक किलो भूमि, जिसकी ऊष्मा धारिता 0.2 kcal/kg है, 0.2 kcal ऊष्मा खोयगी। यह ग्रापेक्षिक छोटी मात्रा है। ज़रा ग्रनुमान लगाइए कि पृथ्वी के बराबर द्रव्यमान, $6 \cdot 10^{24}$ kg को ग्रगर केवल एक डिग्री ठण्डा करने में हमें सफलता मिल जाती है तो ऊर्जा की कितनी मात्रा मिलेगी। गुना करने पर हमें बहुत बड़ी संख्या मिलती है: $1.2 \cdot 10^{24}$ kcal। यहां हम यह बता दें कि ग्राजकल संसार के सारे बिजलीघर 10^{15}—10^{16} kcal ऊर्जा पैदा करते यानी ऊपरलिखित संख्या से 10^9 गुना कम ऊर्जा पैदा करते हैं।

इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि ऐसी बड़ी संख्याएं कम जानकारी रखनेवाले खोजकर्त्ताग्रों को सहज ही सम्मोहित कर लेती हैं। हमने पहले

कुछ भी नहीं से कार्य पैदा करनेवाले शाश्वत इंजन बनाने की चेष्टाओं के बारे में बताया था। उर्जा-संरक्षण नियम से निकलनेवाले भौतिकी के सिद्धांतों के आधारों पर इस (ऊर्जा-संरक्षण) नियम को शाश्वत इंजन बनाने से ग़लत साबित करना सम्भव नहीं है। अब हम इसे पहली क़िस्म का शाश्वत इंजन कहेंगे। थोड़ी-सी अधिक समझदारी रखनेवाले आविष्कारक भी ऐसी हो ग़लती करते हैं, जो केवल माध्यम को ठण्डा करके यांत्रिक गति पैदा करनेवाले इंजनों को डिजाइन करते हैं। इस बनाए न जा सकनेवाले इंजन को दूसरी किस्म का शाश्वत इंजन कहते हैं। और यहां भी तर्कसंगत ग़लती हो जाती है, क्योंकि आविष्कारक अपने विचारों को भौतिकी के नियमों पर आधारित करता है, जो उस नियम के उपपरिणाम होते हैं जिसके अनुसार सब पिण्ड साम्यावस्था में आने की चेष्टा करते हैं, और इन नियमों की सहायता से उन बुनियादों का खण्डन करते हैं जिनपर वे आधारित होते हैं।

इस प्रकार, माध्यम से मात्र ऊष्मा निकालकर कार्य करना सम्भव नहीं है। दूसरे शब्दों में, एक दूसरे के साथ साम्यावस्था में होनेवाले पिण्डों का तंत्र ऊर्जा पैदा नहीं कर सकता है।

मतलब यह हुआ कि कार्य प्राप्त करने के लिए सबसे पहले ऐसे पिण्ड ढूंढ़ने चाहिएं जो अपने पड़ोसी-पिण्डों के साथ साम्यावस्था में न हों। केवल तभी ऊष्मा को एक पिण्ड से दूसरे पिण्ड तक स्थानांतरण करना यानी ऊष्मा को यांत्रिक ऊर्जा में बदलना सम्भव होगा।

कार्य प्राप्त करने की आवश्यक शर्त ऊर्जा-अभिवाह पैदा करना है। इस अभिवाह के "मार्ग" में पिण्डों की ऊर्जा को कार्य में परिणत करना सम्भव होता है।

यही कारण है कि लोगों के लिए लाभदायक ऊर्जा-निचय में केवल उन पिण्डों की ऊर्जा आती है जो पर्यावरण के साथ साम्यावस्था में होते हैं।

अव्यवस्था की ओर झुकाव

पिण्ड स्वयं साम्यावस्था में आने की चेष्टा करते हैं। पिण्डों की प्राकृतिक अवस्था में यांत्रिक और तापीय संतुलन होता है। प्रकृति के इस महत्त्वपूर्ण नियम के व्यावहारिक निष्कर्षों से हम बहुत अच्छी तरह परिचित हैं।

लेकिन इस नियम का आशय क्या है? सारी सृष्टि साम्यवस्था में क्यों है? पिण्ड उस स्थिति को प्राप्त करने की कोशिश क्यों करते हैं, जहां यांत्रिक गति समाप्त हो जाएगी और पिण्डों के तापमान बराबर हो जाएंगे।

यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण और रोचक है। इसका उत्तर देने के लिए हमें अनेक बातों के बारे में बताना पड़ेगा।

साधारण और अक्सर होनेवाली घटनाओं को प्रायिक घटनाएं कहते हैं। और इसके विपरीत, अप्रायिक उन घटनाओं को मानते हैं जो परिस्थितियों के दुर्लभ मेल के कारण घटित होती हैं।

अप्रायिक घटनाओं के घटित होने के लिए किसी प्रकार की अप्राकृतिक शक्तियों की आवश्यकता नहीं है। ऐसा होना असंभव नहीं है, यह सब प्राकृतिक नियमों के अधीन होता है। तिस पर भी हम पूरे विश्वास से कह सकते हैं कि अनेक स्थितियों में अप्रायिक घटना वास्तव में असंभव घटना जैसी होती है।

आइए, अब उस सारणी पर नज़र डालें जिसमें लाटरी में इनाम प्राप्त करनेवाली टिकटों के नम्बर लिखे हैं। इसमें 4 या 5 या 6 से समाप्त होनेवाले नम्बरों की गिनती कीजिए। आपको यह देखकर हैरानी नहीं होगी कि हरेक अंक से समाप्त होनेवाले नम्बरों की संख्या इनाम प्राप्त करनेवाली टिकटों के लगभग दसवें भाग के बराबर है।

लेकिन अंक 5 से समाप्त होनेवाले नम्बरों की संख्या कुल संख्या के दसवें भाग के बराबर न होकर पांचवें भाग के बराबर भी तो हो सकती है? आप कहेंगे कि ऐसा होने की बहुत कम संभावना है। लेकिन क्या इनाम पानेवाली टिकटों के नम्बरों में से आधे नम्बर अंक 5 से समाप्त हो सकते हैं? नहीं, यह बिलकुल अप्रायिक है..., मतलब यह हुआ कि असंभव है।

परिस्थितियां कैसी होनी चाहिए ताकि घटनाएं प्रायिक हों। इस बात पर सोच-विचार करते हुए हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं: घटना की प्रायिकता उन तरीक़ों की संख्या पर निर्भर करती है जिनके द्वारा उसे पूरा किया जा सकता है। यह संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही इस घटना के होने की संभावना अधिक हो जाएगी।

प्रायिकता किसी निश्चित कार्य को करने के तरीक़ों की संख्या और सब संभव कार्यों को करने की विधियों की संख्या का अनुपात है।

गत्ते के दस टुकड़ों पर 0 से 9 तक अंक लिखकर उन्हें थैले में डाल

दें। अब एक टुकड़े को निकालें, उसका नम्बर नोटकर उसे फिर थैले में डाल दीजिए। ऐसा करना लाटरी निकालने की क्रिया के बहुत सदृश है। पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि एक ही नम्बर को, उदाहरण के वास्ते, सात बार निरन्तर नहीं निकाल सकेंगे चाहे आप इस उबाऊ काम पर सारी शाम भी बरबाद कर दें। इसका क्या कारण है? एक ही नम्बर को सात बार निरन्तर निकालना यह एक घटना है जिसे मात्र दस तरीक़ों द्वारा पूरा किया जा सकता है (7 ज़ीरो, 7 एक, 7 दो, इत्यादि) सात गत्तों को निकालने के कुल तरीक़ों की संख्या 10^7 के बराबर है। इसलिए एक ही नम्बर को सात बार निरन्तर निकालने की प्रायिकता $10/10^7 = 10^{-6}$ यानी दस लाख में से एक के बराबर है।

डिब्बे में काले और सफ़ेद बीज डालकर उन्हें अच्छी तरह मिला दीजिए। आप देखेंगे कि बीज शीघ्र ही सारे डिब्बे में एकसमान वितरित हो जाएंगे। इनमें से एक मुट्ठी बीज निकालने पर हम देखेंगे कि निकाले गए बीजों में सफ़ेद और काले बीजों की संख्या लगभग बराबर है। बीजों को हम चाहे कितना भी क्यों न मिलाएं, हर बार परिणाम एक जैसा होगा: यानी काले और सफ़ेद बीजों की संख्या लगभग बराबर होगी। लेकिन बीजों की तहें क्यों नहीं बन जाती? काफ़ी देर तक मिलाने पर काले बीजों को ऊपर लाने और सफ़ेद बीजों को नीचे रखने में हमें सफलता प्राप्त क्यों नहीं होती है? इसका कारण भी प्रायिकता है। ऐसी स्थिति, जिसमें बीज बेतरतीबी से यानी काले और सफ़ेद बीज़ एकसमान मिले हैं, अनेकानेक तरीक़ों द्वारा प्राप्त की जा सकती है, अतः इसकी प्रायिकता बहुत बड़ी है। इसके विपरीत, काले बीज ऊपर और सफ़ेद बीज नीचे होने की स्थिति मात्र एक है। इस स्थिति की प्रायिकता अति कम है।

बोरी में भरे दानों की तरह हम आसानी से अणुओं का, जिनसे पिंड बने हैं, अध्ययन कर सकते हैं। अणुओं का व्यवहार एक स्थिति की तरह है। यह बात गैसों के उदाहरण पर बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। हम जानते हैं कि गैस के अणु बेतरतीबी से एक दूसरे के साथ टकराते और हर सम्भव दिशाओं में भिन्न-भिन्न वेगों से जाते हैं। यह शाश्वत तापीय गति अणुओं को निरन्तर मिलाती रहती है जैसा कि ऊपरलिखित उदाहरण में डिब्बे में बीजों को मिलाया जाता है।

वह कमरा, जहां हम बैठे हैं, हवा से भरा है। ऐसा क्यों नहीं हो सकता

है कि किसी क्षण कमरे के निचले भाग में स्थित अणु ऊपरी भाग में छत के पास चले जाएं? ऐसी प्रक्रिया सम्भव नहीं है, ऐसा होना बहुत अप्रायिक है। यह कहने से हमारा क्या अभिप्राय है? अगर इस प्रक्रिया की प्रायिकता अणुओं के बेतरतीब वितरण से चाहे एक अरब कम भी होती तो कोई-न-कोई इस प्रक्रिया को देख सकता। शायद, हमारे ही जीवन-काल में ऐसी परिघटना हो जाए।

परिकलनों से पता चलता है कि 1 cm^3 आयतनवाले बर्तन में ऐसी परि-घटना $10^{3000000000000000000}$ मरतबा में एक बार होती है। इस कारण, "बहुत अप्रायिक" और "असम्भव" शब्दों में प्रभेद करने की आवश्यकता नहीं है। ऊपरलिखित संख्या इतनी बड़ी है कि अगर हम इसे न केवल पृथ्वी पर विद्यमान परमाणुओं परन्तु सारे सौर-मंडल के पर-माणुओं से भी भाग दे, तो भी परिणाम बहुत बड़ा होगा।

गैस के अणुओं की स्थिति कैसी होगी? अति प्रायिक। अत्यधिक तरीक़ों द्वारा प्राप्त की जा सकनेवाली अवस्था अति प्रायिक होगी यानी अणु का बेतरतीबी से वितरण होगा। ऐसा होने पर अणुओं की समान संख्या दायीं और बायीं ओर, ऊपर और नीचे की ओर गतिमान् होती है, बर्तन के ऊपरी और निचले भागों में तेज़ और मन्द गतिवाले अणुओं का अंश समान होता है। इस बेतरतीबी से यानी अणुओं के स्थान और वेग में अचर और बेतरतीबी परिवर्तन से किसी भी तरह के विचलन से प्रायिकता कम या संक्षिप्त में अप्रायिक घटना होती है।

इसके विपरीत, व्यवस्था से अव्यवस्था पैदा करने और परिवर्तन लानेवाली परिघटनाएं अवस्था की प्रायिकता को बढ़ाती हैं।

मतलब यह हुआ कि ये परिघटनाएं ही घटनाओं की प्राकृतिक क्रिया को निर्धारित करती हैं। दूसरी क़िस्म के शाश्वत इंजन बनाने की असम्भवता, सब पिण्डों की साम्यावस्था में आने की चेष्टा के बारे में पता चलता है। यांत्रिक गति तापीय गति में क्यों बदल जाती है? इसका कारण यह है कि यांत्रिक गति में अणु एक निश्चित व्यवस्था में होते हैं जबकि तापीय गति में वे अव्यवस्था में होते हैं। व्यवस्था से अव्यवस्था में परिवर्तन घटना की प्रायिकता को बढ़ाता है।

भौतिक-विज्ञानी प्रायः एक सहायक मान तथाकथित एंट्रोपी का उपयोग करते हैं। एंट्रोपी अणुओं की व्यवस्था की विशेषता बताती और एक साधारण

सूत्र द्वारा अवस्था पैदा करनेवाले तरीक़ों की संख्या से संबंधित होती है। यहां हम इस सूत्र को पेश नहीं करेंगे, मात्र यह बताएंगे कि प्रायिकता जितनी अधिक होगी एंट्रोपी उतनी ही ज़्यादा होगी।

प्रकृति के उस नियमानुसार, जिसकी चर्चा हम यहां कर रहे हैं, सब प्राकृतिक प्रक्रियाएं ऐसे होती हैं कि अवस्था की प्रायिकता बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों में प्रकृति का यह नियम एंट्रोपी-वृद्धि-नियम की तरह सूत्रबद्ध किया जाता है।

एंट्रोपी-वृद्धि नियम प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण नियम है। इसी नियम के आधार पर ही कहा जाता है कि दूसरी क़िस्म का शाश्वत इंजन बनाना असंभव है या पिण्ड स्वयं ही साम्यावस्था में आने की चेष्ठा करते हैं।

एंट्रोपी-वृद्धि नियम को ऊष्मागतिकी की दूसरी शुरूआत कहते हैं लेकिन ऊष्मागतिकी की प्रथम शुरूआत क्या है? यह ऊर्जा-संरक्षण नियम है।

प्रकृति के इन नियमों का नाम "ऊष्मागतिकी शुरूआतें" ऐतिहासिक तौर पर ही पड़ गया। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा संयोजन ठीक था। ऊर्जा संरक्षण नियम यांत्रिक नियम है, जो बड़े पिण्डों और अलग-अलग परमाणुओं तथा अणुओं पर लागू होता है। जहां तक एंट्रोपी-वृद्धि नियम का सम्बन्ध है वह, जैसा कि हमने पहले बताया है, कणों के काफ़ी बड़े समूह पर लागू होता है, लेकिन अलग-अलग अणुओं के वास्ते इस नियम को सूत्रबद्ध करना असम्भव है।

ऊष्मागतिकी की दूसरी शुरूआत का सांख्यिकीय स्वरूप (इसका मतलब है कणों के काफ़ी बड़े समूह पर लागू होना) उसके महत्त्व को नाम मात्र भी कम नहीं करता है। एंट्रोपी-वृद्धि नियम प्रक्रियाओं की दिशाएं पूर्व-निर्धारित करता है। इस दृष्टि से एंट्रोपी को प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंध-संचालक माना जा सकता है, और ऊर्जा उसके यहां ख़ज़ानची का काम करती है।

प्रकृति के इस नियम को खोजने का श्रेय किसको प्राप्त है? यहां केवल इस नियम को खोजनेवाले का नाम बताना ही काफ़ी नहीं होगा। ऊष्मागतिकी की दूसरी शुरूआत का अपना इतिहास है।

यहां, जैसा कि प्रथम ऊष्मागतिकी नियम के इतिहास में बताया गया है, फ़्रांसीसी वैज्ञानिक सादी कार्नो का नाम सर्व-प्रथम बताना चाहिए। सन् 1824 में उसने "आग के गतिमान् बल के बारे में विचार" नामक पुस्तिका अपना पैसा ख़र्चकर प्रकाशित की। इस लेख में सर्वप्रथम बताया

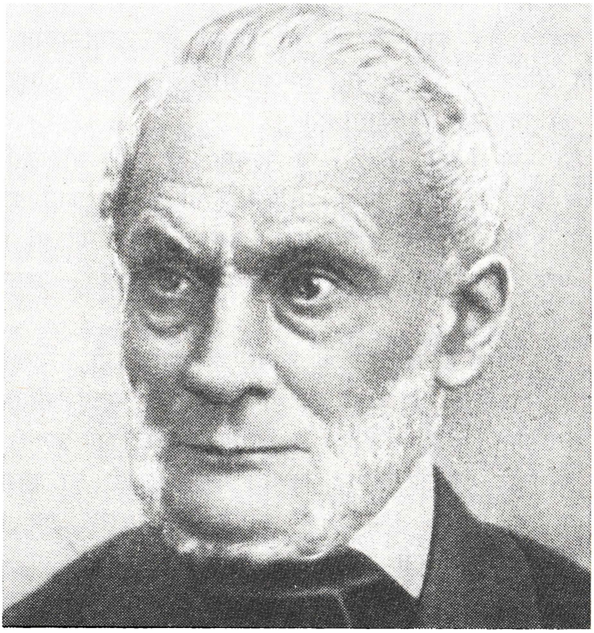
गया था कि बिना कार्य किए ऊष्मा ठण्डे पिण्ड से गरम पिण्ड की ओर नहीं जा सकती है। कार्नो ने यह भी बताया कि ऊष्मा-मशीन (देखिए आगे) की अधिकतम दक्षता मात्र तापक और शीतलक के तापमानों में अन्तर से ही निर्धारित की जाती है।

कार्नो की मृत्यु (सन् 1832) के पश्चात ही दूसरे भौतिक-विज्ञानियों ने इस लेख की ओर ध्यान दिया। लेकिन कार्नो के इस कार्य का विज्ञान में होनेवाली प्रगति पर कम प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह था कि कार्नो का लेख नष्ट और पैदा न किए जानेवाले "पदार्थ" – ऊष्मजन – पर आधारित था।

मेयर, जूल और हेल्महोल्त्स के कार्यों के पश्चात ही, जिन्होंने ऊष्मा और कार्य तुल्यता-नियम की खोज की थी, जर्मनी के महान् भौतिक-विज्ञानी रूदोल्फ़ क्लासियस (1828—1888) ने द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम की खोज की और गणितीय ढंग से सूत्रबद्ध किया। उसने एंट्रोपी का आशय लेकर यह बताया कि द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम का सारांश सब वास्तविक प्रक्रियाओं के दौरान एंट्रोपी में अनिवार्य वृद्धि होना है।

द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम अनेक सामान्य नियमों को सूत्रबद्ध करने में सहायता देता है, जो सब तरह की संरचनावाले पिण्डों पर लागू होते हैं। लेकिन एक प्रश्न का उत्तर देना अभी बाक़ी है। पिण्ड की संरचना और उसके गुणों में संबंध कैसे मालूम किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर भौतिकी की वह शाखा देती है जिसे सांख्यिकीय भौतिकी (statistical physics) कहते हैं।

स्पष्ट है कि अरबों-करोड़ों कणों से बने तंत्र का वर्णन करनेवाले भौतिक मानों का परिकलन करने के वास्ते एक बिलकुल ही नए तरीक़े की आवश्यकता है। यांत्रिकी के सूत्रों की सहायता से सब कणों की गति पर दृष्टि रखना और उसका वर्णन करना एकदम असम्भव ही नहीं परन्तु निरर्थक है। कणों की यह इतनी बड़ी संख्या ही पिंडों का अध्ययन करने के वास्ते नये "सांख्यिकीय" तरीक़ों का उपयोग करने के योग्य बनाती है। ये तरीक़े घटनाओं की प्रायिकता की धारणाओं पर आधारित होते हैं। सांख्यिकीय भौतिकी की आधारशिला आस्ट्रिया के महान् भौतिक-विज्ञानी लुडविग बोल्ट्समान (Ludwig Boltzmann) (1844—1906) ने बनायी थी। अपने लेखों में उसने बताया कि ऊपरलिखित को गैसों के वास्ते कैसे उपयोग किया जा सकता है।



रूदोल्फ़ क्लासियस (1822-1888) – एक महान जर्मन भौतिक विज्ञानी। सन् 1850 में यह सिद्ध किया कि ऊष्मा अपने आप ठण्डे पिंड से गरम पिंड की ओर नहीं बह सकती है, और 1865 में एन्ट्रापी की धारणा का प्रयोग कर, जिसे उन्होंने स्वयं ही स्थापित किया था, सबसे पहले द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम को सूत्रबद्ध किया। क्लासियस उन सर्वप्रथम वैज्ञानिकों में से हैं जिन्होंने बहु परमाणुक गैसों की ऊष्मा-धारिता और गैसों की ऊष्मा-चालकता से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया। गैसों के अणुगति सिद्धान्त से संबंधित उनके अनुसन्धानों के भौतिक क्रियाओं के बारे में सांख्यिकीय धारणाओं को विकसित करने में सहायता दी। इसके अतिरिक्त उन्हें विद्यु और चुम्बकीय परिघटनाओं की खोज का भी श्रेय प्राप्त है।

सन् 1877 में बोल्ट्समान ने अपने खोजकार्यों को तर्कबद्ध किया, और इसे द्वितीय ऊष्मागतिकी शुरूआत की सांख्यिकीय व्याख्या कहते हैं। बोल्ट्समान के स्मारक पर एंट्रोपी और तंत्र की अवस्था की प्रायिकता में संबंध व्यक्त करनेवाला सूत्र खुदा हुआ है।

बोल्ट्समान के वैज्ञानिक कमाल को वास्तविकता से अधिक कूतना मुश्किल है, उसने सैद्धांतिक भौतिकी में एकदम नये तरीक़ों की खोज की। जर्मनी के दक़ियानूसी प्रोफ़ेसर बोल्ट्समान के जीवनकाल में उनके खोजकार्यों का हंसी-मज़ाक उड़ाते थे: उस समय अनेक वैज्ञानिक परमाणुओं और अणुओं की धारणाओं को अवैज्ञानिक तथा सहज़ समझते थे। बोल्ट्समान ने आत्म-हत्या कर ली और इसका, निस्सन्देह, इस दिशा में हुई प्रगति पर ख़ास महत्त्व नहीं पड़ा।

सांख्यिकीय भौतिकी का काम काफ़ी हद तक महान् अमरीकी भौतिक-विज्ञानी जोजई विलर्ड गिब्ज़ (1839—1903) की खोजों से सम्पन्न हुआ। गिब्ज़ ने बोल्ट्समान द्वारा प्रस्तुत तरीक़े को सामान्य नियम का रूप दिया और दिखाया कि किस तरह सांख्यिकीय तरीक़े को सब पिंडों पर लागू किया जा सकता है।

गिब्ज़ का अन्तिम लेख 20 वीं सदी के शुरू में छपा था। वह एक बहुत ही सलज्ज खोजकर्ता था, गिब्ज़ अपने लेख एक प्रान्तीय विश्वविद्यालय के कार्यविवरणों में छपवाता था। बहुत सालों बाद ही सब भौतिक-विज्ञानियों को गिब्ज़ की खोजों के बारे में मालूम हुआ।

सांख्यिकीय भौतिकी एक मार्ग दर्शाती है, जिसे अपनाने पर किसी निश्चित संख्यावाले पिण्डों के गुणों को मालूम किया जा सकता है। लेकिन यह समझना ग़लत होगा कि परिकलन के ये तरीक़े सार्विक हैं। अगर पिण्ड में परमाणुओं की गति जटिल है, जैसा कि द्रव्यों में होता है, तो वास्तविक परिकलन अव्यावहारिक बन जाते हैं।

शक्ति

किसी मशीन द्वारा किए जानेवाले कार्य या खपत किए जानेवाले कार्य के बारे में बताने के वास्ते शक्ति की धारणा का उपयोग करते हैं। एकांक समय में किए गए कार्य को शक्ति कहते हैं।

शक्ति मापने के अनेक मात्रक हैं। CGS मात्रक प्रणाली में शक्ति erg/sec में मापी जाती है। लेकिन 1 erg/sec एक बहुत-ही छोटी शक्ति है, इस कारण व्यावहार में यह मात्रक असुविधाजनक है। शक्ति मापने का सबसे प्रचलित मात्रक J/sec है। इसे वाट (watt) कहते हैं। 1 वाट = J/sec = 10^7 erg/sec।

कभी-कभी तो यह मात्रक भी छोटा पड़ जाता है, इसे तब 1000 से गुना करते तथा किलोवाट का उपयोग करते हैं।

पुराने ज़माने से अश्व शक्ति (horse power) नामक मात्रक भी प्रचलित है। इंजीनियरी में जब प्रगति शुरू हुई तो इस नाम का गहरा अर्थ था। दस अश्व शक्तिवाली मशीन 10 घोड़ों के बराबर काम कर सकती है–यह बात ग्राहक समझता था चाहे वह शक्ति के मात्रकों के बारे में ज्ञान रखता था या नहीं।

निस्सन्देह, सब घोड़े एक जैसे शक्तिशाली नहीं होते हैं। शक्ति के पहले मात्रक को पेश करनेवाले ने शायद यह माना था कि "औसतन" शक्तिवाला घोड़ा एक सेकण्ड में 75 kg. f · m कार्य करने की क्षमता रखता है। इसी को मात्रक माना गया है: 1 h. p. = 75 kg. f · m/sec

शक्तिशाली घोड़े अधिक कार्य कर सकते हैं, विशेषकर, अपनी जगह से हिलने के समय। परन्तु औसतन घोड़े की शक्ति लगभग $\frac{1}{2}$ अश्व शक्ति के बराबर होती है।

अश्व शक्ति को किलोवाट में बदलने पर हम पाते हैं: 1 h. p. = 0.735 kW

दैनंदिन के जीवन और प्रविधि में हमें विभिन्न क्षमतावाले इंजनों से काम करना पड़ता है। ग्रामोफ़ोन की मोटर की शक्ति 10 W, "वोल्गा" मोटरगाड़ी के इंजन की शक्ति 75 h.p.=55 kW, यात्री विमान ИЛ-18 के इंजन की शक्ति 16 000 h.p. है। सामूहिक कृषि फ़ार्म के छोटे-से बिजलीघर की शक्ति 100 kW हो सकती है। क्रास्नोयार्स्क बिजलीघर की क्षमता 60 लाख किलोवाट है।

शक्ति के परिचित मात्रक हमें ऊर्जा के एक और मात्रक के बारे में बताते हैं। इस मात्रक का हर जगह, जहां विद्युत-मापी लगे हैं, प्रयोग किया जाता है तथा इसे किलोवाट घंटा कहते हैं। एक घंटे में एक किलोवाट शक्ति द्वारा किए कार्य को किलोवाट घंटा कहते हैं। इस नए मात्रक को

अन्य परिचित मात्रकों में आसानी से बदला जा सकता है: 1 kW-hour = = $3 \cdot 6 \cdot 10^6$ Joule = 861 kcal = 367 000 kg. f · m। पाठक पूछ सकता है: ऊर्जा के एक और मात्रक की क्या आवश्यकता थी? इससे पहले ऊर्जा के मात्रक क्या कम थे! लेकिन ऊर्जा की धारणा भौतिकी के अनेक क्षेत्रों में पायी जाती है और हर क्षेत्र-विशेष में सुविधाजनक मात्रकों का प्रयोग करने के विचार से भौतिक-विज्ञानियों ने ऊर्जा के नए और नए मात्रकों को पेश किया। अन्ततः, भौतिकी के सब क्षेत्रों के लिए ऊर्जा के एक मात्रक चुनने की आवश्यकता पड़ी। यह काम नयी अंतर्राष्ट्रीय मात्रक प्रणाली (SI system) बनाने से पूरा हुआ (देखिए पृष्ठ १६)। लेकिन नए मात्रकों को "पुराने" मात्रकों को प्रतिस्थापित करने में बहुत समय लगेगा। यही कारण है कि किलोवाट घंटा ऊर्जा का अंतिम मात्रक नहीं है, जिससे पाठक भौतिकी के अध्ययन के दौरान परिचित होगा।

कार्यक्षमता

भिन्न-भिन्न प्रकार की मशीनों द्वारा हम ऊर्जा से भिन्न-भिन्न प्रकार का काम ले सकते हैं जैसे बोझ उठाना, लेथ चलाना और सामान तथा लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना।

किसी मशीन में डाली गयी ऊर्जा से उससे प्राप्त काम की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। प्रत्येक अवस्था में यही देखने में आयेगा कि प्राप्त कार्य लगायी गयी ऊर्जा से कम होता है। अर्थात मशीन में ऊर्जा का कुछ भाग अवश्य नष्ट हो जाता है।

मशीन से काम लेने के लिए उसमें पूरी तरह ख़र्च हुई ऊर्जा को मशीन की कार्यक्षमता (दक्षता) कहते हैं। इसे प्रायः प्रतिशतों में व्यक्त करते हैं।

अगर क्षमता 90% है तो इसका मतलब है कि मशीन में मात्र 10% ऊर्जा नष्ट होती है। और 10% कार्यक्षमता का मतलब है कि मशीन पर लगाई गई ऊर्जा का केवल 10% भाग मशीन में प्रयुक्त होता है।

अगर मशीन यांत्रिक ऊर्जा को कार्य में परिणत करती है तो उसकी कार्यक्षमता सिद्धान्ततः काफ़ी बढ़ाई जा सकती है। यहां मशीन की कार्य क्षमता घर्षण को कम करके बढ़ाई जा सकती है। स्नेहन बेहतर बनाने, अच्छे बॉल बेयरिंग लगाने और उस माध्यम का घर्षण कम करने से,

जिसमें गति होती है, कार्य क्षमता को एक (100%) के क़रीब बनाया जा सकता है।

यांत्रिक ऊर्जा को कार्य में परिणत करने के लिए मध्यवर्ती अवस्था के तौर पर प्रायः विद्युत् संचरण का प्रयोग करते हैं (जैसा कि जल-विद्युत् बिजलीघरों में किया जाता है)। निस्सन्देह, ऐसा करने से अतिरिक्त ऊर्जा नष्ट होती है। लेकिन ये हानियां बहुत कम होती हैं और यांत्रिक ऊर्जा को कार्य में परिणत तथा विद्युत् संचरण यंत्रों का प्रयोग करने से इन हानियों को कुछेक प्रतिशतों तक कम किया जा सकता है।

उन स्थितियों में बात बिलकुल भिन्न होती है जब मशीन में पदार्थ की रासायनिक ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

ईंधन की ऊर्जा को सीधा यांत्रिक या विद्युत ऊर्जा में परिणत करनेवाली मशीनें आज तक नहीं हैं। इसलिए रासायनिक ऊर्जा को तापीय ऊर्जा में परिणत करने के वास्ते मध्यवर्ती अवस्था का होना आवश्यक है। ईंधन से कार्य प्राप्त करने के वास्ते उसे जलाना और किसी आयतन (भट्ठी) में उच्च तापमान पैदा करना आवश्यक होता है। भट्ठी और आस-पास के वातावरण के तापमानों में अन्तर पर ही ऊष्मा-इंजन काम करता है। इंजन ऊष्माभिवाह के एक भाग को कार्य में परिणत करता है। वह किन्हीं भी परिस्थितियों में पूरे ऊष्माभिवाह को नहीं परन्तु ऊष्माभिवाह के एक भाग को ही कार्य में परिणत करता है।

अगर तापांतर कम है तो ऊर्जा का बहुत थोड़ा-सा भाग निकालना संभव होता है, और माध्यम के तापमान पर ऊष्मा स्रोत से ऊष्मा लेना बिलकुल नमुमकिन होता है। अगर ताप प्रवणता (temperature gradient) अधिक है तो ऊष्माभिवाह के अधिकांश भाग को कार्य में बदलना बहुत आसान होता है।

ऊष्माभिवाह के स्रोत और आस-पास के वातावरण के तापमानों में अन्तर जितना ज़्यादा होगा उतनी ही अधिक सफलता से तापीय ऊर्जा का उपयोग किया जा सकेगा।

तापमानों में यह अन्तर ऊष्मा इंजन को बेहतर बनाने की शक्यता को सीमाबद्ध करता है। अगर ऊष्मा इंजन में होनेवाली सभी हानियों को दूर कर दिया जाए, आदर्श बॉल बेयरिंग बना दिए जाएं और प्रकृति में पाये न जानेवाले आदर्श ऊष्मारोधी पदार्थों का उपयोग किया जाए, तो भी

इंजन की दक्षता एक के बराबर नहीं होगी, वह मात्र किसी एक उच्चतम बिन्दु तक ही पहुंचेगी। T_1 तापमानवाले ऊष्मा स्रोत से T_0 तापमानवाले वातावरण में जानेवाले ऊष्माभिवाह को कार्य में परिणत करने पर दक्षता का सीमांत मान बराबर होता है:

$$1 - \frac{T_0}{T_1}$$

अगर ऊष्माभिवाह के स्रोत का तापमान 100°C और माध्यम का तापमान 20°C है, तो अधिकतम दक्षता $1 - \frac{293}{273}$ के बराबर होगी यानी लगभग 20%। स्रोत का तापमान 1 000°C होने पर दक्षता 76% होगी।

इससे स्पष्ट है कि ईंधन को ऐसे जलाना चाहिए कि अधिक से अधिक तापमान पैदा हो।

ऊपरलिखित से समझ में आता है कि यांत्रिक कार्य के लिए ऊष्माभिवाह का उपयोग करना बहुत असुविधाजनक है। आधुनिक गैस टरबाइनों (देखिए पृष्ठ ४२६) की दक्षता मात्र 45% है। रासायनिक ऊर्जा को सीधा यांत्रिक कार्य में, ऊष्मीय ऊर्जा में परिवर्तित किए बिना, बदलने का तरीक़ा ढूंढ़ लिया जाए तो अच्छा हो। हम जानते हैं कि सिद्धान्ततः ऐसा परिवर्तन करने पर ऊष्मा क्षति को टाला जा सकता है। लेकिन, जैसा कि हमने पहले कहा है, अभी तक ऐसा करने में सफलता नहीं मिली है।

ऊर्जा के प्राकृतिक स्रोत

ऊर्जा के सभी स्रोत बराबर बराबर लाभदायक नहीं हैं। इनमें से कुछेक हमारे लिए केवल सैद्धांतिक दिलचस्पी रखते हैं। और दूसरे सभ्यता के अस्तित्व से संबंध रखते हैं। कुछेक स्रोत व्यावहारिक तौर पर अपार हैं और दूसरे अगामी शताब्दियों में समाप्त हो जाएंगे।

करोड़ों वर्षों से हमारे ग्रह निकाय (planetary system) का संरक्षक – सूरज पृथ्वी पर अपनी सजीव बना देनेवाली किरणें भेज रहा है। ऊर्जा के इस स्रोत को निश्चित रूप से अनन्त माना जा सकता है। धरती का प्रतिवर्ग मीटर सूर्य से औसतन 1.5 kW के लगभग ऊर्जा प्राप्त करता है, और साल भर में यह लगभग 10 करोड़ अर्ग के बराबर होती है। इतनी ऊर्जा सैकड़ों

किलोग्राम कोयला जलाने पर मिलती है। श्राइए, अब यह मालूम करें कि सारी पृथ्वी सूर्य से कितनी ऊर्जा प्राप्त करती है? पृथ्वी का क्षेत्रफल मालूम करने और इस बात को ध्यान में रखने पर कि सूर्य की किरणें पृथ्वी को एकसमान गरम नहीं करती हैं, हम पाते हैं कि पृथ्वी लगभग 10^{14} kW ऊर्जा प्राप्त करती है। ऊर्जा की यह मात्रा फ़ैक्टरियों, कारख़ानों, कारों, बिजलीघरों और हवाई जहाज़ों के इंजनों द्वारा पृथ्वी के सब स्रोतों से प्राप्त की जानेवाली ऊर्जा से 100000 गुना अधिक है या संक्षिप्त में संसार की सारी जनता द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली ऊर्जा (लगभग 10^9 kW) से 100 000 गुना अधिक है।

सूर्य की ऊर्जा का इस्तेमाल करने के लिए बनाई गई अनेक योजनाओं के बावजूद भी सूर्य-ऊर्जा का बहुत कम उपयोग किया जाता है। यह बात सही है कि सूर्य-ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा पृथ्वी तक पहुंचती है, लेकिन यह ऊर्जा पृथ्वी के सब स्थानों जैसे कि अगम्य पहाड़ों, महासागरों, जो भू-पृष्ठ का अधिकांश भाग घेरे हैं, और वीरान रेगिस्तानों पर पहुंचती है।

इसके अतिरिक्त छोटे-से क्षेत्रफल तक पहुंचनेवाली ऊर्जा की मात्रा भी तो बहुत कम है। सूर्य-ऊर्जा को इकट्ठा करनेवाले कई वर्गकिलोमीटर क्षेत्रफल पर फैली हुई बैटरियां बनाना तो शायद ही लाभदायक सिद्ध हो। अनन्तः, यह बात स्पष्ट है कि उन स्थानों पर, जहां साल भर में अधिकांश दिन सूर्य चमकता है, सूर्य-ऊर्जा इकट्ठा करने से लाभ हो सकता है।

गत वर्षों में सूर्य-ऊर्जा को बिजली में परिवर्तित करने की सम्भावनाएं पैदा होने से सूर्य-ऊर्जा को सीधा उपयोग में लाने के कार्यों में रुची कुछ बढ़ गयी है। निस्सन्देह, ऐसी सम्भावना बहुत रमणीय है। लेकिन आज तक इसके बहुत ज़्यादा परिणाम नहीं मिले हैं।

कुछ साल पहले ही हमारे सिरों के ऊपर यानी वायुमण्डल की ऊपरी तहों में सूर्य-ऊर्जा की बैटरी को खोज की गयी थी। मालूम हुआ कि भू-पृष्ठ से 150—200 km की ऊंचाई पर ऑक्सीजन सौर विकिरण (solar radiation) के प्रभाव से वियोजित अवस्था में है, यानी उसके अणु परमाणुओं में वियोजित हैं। इन परमाणुओं को ऑक्सीजन के अणुओं में इकट्ठा करने पर 118 kcal/mole ऊर्जा पैदा हो सकती है। ऐसी ऊर्जा की कुल राशि कितनी है? ऊपरलिखित ऊंचाई पर 50 km मोटी तह में 10^{13} kcal ऊर्जा है, यानी उतनी ऊर्जा जितनी कई करोड़ टन कोयला पूरी तरह

जलाने से मिलती है। कोयले की इतनी मात्रा सोवियत संघ में कुछेक दिनों के कोयला उत्पादन के बराबर है। हालांकि ऊपरी तहों में वियोजित ऑक्सीजन की ऊर्जा का निरन्तर नवीकरण होता है, फिर भी निम्न संकेन्द्रण की समस्या बनी रहती है। ऐसी ऊर्जा का प्रयोगात्मक लाभ उठाने के वास्ते उपकरण डिजाइन करना कोई आसान काम नहीं है।

आइए, अब फिर ऊर्जा के स्रोतों की चर्चा करें। पार्थिव वायुमण्डल के वायु संहति (air mass) निरन्तर गतिमान् होते हैं। वायु के इस बहाव की ऊर्जा का कारण ही तो हैं तूफ़ान, झक्कड़, व्यापारिक पवनें, मंद समीरें। प्राचीन काल में हवा की ऊर्जा का पालदार किश्तियों और पवन चक्कियों को चलाने के लिए उपयोग किया जाता था। धरती पर बहनेवाली पवनों की वार्षिक औसत ऊर्जा 10^{10} kW के बराबर है।

तिस पर भी हम हवा पर ऊर्जा के स्रोत के तौर पर बड़ी आशाएं नहीं रखेंगे। यह स्रोत अविश्वसनीय होने – पालदार किश्तियों के जमाने में अनेक दुर्घटनाओं और निराशाओं का कारण पवन का कम वेग होता था – के साथ ही सूर्य-ऊर्जा की भांति त्रुटिपूर्ण भी है: एकांक क्षेत्र पर आनेवाली ऊर्जा की मात्रा अपेक्षाकृत कम है; अगर किसी कारख़ाने के लिए इस ऊर्जा का उपयोग करने के वास्ते पवन टरबाइन बनानी होती तो उसके ब्लेडों का आकार बहुत ही बड़ा होता, यानी व्यावहारिक तौर पर उन्हें बनाना असम्भव होता। पवन-बल का हमेशा उपलब्ध न होना भी एक भारी त्रुटि है। इसी कारण पवन-बल या, जैसा कि शायराना लहजे में कहा जाता है, नीले इंधन का उपयोग मात्र छोटे-छोटे इंजनों, "पवन इंजनों" में किया जाता है। जब हवा चलती है तो ऐसे इंजन कृषि मशीनों को चलाने तथा घरेलू उपयोग के लिए बिजली पैदा करते हैं। ज़्यादा बिजली बन जाने पर उसे बैटरियों (तथाकथित संचायक बैटरियों) में संचय कर लिया जाता है। बिजली की यह फालतू मात्रा का उस समय उपयोग किया जा सकता है जब हवा न बह रही हो। निस्सन्देह, पवन इंजनों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है, उनका मात्र सहायक इंजन के तौर पर ही प्रयोग किया जा सकता है।

गतिमान् जल यानी महासागरों से पृथ्वी की ओर निरन्तर आनेवाली ज्वारीय तरंगें, सागरों और महासागरों की ओर बहनेवाली नदियों का जल भी ऊर्जा का स्रोत है।

संसार की सारी नदियों की शक्ति कई सौ करोड़ किलोवाट के बराबर है, उसमें से लगभग चार करोड़ किलोवाट यानी क़रीब 1% शक्ति का आज उपयोग किया जाता है। सोवियत संघ में बहनेवाली नदियों की शक्य शक्ति (potential power) लगभग 40 करोड़ किलोवाट है, जिसमें से आज लगभग 2 करोड़ किलोवाट शक्ति का उपयोग किया जाता है।

अगर कोयले, पेट्रोल और ऊर्जा के अन्य स्रोत समाप्त हो जाते हैं और हम केवल सफ़ेद कोयले यानी नदियों की ऊर्जा का उपयोग करने लगते हैं (यहां हम यह मानते हैं कि संसार की सब नदियों पर हर किस्म के बिजलीघर बने हैं), तो संसार में खपत होनेवाली ऊर्जा की मात्रा कम करनी पड़ेगी। वर्तमान समय में संसार भर में एक अरब किलोवाट से अधिक ऊर्जा खपत की जाती है। इस समय मानव-जाति के लिए मात्र द्रवचालित ऊर्जा ही पूरी-पूरी पर्याप्त होती।

लेकिन ज्वारीय तरंग का भी तो प्रयोग किया जा सकता है? ज्वारीय तरंगों की ऊर्जा बहुत कम, नदियों की ऊर्जा से लगभग 10 गुना कम है। खेद की बात है कि इस ऊर्जा का अभी बहुत कम मात्रा में उपयोग किया जाता है। इन तरंगों की स्पंदमान प्रकृति इनके उपयोग को मुश्किल बनाती है। इस मुश्किल पर काबू पाने में सोवियत और फ़्रांसीसी इंजीनियरों ने सफलता प्राप्त कर ली है। अब ज्वारीय बिज्लीघर बिजली की अधिकतम खपत के समय भी बिजली की प्रतिभूत मात्रा पैदा करते हैं। फ़्रांस में प्रायोगिक ज्वारीय बिजलीघर सेन माल्ग नामक स्थान पर काम कर रहा है, और सोवियत संघ में कीस्लाया गूबा नामक स्थान पर, जो मूरमंस्क प्रदेश में स्थित है, ज्वारीय बिजलीघर बनाया जा रहा है। इसके निर्माण अनुभवों का दूसरे शक्तिशाली ज्वारीय बिजलीघर बनाने में उपयोग किया जायेगा, जो सफ़ेद सागर की लुम्बोवस्क और मेजेंस खाड़ियों में बनाए जाएंगे। फ़्रांस में सन् 1965 में 240 000 kW क्षमतावाले ज्वारीय बिजलीघर ने बिजली बनानी शुरू कर दी थी।

महासागरों में अधिक गहराइयों पर जल के तापमान और पृष्ठीय सतहों के तापमान में 10—20° का अन्तर होता है। इसका मतलब हुआ कि एक ऐसा ऊष्मा-इंजन बनाया जा सकता है जिसमें माध्य अक्षांश (mean latitude) पर पानी की ऊपरी सतहें तापक का और गहराई पर स्थित

जल की सतहें शीतलक का काम करेंगी। ऐसे ऊष्मा-इंजन की दक्षता 1—2% होगी। लेकिन यह भी बहुत अकेंद्रित ऊर्जा का स्रोत है।

सूर्य, हवा और जल प्रकृति द्वारा उपहार में दिए गए ऊर्जा के स्रोत है*। इन्हें उपहार में मिले स्रोत इसलिए कहते हैं कि इनकी ऊर्जा के प्रयोग से धरती के ऊर्जा भण्डारों में किसी प्रकार की कमी नहीं आती है। पवन-चालित इंजनों के काम करने पर पृथ्वी की वायु-मात्रा में कमी नहीं होती है, पनबिजलीघरों के चलने से नदियों की गहराई कम नहीं होती है, सूर्य-ऊर्जा से मशीनों को चलाने पर पार्थिव पदार्थों के संचयों का उपयोग नहीं किया जाता है।

इस अर्थ में अब तक बताए गए ऊर्जा के स्रोत ईंधन के मुकाबले बहुत विशेषताएं रखते हैं। ईंधन जल जाता है। पत्थर-कोयला, कच्चा तेल और लकड़ी को जलाने पर ऊर्जा प्राप्त करने का मतलब पार्थिव भण्डारों का अप्रतिप्राप्य दहन है। प्रकाश रसायनिक इंजन बनाने का विचार यानी प्रकाश संश्लेषण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करना भी बहुत रोचक हो सकता है। प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया ऊर्जा को जमा करना सुनिश्चित करती है। हर किसी पौधे का हरा पत्ता एक कारख़ाना है, जो सूर्य की किरणों की बदौलत जल और कार्बन डाइऑक्साइड के अणुओं में ऊर्जा का काफ़ी संचय करता है। पेड़-पौधों में होनेवाली इस क्रिया की दक्षता लगभग $1^0/_0$ होती है, लेकिन पेड़-पौधों द्वारा पैदा की ऊर्जा का वार्षिक उत्पादन लगभग $2 \cdot 10^{15}$ kW-hours यानी संसार के सब बिजलीघरों के वार्षिक उत्पादन से कई सौ गुना अधिक होता है। प्रकाश संश्लेषण का अभी तक पूरा अध्ययन नहीं हुआ है, लेकिन इस बात में कोई शक नहीं कि भविष्य में न केवल कृत्रिम परिस्थितियों में प्रकाश संश्लेषण करना ही, बल्कि इसकी दक्षता बढ़ाना भी सम्भव हो जायेगा। आज इस क्षेत्र में मानव प्रकृति के साथ होड़ नहीं कर सकता है और वह उसके उपहारों का फ़ायदा उठाने के लिए यानी लकड़ी, कोयला और कच्चा तेल जलाने के वास्ते विवश है।

पृथ्वी पर ईंधन के भण्डार कितने हैं? साधारण ईंधन की श्रेणी में, यानी ऐसे ईंधन की श्रेणी में जो उसके समीप आग लाने पर जलता है,

---

*निस्सन्देह, सूर्य को ऊर्जा के दूसरे स्रोतों के साथ एक स्तर पर रखना ठीक नहीं है। कारण यह है कि सारी ऊर्जा सूर्य से ही तो मिलती है।

कोयला और कच्चा तेल भी आते हैं। इन ईंधनों के भण्डार अति कम हैं। कच्चे तेल का वर्तमान रफ़्तार से उपयोग करने पर उसके अन्वेषित भण्डार आगामी शताब्दी के शुरू में खाली हो जाएंगे। पत्थरी कोयले के भण्डार इससे तनिक अधिक हैं। धरती में कोयले के भण्डार दस हज़ार अरब टन के लगभग हैं। एक किलोग्राम कोयला जलाने पर 7 000 kcal ऊष्मा मिलती है। इस प्रकार कोयले के सारे भण्डार को जलाने पर 10^{20} kcal पैदा होगी। यह ऊर्जा की वार्षिक खपत से एक हज़ार गुना अधिक है।

एक हज़ार साल के लिए ऊर्जा के भण्डारों को बहुत कम समझना चाहिए। मनुष्य के जीवन काल के मुकाबले एक हज़ार साल बहुत बड़ी अवधि है, और पार्थिव जीवन तथा सभ्य संसार के अस्तित्व के मुकाबले मानव जीवन काल एक बहुत छोटी अवधि है। इसके अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति ऊर्जा-प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है। यही कारण है कि अगर ईंधन के भण्डार में केवल कच्चा तेल और कोयला होते तो पृथ्वी पर ऊर्जा के भण्डारों को अति अल्प मानना पड़ता।

इस शताब्दी के पांचवें दशक के आरम्भ में यह सिद्ध किया गया था कि व्यावहारिक दृष्टि से एकदम नए ईंधन यानी न्यूक्लीय ईंधन (nuclear fuel) का प्रयोग करना सम्भव है। संसार में न्यूक्लीय इंधन के विशाल भण्डार हैं।

यहां हम अणु और उसके न्यूक्लस, यानी परमाणु न्यूक्लस की आंतरिक ऊर्जा को कैसे प्राप्त किया जा सकता है, के बारे में विस्तारपूर्वक विचार नहीं करेंगे। न्यूक्लीय ऊर्जा अधिकांश मात्रा में तथाकथित परमाणु बिजली-घरों में प्राप्त की जा सकती है। न्यूक्लीय ऊर्जा ऊष्मा के रूप में प्रकट होती है जिसका बिजलीघरों में उसी प्रकार उपयोग किया जाता है जिस प्रकार कोयले का प्रयोग करनेवाले बिजलीघरों में।

आज औद्योगिक पैमाने पर ऊर्जा दो धातुओं यूरोनियम और थोरियम से प्राप्त की जा सकती है। न्यूक्लीय ईंधन की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें ऊर्जा की सांद्रता बहुत ज़्यादा होती है। एक किलोग्राम न्यूक्लीय ईंधन एक किलोग्राम कोयले से प्राप्त होनेवाली ऊर्जा से 25 लाख गुना अधिक ऊर्जा देता है। यही कारण है कि इन धातुओं की पृथ्वी पर आपेक्षाकृत कम मात्रा होने पर भी ऊर्जा की दृष्टि से उनके बहुत विशाल भण्डार हैं। प्रारंभिक परिकलनों से पता चलता है कि न्यूक्लीय

ईंधन के भण्डार पत्थरी कोयले के भण्डारों से कहीं ज़्यादा हैं। इतने पर भी मानव की ऊर्जा-भूख को मिटाने के लिए यूरेनियम और थोरियम ही पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि भू-पर्पटी में पाये जानेवाले खनिजों के सीमित भण्डार हैं।

लेकिन आज हम कह सकते हैं कि ऊर्जा के भण्डार सीमित नहीं हैं। यहां हमारा तात्पर्य तथाकथित ताप न्यूकलीय अभिक्रियाओं (thermo-nuclear reactions) से है। ऐसी अभिक्रियाएं मात्र उच्च तापमानों पर यानी लगभग दो करोड़ डिग्री तापमान पर सम्भव होती हैं। आजकल इतना तापमान केवल परमाणु-बम-विस्फोट के समय ही प्राप्त किया जाता है।

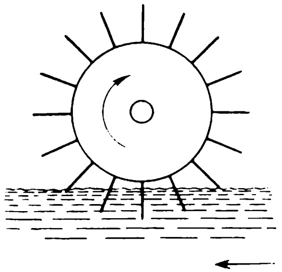
आज खोजकर्त्ताओं के सम्मुख परमाणु-बम-विस्फोट किए बिना उच्च तापमान प्राप्त करने की समस्या है, और यहां यह बता दिया जाए कि उन्होंने लाखों डिग्री तापमान प्राप्त करने में प्रारंभिक सफलताएं भी प्राप्त कर ली हैं।

अगर भौतिक-विज्ञानी विस्फोट किए बिना प्राप्त लाखों डिग्री के बराबर ताप का उपयोग करने का रास्ता ढूंढ़ लेते हैं, तो हाइड्रोजन के परमाणु-नाभिकों की नियंत्रित विखंडन अभिक्रिया (जिसे तापनाभिकीय अभिक्रिया कहते हैं) सम्भव हो जाएगी। ऐसी अभिक्रिया के समय एक किलोग्राम ईंधन में से ऊर्जा विशाल मात्रा में निकलती है। वर्तमान काल में मानव जाति की ऊर्जा की वार्षिक आवश्यकत्ताओं को पूरा करने के वास्ते कुछेक करोड़ टन जल को संसाधित कर उसकी तापनाभिकीय ऊर्जा ही पर्याप्त होगी।

महासागरों में नापनाभिकीय ऊर्जा के इतने विशाल भण्डार हैं कि वे मानवजाति की ऊर्जा आवश्यकताओं की सौर मंडल के जीवन-काल से अधिक अवधि तक पूरा कर सकते हैं। अब हम कह सकते हैं कि ये ऊर्जा के अपार स्रोत हैं।

इंजन

बीसवीं शताब्दी का मानव विभिन्न प्रकार के इंजनों का प्रयोग करने का अभ्यस्त हो चुका है, जो उसके लिए विशाल मात्रा में काम करते या उसके कार्य को सुगम बनाते हैं।



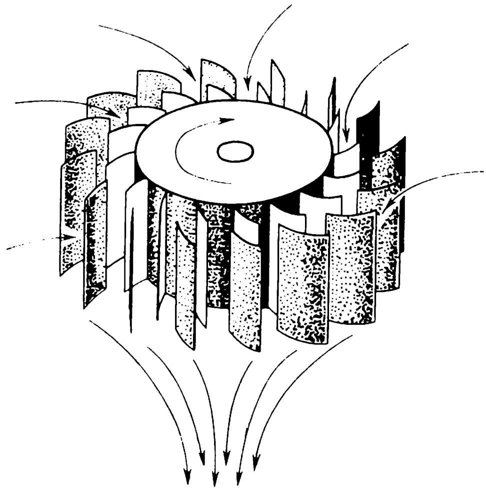
चित्र 133

आज तक अनेक देशों में खेती-बारी के क्षेत्र में पवन चक्कियों का इस्तेमाल हो रहा है। यह साधारण इंजन, जो पवन-ऊर्जा का इस्तेमाल करता है, सदियों से मानव की सेवा कर रहा है। ऐसे इंजन के ब्लेड चपटे होते हैं तथा वे पवन की दिशा के साथ छोटा-सा कोण बनाते हैं। अन्तः प्रवाही पवन अभिवाह परिधि पर लगे ब्लेडों से टकराता और पहिए को घुमाता है।

यह बात स्पष्ट है कि पवन इंजन को उलटी दिशा में भी चलाया जा सकता है: अगर पवन इंजन कोई मोटर को चलाए, तो ब्लेड पवन की तेज़ धारा को घूर्णन-अक्ष के साथ-साथ भेजेंगे। अगर ऐसा यंत्र किसी जल-विमान, हवाई जहाज़ या हेलिकॉप्टर पर लगा हो, तो हम उसे नोदक (propeller) कहते हैं। नोदक द्वारा फेंकी गयी वायु की धारा की प्रतिक्रिया जल-विमान या हवाई जहाज़ को आगे धकेलती और हेलिकॉप्टर को उत्प्लवकता प्रदान करती है।

स्पष्ट है कि मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के वास्ते बनाया गया सबसे पहला इंजन जल (चलजलीय) टरबाइन थी। यह टरबाइन जल चाक की तरह की थी।

चित्र 133 में तथाकथित जल चाक (water wheel) दिखाया है। पानी की धारा चाक के निमज्जित ब्लेडों से टकराने पर उन्हें अपनी गतिक ऊर्जा देती है। ब्लेड गति में आ जाते हैं। ब्लेड के साथ जुड़े होने के कारण चाक घूमने लगता है। लेकिन, यह स्पष्ट है कि हर क्षण केवल एक ब्लेड ही जल की धारा के लम्ब होगा। शेष ब्लेड अन्तः प्रवाही धाराओं के साथ न्यून कोण बनाते तथा लम्ब ब्लेड की अपेक्षा धाराओं से कम ऊर्जा लेते हैं। ऐसे चाक की दक्षता अधिक नहीं होती है। दक्षता बढ़ाने का तरीक़ा स्पष्ट है: ऐसा उपाय करना चाहिए ताकि सब-के-सब ब्लेड अन्तः प्रवाही धारों के लम्ब हों। पथ-निर्धारक ब्लेडों को उपयोग करने से इस विचार को कार्यान्वित किया जा सकता है। चित्र 134 से यह बात स्पष्ट है कि टरबाइन के अच्छे कार्य के वास्ते जल की सतहों में अन्तर होना ज़रूरी है। आधुनिक जल-बिजलीघरों में जल बड़े ज़ोर से टरबाइन के ब्लेडों से टकराता



चित्र 134

है। इंजीनियरी निपुणता से बनायी आधुनिक जल टरबाइनों, जिनकी क्षमता 100 000 kW से अधिक होती है, की दक्षता 95% है। इतनी क्षमता-वाली टरबाइनें लगभग 100 r.p.m. से घूमती हैं, यही कारण है कि जल-टरबाइनें आकार में बड़ी और काफ़ी भारी होती हैं। उदाहरण के लिए वोल्गा पनबिजलीघर में लगी टरबाइन के चाक की ऊंचाई लगभग 10 मीटर और भार 420 टन है।

टरबाइन की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें स्थानांतरण-गति (translational motion) को घूर्णी गति (rotational motion) में परिवर्तित करना अति सरल है। यही कारण है कि इस सिद्धान्त का बहुधा उन इंजनों में भी प्रयोग किया जाता है, जो देखने में जल चाक से बिलकुल भिन्न होते हैं। जब ब्लेड को घुमाने के वास्ते वाष्प का उपयोग करते हैं तो ऐसी मशीन को वाष्प टरबाइन कहते हैं। यह बात तो हमें मालूम है कि मशीन की दक्षता बढ़ाने के लिए कार्यकारी पदार्थ का तापमान बढ़ाना ज़रूरी है। वर्तमान तापीय बिजलीघरों में प्रयोग की जानेवाली वाष्प का तापमान 580°C और दाब 240 atm होता है। सिद्धान्ततः, ऐसी टरबाइन की अधिकतम दक्षता 66% के बराबर हो सकती है अगर शीतलक का तापमान

20°C है। व्यवहार में वाष्प टरबाइनों की दक्षता 42% तक ही सुलभ हो पाती है। अतः वाष्प टरबाइनें अच्छे वर्तमान इंजन हैं। आज एक टरबाइन यूनिट की क्षमता 300 000 kW के लगभग है। ऐसी टरबाइन 900 टन उच्च दाब वाष्प प्रतिघंटा खपत करती है। स्पष्ट है कि वाष्प की इतनी मात्रा प्राप्त करना एक मुश्किल इंजीनियरी कार्य है। वर्तमान तापीय बिजली-घरों में अधिकांश स्थान उच्च दाब बॉयलर, इंधन तैयार और सप्लाई करनेवाले यंत्र घेरते हैं। यही कारण है कि वाष्प टरबाइनों की ढुलाई के लिए विशेष जहाज़ों का उपयोग किया जाता है।

गत वर्षों में "टर्बो बिजली-पोत" शब्द अख़बारों में प्रकट होने लगा है। इस शब्द का अर्थ साधारण-सा है: ऐसे पोत में वाष्प से टरबाइन चलायी जाती है, टरबाइन अपनी बारी में शक्तिशाली दिष्ट धारा जनित्रों (direct current generators) को घुमाती है, और नोदक बिजली की मोटरों के धुरे पर लगे होते हैं। क्या यह सब अनावश्यक नहीं है? यहां एक दूसरी यानी इंजन के कर्षण अभिलक्षण की समस्या हमारे सामने आती है।

बात यह है कि केवल एक निश्चित r.p.m. पर ही वाष्प टरबाइन की क्षमता अधिकतम होती है। उदाहरण के तौर पर, सोवियत संघ के बिज-लीघरों में लगी टरबाइनें प्रति मिनट 3000 चक्कर लगाती हैं। r.p.m. कम हो जाने पर टरबाइन का बिजली उत्पादन घट जाता है। एक बात स्पष्ट है कि अगर नोदक टरबाइन के धुरे पर लगे होते तो ऐसे पावर प्लांट से सुसज्जित पोत की गति कम होती। दिष्ट धारा विद्युत मोटर का कर्षण अभिलक्षण आदर्श होता है: घर्षण बल जितने अधिक होते हैं विद्युत मोटर उतना ही अधिक कर्षण बल पैदा करती है, इसके अतिरिक्त ऐसी मोटर r.p.m. कम होने पर और चालू होने के समय भी काफ़ी शक्ति प्रदान कर सकती है।

इस प्रकार जनित्र और दिष्ट धारा मोटर, जो टरबाइन और टर्बो-बिजली-पोत के बीच स्थित होते हैं, चरणरहित स्वाचालित गियर बाक्स का काम करते हैं। ऐसा लग सकता है कि यह तंत्र बृहदाकार है, लेकिन वर्तमान टर्बो-बिजली-पोतों की क्षमतावाला कोई दूसरा तंत्र भी इतना ही भारी-भरकम तथा लम्बा-चौड़ा होता और कम विश्वसनीय होता।

भारी-भरकम बॉयलरों की जगह परमाणु रिऐक्टरों का उपयोग कर टर्बो-बिजली-पोत के पावर प्लांट में और भी सुधार किए जा सकते हैं। ऐसा

करने पर जहाज़ में यात्रा के दौरान खपत होनेवाले ईंधन की मात्रा कम लेनी पड़ेगी तथा इससे बचत होगी।

संसार का बच्चा-बच्चा सोवियत संघ में सबसे पहले बनाए गए परमाणु-हिम-तोड़क जहाज़ "लेनिन" के बारे में जानता है। इसके इंजनों की शक्ति 44000 horse power तथा जल-विस्थापन 16000 टन है। पोत पर लगा नाभिकीय पावर प्लांट एक साल से अधिक समय के लिए यात्रा के दौरान बिजली सप्लाई कर सकता है।

इस प्रकार, वाष्प टरबाइन को चलाने के वास्ते एक शक्तिशाली बाह्य तापीय अभिवाह-स्रोत की ज़रूरत होती है। इस स्रोत का काम बॉयलर की भट्ठी या यूरेनियम रिएक्टेर कर सकता है। वर्तमान विकास स्तर पर इन स्रोतों का आकार और भार इतना अधिक है कि वाष्प टरबाइन का मोटर-कार या हवाई जहाज़ में उपयोग बिलकुल सम्भव नहीं है। वाष्प टरबाइन का उपयोग करने पर इंजन और हीटर का कुल भार प्रति हार्सपावर बहुत बढ़ जाएगा। क्या बाह्य हीटर से मुक्ति नहीं पायी जा सकती है, यानी क्या हीटर को टरबाइन में ही नहीं लगाया जा सकता है?

ऐसा एक यंत्र डिज़ाइन किया जा चुका है और आज उसका व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल भी किया जा रहा है। यह है गैस टरबाइन। गैस टरबाइन में कार्यकारी पदार्थ का काम उच्च दहन ऊष्मावाले ईंधनों के अति तप्त दहन-पदार्थ करते हैं। इससे वाष्प टरबाइन के मुक़ाबले गैस टरबाइन की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं और उसके विश्वसनीय कार्य सुनिश्चित करने में सामने आनेवाली तकनीकी कठिनाइयों को निर्धारित किया जाता है।

गैस टरबाइन के लाभ स्पष्ट है: ईंधन-दहन-कक्ष का आकार छोटा होता है और उसे टरबाइन केसिंग के नीचे ही अवस्थित किया जा सकता है; दहन पदार्थों के मिश्रण का, जिसमें उदाहरण के तौर पर कणित मिट्टी का तेल और ऑक्सीजन होती है, तापमान भाप के तापमान से कहीं अधिक होता है। गैस टरबाइन के दहन-कक्ष में पैदा होनेवाला ऊष्मा अभिवाह अति तीव्र होता है, और इस कारण उच्च दक्षता प्राप्त करना सम्भव होता है।

लेकिन ये विशेषताएं प्रतिकूल परिस्थितियां बन जाती हैं। टरबाइन के स्टील ब्लेड गैस धाराओं में काम करते हैं, जिनका तापमान 1200°C तक होता है और जो अनिवार्यतः राख के अतिसूक्ष्म कणों से संतृप्त होती हैं। इसका अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है कि उन पदार्थों को कितनी कड़ी

शत पूरी करनी पड़ती है जिनसे गैस टरबाइनों के ब्लेड बनाए जाते हैं। मोटर-कार के लिए 200 h. p. वाली गैस टरबाइन डिज़ाइन करने में बिलकुल अपनी ही क़िस्म की मुश्किलों का सामना करना पड़ता। टरबाइन इतने छोटे आकार की बनती कि आम इंजीनियरी समाधान और साधारण पदार्थों का प्रयोग बिलकुल असम्भव हो जाता। आज इन तकनीकी मुश्किलों पर क़ाबू पाया जा रहा है। गैस टरबाइनों से सज्जित प्रायोगिक मोटर-कारों के परख परीक्षण किये जा रहे हैं।

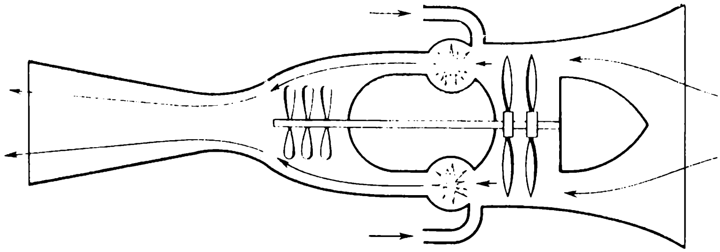
रेल गाड़ियों में गैस टरबाइन का उपयोग करना आसान सिद्ध हुआ। अब गैस टरबाइन सज्जित रेल-इंजनों का इस्तेमाल किया जाने लगा है।

गैस टरबाइन का बिलकुल ही दूसरे क़िस्म के इंजनों में प्रयोग किया जाता है, जिनमें गैस टरबाइन हालांकि एक आवश्यक लेकिन अप्रधान अंग है। यहां हम टर्बोजेट इंजन की बात कर रहे हैं। आज जेट वायुयानों में मुख्यतः ऐसे इंजनों का ही उपयोग किया जाता है।

जेट इंजन का कार्य-सिद्धान्त बहुत-ही सरल है। एक मज़बूत दहन-कक्ष में ईंधन मिश्रण जलाया जाता है: दहन पदार्थ, जिनका वेग बहुत अधिक होता है (हाइड्रोजन को ऑक्सीजन में जलाने पर दहन पदार्थों का वेग 3 000 m/sec और अन्य प्रकार के ईंधनों के वास्ते थोड़ा कम होता है), निरंतर फैल रहे तुंड (nozzle) में से गति की विपरीत दिशा में फेंके जाते हैं। इतने अधिक वेगों पर दहन पदार्थों की अपेक्षाकृत कम मात्रा भी इंजन में से बहुत आवेग ले जाती है।

जेट इंजनों के बनने से ही लोगों के लिए अंतर्ग्रहीय उड़ानें भरने की वास्तविक सम्भावना मिली।

द्रव जेट इंजनों का आज व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। ऐसे इंजन के दहन कक्ष में ईंधन (उदाहरण के लिए, एथिल ऐल्कोहॉल) और ऑक्सीकारक (oxidising agent) (साधारणतया द्रव ऑक्सीजन) की निश्चित मात्रा भेजी जाती है। मिश्रण के जलने से प्रणोद पैदा होता है। V-2 राकेटों में प्रणोद लगभग 15 टन के बराबर होता है। राकेट में 8.5 टन ईंधन और ऑक्सीकारक भरा जाता है, जो 1.5 सेकण्ड में जल जाता है। आंकड़े परिस्थिति को काफ़ी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। द्रव जेट इंजन अधिक ऊंचाइयों और वायुमण्डल की सीमाओं के पार उपयोगी सिद्ध होते हैं। उन विमानों में, जो वायुमण्डल की निचली परतों में (20



चित्र 135

किलोमीटर तक की ऊंचाई पर) उड़ानें भरते हैं, जहां ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में है, विशेष प्रकार के ऑक्सीकारक की अधिक मात्रा डालने का कोई फ़ायदा नहीं है। लेकिन ऐसा न करने पर ऑक्सीजन की विशाल मात्रा को दहन कक्ष में भेजने की समस्या पैदा होती है, ऑक्सीजन की तीव्र दहन के लिए आवश्यकता होती है। इस समस्या को इस प्रकार हल किया जाता है: दहन कक्ष में बनी गैस-धारा की ऊर्जा का एक भाग दहन कक्ष में हवा पम्प करनेवाले शक्तिशाली संपीडक (compressor) को चलाने के वास्ते ले लिया जाता है।

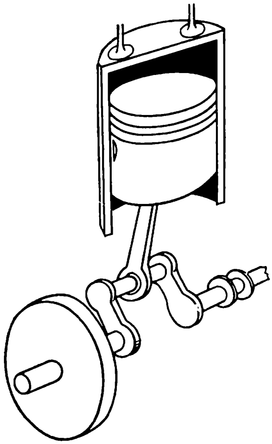
हम पहले बता चुके हैं कि ऐसे इंजन की सहायता से अति तप्त गैसों की धारा की ऊर्जा का प्रयोग कर कार्य किया जा सकता है। निस्सन्देह, गैस टरबाइन ही एक ऐसा इंजन है। सारा तंत्र टर्बोजेट इंजन (चित्र 135) कहलाता है। 800 से 1 200 km/hour की रफ़्तार से उड़ानें भरने के लिए किसी भी क़िस्म के इंजन टर्बोजेट इंजनों का मुकाबला नहीं कर सकते हैं।

लम्बी और 600—800 km/hour की रफ़्तार से उड़ानें भरने के वास्ते टर्बोजेट इंजन के धुरे पर प्रॉपेलर लगाया जाता है तथा ऐसे इंजन को टर्बोप्रॉपेलर इंजन कहते हैं।

अगर उड़ान की रफ़्तार लगभग 2 000 km/hour या इससे अधिक है तो हवाई जहाज़ द्वारा बनाया वायु दाब इतना अधिक होता है कि संपीडक की ज़रूरत ही नहीं रहती। अवश्य, तब तो गैस टरबाइन की भी आवश्यकता नहीं रहती। इंजन चर अनुप्रस्थ काटवाली (variable cross-section) ट्यूब बन जाता है, जिसमें एक निश्चित स्थान पर ईंधन जलता है। इसे रैमजेट इंजन कहते हैं। स्पष्ट है कि रैमजेट इंजन वायुयान को

धरती पर से उठा नहीं सकता है, वह केवल अधिक ऊंचाइयों पर ही काम करता है।

कम रफ़्तार से उड़ानें भरनें पर जेट इंजन बिलकुल अलाभकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि ईंधन की ज़्यादा मात्रा जलती है।



चित्र 136

धरती, जल या वायु में 0 से 500 km/hour की रफ़्तार से चलने के लिए आंतरिक दहन, पेट्रोल या डीज़ल पिस्टन इंजन मानव की विश्वसनीय सेवा कर रहे हैं। जैसा कि इसके नाम से पता चलता है ऐसे इंजन का मुख्य भाग एक सिलिंडर होता है, जिसमें पिस्टन चलता है। पिस्टन की प्रत्यागामी गति (reciprocating motion) संयोजी छड़-क्रैंक तंत्र (चित्र 136) की सहायता से घूर्णी गति में परिवर्तित की जाती है।

पिस्टन की गति संयोजी छड़ के द्वारा क्रैंक की मिलती है, जो क्रैंक-शाफट का अंग है। क्रैंक की गति ही तो धुरे को घुमाती है। इसके विपरीत, अगर क्रैंक शाफट को घुमाया जाए तो इससे संयोजी छड़ें हिलने लगेंगी और सिलिंडर के अन्दर पिस्टन अपनी जगह से सरक जाएगा।

पेट्रोल इंजन के सिलिंडर में दो वाल्व लगे होते हैं जिनमें से एक दहन मिश्रण अंताक्षेप करने और दूसरा भुक्तशेष गैसों (spent gases) को बाहर निकालने के काम आता है। इंजन को चालू करने के लिए उसे किसी बाह्य स्रोत की ऊर्जा का प्रयोग कर घुमाना ज़रूरी होता है। अब ज़रा यह मान लीजिए कि पिस्टन किसी क्षण नीचे है और अंतर्ग्रही वाल्व खुला है। सिलिंडर में कणित पेट्रोल और हवा का मिश्रण चूषण होगा। अंतर्ग्रही वाल्व इंजन के धुरे द्वारा इस प्रकार ढका होता है कि वह उस क्षण बन्द रहता है जबकि पिस्टन चरम निम्न बिन्दु पर होता है। धुरे के और मुड़ने पर पिस्टन ऊपर की ओर जाता है। वाल्वों की स्वाचालित यन्त्र-रचना उन्हें इस गति के दौरान बन्द रखती है, यही कारण है कि ईंधन मिश्रण का संपीडन होता है। पिस्टन जब ऊपरी स्थिति में होता है, तो संपीडित मिश्रण स्फुलिंग-प्लग (spark plug) की इलैक्ट्रोडों कै बीच पैदा होनेवाली बिजली की चिनगारी से जलाया जाता है।

मिश्रण भभकने लगता है, फैल रहे दहन पदार्थ पिस्टन को जोर से नीचे की ओर धकेलते हैं। इंजन का धुरा शक्तिशाली इम्पल्स प्राप्त करता है, धुरे पर टिका गतिपालक चक्र गतिज ऊर्जा का विशाल मात्रा में संचय कर लेता है। इस ऊर्जा संचय की बदौलत ही तीनों क्रमबद्ध स्ट्रोक पूरे होते हैं: वाल्व की खुली स्थिति में पहले गैसें बाहर निकलती हैं, और पिस्टन भुक्तशेष गैसों को सिलिंडर में से बाहर निकालता हुआ ऊपर की ओर जाता है फिर चूषण और संपीडन क्रियाएं होती हैं, इसके उपरांत ईंधन मिश्रण जलता है और इंजन काम करने लगता है। पेट्रोल इंजनों की शक्ति एक हार्सपावर के कुछेक अंशों से लेकर 4 000 हार्सपावर तक होती है; इन इंजनों की दक्षता 40% तक होती है और प्रति हार्सपावर भार 300 ग्राम तक होता है। इन गुणों के कारण ही इन इंजनों का कारों और विमानों में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है।

पेट्रोल इंजन की दक्षता किस प्रकार बढ़ायी जा सकती है? ऐसा, मुख्यतया, संपीडन अनुपात बढ़ा कर किया जाता है। परिवहन तापीय इंजनों में शीतलक का काम परिवेशी हवा करती है। इसलिए, केवल वायु-ईंधन मिश्रण का तापमान बढ़ाने पर ही दक्षता में वृद्धि करना सम्भव होता है, और इसके वास्ते मिश्रण को जलाने से पहले जितना ज़्यादा हो सके उतना ज़्यादा संपीडित करना चाहिए। ऐसा करने पर एक गम्भीर मुश्किल पैदा होती है: ज़्यादा संपीडित मिश्रण विस्फोट करता है (देखिए पृष्ठ ४०३)। पावर स्ट्रोक ज़ोरदार धमाके के लक्षण प्राप्त करता है और इससे इंजन को नुक़सान पहुंच सकता है। पेट्रोल के प्रस्फोटन गुणों को कम करने के लिए विशेष काररवाइयां करनी पड़ती हैं, और इनके कारण पहले से ही महंगा पेट्रोल और महंगा हो जाता है (देखिए पृष्ठ ४०५)।

पावर स्ट्रोक के दौरान तापमान बढ़ाने, प्रस्फोटन समाप्त करने और पेट्रोल की कीमत घटाने की समस्याओं का डीज़ल इंजन में सफलतापूर्वक समाधान किया गया है।

डिज़ाइन के लिहाज़ से डीज़ल इंजन पेट्रोल इंजन से बहुत मिलता-जुलता है, लेकिन यह ज़्यादा सस्ते और पेट्रोल के मुक़ाबले निम्न कोटी के पदार्थों, जो कच्चे तेल के आसवन के दौरान मिलते हैं, के उपयोग के लिए बनाया गया है। डीज़ल इंजन इस प्रकार काम करता है: सबसे पहले शुद्ध वायु सिलिंडर में खींची और फिर पिस्टन द्वारा लगभग 20 atm दाब तक

संपीडित की जाती है। इतना अधिक दाब इंजन को हाथ से धुमाकर प्राप्त करना तो मुश्किल होता। यही कारण है कि डीज़ल इंजन को एक विशेष मोटर की सहायता से चालू किया जाता है। प्रायः ऐसी मोटर का काम पेट्रोल इंजन या संपीडित वायु करती है।

अधिक संपीडन करने पर सिलिंडर में वायु का तापमान इतना बढ़ जाता है कि ईंधन-वायु मिश्रण को जलाने के लिए पर्याप्त होता है। लेकिन ईंधन-वायु मिश्रण को उस सिलिंडर में कैसे भेजा जाए, जहां उच्च दाब पैदा किया गया है? प्रवेश कपाट (inlet valve) से यहां काम नहीं चलेगा। इसकी जगह नोजल का उपयोग किया जाता है, यानी एक बहुत छोटे-से छिद्र में से ईंधन सिलिंडर में भेजा जाता है। सिलिंडर में प्रवेश करते ही ईंधन भभक उठता है, इससे प्रस्फोटन नहीं होता है। पेट्रोल इंजन में भी ऐसा ही किया जाता है। प्रस्फोटन दूर करने का यह तरीक़ा हमें मन्थर गतिवाले जहाज़ों के लिए कई हज़ार हार्सपावर वाले डीज़ल इंजन बनाने के समर्थ करता है। निस्सन्देह, ऐसे इंजन आकार में काफ़ी बड़े, लेकिन बॉयलर और टरबाइन से बने यूनिट से छोटे ही होते हैं। डीज़ल इंजनों से सज्जित जहाज़, बिना किसी विशेष तर्क के, मोटरबोट कहलाते हैं। उन जहाज़ों को जिनमें डीज़ल और प्रॉपेलर के बीच जनित्र और दिष्ट धारा मोटर लगी होती है "डीज़ल मोटरबोट" कहते हैं। डीज़ल रेल-इंजन भी इसी सिद्धान्त पर बनाए गए हैं, इसलिए उन्हें "डीज़ल-वैद्युत रेल-इंजन कहा जा सकता है।

आंतरिक दहन पिस्टन इंजनों ने, जिनकी हमने सबसे बाद में चर्चा की थी, वाष्प-चालित इंजन से, जिसका प्रयोग आजकल निरन्तर कम हो रहा है, मुख्य डिज़ाइन तत्व यानी सिलिंडर, पिस्टन, संयोजन छड़-क्रैंक यंत्रावली की सहायता से घूर्णी गति प्राप्त करना गृहीत किया है। वाष्प-चालित इंजन को "बाह्य दहन पिस्टन इंजन" कहा जा सकता है। बृहदाकार बॉयलर का स्थानांतरण-गति (translatory motion) को घूर्णी गति में परिवर्तित करनेवाली कम बृहदाकार यंत्रावली के साथ जोड़ना ही तो वाष्प-चालित इंजन को वर्तमान इंजनों के साथ सफलतापूर्वक होड़ करने में बाधा बनता है। इस बात में कायल होने के वास्ते, आइए हम द्विक्रिया वाले वाष्प-चालित इंजन के कार्य का अध्ययन करें।

बायलर में से भाप स्टीम चेस्ट (steam chest) में प्रवेश करती है,

जिसमें विशेष आकार का एक स्लाइड वाल्व चल रहा होता है। यह वाल्व लीवरों की सहायता से पिस्टन के साथ इस तरह बन्द किया होता है कि वह भाप को बारी-बारी से सिलिंडर के एक या दूसरे भाग में जाने देता है। अतः हर क्षण सिलिंडर में उच्च दाब भाप होती है। पाठक सोचेगा कि वाष्प-चालित इंजन पेट्रोल इंजन से अच्छा है, क्योंकि उसमें मिश्रण बनाने का कोई चरण नहीं है, उसके सब चरण पावर स्ट्रोक हैं। लेकिन यह सतही विचार बिलकुल गलत है।

यहां यह याद करना उचित होगा कि पेट्रोल इंजन की यथेष्ट दक्षता पिस्टन को धकेलनेवाली गैसों के उच्च तापमान से ज्ञात की जाती है। हमें मालूम है कि भाप-टरबाइन की दक्षता बढ़ाने के लिए उच्च दाब भाप का उपयोग किया जाता है। इस भाप का तापमान इतना होता है कि स्टीम पाइपें और टरबाइन ब्लेड लाल तप्त हो जाते हैं। ब्लेड तो निर्बाध घूमते हैं तथा धात्वीय सतहों के साथ उनका घर्षण नहीं होता है। अब ज़रा कल्पना कीजिए कि उस स्वप्नद्रष्टा को कितनी मुश्किलों पर विजय पानी पड़ेगी, जो लाल तप्त पिस्टन को उतने ही तप्त सिलिंडर में चलने पर विवश करने की सोचता है। यही तो नहीं, पिस्टन सिलिंडर की दीवारों के साथ ऐसे सटे कि लगभग 600 atm की दाब प्रवणता (pressure gradient) बनी रहे। अगर कोई कमाल की खोज करके ऐसा इंजन बना भी लिया जाए, तो उसकी दक्षता ऐसे ही प्राचलोंवाली भाप से चलायी जानेवाली टरबाइन की दक्षता से कम होगी, क्योंकि टरबाइन में घूर्णन पैदा करना काफ़ी आसान है, परन्तु उसका आकार और भार एक सदृश आंतरिक दहन इंजन से अधिक होंगे।

वर्तमान वाष्प-चालित इंजनों की दक्षता लगभग 10% है। भाप के इंजन, जिनका आजकल उद्योग में उपयोग नहीं किया जाता है, उनमें जलाए जानेवाले ईंधन का लगभग 95% भाग बिना कोई लाभ प्राप्त किए हवा में फेंकते थे।

इतनी कम दक्षता का कारण भाप से चलनेवाले रेल के इंजनों पर लगाए जानेवाले बॉयलरों का स्थावर बॉयलरों की अपेक्षा अनिवार्य गुणह्रास है।

वाष्प-चालित इंजनों का परिवहन साधनों में इतने लम्बे अरसे तक व्यापक पैमाने पर उपयोग क्यों होता रहा है? प्रायिक समाधानों के साथ मोह के अतिरिक्त इस तथ्य ने भी भूमिका अदा की कि वाष्प-चालित

इंजन के प्रणोद अभिलक्षण काफ़ी अच्छे हैं। पिस्टन को सरकने से रोकने-वाला घर्षण बल जितना ज़्यादा होगा उतनी ही अधिक शक्ति से भाप पिस्टन पर दबाव डालेगी, यानी वाष्प-चालित इंजन द्वारा पैदा किया जाने-वाला बल आघूर्ण मुश्किल परिस्थितियों में बढ़ जायेगा। परिवहन साधनों के लिए यह बात बहुत महत्त्व रखती है। निस्सन्देह, वाष्प-चालित इंजनों में जटिल परिवर्ती गियर की आवश्यकता न होने पर भी उसके मुख्य दोष – निम्न दक्षता – की किसी भी तरह अवहेलना नहीं की जा सकती है।

यही कारण है कि वाष्प-चालित इंजनों का स्थान अन्य क़िस्म के इंजन ले रहे हैं।

उच्चावचन

आइए, अब हम द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम – प्रकृति के महान् नियम – पर फिर विचार करें, जो प्राकृतिक परिघटनाओं के प्रवाहों का संचालन करता है। हम देख चुके हैं कि अनुचित प्रक्रियाएं तंत्र को अधिक-से-अधिक प्रायिक अवस्था की ओर ले जाती हैं यानी तंत्र की एन्ट्रॉपी बढ़ जाती है। तंत्र की एन्ट्रॉपी अधिकतम होने के पश्चात उसमें और परिवर्तन होने बन्द हो जाते हैं, यानी तंत्र साम्यावस्था में पहुंच जाता है।

साम्यावस्था प्राप्त हो जाने का कदापि यह अर्थ नहीं कि आंतरिक विरामावस्था पैदा हो गयी है। तंत्र के अन्दर तीव्र तापीय गति हो रही होती है। असल में यही कारण है कि प्रत्येक भौतिक पिंड हर क्षण "अपनी ही क़िस्म का पिंड" बनने का प्रयत्न करता है, अणुओं की परस्पर स्थिति हर दूसरे क्षण ऐसी नहीं होती है जैसी कि वह इससे पहले क्षण में थी। अतः सब भौतिक प्राचलों के मान "औसतन" होते हैं, वे अपने सबसे अधिक प्रायिक मानों के एकदम बराबर नहीं होते हैं, परन्तु उनके आस-पास ही घटते-बढ़ते रहते हैं। सबसे अधिक प्रायिक साम्यावस्थाओं के मानों से विचलन को उच्चावचन (fluctuation) कहते हैं। विभिन्न उच्चावचनों के मान नगण्य होते हैं। उच्चावचन का मान जितना अधिक होगा है उतना ही वह कम प्रायिक होगा।

आपेक्षिक उच्चावचन का माध्य मान, यानी उस भौतिक मान का अंश जिसमें हमारी दिलचस्पी है, जिसके बराबर यह मान अणुओं की तापीय यादृच्छिक गति (thermal random motion) की बदौलत बदल सकता है,

अभिव्यंजना $\frac{1}{\sqrt{N}}$ द्वारा लगभग व्यक्त किया जा सकता है। यहां N विचाराधीन पिंड या उसके भाग के अणुओं की संख्या है। अतः, उच्चावचन उन तंत्रों में पाया जाता है जिनमें अणुओं की संख्या कम होती है, और बड़े पिंडों में, जिनमें अरबों अणु होते हैं, बिलकुल ही नहीं पायी जाती है।

सूत्र $\frac{1}{\sqrt{N}}$ यह दर्शाता है कि एक घन सेंटीमीटर गैस में घनत्व, दाब, तापमान और अन्य गुणों में $\frac{1}{\sqrt{3 \cdot 10^{19}}}$ यानी लगभग 10^{-8} % परिवर्तन हो सकता है। ऐसे उच्चावचन अति नगण्य है कि उन्हें प्रयोग करके मालूम किया जा सके।

लेकिन एक घन माइक्रोन में बात बिलकुल दूसरी ही है। यहां $N = 3 \cdot 10^7$ और उच्चावचन मापा जा सकता है, वह एक प्रतिशत के लगभग सौवें भाग के बराबर होगा।

उच्चावचन एक "असाधारण" परिघटना है, उस अर्थ में कि वह अधिक प्रायिक अवस्थाओं से कम प्रायिक अवस्थाओं की ओर ले जाती है। उच्चावचन के समय ऊष्मा ठण्डे पिंड से गरम पिंड की ओर जाती है, एकसमान अणु-बंटन अस्तव्यस्त हो जाता है और क्रमिक गति होने लगती है।

हो सकता है कि इन असामान्यताओं के आधार पर दूसरी क़िस्म का शाश्वत इंजन बनाने में सफलता मिल जाए।

उदाहरण के तौर पर एक छोटी-सी टरबाइन की कल्पना कीजिए, जो विरलित गैस में रखी है। क्या ऐसा करना सम्भव नहीं कि यह छोटी-सी मशीन किसी एक दिशा में होनेवाले सब उच्चावचनों के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करे? उदाहरण के लिए, अगर दायीं ओर जानेवाले अणुओं की संख्या बायीं ओर जानेवाले अणुओं की संख्या से अधिक हो जाती है, तो टरबाइन उलटी दिशा में चलने लगे। अगर इन छोटे-छोटे धक्कों को इकट्ठा करने पर अन्ततः कार्य किया जा सके तो दूसरी क़िस्म का शाश्वत इंजन बनाने की असम्भवता का सिद्धान्त गलत साबित होगा।

लेकिन यह खेद की बात है कि सदृश यंत्र बनाना सिद्धान्ततः असम्भव है। विस्तारपूर्वक अध्ययन करने पर, जो इस बात को ध्यान में रखे कि छोटी-सी टरबाइन की अपनी उच्चावचता होती है और उच्चावचता जितनी अधिक होगी टरबाइन का आकार उतना ही छोटा होगा, पता चलता है कि

उच्चावचता किसी भी प्रकार का कार्य नहीं कर सकती है, हालांकि हमारे चारों ओर साम्यावस्था में आने की चेष्ठाओं में निरन्तर विफलताएं आती हैं, लेकिन वे भौतिक प्रक्रियाओं की अनमनीय गति को अवस्था के वर्धमान प्रायिक की ओर नहीं ले जा सकती हैं यानी एन्ट्रॉपी में वृद्धि नहीं कर सकती हैं।

एन्ट्रॉपी और संसार का विकास

नदियां नीचे की ओर बहती हैं, पत्थर पहाड़ों पर से लुढ़कते हैं, घर्षण के कारण गति समाप्त हो जाती है, यानी सब आपेक्षिक गतियां समाप्त हो जाती हैं। गरम पिंड ठण्डे और ठण्डे पिंड गरम होने लगते हैं। संसार के सब पिंडों के तापमान बराबर हो जाते हैं। एन्ट्रॉपी वृद्धि नियमानुसार हमारे चारों ओर होनेवाली क्रियाओं का ऐसा अनिवार्य क्रम है।

लगता है कि सब कुछ स्पष्ट है। लेकिन, अगर गहराई में सोचा जाए तो इसमें भी एक अस्पष्ट बात है। अगर प्रकृति साम्यावस्था में आने की चेष्ठा करती है तो प्रश्न उठता है कि अब तक साम्यावस्था स्थापित क्यों नहीं हुई है।

वास्तव में, अगर तंत्र अत्यधिक असंतुलित है, तो साम्यावस्था में परिवर्तित होने का समय (भौतिक-विज्ञानी इस समय को विश्रांति काल (relaxation time) कहते हैं) अनंत लम्बा नहीं हो सकता है। हमारे संसार को साम्यावस्था में आने के लिए काफ़ी समय लग सकता था, चाहे यह समय अरबों सालों के बराबर हो, पर जो कुछ भी हो किसी भी असंतुलित अवस्था से साम्यावस्था में परिवर्तन एक निश्चित काल में होता, लेकिन अनंत समय तक न होता रहता।

साम्यावस्था कई सौ करोड़ों वर्षों में चाहे अरबों-खरबों सालों में स्थापित क्यों नहीं हुई है?

विचारों का प्रतिकूल होना एक गम्भीर बात है। लगता है कि हमारे संसार का अस्तित्व, जैसा कि हम उसे देखते हैं, भौतिक विज्ञान के ज्ञात नियमों के अटल प्रतिरोध में है।

क्या इस मुश्किल से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है, अगर यह मान लिया जाए कि हमारा सारा संसार एक अतिविशाल उच्चावचता है? संसार

समय और आकाश में अनंत है। लेकिन कभी यहां तो कभी वहां उच्चावचता होती रहती है, यानी अणु इकट्ठे होते रहते और उनकी गति का क्रमीकरण होता है तथा, उदाहरण के तौर पर, ग्रह निकाय (planetary system) बनता है। इसके उपरांत उच्चावचता कम होने लगती है, बिलकुल समाप्त हो जाती है, लेकिन इसके बदले में संसार के दूसरे भागों में उच्चावचता पैदा हो जाती है।

लेकिन सदृश परिकल्पना लोभक होने पर भी साधारण आलोचनाओं का सामना नहीं कर पाएगी। इस प्रकार की उच्चावचता एकदम असम्भव है। हम जानते हैं कि एक घन सेंटीमीटर आकारवाले पात्र के एक भाग में अणुओं का स्वतः सघन होना अपार स्थितियों में से एक स्थिति है। तब प्रतीयमान संसार की बन चुकी उच्चावचता के बारे में क्या बताया जाए।

ऐसी व्याख्या से काम नहीं चलेगा। इसकी सत्यता में विश्वास करना उतनी ही मूर्खता होगी जितना चोर की सौगंधों पर विश्वास करना कि आपकी जेब में से उसने बटुआ नहीं चुराया है, बल्कि अणुओं की उच्चावचता के कारण बटुआ आपकी जेब में से उसके यानी चोर के हाथ में आ गया है। तिस पर भी ऐसी उच्चावचता संसार में होनेवाली उच्चावचता से, जिसके बारे में यहां चर्चा हो रही है, अकल्पित गुना अधिक प्रायिक है।

इस पर आपत्ति इस प्रकार की जा सकती है। मान लीजिए कि संसार के आकार के बराबर अतिविशाल उच्चावचता की प्रायिकता नगण्य है, लेकिन इससे हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मैं, एक व्यक्ति, जो इस प्रश्न पर विचार कर रहा है, भी तो इस उच्चावचता का परिणाम हूं। मेरा अस्तित्व एक बिलकुल अप्रायिक घटना है, और प्रायिक या अप्रायिक के बारे में मुझे अपने ही की अपेक्षा निर्णय करना है।

इस आपत्ति की भी अवहेलना करनी पड़ती है।

हमारे अस्तित्व के वास्ते सौर-मंडल का होना पर्याप्त से अधिक है। लेकिन हम इतने बड़े पैमाने पर असंतुलित संसार देखते हैं जिसकी तुलना में हमारा सौर-मंडल एक सूक्ष्म कण मात्र है।

आज टेलीस्कोपों की मदद से खगोलज्ञों ने सृष्टि की सौर मंडल के आकार से $10^{12}-10^{13}$ गुना अधिक दूरी तक अध्ययन कर लिया है। अगर सृष्टि उच्चावचता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि हम असंतुलित अवस्थाएं देखते हैं जिनका माप हमारे जीवन के लिए आवश्यक माप से

कम से कम 10^{12} गुना अधिक है। यही कारण है कि हमारा अस्तित्व किसी भी हद तक उच्चावचता की, जिसने संसार को वर्तमान रूप में जन्म दिया है, अकल्पित छोटी प्रायिकता को सही साबित नहीं करता है।

अतः अन्तर्विरोध पूर्णतया बना रहता है। इससे यह पता चलता है कि आकाश और समय के बारे में मुख्य धारणाएं तथा मूलभूत नियम, जिन्हें हमने अब तक अशंकनीय माना था, कुछेक बातों पर लागू नहीं होते हैं। विज्ञान के आधार में कहीं कोई सुधार करना आवश्यक है।

यहां हमारा यांत्रिकी के सिद्धान्तों की त्रुटियों के साथ दूसरी बार वास्ता पड़ रहा है। लेकिन अब तो हमने उसमें एक नया दोष मालूम कर लिया है, जो धारणाओं पर पुनर्विचार करने से संबंधित नहीं है। पाठक को द्रव हीलियम के आसाधारण गुणों से परिचित करवाते समय हमने इस दोष की विशेषता के बारे में बताया था। वहां यह बताया गया था कि पुरानी यांत्रिकी के नियमों को सूक्ष्म कणों पर लागू नहीं किया जा सकता है। अपने ज्ञान से संसार का अध्ययन करने पर हमने अब देख लिया है कि हमारे ज्ञान के आधारभूत नियमों में अवगुण हैं।

पुरानी यांत्रिकी छोटे और बड़े दोनों संसारों के लिए बेकार सिद्ध हुई है।

प्रकृति के प्राचीन नियमों के प्रतिपादनों में कैसे परिवर्तन करने ज़रूरी हैं ताकि उन्हें सूक्ष्म संसार और सारी सृष्टि का अध्ययन करने के वास्ते लागू किया जा सके। इसके बारे में हम भविष्य में पाठक को बताने की आशा करते हैं।

विषय-निर्देशिका

अ

आ

उ

ऊ

क

द

ध

न

पाठकों से

मीर प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

मीर प्रकाशन
पेर्वी रीज़्स्की पेरेऊलोक, २
मास्को, सोवियत संघ।